प्रेमचन्द की अमर कृति

गो-दान

* " 'गोदान' चिरकाल तक हिन्दी उपन्यास का जय-चिह्न रहेगा।"

—प्रकाशचन्द्र गुप्त

" 'गोदान' हमारे ग्रामीण जीवन के अंधकार-पक्ष का एक महान काव्य है।"

—रामनाथलाल 'सुमन'

" डकिन्स के आलिव ट्विस्ट से बिदा लेते समय जो एक मधुर वेदना होती है, होरी से बिदा लेते वक्त हमें उसका अनुभव हुआ।"

—बा० वि० पराड़कर

* प्रकाशक *

सरस्वती प्रेस, बनारस

शाखाएँ:—बनारस सिटी ० इलाहाबाद ० लखनऊ ० दिल्ली

इस पुस्तक का
मूल्य ६)

गो-दान

: लेखक :

प्रेमचन्द

सातवाँ संस्करण, नवंबर, १९४४
आठवाँ संस्करण, अप्रैल, १९४६
मूल्य ६)

▼

मुद्रक : श्रीपतराय, सरस्वती प्रेस, बनारस

१

होरीराम ने दोनों बैलों को सानी-पानी देकर अपनी स्त्री धनिया से कहा—गोबर को ऊख गोड़ने भेज देना। मैं न जाने कब लौटूँ। ज़रा मेरी लाठी दे दे।

धनिया के दोनों हाथ गोबर से भरे थे। उपले पाथकर आई थी। बोली—अरे, कुछ रस-पानी तो कर लो। ऐसी जल्दी क्या है।

होरी ने अपने झुर्रियों से भरे हुए माथे को सिकोड़कर कहा—तुझे रस-पानी की पड़ी है, मुझे यह चिंता है कि अबेर हो गई तो मालिक से भेंट न होगी। असनान-पूजा करने लगेंगे, तो घंटों बैठे बीत जायगा।

'इसी से तो कहती हूँ. कुछ जलपान कर लो। और आज न जाओगे, तो कौन हरज होगा; अभी तो परसों गये थे।'

'तू जो बात नहीं समझती, उसमें टाँग क्यों अड़ाती है भाई! मेरी लाठी दे दे और अपना काम देख। यह इसी मिलते-जुलते रहने का परसाद है कि अब तक जान बची हुई है। नहीं कहीं पता न लगता कि किधर गये। गाँव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई, किस पर कुड़की नहीं आई। जब दूसरों के पाँवों-तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पाँवों को सहलाने में ही कुशल है।'

धनिया इतनी व्यवहार-कुशल न थी। उसका विचार था कि हमने ज़मींदार के खेत जोते हैं तो वह अपना लगान ही तो लेगा! उसकी खुशामद क्यों करें, उसके तलवे क्यों सहलायें? यद्यपि अपने विवाहित जीवन के इन बीस बरसों में उसे अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर-ब्योंत करो, कितना ही पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दाँत से पकड़ो; मगर लगान बेबाक़ होना मुश्किल है। फिर भी वह हार न मानती थी, और इस विषय पर स्त्री-पुरुष में आये-दिन संग्राम छिड़ा रहता था। उसकी छः सन्तानों में अब केवल तीन ज़िन्दा हैं, एक लड़का गोबर कोई सोलह साल का, और दो लड़कियाँ सोना और रूपा बारह और आठ साल की। तीन लड़के बचपन ही में मर गये। उसका मन आज भी कहता था, अगर उनकी दवा-दारू होती तो वे बच जाते; पर वह एक धेले की दवा भी न मँगवा सकी थी।

छत्तीसवाँ ही साल तो था; पर सारे बाल पक गये थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं, सारी देह ढल गई थी, वह सुन्दर गेहुआँ रंग सँवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था। पेट की चिन्ता ही के कारण तो! कभी तो जीवन का सुख न मिला। इस चिरस्थायी जीर्णावस्था ने उसके आत्म-सम्मान को उदासीनता का रूप दे दिया था। जिस गृहस्थी में पेट की रोटियाँ भी न मिलें, उसके लिए इतनी ख़ुशामद क्यों। इस परिस्थिति से उसका मन बराबर विद्रोह किया करता था और दो-चार घुड़कियाँ खा लेने पर ही उसे यथार्थ का ज्ञान होता था।

उसने परास्त होकर होरी की लाठी, मिरजई, पगड़ी, जूते और तमाखू का बटुआ लाकर सामने पटक दिये।

होरी ने उसकी ओर आँखें तरेरकर कहा—क्या ससुराल जाना है, जो पाँचों पोसाक लाई है? ससुराल में भी तो कोई जवान साली-सलहज नहीं बैठी है, जिसे जाकर दिखाऊँ।

होरी के गहरे पर साँवले, पिचके हुए चेहरे पर मुस्कराहट की मृदुता झलक पड़ी। धनिया ने लजाते हुए कहा—ऐसे ही तो बड़े सजीले जवान हो कि साली-सलहजें तुम्हें देखकर रीझ जायँगी!

होरी ने फटी हुई मिरजई को बड़ी सावधानी से तह करके खाट पर रखते हुए कहा—तो क्या तू समझती है मैं बूढ़ा हो गया? अभी तो चालीस भी नहीं हुए। मर्द साठे पर पाठे होते हैं।

'जाकर सीसे में मुँह देखो। तुम-जैसे मर्द साठे पर पाठे नहीं होते। दूध-घी अंजन लगाने तक को तो मिलता नहीं, पाठे होंगे! तुम्हारी दशा देख-देखकर तो मैं और भी सूखी जाती हूँ कि भगवान् यह बुढ़ापा कैसे कटेगा। किसके द्वार भीख माँगेंगे।'

होरी की वह क्षणिक मृदुता यथार्थ की इस आँच में जैसे झुलस गई। लकड़ी सँभालता हुआ बोला—साठे तक पहुँचने की नौबत न आने पायेगी धनिया! इसके पहले ही चल देंगे।

धनिया ने तिरस्कार किया—अच्छा रहने दो, मत असुभ मुँह से निकालो। तुमसे कोई अच्छी बात भी कहे, तो लगते हो कोसने।

होरी लाठी कन्धे पर रखकर घर से निकला, तो धनिया द्वार पर खड़ी उसे देर

तक देखती रही। उसके इन निराशा-भरे शब्दों ने धनिया के चोट खाये हुए हृदय में आतंकमय कम्पन सा डाल दिया था। वह जैसे अपने नारीत्व के संपूर्ण तप और व्रत से अपने पति को अभयदान दे रही थी। उसके अन्तःकरण से जैसे आशीर्वादों का व्यूह-सा निकलकर होरी को अपने अन्दर छिपाये लेता था। विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था, जिसे पकड़े हुए वह सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी मानो झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा। बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदना-शक्ति आ गई थी। काना कहने से काने को जो दुःख होता है, वह क्या दो आँखवाले आदमी को हो सकता है?

होरी क़दम बढ़ाये चला जाता था। पगडण्डी के दोनों ओर ऊख के पौदों की लहराती हुई हरियाली देखकर उसने मन में कहा—भगवान् कहीं गौं से बरखा कर दें और डाँड़ी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेना। देसी गायें तो न दूध दें न उसके बछवे ही किसी काम के हों। बहुत हुआ तो तेली के कोल्हू में चले। नहीं, वह पछाईं गाय लेगा। उसकी ख़ूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार-पाँच सेर दूध होगा। गोबर दूध के लिए तरस-तरसकर रह जाता है। इस उमिर में न खाया-पिया, तो फिर कब खायेगा। साल-भर भी दूध पी ले, तो देखने लायक़ हो जाय। बछवे भी अच्छे बैल निकलेंगे। दो सौ से कम की गोईं न होगी। फिर, गऊ से ही तो द्वार की सोभा है। सबेरे-सबेरे गऊ के दर्सन हो जायँ, तो क्या कहना। न जाने कब यह साध पूरी होगी, कब वह शुभ दिन आयेगा।

हरएक गृहस्थ की भाँति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक के सूद से चैन करने या ज़मीन खरीदने या महल बनवाने की विशाल आकांक्षाएँ उसके नन्हे-से हृदय में कैसे समातीं।

जेठ का सूर्य आमों के झुरमुट से निकलकर आकाश पर छाई हुई लालिमा को अपने रजत प्रताप से तेज प्रदान करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था, और हवा में गर्मी आने लगी थी। दोनों ओर खेतों में काम करनेवाले किसान उसे देखकर राम-राम करते और सम्मान-भाव से चिलम पीने का निमंत्रण देते थे; पर होरी को इतना अवकाश कहाँ था। उसके अन्दर बैठी हुई सम्मान-लालसा ऐसा आदर पाकर उसके

सूखे मुख पर गर्व की झलक पैदा कर रही थी। मालिकों से मिलते-जुलते रहने ही का तो यह प्रसाद है कि सब उसका आदर करते हैं। नहीं उसे कौन पूछता। पाँच बीघे के किसान की बिसात ही क्या? यह कम आदर नहीं है कि तीन-तीन, चार-चार हलवाले महतो भी उसके सामने सिर झुकाते हैं।

अब वह खेतों के बीच की पगडण्डी छोड़कर एक खलेटी में आ गया था, जहाँ बरसात में पानी भर जाने के कारण कुछ तरी रहती थी और जेठ में कुछ हरियाली नज़र आती थी। आस-पास के गावों की गउएँ वहाँ चरने आया करती थीं। उस समय में भी यहाँ की हवा में कुछ ताज़गी और ठण्डक थी। होरी ने दो-तीन साँसें ज़ोर से लीं। उसके जी में आया, कुछ देर यहीं बैठ जाय। दिन-भर तो लू-लपट में मरना है ही। कई किसान इस गड्ढे का पट्टा लिखाने को तैयार थे। अच्छी रक़म देते थे; पर ईश्वर भला करे राय साहब का कि उन्होंने साफ़ कह दिया, यह ज़मीन जानवरों की चराई के लिए छोड़ दी गई है और किसी दाम पर भी न उठाई जायगी। कोई स्वार्थी जमींदार होता, तो कहता, गायें जायँ भाड़ में, हमें रुपये मिलते हैं, क्यों छोड़ें; पर राय साहब अभी तक पुरानी मर्यादा निभाते आते हैं। जो मालिक प्रजा को न पाले, वह भी कोई आदमी है?

सहसा उसने देखा, भोला अपनी गायें लिये इसी तरफ़ चला आ रहा है। भोला इसी गाँव से मिले हुए पूरवे का ग्वाला था और दूध-मक्खन का व्यवसाय करता था। अच्छा दाम मिल जाने पर कभी-कभी किसानों के हाथ गायें बेंच भी देता था। होरी का मन उन गायों को देखकर ललचा गया। भोला वह आगेवाली गाय उसे दे दे, तो क्या कहना! रुपये आगे-पीछे देता रहेगा। वह जानता था, घर में रुपये नहीं हैं, अभी तक लगान नहीं चुकाया जा सका, बिसेसर साह का देना भी बाकी है, जिस पर आने रुपये का सूद चढ़ रहा है; लेकिन दरिद्रता में जो एक प्रकार की अदूर-दर्शिता होती है, वह निर्लज्जता जो तक़ाज़े, गाली और मार से भी भय-भीत नहीं होती, उसने उसे प्रोत्साहित किया। बरसों से जो साध मन को आन्दोलित कर रही थी, उसने उसे विचलित कर दिया। भोला के समीप जाकर बोला—राम-राम भोला भाई, कहो क्या रंग-ढंग है। सुना अबकी मेले से नयी गायें लाये हो।

भोला ने रुखाई से जवाब दिया। होरी के मन की बात उसने ताड़ ली थी—

हाँ, दो बछिये और दो गायें लाया। पहलेवाली गायें सब सूख गई थीं। बन्धी पर दूध न पहुँचे, तो गुजर कैसे हो।

होरी ने आगेवाली गाय के पुट्ठे पर हाथ रखकर कहा—दुधार तो मालूम होती है। कितने में ली?

भोला ने शान जमाई—अबकी बजार बड़ा तेज़ था महतो, इसके अस्सी रुपये देने पड़े। आँखें निकल गईं। तीस-तीस रुपये तो दोनों कलोरों के दिये। तिस पर गाहक रुपए का आठ सेर दूध माँगता है।

'बड़ा भारी कलेजा है तुम लोगों का भाई, लेकिन फिर लाये भी तो वह माल कि यहाँ दस-पाँच गाँवों में तो किसी के पास निकलेगा नहीं।'

भोला पर नशा चढ़ने लगा। बोला—राय साहब इसके सौ रुपये देते थे। दोनों कलोरों के पचास-पचास रुपये; लेकिन हमने न दिये। भगवान ने चाहा, तो सौ रुपये इसी ब्यान में पीट लूँगा।

'इसमें क्या सन्देह है भाई! मालिक क्या खाके लेंगे। नजराने में मिल जाय, तो भले ले लें। यह तुम्हीं लोगों का गुर्दा है कि अँजुली भर रुपये तकदीर के भरोसे गिन देते हो। यही जी चाहता है कि इसके दरसन करता रहूँ। धन्य है तुम्हारा जीवन कि गउओं की इतनी सेवा करते हो। हमें तो गाय का गोबर भी मयस्सर नहीं। गिरस्त के घर में एक गाय भी न हो, तो कितनी लज्जा की बात है। साल के साल बीत जाते हैं, गोरस के दरसन नहीं होते। घरवाली बार-बार कहती है भोला भैया से क्यों नहीं कहते। मैं कह देता हूँ, कभी मिलेंगे तो कहूँगा। तुम्हारे सुभाव से बड़ी परसन रहती है। कहती है, ऐसा मर्द ही नहीं देखा कि जब बातें करेंगे, नीची आँखें करके, कभी सिर नहीं उठाते।'

भोला पर जो नशा चढ़ रहा था, उसे इस भरपूर प्याले ने और गहरा कर दिया। बोला—भला आदमी वही है, जो दूसरों की बहू-बेटी को अपनी बहू-बेटी समझे। जो दुष्ट किसी मेहरिया की ओर ताके, उसे गोली मार देना चाहिए।

'यह तुमने लाख रुपये की बात कह दी भाई! बस सज्जन वही, जो दूसरों की आबरू को अपनी आबरू समझे।'

'जिस तरह मर्द के मर जाने से औरत अनाथ हो जाती है, उसी तरह औरत के

मर जाने से मर्द के हाथ-पाँव कट जाते हैं। मेरा तो घर उजड़ गया महतो, कोई एक लोटा पानी देनेवाला भी नहीं।'

गत वर्ष भोला की स्त्री लू लग जाने से मर गई थी। यह होरी जानता था; लेकिन पचास बरस का खंखड़ भोला भीतर से इतना स्निग्ध है, वह न जानता था। स्त्री की लालसा उसकी आँखों में सजल हो गई थी। होरी को आसन मिल गया। उसकी व्यावहारिक कृषक-बुद्धि सजग हो गई।

'पुरानी मसल झूठी थोड़ी है—बिन घरनी घर भूत का डेरा। कहीं सगाई नहीं ठीक कर लेते?'

'ताक में हूँ, महतो पर कोई जल्दी फँसता नहीं। सौ-पचास खरच करने को भी तैयार हूँ। जैसी भगवान् की इच्छा।'

'अब मैं भी फिराक में रहूँगा। भगवान चाहेंगे, तो जल्दी घर बस जायगा।'

'बस यही समझ लो कि उबर जाऊँगा भैया! घर में खाने को भगवान् का दिया बहुत है। चार पँसेरी रोज दूध हो जाता है; लेकिन किस काम का!'

'मेरे ससुराल में एक मेहरिया है। तीन-चार साल हुए उसका आदमी उसे छोड़कर कलकत्ते चला गया। बेचारी पिसाई करके गुज़र कर रही है। बाल-बच्चा भी कोई नहीं। देखने-सुनने में भी अच्छी है। बस, लच्छमी समझ लो।'

भोला का सिकुड़ा हुआ चेहरा जैसे चिकना गया। आशा में कितनी सुधा है। बोला—अब तो तुम्हारा ही आसरा है महतो! छुट्टी हो, तो चलो एक दिन देख आयें।

'मैं ठीक-ठाक करके तब तुमसे कहूँगा। बहुत उतावली करने से भी काम बिगड़ जाता है।'

'जब तुम्हारी इच्छा हो तब चलो। उतावली काहे की। इस कबरी पर मन ललचाया हो, तो ले लो।'

'यह गाय मेरे काम की नहीं है दादा! मैं तुम्हें नुकसान नहीं पहुँचाना चाहता। अपना धरम यह नहीं है कि मित्रों का गला दबायें। जैसे इतने दिन बीते हैं, वैसे और भी बीत जायँगे।'

'तुम तो ऐसी बातें करते हो होरी, जैसे हम-तुम दो हैं। तुम गाय ले जाओ,

दाम जो चाहे देना। जैसे मेरे घर रही, वैसे तुम्हारे घर रही। अस्सी रुपये में ली थी, तुम अस्सी रुपये ही दे देना। जाओ।'

'लेकिन मेरे पास नगद नहीं है दादा! समझ लो।'

'तो तुमसे नगद माँगता कौन है भाई!'

होरी की छाती गज़-भर की हो गई। अस्सी रुपये में गाय महँगी न थी। ऐसा अच्छा डील-डौल, दोनों जून में छः-सात सेर दूध, सीधी ऐसी कि बच्चा भी दुह ले। इसका तो एक-एक बाछा सौ-सौ का होगा। द्वार पर बँधेगी, तो द्वार की शोभा बढ़ जायगी। उसे अभी कोई चार सौ रुपये देने थे; लेकिन उधार को वह एक तरह से मुफ़्त समझता था। कहीं भोला की सगाई ठीक हो गई, तो साल दो साल तो वह बोलेगा भी नहीं। सगाई न भी हुई, तो होरी का क्या बिगड़ता है। यही तो होगा, भोला बार-बार तगादा करने आयेगा, बिगड़ेगा, गालियाँ देगा; लेकिन होरी को इसकी ज़्यादा शर्म न थी। इस व्यवहार का वह आदी था। कृषक के जीवन का तो यह प्रसाद है। भोला के साथ वह छल कर रहा था और यह व्यापार उसकी मर्यादा के अनुकूल न था। अब भी लेन-देन में उसके लिए लिखा-पढ़ी होने और न होने में कोई अन्तर न था। सूखे-बूड़े की विपदाएँ उसके मन को भीरु बनाये रहती थीं। ईश्वर का रुद्र रूप सदैव उसके सामने रहता था; पर यह छल उसकी नीति में छल न था। यह केवल स्वार्थ-सिद्धि थी और यह कोई बुरी बात न थी। इस तरह का छल तो वह दिन-रात करता रहता था। घर में दो-चार रुपये पड़े रहने पर भी महाजन के सामने क़स्में खा जाता था कि एक पाई भी नहीं है। सन को कुछ गीला कर देना और रुई में कुछ बिनौले भर देना उसकी नीति में जायज था। और यहाँ तो केवल स्वार्थ न था, थोड़ा सा मनोरंजन भी था। बुड्ढों का बुढ़भस हास्यास्पद वस्तु है और ऐसे बुड्ढों से अगर कुछ ऐंठ भी लिया जाय, तो कोई दोष-पाप नहीं।

भोला ने गाय की पगहिया होरी के हाथ में देते हुए कहा—ले जाओ महतो, तुम भी याद करोगे। ब्याते ही छः सेर दूध ले लेना। चलो, मैं तुम्हारे घर तक पहुँचा दूँ। साइत तुम्हें अनजान समझकर, रास्ते में कुछ दिक करे। अब तुमसे सच कहता हूँ, मालिक नब्बे रुपये देते थे; पर उनके यहाँ गउओं की क्या कदर। मुझसे लेकर किसी हाकिम-हुक्काम को दे देते। हाकिमों को गऊ की सेवा से मतलब!

वह तो खून चूसना भर जानते हैं। जब तक दूध देती, रखते; फिर किसी के हाथ बेंच देते। किसके पल्ले पड़ती, कौन जाने। रुपया ही सब कुछ नहीं है भैया, कुछ अपना धरम भी तो है! तुम्हारे घर आराम से रहेगी तो। यह न होगा कि तुम आप खाकर सो रहो और गऊ भूखी रहे। उसकी सेवा करोगे, प्यार करोगे, चुमकारोगे। गऊ हमें आसिरबाद देगी। तुमसे क्या कहूँ भैया, घर में चंगुल भर भी भूसा नहीं रहा। रुपये सब बाजार में निकल गये। सोचा था, महाजन से कुछ लेकर भूसा ले लेंगे; लेकिन महाजन का पहला ही नहीं चुका। उसने इनकार कर दिया। इतने जानवरों को क्या खिलायें, यही चिन्ता मारे डालती है। चुटकी-चुटकी भर खिलाऊँ, तो मन-भर रोज का खरच है। भगवान् ही पार लगायें तो लगे।

होरी ने सहानुभूति के स्वर में कहा—तुमने हमसे पहले क्यों न कहा। हमने एक गाड़ी भूसा बेच दिया।

भोला ने माथा ठोंककर कहा—इसी लिए नहीं कहा भैया कि सबसे अपना दुख क्यों रोऊँ। बाँटता कोई नहीं, हँसते सब हैं। जो गायें सूख गई हैं उनका गम नहीं, पत्ती-सत्ती खिलाकर जिला लूँगा; लेकिन अब यह तो रातिब बिना नहीं रह सकती। हो सके, तो दस-बीस रुपये भूसा के लिए दे दो।

किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी गाँठ से रिशवत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घण्टों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाय, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता; लेकिन उसका संपूर्ण जीवन प्रकृति से स्थायी सहयोग है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है; खेतों में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है; गाय के थन में दूध होता है, वह ख़ुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं; मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहाँ स्थान! होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।

भोला की संकट-कथा सुनते ही उसकी मनोवृत्ति बदल गई। पगहिया को भोला के हाथ में लौटाता हुआ बोला—रुपए तो दादा मेरे पास नहीं हैं। हाँ, थोड़ा-सा भूसा बचा है, वह तुम्हें दूँगा। चलकर उठवा लो। भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे, और मैं लूँगा! मेरे हाथ न कट जायँगे?

भोला ने आर्द्र कण्ठ से कहा—तुम्हारे बैल भूखों न मरेंगे ? तुम्हारे पास भी ऐसा कौन-सा बहुत-सा भूसा रखा है।

'नहीं दादा, अबकी भूसा अच्छा हो गया था।'

'मैंने तुमसे नाहक भूसे की चर्चा की।'

'तुम न कहते और पीछे से मुझे मालूम होता, तो मुझे बड़ा रंज होता कि तुमने मुझे इतना गैर समझ लिया। अवसर पड़ने पर भाई की मदद भी न करे, तो काम कैसे चले।'

'मुदा यह गाय तो लेते जाओ।'

'कभी नहीं दादा, फिर ले लूँगा।'

'तो भूसे के दाम दूध में कटवा लेना।'

होरी ने दुखित स्वर में कहा—दाम-कौड़ी की इसमें कौन बात है दादा, मैं एक-दो जून तुम्हारे घर खा लूँ, तो तुम मुझसे दाम माँगोगे ?

'लेकिन तुम्हारे बैल भूखों मरेंगे कि नहीं ?'

'भगवान् कोई न कोई सबील निकालेंगे ही। असाढ़ सिर पर है। कड़वी बोलूँगा।'

'मगर यह गाय तुम्हारी हो गई। जिस दिन इच्छा हो आकर ले जाना।'

'किसी भाई का लिलाम पर चढ़ा हुआ बैल लेने में जो पाप है, वही इस समय तुम्हारी गाय लेने में है।'

होरी में बाल की खाल निकालने की शक्ति होती, तो वह खुशी से गाय लेकर घर की राह लेता। भोला जब नक़द रुपये नहीं माँगता तो स्पष्ट था कि वह भूसे के लिए गाय नहीं बेच रहा है, बल्कि इसका कुछ और आशय है; लेकिन जैसे पत्तों के खड़कने पर घोड़ा अकारण ही ठिठक जाता है और मारने पर भी आगे क़दम नहीं उठाता, वही दशा होरी की थी। संकट की चीज़ लेना पाप है, यह बात जन्म-जन्मान्तरों से उसकी आत्मा का अंश बन गई थी।

भोला ने गद्गद् कंठ से कहा—तो किसी को भेज दूँ भूसे के लिए ?

होरी ने जवाब दिया—अभी मैं राय साहब की ड्योढ़ी पर जा रहा हूँ। वहाँ से घड़ी-भर में लौटूँगा, तभी किसी को भेजना।

भोला की आँखों में आँसू भर आये। बोला—तुमने आज मुझे उबार लिया

होरी भाई ! मुझे अब मालूम हुआ कि मैं संसार में अकेला नहीं हूँ। मेरा भी कोई हितू है। एक क्षण के बाद उसने फिर कहा—उस बात को भूल न जाना।

होरी आगे बढ़ा, तो उसका चित्त प्रसन्न था। मन में एक विचित्र स्फूर्ति हो रही थी। क्या हुआ, दस-पाँच मन भूसा चला जायगा, बेचारे को संकट में पड़कर अपनी गाय तो न बेचनी पड़ेगी ! जब मेरे पास चारा हो जायगा, तब गाय खोल लाऊँगा। भगवान करें, मुझे कोई मेहरिया मिल जाय। फिर तो कोई बात ही नहीं।

उसने पीछे फिरकर देखा। कबरी गाय पूँछ से मक्खियाँ उड़ाती, सिर हिलाती मस्तानी, मंद-गति से झूमती चली जाती थी, जैसे बाँदियों के बीच में कोई रानी हो। कैसा शुभ होगा वह दिन, जब यह कामधेनु उसके द्वार पर बँधेगी।

२

सेमरी और बेलारी दोनों अवध-प्रान्त के गाँव हैं। जिले का नाम बताने की कोई ज़रूरत नहीं। होरी बेलारी में रहता है राय साहब अमरपाल सिंह सेमरी में। दोनों गाँवों में केवल पाँच मील का अन्तर है। पिछले सत्याग्रह-संग्राम में राय साहब ने बड़ा यश कमाया था। कौंसिल की मेंबरी छोड़कर जेल चले गये। तब से उनके इलाके के असामियों को उनसे बड़ी श्रद्धा हो गई थी। यह नहीं कि उनके इलाके में असामियों के साथ कोई खास रिआयत की जाती हो, या डाँड़ और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो; मगर यह सारी बदनामी मुख्तारों के सिर जाती थी। राय साहब की कीर्ति पर कोई कलंक न लग सकता था। वह बेचारे भी तो उसी व्यवस्था के ग़ुलाम थे। ज़ाब्ते का काम तो जैसे होता चला आया है वैसा ही होगा। राय साहब की जनता उसपर कोई असर न डाल सकती थी ; इसलिए आमदनी और अधिकार में जौ-भर की भी कमी न होने पर भी उनका यश मानो बढ़ गया था। असामियों से वह हँस कर बोल लेते थे। यही क्या कम है ? सिंह का काम तो शिकार करना है ; अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोल सकता, तो उसे घर बैठे मन-माना शिकार मिल जाता। शिकार की खोज में उसे जंगल में न भटकना पड़ता।

राय साहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल-जोल बनाये रखते थे। उनकी नज़रें और डालियाँ और कर्मचारियों की दस्तूरियाँ जैसी-की-तैसी चली आती थीं। साहित्य और संगीत के प्रेमी थे, ड्रामा के शौकीन, अच्छे वक्ता थे,

अच्छे लेखक, अच्छे निशानेबाज। उनकी पत्नी को मरे आज दस साल हो चुके थे; मगर दूसरी शादी न की थी। हँस-बोलकर अपने विधुर-जीवन को बहलाते रहते थे।

होरी ड्योढ़ी पर पहुँचा, तो देखा, जेठ के दशहरा के अवसर पर होने वाले धनुष-यज्ञ की बड़े जोरों से तैयारियाँ हो रही हैं। कहीं रंग-मंच बन रहा था, कहीं मंडप, कहीं मेहमानों का आतिथ्य-गृह, कहीं दूकानदारों के लिए दूकानें। धूप तेज़ हो गई थी; पर साहब ख़ुद काम में लगे हुए थे। अपने पिता से सपत्ति के साथ-साथ उन्होंने राम की भक्ति भी पाई थी और धनुष-यज्ञ को नाट्य का रूप देकर उसे शिष्ट मनोरंजन का साधन बना दिया था। इस अवसर पर उनके यार-दोस्त, हाकिम-हुक्काम सभी निमन्त्रित होते थे। और दो-तीन दिन इलाके में बड़ी चहल-पहल रहती थी। राय साहब का परिवार बहुत विशाल था। कोई डेढ़ सौ सरदार एक साथ भोजन करते थे। कई चचा थे, दरजनों चचेरे भाई, कई सगे भाई, बीसियों नाते के भाई। एक चचा साहब राधा के अनन्य उपासक थे और बराबर वृन्दावन में रहते थे। भक्ति-रस के कितने ही कवित्त रच डाले थे और समय-समय पर उन्हें छपवा कर दोस्तों को भेंट कर देते थे। एक दूसरे चचा थे, जो राम के परम भक्त थे और फ़ारसी-भाषा में रामायण का अनुवाद कर रहे थे। रियासत से सबके वसीक़े बँधे हुए थे। किसी को कोई काम करने की ज़रूरत न थी।

होरी मंडप में खड़ा सोच रहा था कि अपने आने की सूचना कैसे दे कि सहसा राय साहब उधर ही आ निकले और उसे देखते ही बोले—अरे! तू आ गया होरी, मैं तो तुझे बुलवानेवाला था। देख, अबकी तुझे राजा जनक का माली बनना पड़ेगा, समझ गया न। जिस वक्त श्रीजानकीजी मन्दिर में पूजा करने जाती हैं, उसी वक़्त तू एक गुलदस्ता लिये खड़ा रहेगा और जानकीजी की भेंट करेगा। ग़लती न करना और देख, असामियों से ताक़ीद करके कह देना कि सबके सब शगुन करने आयें। मेरे साथ कोठी में आ, तुझसे कुछ बातें करनी हैं।

वह आगे-आगे कोठी की ओर चले, होरी पीछे-पीछे चला। वहीं एक घने वृक्ष की छाया में वह कुरसी पर बैठ गये और होरी को ज़मीन पर बैठने का इशारा करके बोले—समझ गया, मैंने क्या कहा? कारकुन को तो जो कुछ करना है वह करेगा ही; लेकिन असामी जितने मन से असामी की बात सुनता है, कारकुन की

नहीं सुनता। हमें इन्हीं पाँच-सात दिनों में बीस हज़ार का प्रबन्ध करना है। कैसे होगा, समझ में नहीं आता। तुम सोचते होगे, मुझ टके के आदमी से मालिक क्यों अपना दुखड़ा ले बैठे। किससे अपने मन की कहूँ। न जाने क्यों तुम्हारे ऊपर विश्वास होता है। इतना जानता हूँ कि तुम मन में मुझ पर हँसोगे नहीं। और हँसो भी, तो तुम्हारी हँसी मैं बरदाश्त कर सकूँगा। नहीं सह सकता उनकी हँसी, जो अपने बराबर के हैं। क्योंकि उनकी हँसी में ईर्ष्या, व्यंग्य और जलन है। और वे क्यों न हँसें? मैं भी तो उनकी दुर्दशा और विपत्ति और पतन पर हँसता हूँ, दिल खोलकर, तालियाँ बजाकर। सम्पत्ति और सहृदयता में बैर है। हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं; लेकिन जानते हो, क्यों? केवल अपने बराबरवालों को नीचा दिखाने के लिए। हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है, विशुद्ध अहंकार। हममें से किसी पर डिग्री हो जाय, कुर्की आ जाय, बकाया मालगुज़ारी की इल्लत में हवालात हो जाय, किसी का जवान बेटा मर जाय, किसी की विधवा बहू निकल जाय, किसी के घर में आग लग जाय, कोई किसी वेश्या के हाथों उल्लू बन जाय, या अपने असामियों के हाथों पिट जाय, तो उसके और सभी भाई उस पर हँसेंगे, बगलें बजायेंगे, मानो सारे संसार की सम्पदा मिल गई है। और मिलेंगे तो इतने प्रेम से, जैसे हमारे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार हैं। अरे और तो और, हमारे चचेरे, फुफेरे, ममेरे, मौसेरे भाई जो इसी रियासत की बदौलत मौज उड़ा रहे हैं, कविता कर रहे हैं और जुए खेल रहे हैं, शराबें पी रहे हैं और ऐयाशी कर रहे हैं, वह भी मुझसे जलते हैं, और आज मर जाऊँ तो घी के चिराग जलायें। मेरे दुःख को दुःख समझनेवाला कोई नहीं। उनकी नज़रों में मुझे दुखी होने का कोई अधिकार ही नहीं है। मैं अगर रोता हूँ, तो दुःख की हँसी उड़ाता हूँ। मैं अगर बीमार होता हूँ, तो मुझे सुख होता है। मैं अगर अपना ब्याह करके घर में कलह नहीं बढ़ाता, तो यह मेरी नीच स्वार्थपरता है; अगर ब्याह कर लूँ, तो वह विलासांधता होगी। अगर शराब नहीं पीता, तो मेरी कंजूसी है। शराब पीने लगूँ, तो वह प्रजा का रक्त होगी। अगर ऐयाशी नहीं करता, तो अरसिक हूँ, ऐयाशी करने लगूँ, तो फिर कहना ही क्या। इन लोगों ने मुझे भोग-विलास में फँसाने के लिए कम चालें नहीं चलीं और अब तक चलते जाते हैं। उनकी यही इच्छा है कि मैं अन्धा हो जाऊँ और ये लोग मुझे लूट लें और मेरा धर्म यह है

कि सब कुछ देखकर भी कुछ न देखूँ। सब कुछ जानकर भी गधा बना रहूँ।

राय साहब ने गाड़ी को आगे बढ़ाने के लिए दो बीड़े पान खाये और होरी के मुँह की ओर ताकने लगे, जैसे उसके मनोभावों को पढ़ना चाहते हों।

होरी ने साहस बटोरकर कहा—हम समझते थे कि ऐसी बातें हमीं लोगों में होती हैं; पर जान पड़ता है, बड़े आदमियों में भी उनकी कमी नहीं है।

राय साहब ने मुँह पान से भरकर कहा—तुम हमें बड़े आदमी समझते हो? हमारे नाम बड़े हैं, पर दर्शन थोड़े। गरीबों में अगर ईर्ष्या या वैर है, तो स्वार्थ के लिए या पेट के लिए। ऐसी ईर्ष्या और वैर को मैं क्षम्य समझता हूँ। हमारे मुँह की रोटी कोई छीन ले, तो उसके गले में उँगली डालकर निकालना हमारा धर्म हो जाता है। अगर हम छोड़ दें, तो देवता हैं। बड़े आदमियों की ईर्ष्या और वैर केवल आनन्द के लिए है। हम इतने बड़े आदमी हो गये हैं कि हमें नीचता और कुटिलता में ही निःस्वार्थ और परम आनन्द मिलता है। हम देवतापन के उस दर्जे पर पहुँच गये हैं, जब हमें दूसरों के रोने पर हँसी आती है। इसे तुम छोटी साधना मत समझो। जब इतना बड़ा कुटुंब है, तो कोई-न-कोई तो हमेशा बीमार रहेगा ही। और बड़े आदमियों के रोग भी बड़े होते हैं। वह बड़ा आदमी ही क्या, जिसे कोई छोटा रोग हो। मामूली ज्वर भी आ जाय, तो हमें सरसाम की दवा दी जाती है, मामूली फुन्सी भी निकल आये, तो वह ज़हरबाद बन जाती है। अब छोटे सर्जन और मझोले सर्जन और बड़े सर्जन तार से बुलाये जा रहे हैं, मसीहुल-मुल्क को लाने के लिए दिल्ली आदमी भेजा जा रहा है, भिषगाचार्य को लाने के लिए कलकत्ता। उधर देवालय में दुर्गापाठ हो रहा है और ज्योतिषाचार्य कुण्डली का विचार कर रहे हैं और तन्त्र के आचार्य अपने अनुष्ठान में लगे हुए हैं। राजा साहब को यमराज के मुँह से निकालने के लिए दौड़ लगी हुई है। वैद्य और डाक्टर इस ताक में रहते हैं कि कब इनके सिर में दर्द हो और कब उनके घर में सोने की वर्षा हो। और ये रुपये तुमसे और तुम्हारे भाइयों से वसूल किये जाते हैं, भाले की नोक पर। मुझे तो यही आश्चर्य होता है कि क्यों तुम्हारी आहों का दावानल हमें भस्म नहीं कर डालता; मगर नहीं, आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। भस्म होने में तो बहुत देर नहीं लगती। वेदना भी थोड़ी ही देर की होती है। हम जौ-जौ और अंगुल-अंगुल और पोर-पोर भस्म हो रहे हैं। उस हाहाकार से बचने के लिए हम पुलीस की,

हुक्काम की, अदालत की, वकीलों की शरण लेते हैं। और रूपवती स्त्री की भाँति सभी के हाथों का खिलौना बनते हैं। दुनिया समझती है, हम बड़े सुखी हैं। हमारे पास इलाक़े, महल, सवारियाँ, नौकर-चाकर, कर्ज़, वेश्याएँ, क्या नहीं हैं; लेकिन जिसकी आत्मा में बल नहीं, अभिमान नहीं, वह और चाहे कुछ हो, आदमी नहीं है। जिसे दुश्मन के भय के मारे रात को नींद न आती हो, जिसके दुःख पर सब हँसें और रोनेवाला कोई न हो, जिसकी चोटी दूसरों के पैरों के नीचे दबी हो, जो भोग-विलास के नशे में अपने को बिल्कुल भूल गया हो, जो हुक्काम के तलवे चाटता हो और अपने अधीनों के ख़ून चूसता हो, उसे मैं सुखी नहीं कहता। वह तो संसार का सबसे अभागा प्राणी है। साहब शिकार खेलने आये या दौरे पर, मेरा कर्तव्य है कि उनकी दुम के पीछे लगा रहूँ। उनकी भौंवों पर शिकन पड़ी और हमारे प्राण सूखे। उन्हें प्रसन्न करने के लिए हम क्या नहीं करते; मगर वह पचड़ा सुनाने लगूँ, तो शायद तुम्हें विश्वास न आये। डालियों और रिशवतों तक तो ख़ैर गनीमत है, हम सिजदे करने को भी तैयार रहते हैं। मुफ्तख़ोरी ने हमें अपंग बना दिया है, हमें अपने पुरुषार्थ पर लेशमात्र भी विश्वास नहीं, केवल अफ़सरों के सामने दुम हिला-हिलाकर किसी तरह उनके कृपापात्र बने रहना और उनकी सहायता से अपनी प्रजा पर आतंक जमाना ही हमारा उद्यम है। पिछलग्गुओं की ख़ुशामद ने हमें इतना अभिमानी और तुनुकमिजाज़ बना दिया है कि हममें शील और विनय और सेवा का लोप हो गया है। मैं तो कभी-कभी सोचता हूँ कि अगर सरकार हमारे इलाके छीनकर हमें अपनी रोज़ी के लिए मेहनत करना सिखा दे, तो हमारे साथ महान् उपकार करे, और यह तो निश्चय है कि अब सरकार भी हमारी रक्षा न करेगी। हमसे अब उसका कोई स्वार्थ नहीं निकलता। लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जानेवाली है। मैं उस दिन का स्वागत करने को तैयार बैठा हूँ। ईश्वर वह दिन जल्द लाये। वह हमारे उद्धार का दिन होगा। हम परिस्थितियों के शिकार बने हुए हैं। यह परिस्थिति ही हमारा सर्वनाश कर रही है और जब तक सम्पत्ति की यह बेड़ी हमारे पैरों से न निकलेगी, जब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मँडराता रहेगा, हम मानवता का वह पद न पा सकेंगे, जिस पर पहुँचना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।

राय साहब ने फिर गिलौरीदान निकाला और कई गिलौरियाँ निकालकर मुँह

में भर लीं। कुछ और कहनेवाले थे कि एक चपरासी ने आकर कहा—सरकार, बेगारों ने काम करने से इनकार कर दिया है। कहते हैं, जब तक हमें खाने को न मिलेगा, हम काम न करेंगे। हमने धमकाया, तो सब काम छोड़कर अलग हो गये।

राय साहब के माथे पर बल पड़ गये। आँखें निकालकर बोले—चलो, मैं इन दुष्टों को ठीक करता हूँ, जब कभी खाने को नहीं दिया गया, तो आज यह नई बात क्यों? एक आने रोज़ के हिसाब से मजूरी मिलेगी, जो हमेशा मिलती रही है; और इस मजूरी पर उन्हें काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े।

फिर होरी की ओर देखकर बोले—तुम अब जाओ होरी, अपनी तैयारी करो। जो बात मैंने कही है उसका खयाल रखना। तुम्हारे गाँव से मुझे कम-से-कम पाँच सौ की आशा है।

राय साहब झल्लाते हुए चले गये। होरी ने मन में सोचा, अभी यह कैसी-कैसी नीति और धरम की बातें कर रहे थे और एकाएक इतने गरम हो गये।

सूर्य सिर पर आ गया था। उसके तेज से अभिभूत होकर वृक्षों ने अपना पसार समेट लिया था। आकाश पर मटियाला गर्द छाया हुआ था और सामने की पृथ्वी काँपती हुई जान पड़ती थी।

होरी ने अपना डण्डा उठाया और घर चला। शगून के रुपये कहाँ से आयेंगे, यही चिन्ता उसके सिर पर सवार थी।

३

होरी अपने गाँव के समीप पहुँचा, तो देखा, अभी तक गोबर खेत में ऊख गोड़ रहा है और दोनों लड़कियाँ भी उसके साथ काम कर रही हैं। लू चल रही थी, बगूले उठ रहे थे, भूतल धधक रहा था, जैसे प्रकृति ने वायु में आग घोल दी हो। यह सब अभी तक खेत में क्यों हैं? क्या काम के पीछे सब जान देने पर तुले हुए हैं? वह खेत की ओर चला और दूर ही से चिल्लाकर बोला—आता क्यों नहीं गोबर, क्या काम ही करता रहेगा? दोपहर ढल गया, कुछ सूझता है कि नहीं?

उसे देखते ही तीनों ने कुदालें उठा लीं और उसके साथ हो लिये। गोबर साँवला, लम्बा, एकहरा युवक था, जिसे इस काम से रुचि न मालूम होती थी।

प्रसन्नता की जगह मुख पर असन्तोष और विद्रोह था। वह इसलिए काम में लगा हुआ था कि वह दिखाना चाहता था, उसे खाने-पीने की कोई फ़िक्र नहीं है। बड़ी लड़की सोना लज्जाशील कुमारी थी, सांवली, सुडौल, प्रसन्न और चपल। गाढ़े की लाल साड़ी, जिसे वह घुटनों से मोड़कर कमर में बांधे हुए थी, उसके हलके शरीर पर कुछ लदी हुई-सी थी, और उसे प्रौढ़ता की गरिमा दे रही थी। छोटी रूपा पाँच-छः साल की छोकरी थी, मैली, सिर पर बालों का एक घोंसला सा बना हुआ, एक लँगोटी कमर में बाँधे, बहुत ही ढोठ और रोनी।

रूपा ने होरी की टाँगों में लिपटकर कहा—काका! देखो, मैंने एक ढेला भी नहीं छोड़ा। बहन कहती है, जा पेड़ तले बैठ। ढेले न तोड़े जायँगे काका, तो मिट्टी कैसे बराबर होगी।

होरी ने उसे गोद में उठाकर प्यार करते हुए कहा—तूने बहुत अच्छा किया बेटी, चल घर चलें। कुछ देर अपने विद्रोह को दबाये रहने के बाद गोबर बोला—यह तुम रोज़-रोज़ मालिकों की ख़ुशामद करने क्यों जाते हो? बाकी न चुके तो प्यादा आकर गालियाँ सुनाता है, बेगार देनी ही पड़ती है, नजर-नजराना सब तो हमसे भराया जाता है। फिर किसी की क्यों सलामी करो।

इस समय यही भाव होरी के मन में भी आ रहे थे; लेकिन लड़के के इस विद्रोह-भाव को दबाना जरूरी था। बोला—सलामी करने न जायँ, तो रहें कहाँ। भगवान् ने जब गुलाम बना दिया है, तो अपना क्या बस है। यह इसी सलामी की बरक्कत है कि द्वार पर मड़ैया डाल ली और किसी ने कुछ नहीं कहा। घूरे ने द्वार पर खूँटा गाड़ा था, जिस पर कारिन्दा ने दो रुपये डांड़ ले लिये थे। तलैया से कितनी मिट्टी हमने खोदी, कारिन्दा ने कुछ नहीं कहा। दूसरा खोदे तो नज़र देनी पड़े। अपने मतलब के लिए सलामी करने जाता हूँ, पांव में सनीचर नहीं है और न सलामी करने में कोई बड़ा सुख मिलता है; घण्टों खड़े रहो, तब जाके मालिक को खबर होती है। कभी बाहर निकलते हैं, कभी कहला देते हैं, फ़ुरसत नहीं है।

गोबर ने कटाक्ष किया—बड़े आदमियों की हाँ में हाँ मिलाने में कुछ न कुछ आनन्द तो मिलता ही है। नहीं, लोग मेम्बरी के लिए क्यों खड़े हों?

'जब सिर पर पड़ेगी तब मालूम होगा बेटा, अभी जो चाहे कह लो। पहले

मैं भी यही सब बातें सोचा करता था ; पर अब मालूम हुआ कि हमारी गरदन दूसरों के पैरों के नीचे दबी हुई है, अकड़कर निबाह नहीं हो सकता।'

पिता पर अपना क्रोध उतारकर गोबर कुछ शान्त हो गया और चुपचाप चलने लगा। सोना ने देखा, रूपा बाप की गोद में चढ़ी बैठी है तो ईर्ष्या हुई। उसे डाँटकर बोली—अब गोद से उतरकर पाँव-पाँव क्यों नहीं चलती, कि पाँव टूट गये हैं?

रूपा ने बाप की गरदन में हाथ डालकर ढिठाई से कहा—न उतरेंगे, जाओ। काका, बहन हमको रोज़ चिढ़ाती है कि तू रूपा है, मैं सोना हूँ। मेरा नाम कुछ और रख दो।

होरी ने सोना को बनावटी रोष से देखकर कहा—तू इसे क्यों चिढ़ाती है सोनिया? सोना तो देखने को है। निबाह तो रूपा से होता है। रूपा न हो, तो रुपये कहाँ से बनें, बता?

सोना ने अपने पक्ष का समर्थन किया—सोना न हो, तो मोहर कैसे बने, नथुनियाँ कहाँ से आयें, कण्ठा कैसे बने?

गोबर भी इस विनोदमय विवाद में शरीक हो गया। रूपा से बोला—तू कह दे कि सोना तो सूखी पत्ती की तरह पीला होता है, रूपा तो उजला होता है जैसे सूरज।

सोना बोली—शादी-ब्याह में पीली साड़ी पहनी जाती है, उजली साड़ी कोई नहीं पहनता।

रूपा इस दलील से परास्त हो गई। गोबर और होरी की कोई दलील इसके सामने न ठहर सकी। उसने क्षुब्ध आँखों से होरी को देखा।

होरी को एक नई युक्ति सूझ गई। बोला—सोना बड़े आदमियों के लिए है। हम गरीबों के लिए तो रूपा ही है। जैसे जौ को राजा कहते हैं, गेहूँ को चमार; इसलिए न कि गेहूँ बड़े आदमी खाते हैं, जौ हम लोग खाते हैं।

सोना के पास इस सबल युक्ति का कोई जवाब न था। परास्त होकर बोली—तुम सब जने एक ओर हो गये, नहीं रुपिया को रुलाकर छोड़ती।

रूपा ने उँगली मटकाकर कहा—ए राम, सोना चमार—ए राम, सोना चमार। इस विजय का उसे इतना आनन्द हुआ कि बाप की गोद में न रह सकी। ज़मीन

पर कूद पड़ी और उछल-उछलकर यही रट लगाने लगी—रूपा राजा, सोना चमार—रूपा राजा, सोना चमार!

ये लोग घर पहुँचे तो धनिया द्वार पर खड़ी इनकी बाट जोह रही थी। रुष्ट होकर बोली—आज इतनी देर क्यों की गोबर? काम के पीछे कोई परान थोड़े ही दे देता है!

फिर पति से गर्म होकर कहा—तुम भी वहाँ से कमाई करके लौटे तो खेत में पहुँच गये। खेत कहीं भागा जाता था!

द्वार पर कुआँ था। होरी और गोबर ने एक-एक कलसा पानी सिर पर उँड़ेला, रूपा को नहलाया और भोजन करने गये। जौ की रोटियाँ थीं; पर गेहूँ-जैसी सुफ़ेद और चिकनी। अरहर की दाल थी, जिसमें कच्चे आम पड़े हुए थे। रूपा बाप की थाली में खाने बैठी। सोना ने उसे ईर्ष्या-भरी आँखों से देखा, मानो कह रही थी, वाह रे दुलार!

धनिया ने पूछा—मालिक से क्या बात-चीत हुई?

होरी ने लोटा-भर पानी चढ़ाते हुए कहा—यही तहसील-वसूल की बात थी और क्या। हम लोग समझते हैं, बड़े आदमी बहुत सुखी होंगे; लेकिन सच पूछो, तो वह हमसे भी ज़्यादा दुखी हैं। हमें अपने पेट ही की चिन्ता है, उन्हें हज़ारों चिन्ताएँ घेरे रहती हैं।

राय साहब ने और क्या-क्या कहा था, वह कुछ होरी को याद न था। उस सारे कथन का ख़ुलासा-मात्र उसके स्मरण में चिपका हुआ रह गया था।

गोबर ने व्यंग्य किया—तो फिर अपना इलाका हमें क्यों नहीं दे देते! हम अपने खेत, बैल, हल, कुदाल सब उन्हें देने को तैयार हैं। करेंगे बदला? यह सब धूर्तता है, निरी मोटमरदी। जिसे दुःख होता है, वह दर्जनों मोटरें नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा-पूरी नहीं खाता, और न नाच-रंग में लिप्त रहता है। मजे से राज का सुख भोग रहे हैं, उस पर दुखी हैं!

होरी ने झुँझलाकर कहा—अब तुमसे बहस कौन करे भाई! जैजात किसी से छोड़ी जाती है कि वही छोड़ देंगे। हमीं को खेती से क्या मिलता है? एक आने नफरी की मजूरी भी तो नहीं पड़ती। जो दस रुपये महीने का भी नौकर है, वह भी हमसे अच्छा खाता-पहनता है; लेकिन खेतों को छोड़ा तो नहीं जाता। खेती

छोड़ दें, तो और करें क्या ? नौकरी कहीं मिलती है ? फिर मरजाद भी तो पालना ही पड़ता है। खेती में जो मरजाद है, वह नौकरी में तो नहीं है। इसी तरह जमींदारों का हाल भी समझ लो। उनकी जान को भी तो सैकड़ों रोग लगे हुए हैं, हाकिमों को रसद पहुँचाओ, उनकी सलामी करो, अमलों को खुस करो। तारीख पर माल-गुजारी न चुका दें, तो हवालात हो जाय, कुड़की आ जाय। हमें तो कोई हवालात नहीं ले जाता। दो-चार गालियाँ-घुड़कियाँ ही तो मिलकर रह जाती हैं।

गोबर ने प्रतिवाद किया—यह सब कहने की बातें हैं। हम लोग दाने-दाने को मुहताज हैं, देह पर साबित कपड़े नहीं हैं, चोटी का पसीना एँड़ी तक आता है, तब भी गुज़र नहीं होता। उन्हें क्या, मजे से गद्दी-मसनद लगाये बैठे हैं, सैकड़ों नौकर-चाकर हैं, हज़ारों आदमियों पर हुकूमत है। रुपये न जमा होते हों; पर सुख तो सभी तरह का भोगते हैं। धन लेकर आदमी और क्या करता है ?

'तुम्हारी समझ में हम और वह बराबर हैं ?'

'भगवान् ने तो सबको बराबर ही बनाया है।'

'यह बात नहीं है, बेटा, छोटे-बड़े भगवान् के घर से बनकर आते हैं। संपत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्वजन्म में जैसे कर्म किये थे, उसका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संचा, तो भोगें क्या।'

'यह सब मन को समझाने की बातें हैं। भगवान् सबको बराबर बनाते हैं। यहाँ जिसके हाथ में लाठी है, वह गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बन जाता है।'

'यह तुम्हारा भरम है। मालिक आज भी चार घंटे रोज़ भगवान् का भजन करते हैं।'

'किसके बल पर यह भजन-भाव और दान-धर्म होता है ?'

'अपने बल पर।'

'नहीं, किसानों के बल पर और मजदूरों के बल पर। यह पाप का धन पचे कैसे ? इसी लिए दान-धर्म करना पड़ता है, भगवान् का भजन भी इसी लिए होता है। भूखे-नंगे रहकर भगवान् का भजन करें, तो हम भी देखें। हमें कोई दोनों जून खाने को दे, तो हम आठों पहर भगवान् का जाप ही करते रहें। एक दिन खेत में ऊख गोड़ना पड़े, तो सारी भक्ति भूल जाय।'

'होरी ने हारकर कहा—अब तुम्हारे मुँह कौन लगे भाई, तुम तो भगवान् की लीला में भी टाँग अड़ाते हो।'

तीसरे पहर गोबर कुदाल लेकर चला, तो होरी ने कहा—ज़रा ठहर जाओ बेटा, हम भी चलते हैं। तब तक थोड़ा-सा भूसा निकालकर रख दो। मैंने भोला को देने कहा है। बेचारा आजकल बहुत तंग है।

गोबर ने अवज्ञा-भरी आँखों से देखकर कहा—हमारे पास बेचने को भूसा नहीं है।

'बेचता नहीं हूँ भाई, यों ही दे रहा हूँ। वह संकट में है, उसकी मदद तो करनी ही पड़ेगी।'

'हमें तो उन्होंने कभी एक गाय नहीं दे दी।'

'दे तो रहा था; पर हमने ली हो नहीं।'

'धनिया मटककर बोली—गाय नहीं वह दे रहा था। इन्हें गाय दे देगा! आँख में अंजन लगाने को कभी चिल्लू भर दूध तो भेजा नहीं, गाय दे देगा!'

होरी ने क़सम खाई—नहीं, जवानी कसम, अपनी पछाई गाय दे रहे थे। हाथ तंग है, भूसा-चारा नहीं रख सके। अब एक गाय बेचकर भूसा लेना चाहते हैं। मैंने सोचा, संकट में पड़े आदमी की गाय क्या लूँ। थोड़ा-सा भूसा दिये देता हूँ, कुछ रुपये हाथ आ जायँगे तो गाय ले लूँगा। थोड़ा-थोड़ा करके चुका दूँगा। अस्सी रुपये की है; मगर ऐसी कि आदमी देखता रहे।

गोबर ने आड़े हाथों लिया—तुम्हारा यही धर्मात्मापन तो तुम्हारी दुर्गत कर रहा है। साफ-साफ तो बात है। अस्सी रुपये की गाय है, हमसे बीस रुपये का भूसा ले लें और गाय हमें दे दें। साठ रुपये रह जायँगे, वह हम धीरे-धीरे दे देंगे।

होरी रहस्यमय ढंग से मुस्कराया—मैंने ऐसी चाल सोची है कि गाय सेंत-मेंत में हाथ आ जाय। कहीं भोला की सगाई ठीक करनी है, बस। दो-चार मन भूसा तो खाली अपना रंग जमाने को देता हूँ।

गोबर ने तिरस्कार किया—तो तुम अब सबकी सगाई ठीक करते फिरोगे?

धनिया ने तीखी आँखों से देखा—अब यही एक उद्यम तो रह गया है। नहीं देना है हमें भूसा किसी को। यहाँ भोली-भोला किसी का करज नहीं खाया है।

होरी ने अपनी सफ़ाई दी—अगर मेरे जतन से किसी का घर बस जाय, तो इसमें कौन-सी बुराई है ?

गोबर ने चिलम उठाई और आग लेने चला गया। उसे यह झमेला बिलकुल नहीं भाता था।

धनिया ने सिर हिलाकर कहा—जो उनका घर बसायेगा, वह अस्सी रुपये की गाय लेकर चुप न होगा। एक थैली गिनवायेगा।

होरी ने पुचारा दिया—यह मैं जानता हूँ; लेकिन उनकी भलमंसी को भी तो देखो, मुझसे जब मिलता है, तेरा बखान ही करता है—ऐसी लच्छमी है, ऐसी सलीकेदार है।

धनिया के मुख पर स्निग्धता झलक पड़ी। मनभाये मुड़िया हिलायेवाले भाव से बोली—मैं उनके बखान की भूखी नहीं हूँ, अपना बखान धरे रहें।

होरी ने स्नेह-भरी मुस्कान के साथ कहा—मैंने तो कह दिया, भैया वह नाक पर मक्खी भी नहीं बैठने देती, गालियों से बात करती है; लेकिन वह यही कहे जाय कि वह औरत नहीं लच्छमी है। बात यह है कि उसकी घरवाली जबान की बड़ी तेज थी। बेचारा उसके डर के मारे भागा-भागा फिरता था। कहता था, जिस दिन तुम्हारी घरवाली का मुँह सबेरे देख लेता हूँ, उस दिन कुछ न कुछ ज़रूर हाथ लगता है। मैंने कहा—तुम्हारे हाथ लगता होगा, यहाँ तो रोज़ देखते हैं, कभी पैसे से भेंट नहीं होती।

'तुम्हारे भाग ही खोटे हैं, तो मैं क्या करूँ !'

'लगा अपनी घरवाली की बुराई करने—भिखारी को भीख तक नहीं देती थी, झाड़ू लेकर मारने दौड़ती थी, लालचिन ऐसी थी कि नमक तक दूसरों के घर से माँग लाती थी !'

'मरने पर किसी की क्या बुराई करूँ। मुझे देखकर जल उठती थी।'

'भोला बड़ा गमखोर था कि उसके साथ निबाह कर दिया। दूसरा होता, तो जहर खाके मर जाता। मुझसे दस साल बड़े होंगे भोला, पर राम-राम पहले ही करते हैं।'

'तो क्या कहते थे कि जिस दिन तुम्हारी घरवाली का मुँह देख लेता हूँ तो क्या होता है ?'

'उस दिन भगवान् कहीं न कहीं से कुछ भेज देते हैं।'

'बहुएँ भी तो वैसी ही चटोरिन आई हैं। अबकी सबों ने दो रुपये के खरबूजे उधार खा डाले। उधार मिल जाय, फिर उन्हें चिन्ता नहीं होती कि देना पड़ेगा या नहीं।'

'और भोला रोते काहे के

गोबर आकर बोला—भोला दादा आ पहुँचे। मन-दो मन भूसा है, वह उन्हें दे दो, फिर उनकी सगाई ढूँढ़ने निकलो!

धनिया ने समझाया—आदमी द्वार पर बैठा है, उसके लिए खाट-वाट तो डाल नहीं दी, ऊपर से लगे भुनभुनाने। कुछ तो भलमनसी सीखो! कलसा ले जाओ, पानी भरकर रख दो, हाथ-मुँह धोयें, कुछ रस-पानी पिला दो। मुसीबत में ही आदमी दूसरों के सामने हाथ फैलाता है।

होरी बोला—रस-बस का काम नहीं है, कौन कोई पाहुने हैं।

धनिया बिगड़ी—पाहुने और कैसे होते हैं! रोज़-रोज़ तो तुम्हारे द्वार पर नहीं आते? इतनी दूर से धूप-घाम में आये हैं, प्यास लगी ही होगी। रुपिया, देख डब्बे में तमाखू है कि नहीं, गोबर के मारे काहे को बची होगी। दौड़कर एक पैसे का तमाखू सहुआइन की दूकान से ले ले।

भोला की आज जितनी खातिर हुई, और कभी न हुई होगी। गोबर ने खाट डाल दी, सोना रस घोल लाई; रूपा तमाखू भर लाई। धनिया द्वार पर किवाड़ की आड़ में खड़ी अपने कानों से अपना बखान सुनने के लिए अधीर हो रही थी।

भोला ने चिलम हाथ में लेकर कहा—अच्छी घरनी घर में आ जाय, तो समझ लो, लक्ष्मी आ गई। वही जानती है छोटे-बड़े का आदर-सत्कार कैसे करना चाहिए।

धनिया के हृदय में उल्लास का कंपन हो रहा था। चिन्ता और निराशा और अभाव से आहत आत्मा इन शब्दों में एक कोमल शीतल स्पर्श का अनुभव कर रही थी।

होरी जब भोला का खाँचा उठाकर भूसा लाने अन्दर चला, तो धनिया भी पीछे-पीछे चली। होरी ने कहा—जाने कहाँ से इतना बड़ा खाँचा मिल गया। किसी भड़भूँजे से माँग लिया होगा। मन-भर से कम में न भरेगा। दो खाँचे भी दिये, तो दो मन निकल जायँगे।

धनिया फूली हुई थी। मलामत की आँखों से देखती हुई बोली—या तो किसी को नेवता न दो, और दो तो भर पेट खिलाओ। तुम्हारे पास फूल-पत्र लेने थोड़े ही आये हैं कि चँगेरी लेकर चलते। देते ही हो, तो तीन खाँचे दे दो। भला आदमी लड़कों को क्यों नहीं लाया! अकेले कहाँ तक ढोयेगा। जान निकल जायगी।

'तीन खाँचे तो मेरे दिये न दिये जायँगे।'

'तब क्या एक खाँचा देकर टालोगे? गोबर से कह दो, अपना खाँचा भरकर उनके साथ चला जाय।'

'गोबर ऊख गोड़ने जा रहा है।'

'एक दिन न गोड़ने से ऊख सूख न जायगी।'

'यह तो उनका काम था कि किसी को अपने साथ ले लेते। भगवान् के दिये दो-दो बेटे हैं!'

'न होंगे घर पर। दूध लेकर बाजार गये होंगे।'

'यह तो अच्छी दिल्लगी है कि अपना माल भी दो और उसे घर तक पहुँचा भी दो। लाद दे, लदा दे, लादनेवाला साथ कर दे।'

'अच्छा भाई, कोई मत जाय। मैं पहुँचा दूँगी। बड़ों की सेवा करने में लाज नहीं है!'

'और तीन खाँचे उन्हें दे दूँ, तो अपने बैल क्या खायँगे!'

'यह सब तो नेवता देने के पहले ही सोच लेना था। न हो, तुम और गोबर दोनों जने चले जाओ।'

'मुरौवत मुरौवत की तरह की जाती है, अपना घर उठाकर नहीं दे दिया जाता!'

'अभी जमींदार का प्यादा आ जाय, तो अपने सिर पर भूसा लादकर पहुँचाओगे तुम, तुम्हारा लड़का-लड़की सब। और वहाँ साइत मन-दो मन लकड़ी भी फाड़नी पड़े।'

'ज़मींदार की बात और है।'

'हाँ, वह डंडे के जोर से काम लेता है न!'

'उसके खेत नहीं जोतते?'

'खेत जोतते हैं, तो लगान नहीं देते?'

'अच्छा भाई, जान न खा, हम दोनों चले जायँगे। कहाँ-से-कहाँ मैंने इन्हें भूसा देने को कह दिया। या तो चलेगी नहीं, या चलेगी तो दौड़ने लगेगी।'

तीनों खाँचे भूसे से भर दिये गये। गोबर कुढ़ रहा था। उसे अपने बाप के व्यवहारोंमें ज़रा भी विश्वास न था। वह समझता था, यह जहाँ जाते हैं, वहीं कुछ-न-कुछ घर से खो आते हैं। धनिया प्रसन्न थी। रहा होरी, वह धर्म और स्वार्थ के बीच में डूब-उतरा रहा था।

होरी और गोबर मिलकर एक खाँचा बाहर लाये। भोला ने तुरन्त अपने अँगौछे का बोड़ बनाकर सिर पर रखते हुए कहा—मैं इसे रखकर अभी भाग आता हूँ। एक खाँचा और लूँगा।

होरी बोला—एक नहीं, अभी दो और भरे धरे हैं। और तुम्हें न आना पड़ेगा। मैं और गोबर एक-एक खाँचा लेकर तुम्हारे साथ ही चलते हैं।

भोला स्तंभित हो गया। होरी उसे अपना भाई, बल्कि उससे भी निकट जान पड़ा। उसे अपने भीतर एक ऐसी तृप्ति का अनुभव हुआ, जिसने मानो उसके संपूर्ण जीवन को हरा कर दिया।

तीनों भूसा लेकर चले, तो राह में बातें होने लगीं।

भोला ने पूछा—दसहरा आ रहा है, मालिकों के द्वार पर तो बड़ी धूमधाम होगी?

'हाँ, तम्बू-सामियाना गड़ गया है। अबकी लीला में मैं भी काम करूँगा। राय साहब ने कहा है, तुम्हें राजा जनक का माली बनना पड़ेगा।'

'मालिक तुमसे बहुत खुश हैं।'

'उनकी दया है।'

एक क्षण के बाद भोला ने फिर पूछा—सगुन करने के लिए रुपयों का कुछ जुगाड़ कर लिया है? माली बन जाने से तो गला न छूटेगा।

होरी ने मुँह का पसीना पोंछकर कहा—उसी की चिंता तो मारे डालती है दादा! अनाज तो सब-का-सब खलिहान में ही तुल गया। ज़मींदार ने अपना लिया, महाजन ने अपना लिया। मेरे लिए पाँच सेर अनाज बच रहा। यह भूसा तो मैंने रातो-रात ढोकर छिपा दिया था, नहीं तिनका भी न बचता। ज़मींदार तो एक ही है; मगर महाजन तीन-तीन हैं, सहुआइन अलग, मँगरू अलग और दातादीन पण्डित अलग।

किसी का ब्याज भी पूरा न चुका। ज़मींदार के भी आधे रुपये बाकी पड़ गये। सहुआइन से फिर रुपये उधार लिये तो काम चला। सब तरह किफ़ायत करके देख लिया भैया, कुछ नहीं होता। हमारा जनम इसी लिए हुआ है कि अपना रक्त बहायें और बड़ों का घर भरें। मूल का दुगुना सूद भर चुका; पर मूल ज्यों-का-त्यों सिर पर सवार है। लोग कहते हैं, सर्दी-गर्मी में, तीरथ-बरत में हाथ बाँधकर खरच करो। मुदा रास्ता कोई नहीं दिखाता। राय साहब ने बेटे के ब्याह में बीस हजार लुटा दिये। उनसे कोई कुछ नहीं कहता। मँगरू ने अपने बाप के क्रिया-करम में पाँच हजार लगाये। उनसे कोई कुछ नहीं पूछता। वैसा ही मरजाद तो सबका है।

भोला ने करुण भाव से कहा—बड़े आदमियों की बराबरी तुम कैसे कर सकते हो भाई?

'आदमी तो हम भी हैं।'

'कौन कहता है कि हम-तुम आदमी हैं। हममें आदमियत है कहाँ? आदमी वह हैं, जिनके पास धन है, अख्तियार है, इलम है, हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं। उस पर एक दूसरे को देख नहीं सकता एका का नाम नहीं। एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े, तो कोई जाफा कैसे करे, परेम तो संसार से उठ गया।'

बूढ़ों के लिए अतीत के सुखों और वर्तमान के दुःखों और भविष्य के सर्वनाश से ज़्यादा मनोरंजक और कोई प्रसंग नहीं होता। दोनों मित्र अपने-अपने दुखड़े रोते रहे। भोला ने अपने बेटों के करतूत सुनाये, होरी ने अपने भाइयों का रोना रोया और तब एक कुएँ पर बोझ रखकर पानी पीने के लिए बैठ गये। गोबर ने बनिये से लोटा माँगा और पानी खींचने लगा।

भोला ने सहृदयता से पूछा—अलगौझे के समय तो तुम्हें बड़ा रंज हुआ होगा। भाइयों को तो तुमने बेटों की तरह पाला था।

होरी आर्द्र कण्ठ से बोला—कुछ न पूछो दादा, यही जी चाहता था कि कहीं जाके डूब मरूँ। मेरे जीते-जी सब कुछ हो गया! जिनके पीछे अपनी जवानी धूल में मिला दी, वही मेरे मुद्दई हो गये और झगड़े की जड़ क्या थी? यही कि मेरी घर-वाली हार में काम करने क्यों नहीं जाती। पूछो, घर देखनेवाला भी कोई चाहिए कि नहीं! लेना-देना, धरना-उठाना, सँभालना-सहेजना, यह कौन करे। फिर वह घर पर बैठी

तो नहीं रहती थी। झाड़ू-बुहारू-रसोई, चौका-बरतन लड़कों की देख-भाल, यह कोई थोड़ा काम है? सोभा की औरत घर सँभाल लेती कि हीरा की औरत में यह सलीका था? जबसे अलगौझा हुआ है, दोनों घरों में एक जून रोटी पकती है। नहीं, सबको दिन में चार बार भूख लगती थी। अब खायँ चार दफे, तो देखूँ। इस मालिकपन में गोबर की मा की जो दुर्गत हुई है, वह मैं ही जानता हूँ। बेचारी अपनी देवरानियों के फटे-पुराने कपड़े पहनकर दिन काटती थी, खुद भूखी सो रही होगी; लेकिन बहुओं के लिए जलपान तक का ध्यान रखती थी। अपनी देह पर गहने के नाम कच्चा धागा भी न था, देवरानियों के लिए दो-दो, चार-चार गहने बनवा दिये। सोने के न सही, चाँदी के तो हैं! जलन यही थी कि यह मालिक क्यों है। बहुत अच्छा हुआ कि अलग हो गये। मेरे सिर से बला टली।

भोला ने एक लोटा पानी चढ़ाकर कहा—यही हाल घर-घर है भैया! भाइयों की बात ही क्या, यहाँ तो लड़कों से भी नहीं पटती और पटती इसलिए नहीं कि मैं किसी की कुचाल देखकर मुँह नहीं बन्द कर सकता। तुम जुआ खेलोगे, चरस पीओगे, गाँजे के दम लगाओगे; मगर आये किसके घर से? खरचा करना चाहते हो, तो कमाओ; मगर कमाई तो किसी से न होगी। खरच दिल खोलकर करेंगे। जेठा कामता सौदा लेकर बाजार जायगा, तो आधे पैसे गायब! पूछो तो कोई जवाब नहीं। छोटा जंगी है, वह संगत के पीछे मतवाला रहता है। साँझ हुई और ढोल-मजीरा लेकर बैठ गये। संगत को मैं बुरा नहीं कहता। गाना-बजाना ऐब नहीं; लेकिन यह सब काम फुरसत के हैं। यह नहीं कि घर का तो कोई काम न करो, आठों पहर उसी धुन में पड़े रहो। जाती है मेरे सिर; सानी-पानी मैं करूँ, गाय-भैंस मैं दुहूँ, दूध लेकर बाज़ार मैं जाऊँ। यह गृहस्थी जी का जंजाल है, सोने की हँसिया जिसे न उगलते बनता है, न निगलते। लड़की है झुनिया, वह भी नसीब की खोटी। तुम तो उसकी सगाई में आये थे। कितना अच्छा घर-वर था। उसका आदमी बम्बई में दूध की दूकान करता था। उन दिनों वहाँ हिन्दू-मुसलमानों में दंगा हुआ, तो किसी ने उसके पेट में छुरा भोंक दिया। घर ही चौपट हो गया। वहाँ अब उसका निबाह नहीं। जाकर लिवा लाया कि दूसरी सगाई कर दूँगा; मगर वह राजी ही नहीं होती। और दोनों भावजें हैं कि रात-दिन उसे जलाती रहती हैं। घर में महाभारत मचा रहता है। बिपत की मारी यहाँ आई, यहाँ भी चैन नहीं।

इन्हीं दुखड़ों में रास्ता कट गया। भोला का पुरवा था तो छोटा; मगर बहुत गुलजार। अधिकतर अहीर ही बसते थे, और किसानों के देखते इनकी दशा बहुत बुरी न थी। भोला गाँव का मुखिया था। द्वार पर बड़ी-सी चरनी थी जिस पर दस-बारह गायें-भैंसें खड़ी सानी खा रही थीं। ओसारे में एक बड़ा-सा तख्त पड़ा था, जो शायद दस आदमियों से भी न उठता। किसी खूँटी पर ढोल लटक रही थी, किसी पर मजीरा। एक ताख पर कोई पुस्तक बस्ते में बँधी रखी हुई थी, जो शायद रामायण हो। दोनों बहुएँ सामने बैठी गोबर पाथ रही थीं और झुनिया चौखट पर खड़ी थी। उसकी आँखें लाल थीं और नाक के सिरे पर भी सुर्खी थी। मालूम होता था, अभी रोकर उठी है। उसके मांसल, स्वस्थ, सुगठित अङ्गों में मानो यौवन लहरें मार रहा था। मुँह बड़ा और गोल था, कपोल फूले हुए, आँखें छोटी और भीतर धँसी हुई, माथा पतला; पर वक्ष का उभार और गात का वही गुदगुदापन आँखों को खींचता था। उस पर छपी हुई गुलाबी साड़ी उसे और भी शोभा प्रदान कर रही थी।

भोला को देखते ही उसने लपककर उनके सिर से खाँचा उतरवाया। भोला ने गोबर और होरी के खाँचे उतरवाये और झुनिया से बोले—पहले एक चिलम भर ला, फिर थोड़ा-सा रस बना ले। पानी न हो तो गगरा ला, मैं खींच दूँ। होरी महतो को पहचानती है न?

फिर होरी से बोला—घरनी के बिना घर नहीं रहता भैया। पुरानी कहावत है—नाटन खेती बहुरियन घर। नाटे बैल क्या खेती करेंगे और बहुएँ क्या घर सँभालेंगी। जबसे इसकी मा मरी है, जैसे घर की बरकत ही उठ गई। बहुएँ आटा पाथ देती हैं; पर गृहस्थी चलाना क्या जानें। हाँ, मुँह चलाना खूब जानती हैं। लौंडे कहीं फड़ पर होंगे। सब-के-सब आलसी हैं, कामचोर। जब तक जीता हूँ, इनके पीछे मरता हूँ। मर जाऊँगा, तो आप सिर पर हाथ धरकर रोयेंगे। लड़की भी वैसी ही है। छोटा-सा अढ़ौना भी करेगी, तो भुनभुनाकर। मैं तो सह लेता हूँ, खसम थोड़े ही सहेगा।

झुनिया एक हाथ में भरी हुई चिलम, दूसरे में लोटे का रस लिये बड़ी फुर्ती से आ पहुँची। फिर रस्सी और कलसा लेकर पानी भरने चली। गोबर ने उसके हाथ से कलसा लेने के लिए हाथ बढ़ाकर झेंपते हुए कहा—तुम रहने दो, मैं लाता हूँ।

झुनिया ने कलसा न दिया। कुएँ के जगत पर जाकर मुस्कराती हुई बोली—तुम हमारे मेहमान हो। कहोगे, एक लोटा पानी भी किसी ने न दिया।

'मेहमान काहे से हो गया। तुम्हारा पड़ोसी ही तो हूँ।'

'पड़ोसी साल-भर में एक बार भी सूरत न दिखाये, तो मेहमान ही है।'

'रोज-रोज आने से मरजाद भी तो नहीं रहती!'

झुनिया हँसकर तिरछी नज़रों से देखती हुई बोली—वही मरजाद तो दे रही हूँ। महीने में एक बेर आओगे, ठण्डा पानी दूँगी। पन्द्रहवें दिन आओगे, चिलम पाओगे। सातवें दिन आओगे, खाली बैठने को माची दूँगी। रोज-रोज आओगे, कुछ न पाओगे।

'दरसन तो दोगी!'

'दरसन के लिए पूजा करनी पड़ेगी।'

यह कहते-कहते जैसे उसे कोई भूली हुई बात याद आ गई। उसका मुँह उदास हो गया। वह विधवा है। उसके नारीत्व के द्वार पर पहले उसका पति रक्षक बना बैठा रहता था। वह निश्चित थी। अब उस द्वार पर कोई रक्षक न था; इसलिए वह उस द्वार को सदैव बन्द रखती है। कभी-कभी घर के सूनेपन से उकताकर वह द्वार खोलती है; पर किसी को आते देखकर भयभीत होकर दोनों पट भेड़ लेती है।

गोबर ने कलसा भरकर निकाला। सबों ने रस पिया और एक चिलम तमाखू और पीकर लौटे। भोला ने कहा—कल तुम आकर गाय ले जाना गोबर, इस बखत तो सानी खा रही है।

गोबर की आँखें उसी गाय पर लगी हुई थीं और मन ही मन वह मुग्ध हुआ जाता था। गाय इतनी सुन्दर और सुडौल है, इसकी उसने कल्पना भी न की थी।

होरी ने लोभ को रोककर कहा—मँगवा लूँगा, जल्दी क्या है!

'तुम्हें जल्दी न हो, हमें तो जल्दी है। उसे द्वार पर देखकर तुम्हें वह बात याद रहेगी।'

'उसकी मुझे बड़ी फिकर है दादा!'

'तो कल गोबर को भेज देना।'

दोनों ने अपने-अपने खाँचे सिर पर रखे और आगे बढ़े। दोनों इतने प्रसन्न थे, मानो ब्याह करके लौटे हों। होरी को तो अपनी चिर-संचित अभिलाषा को पूरे होने

का हर्ष था, और बिना पैसे के। गोबर को इससे भी बहुमूल्य वस्तु मिल गई थी। उसके मन में अभिलाषा जाग उठी थी।

अवसर पाकर उसने पीछे की तरफ़ देखा, झुनिया द्वार पर खड़ी थी, मत्त आशा की भाँति अधीर, चंचल।

४

होरी को रात-भर नींद नहीं आई। नीम के पेड़-तले अपनी बाँस की खाट पर पड़ा बार-बार तारों की ओर देखता था। गाय के लिए एक नाँद गाड़नी है। बैलों से अलग उसकी नाँद रहे तो अच्छा। अभी तो रात को बाहर ही रहेगी; लेकिन चौमासे में उसके लिए कोई दूसरी जगह ठीक करनी होगी। बाहर लोग नजर लगा देते हैं। कभी-कभी तो ऐसा टोना-टोटका कर देते हैं कि गाय का दूध ही सूख जाता है। थन में हाथ ही नहीं लगाने देती। लात मारती है। नहीं, बाहर बाँधना ठीक नहीं। और बाहर नाँद भी कौन गाड़ने देगा। कारिन्दा साहब नजर के लिए मुँह फुलायेंगे। छोटी-छोटी बात के लिए राय साहब के पास फरियाद ले जाना तो उचित नहीं। और कारिन्दे के सामने मेरी सुनता ही कौन है। उनसे कुछ कहूँ, तो कारिन्दा दुश्मन हो जाय। जल में रहकर मगर से बैर करना बुड़बकपन है। भीतर ही बाँधूँगा। आँगन है तो छोटा-सा; लेकिन एक मड़ैया डाल देने से काम चल जायगा। अभी पहला ही ब्यान है। पाँच सेर से कम क्या दूध देगी। सेरभर तो गोबर ही को चाहिए। रुपिया दूध देखकर कैसी ललचाती रहती है। अब पिये जितना चाहे। कभी-कभी दो-चार सेर मालिकों को दे आया करूँगा। कारिन्दा साहब को पूजा भी करनी ही होगी। और भोला के रुपये भी दे देना चाहिए। सगाई के ढकोसले में उसे क्यों डालूँ। जो आदमी अपने ऊपर इतना विश्वास करे, उससे दगा करना नीचता है। अस्सी रुपये की गाय मेरे विश्वास पर दे दी। नहीं, यहाँ तो कोई एक पैसे को नहीं पतियाता। सन में क्या कुछ न मिलेगा? अगर पच्चीस रुपये भी दे दूँ, तो भोला को ढाढ़स हो जाय। धनियाँ से नाहक बता दिया। चुपके से गाय लेकर बाँध देता, तो चकरा जाती। लगती पूछने, किसकी गाय है! कहाँ से लाये हो? खूब दिक करके तब बताता; लेकिन जब पेट में बात पचे भी। कभी दो-चार पैसे ऊपर से आ जाते हैं,

उनको भी तो नहीं छिपा सकता। और यह अच्छा भी है। उसे घर की चिन्ता रहती है ; अगर उसे मालूम भी हो जाय कि इनके पास भी पैसे रहते हैं, तो फिर नखड़े बघारने लगे। गोबर जरा आलसी है, नहीं मैं गऊ की ऐसी सेवा करता कि जैसी चाहिए। आलसी-वालसी कुछ नहीं है। इस उमिर में कौन आलसी नहीं होता। मैं भी दादा के सामने मटरगश्ती ही किया करता था। बेचारे पहर रात से कुट्टी काटने लगते। कभी द्वार पर झाड़ू लगाते, कभी खेत में खाद फेंकते। मैं पड़ा सोता रहता था। कभी जगा देते, तो मैं बिगड़ जाता और घर छोड़कर भाग जाने की धमकी देता था। लड़के जब अपने माँ-बाप के सामने भी जिन्दगी का थोड़ा-सा सुख न भोगेंगे, तो फिर जब अपने सिर पड़ गई तो क्या भोगेंगे। दादा के मरते ही क्या मैंने घर नहीं सँभाल लिया? सारा गाँव यही कहता था कि होरी घर बरबाद कर देगा ; लेकिन सिर पर बोझ पड़ते ही मैंने ऐसा चोला बदला कि लोग देखते रह गये। सोभा और हीरा अलग ही हो गये, नहीं आज इस घर की और ही बात होती। तीन हल एक साथ चलते। अब तीनों अलग-अलग चलते हैं। बस समय का फेर है। धनियाँ का क्या दोष था। बेचारी जबसे घर में आई, कभी तो आराम से न बैठी। डोली से उतरते ही सारा काम सिर पर उठा लिया। अम्मा को पान की तरह फेरती रहती थी। जिसने घर के पीछे अपने को मिटा दिया, देवरानियों से काम करने को कहती थी, तो क्या बुरा करती थी। आखिर उसे भी तो कुछ आराम मिलना चाहिए ; लेकिन भाग्य में आराम लिखा होता तब तो मिलता! तब देवरों के लिए मरती थी, अब अपने बच्चों के लिए मरती है। वह इतनी सीधी, गमखोर, निर्छल न होती, तो आज सोभा और हीरा जो मूछों पर ताव देते फिरते हैं, कहीं भीख माँगते होते। आदमी कितना स्वार्थी हो जाता है। जिसके लिए मरो, वही जान का दुश्मन हो जाता है।

होरी ने फिर पूर्व की ओर देखा। साइत भिनसार हो रहा है। गोबर काहे को जागने लगा, नहीं कहके तो यही सोया था कि मैं अँधेरे ही अँधेरे चला जाऊँगा। जाकर नाद तो गाड़ दूँ ; लेकिन नहीं, जब तक गाय द्वार पर न आ जाय, नाँद गाड़ना ठीक नहीं। कहीं भोला बदल गये या और किसी कारन से गाय न दी, तो सारा गाँव तालियाँ पीटने लगेगा, चले थे गाय लेने। पट्ठे ने इतनी फुर्ती से नाँद गाड़ दी, मानो इसी की कसर थी। भोला है तो अपने घर का मालिक ; लेकिन जब

लड़के सयाने हो गये, तो बाप की कौन चलती है। कामता और जंगी अकड़ जायँ, तो क्या भोला अपने मन से गाय मुझे दे देंगे, कभी नहीं।

सहसा गोबर चौंककर उठ बैठा और आँखें मलता हुआ बोला—अरे! यह तो भोर हो गया। तुमने नाँद गाड़ दी दादा?

होरी गोबर के सुगठित शरीर और चौड़ी छाती की ओर गर्व से देखकर और मन में यह सोचते हुए कि कहीं इसे गोरस मिलता, तो कैसा पट्ठा हो जाता, बोला—नहीं, अभी नहीं गाड़ी। सोचा, कहीं न मिले, तो नाहक भद्द हो।

गोबर ने त्योरी चढ़ाकर कहा—मिलेगी क्यों नहीं?

'उनके मन में कोई चोर पैठ जाय?'

'चोर पैठे या डाकू, गाय तो उन्हें देनी ही पड़ेगी।'

गोबर ने और कुछ न कहा। लाठी कन्धे पर रखी और चल दिया। होरी उसे जाते देखता हुआ अपना कलेजा ठंडा करता रहा। अब लड़के की सगाई में देर न करनी चाहिए। सत्रहवाँ लग गया; मगर करे कैसे! कहीं पैसे के भी दरसन हों। जबसे तीनों भाइयों में अलगौझा हो गया, घर की साख जाती रही। महतो लड़का देखने आते हैं; पर घर की दशा देखकर मुँह फीका करके चले जाते हैं। दो-एक राजी भी हुए, तो रुपये माँगते हैं। दो-तीन सौ लड़की का दाम चुकाये और इतना ही ऊपर से खर्च करे, तब जाकर ब्याह हो। कहाँ से आयें इतने रुपये। रास खलिहान में तुल जाती है। खाने-भर को भी नहीं बचता। ब्याह कहाँ से हो। और अब तो सोना ब्याहने योग्य हो गई। लड़के का ब्याह न हुआ न सही। लड़की का ब्याह न हुआ, तो सारी बिरादरी में हँसी होगी। पहले तो उसी की सगाई करनी है, पीछे देखी जायगी।

एक आदमी ने आकर राम-राम किया और पूछा—तुम्हारी कोठी में कुछ बाँस होंगे महतो?

होरी ने देखा, दमड़ी बँसोर सामने खड़ा है, नाटा, काला, खूब मोटा, चौड़ा मुँह, बड़ी-बड़ी मूँछें, लाल-लाल आँखें, कमर में बाँस काटने की कटार खोंसे हुए। साल में एक-दो बार आकर चिकें, कुरसियाँ, मोढ़े, टोकरियाँ आदि बनाने के लिए कुछ बाँस काट ले जाता था।

होरी प्रसन्न हो गया। मुट्ठी गर्म होने की कुछ आशा बँधी। चौधरी को ले जाकर

अपनी तीनों कोठियाँ दिखाईं, मोल-भाव किया और पचीस रुपये सैकड़े में पचास बाँसों का बयाना ले लिया। फिर दोनों लौटे। होरी ने उसे चिलम पिलाई, जल पान कराया और तब रहस्यमय भाव से बोला—मेरे बाँस कभी तीस रुपये से कम में नहीं जाते; लेकिन तुम घर के आदमी हो, तुमसे क्या मोल-भाव करता। तुम्हारा वह लड़का; जिसकी सगाई हुई थी, अभी परदेस से लौटा कि नहीं?

चौधरी ने चिलम का दम लगाकर खाँसते हुए कहा—उस लौंडे के पीछे तो मर मिटा महतो! जवान औरत घर में बैठी थी और वह बिरादरी की एक दूसरी औरत के साथ परदेस में बैठा मौज करने चल दिया। बहू भी दूसरे के साथ निकल गई। बड़ी नाकिस जात है महतो, किसी की नहीं होती। कितना समझाया कि तू जो चाहे खा, जो चाहे पहन, मेरी नाक न कटवा, मुदा कौन सुनता है। औरत को भगवान सब कुछ दे, रूप न दे, नहीं वह काबू में नहीं रहती। कोठियाँ तो बँट गई होंगी?

होरी ने आकाश की ओर देखा और मानो उसकी महानता में उड़ता हुआ बोला—सब कुछ बँट गया चौधरी! जिनको लड़कों की तरह पाला-पोसा, वह अब बराबर के हिस्सेदार हैं; लेकिन भाई का हिस्सा खाने को अपनी नीयत नहीं है। इधर तुमसे रुपये मिलेंगे, उधर दोनों भाइयों को बाँट दूँगा। चार दिन की जिन्दगी में क्यों किसी से छल-कपट करूँ। नहीं कह दूँ कि बीस रुपये सैकड़े में बेचे हैं तो उन्हें क्या पता चलेगा। तुम उनसे कहने थोड़े ही जाओगे। तुम्हें तो मैंने बराबर अपना भाई समझा है।

व्यवहार में हम 'भाई' के अर्थ का कितना ही दुरुपयोग करें; लेकिन उसकी भावना में जो पवित्रता है, वह हमारी कालिमा से कभी मलिन नहीं होती।

होरी ने अप्रत्यक्ष रूप से यह प्रस्ताव करके चौधरी के मुँह की ओर देखा कि वह स्वीकार करता है या नहीं। उसके मुख पर कुछ ऐसा मिथ्या विनीत भाव प्रकट हुआ, जो भिक्षा माँगते समय मोटे भिक्षुकों के मुँह पर आ जाता है।

चौधरी ने होरी का आसन पाकर चाबुक जमाया—हमारा-तुम्हारा पुराना भाईचारा है महतो, ऐसी बात है भला; लेकिन बात यह है कि ईमान आदमी बेचता है, तो किसी लालच से। बीस रुपये नहीं, मैं पन्द्रह रुपये कहूँगा; लेकिन जो बीस रुपये के दाम लो।

होरी ने खिसियाकर कहा—तुम तो चौधरी अन्धेर करते हो, बीस रुपये में कहीं ऐसे बाँस जाते हैं ?

'ऐसे क्या, इससे अच्छे बाँस जाते हैं दस रुपये पर, हाँ, दस कोस और पच्छिम चले जाओ। मोल बाँस का नहीं है, शहर के नगीच होने का है। आदमी सोचता है, जितनी देर वहाँ जाने में लगेगी, उतनी देर में तो दो-चार रुपये का काम हो जायगा।'

सौदा पट गया। चौधरी ने मिर्जई उतारकर छान पर रख दी और बाँस काटने लगा।

ऊख की सिंचाई हो रही थी। हीरा-बहू कलेवा लेकर कुआँ पर जा रही थी। चौधरी को बाँस काटते देखकर घूँघट के अन्दर से बोली—कौन बाँस काटता है ? यहाँ बाँस न कटेंगे।

चौधरी ने हाथ रोककर कहा—बाँस मोल लिये हैं, पन्द्रह रुपये सैकड़े का बयाना हुआ है। सेंत में नहीं काट रहे हैं।

हीरा-बहू अपने घर की मालकिन थी। उसी के विद्रोह से भाइयों में अलगौझा हुआ था। धनिया को परास्त करके शेर हो गई थी। हीरा कभी-कभी उसे पीटता था। अभी हाल में इतना मारा था कि वह कई दिन तक खाट से न उठ सकी; लेकिन अपना पदाधिकार वह किसी तरह न छोड़ती थी। हीरा क्रोध में उसे मारता था; लेकिन चलता था, उसी के इशारों पर, उस घोड़े की भाँति जो कभी-कभी स्वामी को लात मारकर भी उसी के आसन के नीचे चलता है।

कलेवे की टोकरी सिर से उतारकर बोली—पन्द्रह रुपये में हमारे बाँस न जायँगे।

चौधरी औरत जात से इस विषय में बात-चीत करना नीति-विरुद्ध समझते थे। बोले—जाकर अपने आदमी को भेज दे। जो कुछ कहना हो, आकर कहे।

हीरा-बहू का नाम था पुन्नी। बच्चे दो ही हुए थे; लेकिन ढल गई थी। बनाव-सिंगार से समय के आघात का शमन करना चाहती थी; लेकिन गृहस्थी में भोजन ही का ठिकाना न था सिंगार के लिए पैसे कहाँ से आते। इस अभाव और विवशता ने उसकी प्रकृति का जल सुखाकर कठोर और शुष्क बना दिया था, जिस पर एक बार फावड़ा भी उचट जाता था।

समीप आकर चौधरी का हाथ पकड़ने की चेष्टा करती हुई बोली—आदमी को क्यों भेज दूँ। जो कुछ कहना हो, मुझसे कहो न। मैंने कह दिया, मेरे बाँस न कटेंगे।

चौधरी हाथ छुड़ाता था, और पुन्नी बार-बार पकड़ लेती थी। एक मिनट तक यही हाथा-पाई होती रही। अन्त में चौधरी ने उसे ज़ोर से पीछे ढकेल दिया। पुन्नी धक्का खाकर गिर पड़ी; मगर फिर सँभली और पाँव से तल्ली निकालकर चौधरी के सिर, मुँह, पीठ पर अन्धा-धुन्ध जमाने लगी। बँसोर होकर उसे ढकेल दे? उसका यह अपमान! मारती जाती थी और रोती भी जाती थी। चौधरी उसे धक्का देकर—नारी-जाति पर बल का प्रयोग करके—गच्चा खा चुका था। खड़े-खड़े मार खाने के सिवा इस संकट से बचने की उसके पास और कोई दवा न थी।

पुन्नी का रोना सुनकर होरी भी दौड़ा हुआ आया। पुन्नी ने उसे देखकर और ज़ोर से चिल्लाना शुरू किया। होरी ने समझा, चौधरी ने पुनिया को मारा है। ख़ून ने जोश मारा और अलगोझे की ऊँची बाँध को तोड़ता हुआ, सब कुछ अपने अन्दर समेटने के लिए बाहर निकल पड़ा। चौधरी को ज़ोर से एक लात मारकर बोला—अब अपना भला चाहते हो चौधरी, तो यहाँ से चले जाओ, नहीं तुम्हारी लहास उठेगी। तुमने अपने को समझा क्या है? तुम्हारी इतनी मजाल कि मेरी बहू पर हाथ उठाओ!

चौधरी क़समें खा-खाकर अपनी सफ़ाई देने लगा। तल्लियों की चोट में उसकी अपराधी आत्मा मौन थी। यह लात उसे निरपराध मिली और उसके फूले हुए गाल आँसुओं से भींग गये। उसने तो बहू को छुआ भी नहीं। क्या वह इतना गँवार है कि महतो के घर की औरतों पर हाथ उठायेगा!

होरी ने अविश्वास करके कहा—आँखों में धूल मत झोंको चौधरी, तुमने कुछ कहा नहीं, तो बहू झूठ-मूठ रोती है? रुपये की गर्मी है, तो वह निकाल दी जायगी। अलग है, तो क्या हुआ, हैं तो एक ख़ून। कोई तिरछी आँख से देखे, तो आँख निकाल लें।

पुन्नी चण्डी बनी हुई थी। गला फाड़कर बोली—तूने मुझे धक्का देकर गिरा नहीं दिया? खा जा अपने बेटे की क़सम!

हीरा को भी ख़बर मिली कि चौधरी और पुनिया में लड़ाई हो रही है। चौधरी

ने पुनिया को धक्का दिया। पुनिया ने उसे तलियों से पीटा। उसने पुर वहीं छोड़ा और औंगी लिये घटनास्थल की ओर चला। गाँव में अपनी क्रोध के लिये प्रसिद्ध था। छोटा डील, गठा हुआ शरीर, आँखें कौड़ी की तरह निकल आई थीं और गर्दन की नसें तन गई थीं; मगर उसे चौधरी पर क्रोध न था, क्रोध था पुनिया पर। वह क्यों चौधरी से लड़ी ! क्यों उसकी इज्जत मिट्टी में मिला दी ? बँसोर से लड़ने-झगड़ने का उसे क्या प्रयोजन था ? उसे जाकर हीरा से सारा समाचार कह देना चाहिए था। हीरा जैसा उचित समझता, करता। वह उससे लड़ने क्यों गई ? उसका बस होता, तो वह पुनिया को पर्दे में रखता। पुनिया किसी बड़े से मुँह खोलकर बातें करे, यह उसे असह्य था। वह ख़ुद जितना उद्दण्ड था, पुनिया को उतना ही शान्त रखना चाहता था। जब भैया ने पन्द्रह रुपये में सौदा कर लिया, तो यह बीच में कूदनेवाली कौन !

आते ही उसने पुन्नी का हाथ पकड़ लिया और घसीटता हुआ अलग ले जाकर लगा लातें जमाने—हरामजादी, तू हमारी नाक काटने पर लगी हुई है ! तू छोटे-छोटे आदमियों से लड़ती फिरती है, किसकी पगड़ी नीची होती है बता ! (एक लात और जमाकर) हम तो वहाँ कलेऊ की बाट देख रहे हैं, तू यहाँ लड़ाई ठाने बैठी है। इतनी बेशर्मी ! आँख का पानी ऐसा गिर गया ! खोदकर गाड़ दूँगा।

पुन्नी हाय-हाय करती जाती थी और कोसती जाती थी, तेरी मिट्टी उठे, तुझे हैजा हो जाय, तुझे मरी आये, देवी मैया तुझे लील जायँ, तुझे इन्फ्लुंजा हो जाय। भगवान् करे, तू कोढ़ी हो जाय, हाथ-पाँव कट-कट गिरें।

और गालियाँ तो हीरा खड़ा-खड़ा सुनता रहा; लेकिन यह पिछली गाली उसे लग गई। हैजा, मरी आदि में विशेष कष्ट न था। इधर बीमार पड़े उधर बिदा हो गये; लेकिन कोढ़ ! यह घिनौनी मौत, और उससे भी घिनौना जीवन। वह तिल-मिला उठा, दाँत पीसता हुआ फिर पुनिया पर झपटा और झोंटे पकड़कर फिर उसका सिर ज़मीन पर रगड़ता हुआ बोला—हाथ-पाँव कटकर गिर जायँगे, तो मैं तुझे लेकर चाटूँगा ! तू ही मेरे बाल-बच्चों को पालेगी ! ऐं ! तू ही इतनी बड़ी गिरस्ती चलायेगी ! तू तो दूसरा भरतार करके किनारे खड़ी हो जायगी।

चौधरी को पुनिया की इस दुर्गत पर दया आ गई। हीरा को उदारता-पूर्वक समझाने लगा—हीरा महतो, अब ज़ाने दो, बहुत हुआ। क्या हुआ, बहू ने मुझे

होरी ने बाँस गिनने की जरूरत न समझी। चौधरी ऐसा आदमी नहीं है। फिर एकाध बाँस बेसी ही काट लेगा, तो क्या! रोज़ ही तो मँगनी बाँस कटते रहते हैं। सहालगों में तो मण्डप बनने के लिए लोग दरजनों बाँस काट ले जाते हैं।

चौधरी ने साढ़े सात रुपये निकालकर उसके हाथ पर रख दिये। होरी ने गिनकर कहा—और निकालो। हिसाब से ढाई और होते हैं।

चौधरी ने बेमुरौवती से कहा—पन्द्रह रुपये में तय हुए हैं कि नहीं?

'पन्द्रह रुपये में नहीं, बीस रुपये में।'

'हीरा महतो ने तुम्हारे सामने पन्द्रह रुपये कहे थे। कहो तो बुला लाऊँ।

'तय तो बीस रुपये में ही हुए थे चौधरी! अब तुम्हारी जीत है, जो चाहे कहो। ढाई रुपये निकलते हैं, तुम दो ही दे दो।'

मगर चौधरी कच्ची गोलियाँ न खेला था। अब उसे किसका डर। होरी के मुँह में तो ताला पड़ा हुआ था। क्या कहे, माथा ठोंककर रह गया बस इतना बोला—यह अच्छी बात नहीं है चौधरी, दो रुपये दबाकर राजा न हो जाओगे।

चौधरी तीक्ष्ण स्वर में बोला—और तुम क्या भाइयों के थोड़े-से पैसे दबाकर राजा हो जाओगे? ढाई रुपये पर अपना ईमान बिगाड़ रहे थे, उस पर मुझे उपदेश देते हो। अभी परदा खोल दूँ, तो सिर नीचा हो जाय।

होरी पर जैसे सैकड़ों जूते पड़ गये। चौधरी तो रुपये सामने जमीन पर रखकर चला गया; पर वह नीम के नीचे बैठा बड़ी देर तक पछताता रहा। वह कितना लोभी और स्वार्थी है, इसका उसे आज पता चला। चौधरी ने ढाई रुपये दे दिये होते, तो वह ख़ुशी से कितना फूल उठता। अपनी चालाकी को सराहता कि बैठे-बैठाये ढाई रुपये मिल गये। ठोकर खाकर ही तो हम सावधानी के साथ पग उठाते हैं।

धनिया अन्दर चली गई थी। बाहर आई तो रुपये जमीन पर पड़े देखे। गिनकर बोली—और रुपये क्या हुए, दस न चाहिए!

होरी ने लम्बा मुँह बनाकर कहा—हीरा ने पन्द्रह रुपये में दे दिये, तो मैं क्या करता।

'हीरा पाँच रुपये में दे दे। हम नहीं देते इन दामों।'

'वहाँ मार-पीट हो रही थी। मैं बीच में क्या बोलता।'

होरी ने अपनी पराजय अपने मन में ही डाल ली, जैसे कोई चोरी से आम तोड़ने के लिए पेड़ पर चढ़े और गिर पड़ने पर धूल झाड़ता हुआ उठ खड़ा हो कि कोई देख न ले। जीतकर आप अपनी धोखेबाजियों की डींग मार सकते हैं, जीत में सब कुछ माफ़ है। हार की लज्जा तो पी जाने की ही वस्तु है।

धनिया पति को फटकारने लगी। ऐसे सुअवसर उसे बहुत कम मिलते थे। होरी उससे चतुर था; पर आज बाजी धनिया के हाथ थी। हाथ मटकाकर बोली—क्यों न हो, भाई ने पन्द्रह रुपये कह दिये, तो तुम कैसे टोकते। अरे राम-राम! लाड़ले भाई का दिल छोटा हो जाता कि नहीं। फिर जब इतना बड़ा अनर्थ हो रहा था कि लाड़ली बहू के गले पर छूरी चल रही थी, तो भला तुम कैसे बोलते। उस बखत कोई तुम्हारा सरबस लूट लेता, तो भी तुम्हें सुध न होती।

होरी चुपचाप सुनता रहा। मिनका तक नहीं। झुँझलाहट हुई, क्रोध आया, ख़ून खौला, आँख जली, दाँत पिसे; लेकिन बोला नहीं। चुपके-से कुदाल उठाई और ऊख गोड़ने चला।

धनिया ने कुदाल छीनकर कहा—क्या अभी सबेरा है जो ऊख गोड़ने चले। सूरज देवता माथे पर आ गये। नहाने-धोने जाव। रोटी तैयार है।

होरी ने घुन्नाकर कहा—मुझे भूख नहीं है।

धनिया ने जले पर नोन छिड़का—हाँ, काहे को भूख लगेगी, भाई ने बड़े-बड़े लड्डू खिला दिये हैं न! भगवान् ऐसे सपूत भाई सबको दें।

होरी बिगड़ा। क्रोध अब रस्सियाँ तुड़ा रहा था—तू आज मार खाने पर लगी हुई है।

धनिया ने नकली विनय का नाट्य करके कहा—क्या करूँ, तुम दुलार ही इतना करते हो कि मेरा सिर फिर गया है।

'तू घर में रहने देगी कि नहीं?'

'घर तुम्हारा, मालिक तुम, मैं भला कौन होती हूँ तुम्हें घर से निकालने-वाली!'

होरी आज धनिया से किसी तरह पेश नहीं पा सकता। उसकी अक्ल जैसे कुन्द हो गई है। इन व्यंग्यबाणों के रोकने के लिए उसके पास कोई ढाल नहीं

है। धीरे से कुदाल रख दी और गमछा लेकर नहाने चला गया। लौटा कोई आध घण्टे में ; मगर गोबर अभी तक न आया था। अकेले कैसे भोजन करे। लौंडा वहाँ जाकर सो रहा। भोला की वह मदमाती छोकरी नहीं है झुनिया। उसके साथ हँसी-दिल्लगी कर रहा होगा। कल भी तो उसके पीछे लगा हुआ था। नहीं गाय दी, तो लौट क्यों नहीं आया। क्या वहाँ ढई देगा?

धनिया ने कहा—अब खड़े क्या हो? गोबर साँझ को आवेगा।

होरी ने और कुछ न कहा। कहीं धनिया फिर न कुछ कह बैठे।

भोजन करके नीम की छाँह में लेट रहा।

रूपा रोती हुई, नंगे बदन एक लँगोटी लगाये, झबरे बाल इधर-उधर बिखरे हुए होरी की छाती पर लोट गई। उसकी बड़ी बहन सोना कहती है—गाय आयेगी, तो उसका गोबर मैं पाथूँगी। रूपा यह नहीं बरदाश्त कर सकती। सोना ऐसी कहाँ की बड़ी रानी है कि सारा गोबर आप पाथ डाले। रूपा उससे किस बात में कम है। सोना रोटी पकाती है, तो क्या रूपा बरतन नहीं माँजती? सोना पानी लाती है, तो क्या रूपा कुएँ पर रस्सी नहीं ले जाती? सोना तो कलसा भरकर अठिलाती चली आती है। रस्सी समेटकर रूपा ही लाती है। गोबर दोनों साथ पाथती हैं। सोना खेत गोड़ने जाती है, तो क्या रूपा बकरी चराने नहीं जाती? फिर सोना क्यों अकेली गोबर पाथेगी? यह अन्याय रूपा कैसे सहे।

होरी ने उसके भोलेपन पर मुग्ध होकर कहा—नहीं, गाय का गोबर तू पाथना। सोना गाय के पास जाय, तो भगा देना।

रूपा ने पिता के गले में हाथ डालकर कहा—दूध भी मैं ही दुहूँगी।

'हाँ-हाँ, तू न दूहेगी, तो और कौन दूहेगा?'

'वह मेरी गाय होगी।'

'हाँ, सोलहो आने तेरी।'

रूपा प्रसन्न होकर अपनी विजय का शुभ समाचार पराजिता सोना को सुनाने चली गई। गाय मेरी होगी, उसका दूध मैं दुहूँगी, उसका गोबर मैं पाथूँगी; तुझे कुछ न मिलेगा।

सोना उम्र से किशोरी, देह की गठन में युवती और बुद्धि से बालिका थी, से उसक। यौवन उसे आगे खींचता था, बालपन पीछे। कुछ बातों में इतनी

चतुर कि ग्रेजुएट युवतियों को पढ़ाये, कुछ बातों में इतनी अल्हड़ कि शिशुओं से भी पीछे। लंबा, रूखा, किन्तु प्रसन्न मुख, ठूड़ी नीचे को खिंची हुई, आँखों में एक प्रकार की तृप्ति, न केशों में तेल, न आँखों में काजल, न देह पर कोई आभूषण, जैसे गृहस्थी के भार ने यौवन को दबाकर बौना कर दिया हो।

सिर को एक झटका देकर बोली—जा तू गोबर पाथ। जब तू दूध दुहकर रखेगी, तो मैं पी जाऊँगी।

'मैं दूध की हाँड़ी ताले में बन्द करके रखूँगी।'

'मैं ताला तोड़कर दूध निकाल लाऊँगी।

यह कहती हुई वह बाग की तरफ़ चल दी। आम गदरा गये थे। हवा के झोंकों से एकाध ज़मीन पर गिर पड़ते थे, लू के मारे, चुचके, पीले; लेकिन बाल-वृन्द उन्हें टपके समझकर बाग को घेरे रहते थे। रूपा भी बहन के पीछे हो ली। जो काम सोना करे, वह रूपा ज़रूर करेगी। सोना के विवाह की बातचीत हो रही थी, रूपा के विवाह की कोई चर्चा नहीं करता; इसलिए वह स्वयं अपने विवाह के लिए आग्रह करती है। उसका दूल्हा कैसा होगा, क्या-क्या लायेगा, उसे कैसे रखेगा, उसे क्या खिलायेगा, क्या पहनायेगा, इसका वह बड़ा विशद वर्णन करती, जिसे सुन-कर कदाचित् कोई बालक उससे विवाह करने पर राज़ी न होता।

साँझ हो रही थी। होरी ऐसा अलसाया कि ऊख गोड़ने न जा सका। बैलों को नाँद में लगाया, सानी-खली दी और एक चिलम भरकर पीने लगा। इस फ़सल में सब कुछ खलिहान में तौल देने पर भी अभी उस पर कोई तीन सौ का क़र्ज़ था, जिस पर कोई सौ रुपये सूद के बढ़ते जाते थे। मँगरू साह से आज पाँच साल हुए बैल के लिए साठ रुपये लिये थे। उसमें साठ दे चुका था; पर वह साठ रुपये ज्यों-के-त्यों बने हुए थे। दातादीन पंडित से तीस रुपये लेकर आलू बोये थे। आलू तो चोर खोद ले गये, और उस तीस के इन तीन बरसों में सौ हो गये थे। दुलारी विधवा सहुआइन थी, जो गाँव में नोन, तेल, तमाखू की दुकान रखे हुए थी। बटवारे के समय उससे चालीस रुपये लेकर भाइयों को देना पड़ा था। उसके भी लगभग सौ रुपये हो गये थे; क्योंकि आने रुपये का ब्याज था। लगान के भी अभी पचीस रुपये बाक़ी पड़े हुए थे और दशहरे के दिन शगुन के रुपयों का भी कोई प्रबन्ध करना था। बाँसों के रुपये बड़े अच्छे समय पर मिल गये। शगुन की समस्या हल

हो जायगी ; लेकिन कौन जाने। यहाँ तो एक धेला भी हाथ में आ जाय, तो गाँव में शोर मच जाता है, और लेनदार चारों तरफ़ से नोचने लगते हैं ; ये पाँच रुपये तो वह शगुन में देगा, चाहे कुछ हो जाय ; मगर अभी ज़िन्दगी के दो बड़े-बड़े काम सिर पर सवार थे। गोबर और सोना का विवाह। बहुत हाथ बाँधने पर भी तीन सौ से कम ख़र्च न होंगे। ये तीन सौ किसके घर से आयेंगे। कितना चाहता है कि किसी से एक पैसा कर्ज़ न ले, जिसका आता है, उसका पाई-पाई चुका दे ; लेकिन हर तरह का कष्ट उठाने पर भी गला नहीं छूटता। इसी तरह सूद बढ़ता जायगा और एक दिन उसका घर-द्वार सब नीलाम हो जायगा, उसके बाल-बच्चे निराश्रय होकर भीख माँगते फिरेंगे। होरी जब काम-धन्धे से छुट्टी पाकर चिलम पीने लगता था, तो यह चिन्ता एक काली दीवार की भाँति चारों ओर से घेर लेती थी, जिसमें से निकलने की उसे कोई गली न सूझती थी ; अगर संतोष था, तो यही कि यह विपत्ति अकेले उसी के सिर न थी। प्रायः सभी किसानों का यही हाल था। अधिकांश की दशा तो इससे भी बदतर थी। सोभा और हीरा को उससे अलग हुए अभी कुल तीन साल हुए थ ; मगर दोनों पर चार-चार सौ का बोझ लद गया था। झींगुर दो हल की खेती करता है। उस पर एक हज़ार से कुछ बेसी ही देना है। जियावन महतो के घर भिखारी भीख भी नहीं पाता ; लेकिन क़रज़े का कोई ठिकाना नहीं। यहाँ कौन बचा है।

सहसा सोना और रूपा दोनों दौड़ी हुई आईं और एक साथ बोलीं—भैया गाय ला रहे हैं आगे-आगे गाय, पीछे-पीछे भैया हैं।

रूपा ने पहले गोबर को आते देखा था। यह ख़बर सुनाने की सुर्ख़रूई उसे मिलनी चाहिए थी। सोना बराबर की हिस्सेदार हुई जाती है, यह उससे कैसे सहा जाता।

उसने आगे बढ़कर कहा—पहले मैंने देखा था। तभी दौड़ी। बहन ने तो पीछे से देखा।

सोना इस दावे को स्वीकार न कर सकी। बोली—तूने भैया को कहाँ पहचाना। तू तो कहती थी, कोई गाय भागी आ रही है। मैंने ही कहा भैया हैं।

दोनों फिर बाग़ की तरफ़ दौड़ीं, गाय का स्वागत करने के लिए।

धनिया और होरी दोनों गाय बाँधने का प्रबन्ध करने लगे। होरी बोला—चलो जल्दी से नाँद गाड़ दें।

धनिया के मुख पर जवानी चमक उठी थी—नहीं, पहले थाली में थोड़ा-सा आटा और गुड़ घोलकर रख दें। बेचारी धूप में चली होगी। प्यासी होगी। तुम जाकर नाँद गाड़ो, मैं घोलती हूँ।

'कहीं एक घंटी पड़ी थी। उसे ढूँढ़ ले। उसके गले में बाँधेंगे।'

'सोना कहाँ गई। सहुआइन की दूकान से थोड़ा-सा काला डोरा मँगवा लो। गाय को नजर बहुत लगती है।'

'आज मेरे मन की बड़ी भारी लालसा पूरी हो गई।'

धनिया अपने हार्दिक उल्लास को दबाये रखना चाहती थी। इतनी बड़ी संपदा साथ कोई नई बाधा न लाये यह शंका उसके निराश हृदय में कंपन डाल रही थी। आकाश की ओर देखकर बोली—गाय के आने का आनन्द तो जब है कि उसका पौरा भी अच्छा हो। भगवान् के मन की बात है।

मानो वह भगवान् को भी धोखा देना चाहती थी। भगवान् को भी दिखाना चाहती थी कि इस गाय के आने से उसे इतना आनन्द नहीं हुआ कि ईर्ष्यालु भगवान् सुख का पलरा ऊँचा करने के लिए कोई नई बिपत्ति भेज दें।

वह अभी आटा घोल ही रही थी कि गोबर गाय को लिये, बालकों के एक जुलूस के साथ द्वार पर आ पहुँचा। होरी दौड़कर गाय के गले से लिपट गया। धनिया ने आटा छोड़ दिया और जल्दी से एक पुरानी साड़ी का काला किनारा फाड़कर गाय के गले में बाँध दिया।

होरी श्रद्धा-विह्वल नेत्रों से गाय को देख रहा था, मानो साक्षात् देवीजी ने घर में पदार्पण किया हो। आज भगवान् ने यह दिन दिखाया कि उसका घर गऊ के चरणों से पवित्र हो गया। यह सौभाग्य! न जाने किसके पुण्य-प्रताप से।

धनिया ने भयातुर होकर कहा—खड़े क्या हो, आँगन में नाँद गाड़ दो।

'आँगन में! जगह कहाँ है?'

'बहुत जगह है।'

'मैं तो बाहर ही गाड़ता हूँ।'

'पागल न बनो। गाँव का हाल जानकर भी अनजान बनते हो?'

'अरे बित्ते भर के आँगन में गाय कहाँ बँधेगी भाई ?'

'जो बात नहीं जानते, उसमें टाँग मत अड़ाया करो। संसार-भर की विद्या तुम्हीं नहीं पढ़े हो।'

होरी सचमुच आपे में न था। गऊ उसके लिए केवल भक्ति और श्रद्धा की वस्तु नहीं, सजीव संपत्ति भी थी। वह उससे अपने द्वार की शोभा और अपने घर का गौरव बढ़ाना चाहता था। वह चाहता था, लोग गाय को द्वार पर बँधे देखकर पूछें — यह किसका घर है ? लोग कहें—होरी महतो का। तभी लड़कीवाले भी उसकी विभूति से प्रभावित होंगे, आँगन में बँधी, तो कौन देखेगा ? धनिया इसके विपरीत सशंक थी। वह गाय को सात परदों के अन्दर छिपाकर रखना चाहती थी ; अगर गाय आठों पहर कोठरी में रह सकती, तो शायद वह उसे बाहर न निकलने देती ; यों हर बात में होरी की जीत होती थी। वह अपने पक्ष पर अड़ जाता था और धनिया को दबना पड़ता था ; लेकिन आज धनिया के सामने होरी की एक न चली। धनिया लड़ने पर तैयार हो गई। गोबर और सोना और रूपा, सारा घर होरी के पक्ष में था ; पर धनिया ने अकेले सबको परास्त कर दिया। आज उसमें एक विचित्र आत्म-विश्वास और होरी में एक विचित्र विनय का उदय हो गया था।

मगर तमाशा कैसे रुक सकता था। गाय डोली में बैठकर तो आई न थी। कैसे संभव था कि गाँव में इतनी बड़ी बात हो जाय और तमाशा न लगे। जिसने सुना, सब काम छोड़कर देखने दौड़ा। यह मामूली देसी गऊ नहीं है। भोला के घर से अस्सी रुपये में आई है। होरी अस्सी रुपये क्या देंगे, पचास-साठ रुपये में लाये होंगे। गाँव के इतिहास में पचास-साठ रुपये की गाय का आना भी अभूतपूर्व बात थी। बैल तो पचास रुपये के भी आये, सौ के भी आये ; लेकिन गाय के लिए इतनी बड़ी रकम किसान क्या खाके खर्च करेगा। यह तो ग्वालों ही का कलेजा है कि अँजुलियों रुपये गिन आते हैं। गाय क्या है, साक्षात् देवी का रूप है। दर्शकों, आलोचकों का ताँता लगा हुआ था, और होरी दौड़-दौड़कर सबका सत्कार कर रहा था। इतना विनम्र, इतना प्रसन्नचित्त वह कभी न था।

सत्तर साल के बूढ़े पण्डित दातादीन लठिया टेकते हुए आये और पोपले मुँह से बोले—कहाँ हो होरी, तनक हम भी तुम्हारी गाय देख लें। सुना बड़ी सुन्दर है।

होरी ने दौड़कर पालागन किया और मन में अभिमानमय उल्लास का आनन्द

उठाता हुआ, बड़े सम्मान से पण्डितजी के आँगन में ले गया। महाराज ने गऊ को अपनी पुरानी, अनुभवी आँखों से देखा, सींगें देखीं, थन देखा, पुट्ठा देखा और घनी सफेद भौंवों के नीचे छिपी हुई आँखों में जवानी की उमंग भरकर बोले—कोई दोष नहीं है बेटा, बाल-भौंरी, सब ठीक। भगवान् चाहेंगे, तो तुम्हारे भाग खुल जायँगे, ऐसे अच्छे लच्छन हैं कि वाह! बस रातिब न कम होने पाये। एक-एक बाछा सौ-सौ का होगा।

होरी ने आनन्द के सागर में डुबकियाँ खाते हुए कहा—सब आपका आसीरबाद है दादा!

दातादीन ने सुरती का पीक थूकते हुए कहा—मेरा असीरबाद नहीं है बेटा, भगवान् की दया है। यह सब प्रभु की दया है। रुपये नगद दिये?

होरी ने बे-पर की उड़ाई। अपने महाजन के सामने भी अपनी समृद्धि-प्रदर्शन का ऐसा अवसर पाकर वह कैसे छोड़े। टके की नई टोपी सिर पर रखकर जब हम अकड़ने लगते हैं, ज़रा देर के लिए किसी सवारी पर बैठकर जब हम आकाश में उड़ने लगते हैं, तो इतनी बड़ी विभूति पाकर क्यों न उसका दिमाग आसमान पर चढ़े। बोला—भोला ऐसा भलामानस नहीं है महाराज! नगद गिनाये, पूरे, चौकस।

अपने महाजन के सामने यह डींग मारकर होरी ने नादानी तो की थी; पर दातादीन के मुख पर असन्तोष का कोई चिह्न न दिखाई दिया। इस कथन में कितना सत्य है, यह उनकी उन बूढ़ी आंखों से छिपा न रह सका; जिनमें ज्योति की जगह अनुभव छिपा बैठा था।

प्रसन्न होकर बोले—कोई हरज नहीं बेटा, कोई हरज नहीं। भगवान् सब कल्यान करेंगे। पाँच सेर दूध है इसमें, बच्चे के लिए छोड़कर।

धनिया ने तुरन्त टोका—अरे नहीं महाराज, इतना दूध कहाँ। बुढ़िया तो हो गई है। फिर यहाँ रातिब कहाँ धरा है।

दातादीन ने मर्म-भरी आँखों से देखकर उसकी सतर्कता को स्वीकार किया, मानो कह रहे हों, 'गृहिणी का यही धर्म है, सीटना मरदों का काम है, उन्हें सीटने दो।' फिर रहस्य-भरे स्वर में बोले—बाहर न बाँधना, इतना कहे देते हैं।

धनिया ने पति की ओर विजयी आंखों से देखा, मानो कह रही हो—लो, अब तो मानोगे!

दातादीन से बोली—नहीं महाराज, बाहर क्या बाँधेंगे, भगवान् दें तो इसी आँगन में तीन गायें और बँध सकती हैं।

सारा गाँव गाय देखने आया। नहीं आये तो सोभा और हीरा, जो अपने सगे भाई थे। होरी के हृदय में भाइयों के लिए अब भी कोमल स्थान था। वह दोनों आकर देख लेते और प्रसन्न हो जाते, तो उसकी मनोकामना पूरी हो जाती। साँझ हो गई। दोनों पुर लेकर लौट आये। इसी द्वार से निकले; पर पूछा कुछ नहीं।

होरी ने डरते-डरते धनिया से कहा—न सोभा आया, न हीरा। सुना न होगा?

धनिया बोली—तो यहाँ कौन उन्हें बुलाने जाता है।

'तू बात तो समझती नहीं। लड़ने को तैयार रहती है। भगवान् ने जब यह दिन दिखाया है, तो हमें सिर झुकाकर चलना चाहिए। आदमी को अपने सगों के मुँह से अपनी भलाई-बुराई सुनने की जितनी लालसा होती है, उतनी बाहरवालों के मुँह से नहीं। फिर अपने भाई लाख बुरे हों, हैं तो अपने भाई ही। अपने हिस्से-बखरे के लिए सभी लड़ते हैं; पर इससे खून थोड़े ही बट जाता है। दोनों को बुलाकर दिखा देना चाहिए। नहीं, कहेंगे गाय लाये, हमसे कहा तक नहीं।

धनिया ने नाक सिकोड़कर कहा—मैंने तुमसे सौ बार, हजार बार, कह दिया, मेरे मुँह पर भाइयों का बखान न किया करो, उनका नाम सुनकर मेरी देह में आग लग जाती है। सारे गाँव ने सुना, क्या उन्होंने न सुना होगा? कुछ इतनी दूर भी तो नहीं रहते। सारा गाँव देखने आया, उन्हीं के पाँवों में मेंहदी लगी हुई थी; मगर आयें कैसे। जलन हो रही होगी कि इसके घर गाय आ गई। छाती फटी जाती होगी।

दिया-बत्ती का समय आ गया था। धनिया ने जाकर देखा, तो बोतल में मिट्टी का तेल न था। बोतल उठाकर तेल लाने चली गई। पैसे होते, तो रूपा को भेजती, उधार लाना है, कुछ मुँहदेखी कहेगी, कुछ लल्लो-चप्पो करेगी, तभी तो तेल उधार मिलेगा।

होरी ने रूपा को बुलाकर प्यार से गोद में बैठाया और कहा—जरा जाकर देख, हीरा काका आ गये हैं कि नहीं। सोभा काका को भी देखती आना। कहना, दादा ने तुम्हें बुलाया है। न आयें, तो हाथ पकड़कर खींच लाना।

रूपा ठुनककर बोली—छोटी काकी मुझे डाँटती है।

'काकी के पास क्या करने जायगी। फिर सोभा-बहू तो तुझे प्यार करती है?'

'सोभा काका मुझे चिढ़ाते हैं, कहते हैं... मैं न कहूँगी।'

'क्या कहते हैं, बता?'

'चिढ़ाते हैं।'

'क्या कहकर चिढ़ाते हैं?'

'कहते हैं, तेरे लिए मूस पकड़ रखा है। ले जा, भूनकर खा ले।'

होरी के अन्तस्तल में गुदगुदी हुई।

'तू कहती नहीं, पहले तुम खा लो, तो मैं खाऊँगी।'

'अम्मा मने करती हैं। कहती हैं, उन लोगों के घर न जाया कर।'

'तू अम्मा की बेटी है कि दादा की?'

रूपा ने उसके गले में हाथ डालकर कहा—अम्मा की और हँसने लगी।

'तो फिर मेरी गोद से उतर जा। आज मैं तुझे अपनी थाली में न खिलाऊँगा।'

घर में एक ही फूल की थाली थी, होरी उसी थाली में खाता था। थाली में खाने का गौरव पाने के लिए रूपा होरी के साथ खाती थी। इस गौरव का परित्याग कैसे करे। ठुमककर बोली—अच्छा, तुम्हारी।

'तो फिर मेरा कहना मानेगी कि अम्मा का?'

'तुम्हारा।'

'तो जाकर हीरा और सोभा को खींच ला।'

'और जो अम्मा बिगड़ें?'

'अम्मा से कहने कौन जायगा?'

रूपा कूदती हुई हीरा के घर चली। द्वेष का मायाजाल बड़ी-बड़ी मछलियों को ही फँसाता है। छोटी मछलियाँ या तो उसमें फँसती ही नहीं या तुरन्त निकल जाती हैं। उनके लिए वह घातक जाल क्रीड़ा की वस्तु है, भय की नहीं। भाइयों से होरी की बोल-चाल बन्द थी; पर रूपा दोनों घरों में आती-जाती थी। बच्चों से क्या बैर!

लेकिन रूपा घर से निकली ही थी कि धनिया तेल लिये मिल गई। उसने

पूछा—साँझ की बेला कहाँ जाती है, चल घर। रूपा मा को प्रसन्न करने के प्रलोभन को न रोक सकी।

धनिया ने डाँटा—चल घर, किसी को बुलाने नहीं जाना है।

रूपा का हाथ पकडे हुए वह घर लाई और होरी से बोली—मैंने तुमसे हजार बार कह दिया, मेरे लड़कों को किसी के घर न भेजा करो। किसी ने कुछ कर-करा दिया, तो मैं तुम्हें लेकर चाटूँगी? ऐसा ही बड़ा परेम है, तो आप क्यों नहीं जाते? अभी पेट नहीं भरा जान पड़ता है।

होरी नाँद जमा रहा था। हाथों में मिट्टी लपेटे हुए अज्ञान का अभिनय करके बोला—किस बात पर बिगड़ती है भाई! यह तो अच्छा नहीं लगता कि अन्धे कूकर की तरह हवा को भूँका करे।

धनिया को कुप्पी में तेल डालना था, इस समय झगड़ा न बढ़ाना चाहती थी। रूपा भी लड़कों में जा मिली।

पहर रात से ज़्यादा जा चुकी थी। नाँद गड़ चुकी थी। सानी और खली डाल दी गई थी। गाय मनमारे उदास बैठी थी, जैसे कोई वधू ससुराल आई हो। नाँद में मुँह तक न डालती थी। होरी और गोबर खाकर आधी-आधी रोटियाँ उसके लिए लाये, पर उसने सूँघा तक नहीं। मगर यह कोई नई बात न थी। जानवरों को भी बहुधा घर छूट जाने का दुःख होता है।

होरी बाहर खाट पर बैठकर चिलम पीने लगा, तो फिर भाइयों की याद आई। नहीं, आज इस शुभ अवसर पर वह भाइयों की उपेक्षा नहीं कर सकता। उसका हृदय वह विभूति पाकर विशाल हो गया था। भाइयों से अलग हो गया है, तो क्या हुआ। उनका दुश्मन तो नहीं है। यही गाय तीन साल पहले आई होती, तो सभी का उस पर बराबर अधिकार होता। और कल को यही गाय दूध देने लगेगी, तो क्या वह भाइयों के घर दूध न भेजेगा या दही न भेजेगा? ऐसा तो उसका धरम नहीं है। भाई उसका बुरा चेतें, वह क्यों उनका बुरा चेते। अपनी-अपनी करनी तो अपने-अपने साथ है।

उसने नारियल खाट के पाये से लगाकर रख दिया और हीरा के घर की ओर चला। सोभा का घर भी उधर ही था। दोनों अपने-अपने द्वार पर लेटे हुए थे। काफ़ी अँधेरा था। होरी पर उनमें से किसी की निगाह नहीं पड़ी। दोनों में कुछ बातें

हो रही थीं। होरी ठिठक गया और उनकी बातें सुनने लगा। ऐसा आदमी कहाँ है, जो अपनी चर्चा सुनकर टाल जाय।

हीरा ने कहा—जब तक एक में थे, एक बकरी भी नहीं ली। अब पछाईं गाय ली जाती है। भाई का हक मारकर किसी को फलते-फूलते नहीं देखा।

सोभा बोला—यह तुम अन्याय कर रहे हो हीरा! भैया ने एक-एक पैसे का हिसाब दे दिया था। यह मैं कभी न मानूँगा कि उन्होंने पहले की कमाई छिपा रखी थी।

'तुम मानो चाहे न मानो, है यह पहले की कमाई।'

'किसी पर झूठा इलजाम न लगाना चाहिए।'

'अच्छा, तो यह रुपये कहाँ से आ गये? कहाँ से हुन बरस पड़ा। उतने ही खेत तो हमारे पास भी हैं। उतनी ही उपज हमारी भी है। फिर क्यों हमारे पास कफन को कौड़ी नहीं और उनके घर नई गाय आती है?'

'उधार लाये होंगे।'

'भोला उधार देनेवाला आदमी नहीं है।'

'कुछ भी हो, गाय है बड़ी सुन्दर, गोबर लिये आता था, तो मैंने रास्ते में देखा।'

'बेईमानी का धन जैसे आता है, वैसे ही जाता है। भगवान् चाहेंगे, तो बहुत दिन गाय घर में न रहेगी।'

होरी से और न सुना गया। वह बीती बातों को बिसराकर अपने हृदय में स्नेह और सौहार्द भरे भाइयों के पास आया था। इस आघात ने जैसे उसके हृदय में छेद कर दिया और वह रस-भाव उसमें किसी तरह नहीं टिक रहा था। लत्ते और चिथड़े ठूँसकर अब वह उस प्रवाह को नहीं रोक सकता। जी में एक उबाल आया कि उसी क्षण इस आक्षेप का जवाब दे; लेकिन बात बढ़ जाने के भय से चुप रह गया। अगर उसकी नीयत साफ है, तो कोई कुछ नहीं कर सकता। भगवान् के सामने वह निर्दोष है। दूसरों की उसे परवाह नहीं। उलटे पाँव लौट आया। और वही जला हुआ तम्बाकू पीने लगा; लेकिन जैसे वह विष प्रतिक्षण उसकी धमनियों में फैलता जाता था। उसने सो जाने का प्रयास किया; पर नींद न आई। बैलों के पास जाकर उन्हें सहलाने लगा, विष शान्त न हुआ। दूसरी चिलम भरी; लेकिन उसमें

भी कुछ रस न था। विष ने जैसे चेतना को आक्रान्त कर दिया हो। जैसे नशे में चेतना एकाङ्गी हो जाती है, जैसे फैला हुआ पानी एक दिशा में बहकर वेगवान् हो जाता है, वही मनोवृत्ति उसकी हो रही थी। उसी उन्माद की दशा में वह अन्दर गया। अभी द्वार खुला हुआ था। आँगन में एक किनारे चटाई पर लेटी हुई धनिया सोना से देह दबवा रही थी और रूपा जो रोज़ साँझ होते ही सो जाती थी, आज खड़ी गाय का मुँह सहला रही थी। होरी ने जाकर गाय को खूँटे से खोल लिया और द्वार की ओर चला। वह इसी वक्त गाय को भोला के घर पहुँचाने का दृढ़ निश्चय कर चुका था। इतना बड़ा कलंक सिर पर लेकर वह गाय को घर में नहीं रख सकता। किसी तरह नहीं।

धनिया ने पूछा — कहाँ लिये जाते हो रात को?

होरी ने एक पग आगे बढ़कर कहा—ले जाता हूँ भोला के घर। लौटा दूँगा।

धनिया को विस्मय हुआ। उठकर सामने आ गई और बोली—लौटा क्यों दोगे? लौटाने के लिए ही लाये थे?

'हाँ, इसके लौटा देने में ही कुसल है।'

'क्यों, बात क्या है? इतने अरमान से लाये और अब लौटाने जा रहे हो? क्या भोला रुपये माँगते हैं?'

'नहीं, भोला यहाँ कब आया।'

'तो फिर क्या बात हुई?'

'क्या करेगी पूछकर?'

धनिया ने लपककर पगहिया उसके हाथ से छीन ली। उसकी चपल बुद्धि ने जैसे उड़ती हुई चिड़िया पकड़ ली। बोली—तुम्हें भाइयों का डर हो, तो जाकर उनके पैरों पर गिरो। मैं किसी से नहीं डरती। अगर हमारी बढ़ती देखकर किसी की छाती फटती है, तो फट जाय, मुझे परवाह नहीं है।

होरी ने विनीत स्वर में कहा—धीरे-धीरे बोल महारानी! कोई सुने, तो कहे, ये सब इतनी रात गये लड़ रहे हैं! मैं अपने कानों से क्या सुन आया हूँ, तू क्या जाने! यहाँ चरचा हो रही है कि मैंने अलग होते समय रुपये दबा लिये थे और भाइयों को धोखा दिया था, वही रुपये अब निकल रहे हैं।

'हीरा कहता होगा?'

'सारा गाँव कह रहा है। हीरा को क्यों बदनाम करूँ।'

'सारा गाँव नहीं कह रहा है, अकेला हीरा कह रहा है। मैं अभी जाकर पूछती हूँ न कि तुम्हारे बाप कितने रुपये छोड़कर मरे थे। डाढ़ीजारों के पीछे हम बरबाद हो गये, सारी जिन्दगी मिट्टी में मिला दी, पाल पोसकर बड़ा किया, और अब हम बेईमान हैं। मैं कहे देती हूँ, अगर गाय घर के बाहर निकली, तो अनर्थ हो जायगा। रख लिये हमने रुपये, दबा लिये, बीच खेत दबा लिये। डंके की चोट कहती हूँ, मैंने हंडे भर अशर्फियाँ छिपा लीं। हीरा और सोभा और संसार को जो करना हो, कर ले। क्यों न रुपये रख लें? दो-दो संडों का ब्याह नहीं किया, गौना नहीं किया!'

होरी सिटपिटा गया। धनिया ने उसके हाथ से पगहिया छीन ली, और गाय को खूँटे से बाँधकर द्वार की ओर चली। होरी ने उसे पकड़ना चाहा; पर वह बाहर जा चुकी थी। वहीं सिर थाम कर बैठ गया। बाहर उसे पकड़ने की चेष्टा करके वह कोई नाटक नहीं दिखाना चाहता था। धनिया के क्रोध को वह खूब जानता था। बिगड़ती है, तो चण्डी बन जाती है। मारो, काटो, सुनेगी नहीं; लेकिन हीरा भी तो एक ही गुस्सेवर है। कहीं हाथ चला दे तो परले ही हो जाय। नहीं, हीरा इतना मूरख नहीं है। मैंने कहाँ से कहाँ आग लगा दी। उसे अपने-आप पर क्रोध आने लगा। बात मन में रख लेता, तो क्यों यह टंटा खड़ा होता। सहसा धनिया का कर्कश स्वर कान में आया। हीरा की गरज भी सुन पड़ी। फिर पुन्नी की पैनी पीक भी कानों में चुभी। सहसा उसे गोबर की याद आई। बाहर लपककर उसकी खाट देखी। गोबर वहाँ न था। गजब हो गया! गोबर भी वहाँ पहुँच गया। अब कुशल नहीं। उसका नया खून है, न जाने क्या कर बैठे; लेकिन होरी वहाँ कैसे जाय! हीरा कहेगा, आप तो बोलते नहीं, जाकर इस डाइन को लड़ने के लिए भेज दिया। कोलाहल प्रतिक्षण प्रचण्ड होता जाता था। सारे गाँव में जाग पड़ गई। मालूम होता था, कहीं आग लग गई है, और लोग खाट से उठ-उठ बुझाने दौड़े जा रहे हैं।

इतनी देर तक तो वह ज़ब्त किये बैठा रहा। फिर न रहा गया। धनिया पर क्रोध आया। वह क्यों चढ़कर लड़ने गई। अपने घर में आदमी न जाने किसको क्या कहता है। जब तक कोई मुँह पर बात न कहे, यही समझना चाहिए कि उसने कुछ नहीं कहा। होरी की कृषक प्रकृति झगड़े से भागती थी। चार बातें सुनकर गम खा

जाना इससे कहीं अच्छा है कि आपस में तनाज़ा हो। कहीं मार-पीट हो जाय, तो थाना-पुलीस हो, बँधे-बँधे फिरो, सबकी चिरौरी करो। अदालत की धूल फाँको, खेती-बारी जहन्नुम में मिल जाय। उसका हीरा पर तो कोई बस न था; मगर धनिया को तो वह ज़बरदस्ती खींच ला सकता है। बहुत होगा, गालियाँ दे लेगी, एक-दो दिन रूठी रहेगी, थाना-पुलीस की नौबत तो न आयेगी। जाकर हीरा के द्वार पर सबसे दूर दीवार की आड़ में खड़ा हो गया। एक सेनापति की भाँति मैदान में आने के पहिले परिस्थिति को अच्छी तरह समझ लेना चाहता था। अगर अपनी जीत हो रही है, तो बोलने की कोई ज़रूरत नहीं; हार हो रही है, तो तुरन्त कूद पड़ेगा। देखा तो वहाँ पचासों आदमी जमा हो गये हैं। पण्डित दातादीन, लाला पटेश्वरी, दोनों ठाकुर जो गाँव के करता-धरता थे, सभी पहुँचे हुए हैं। धनिया का पल्ला हलका हो रहा था। उसकी उग्रता जनमत को उसके विरुद्ध किये देती थी। वह रणनीति में कुशल न थी। क्रोध में ऐसी जली-कटी सुना रही थी कि लोगों की सहानुभूति उससे दूर होती जाती थी।

वह गरज रही थी—तू हमें देखकर क्यों जलता है? हमें देखकर क्यों तेरी छाती फटती है? पाल-पोसकर जवान कर दिया, यह उसका इनाम है! हमने न पाला होता, तो आज कहीं भीख माँगते होते। रूख की छाँह भी न मिलती।

होरी को ये शब्द ज़रूरत से ज़्यादा कठोर जान पड़े। भाइयों को पालना-पोसना तो उसका धर्म था। उनके हिस्से की जायदाद तो उसके हाथ में थी। कैसे न पालता-पोसता। दुनिया में कहीं मुँह दिखाने लायक रहता?

हीरा ने जवाब दिया—हम किसी का कुछ नहीं जानते। तेरे घर में कुत्तों की तरह एक टुकड़ा खाते थे और दिन-भर काम करते थे। जाना ही नहीं कि लड़कपन और जवानी कैसी होती है। दिन-दिनभर सूखा गोबर बीना करते थे। उस पर भी तू बिना दस गाली दिये रोटी न देती थी। तेरी-जैसी राच्छसिन के हाथ में पड़कर जिन्दगी तलख हो गई।

धनिया और भी तेज हुई—जबान सँभाल, नहीं जीभ खींच लूँगी। राच्छसिन तेरी औरत होगी। तू है किस फेर में मूँड़ी-काटे, टुकड़े-खोर, नमक-हराम!

दातादीन ने टोका—इतना कटु-वचन क्यों कहती है धनिया? नारी का धरम है कि गम खाय। वह तो उजड्ड है, क्यों उसके मुँह लगती है!

लाला पटेश्वरी पटवारी ने उसका समर्थन किया—बात का जवाब बात है, गाली नहीं। तूने लड़कपन में उसे पाला-पोसा; लेकिन यह क्यों भूल जाती है कि उसकी जायदाद तेरे हाथ में थी?

धनिया ने समझा, सब-के-सब मिलकर मुझे नीचा दिखाना चाहते हैं। चौमुख लड़ाई लड़ने के लिए तैयार हो गई—अच्छा, तुम रहने दो लाला! मैं सबको पहचानती हूँ। इस गाँव में रहते बीस साल हो गये। एक-एक की नस-नस पहचानती हूँ। मैं गाली दे रही हूँ, वह फूल बरसा रहा है, क्यों?

दुलारी सहुआइन ने आग पर घी डाला—बाकी बड़ी गाल-दराज औरत है भाई! मरद के मुँह लगती है। होरी ही जैसा मरद है कि इसका निबाह होता है। दूसरा मरद होता तो, एक दिन न पटती।

अगर हीरा इस समय ज़रा नर्म हो जाता, तो उसकी जीत हो जाती; लेकिन ये गालियाँ सुनकर आपे से बाहर हो गया। औरों को अपने पक्ष में देखकर वह कुछ शेर हो रहा था। गला फाड़कर बोला—चली जा मेरे द्वार से, नहीं जूतों से बात करूँगा! झोंटा पकड़कर उखाड़ लूँगा। गाली देती है डाइन! बेटे का घमण्ड हो गया है। खून...

पाँसा पलट गया। होरी का ख़ून खौल उठा। बारूद में जैसे चिनगारी पड़ गई हो। आगे आकर बोला—अच्छा बस, अब चुप हो जाओ हीरा, अब नहीं सुना जाता। मैं इस औरत को क्या कहूँ। जब मेरी पीठ में धूल लगती है, तो इसी के कारन। न जाने क्यों इससे चुप नहीं रहा जाता।

चारों ओर से हीरा पर बौछार पड़ने लगी। दातादीन ने निर्लज्ज कहा, पटेश्वरी ने गुण्डा बनाया, झिंगुरीसिंह ने शैतान की उपाधि दी। दुलारी सहुआइन ने कपूत कहा। एक उद्दण्ड शब्द ने धनिया का पल्ला हलका कर दिया था। दूसरे उग्र शब्द ने हीरा को गच्चे में डाल दिया। उस पर होरी के संयत वाक्य ने रही-सही कसर भी पूरी कर दी।

हीरा सँभल गया। सारा गाँव उसके विरुद्ध हो गया। अब चुप रहने में ही उसकी कुशल है। क्रोध के नशे में भी इतना होश उसे बाकी था।

धनिया का कलेजा दूना हो गया। होरी से बोली—सुन लो कान खोलके।

भाइयों के लिए मरते रहते हो। ये भाई हैं, ऐसे भाई का मुँह न देखे। यह मुझे जूतों से मारेगा। खिला-पिला...

होरी ने डाँटा—फिर क्यों बक-बक करने लगी तू! घर क्यों नहीं जाती?

धनिया ज़मीन पर बैठ गई और आर्त्त स्वर में बोली—अब तो इसके जूते खाके जाऊँगी। ज़रा इसकी मर्दुमी देख लूँ, कहाँ है गोबर, अब किस दिन काम आयेगा? तू देख रहा है बेटा, तेरी मा को जूते मारे जा रहे हैं!

यों विलाप करके उसने अपने क्रोध के साथ होरी के क्रोध को भी क्रियाशील बना डाला। आग को फूँक-फूँककर उसमें ज्वाला पैदा कर दी। हीरा पराजित-सा पीछे हट गया। पुन्नी उसका हाथ पकड़कर घर की ओर खींच रही थी। सहसा धनिया ने सिंहनी की भाँति झपटकर हीरा को इतने ज़ोर से धक्का दिया कि वह धम से गिर पड़ा और बोली—कहाँ जाता है, जूते मार, मार जूते, देखूँ तेरी मर्दुमी!

होरी ने दौड़कर उसका हाथ पकड़ लिया और घसीटता हुआ घर ले चला।

५

उधर गोबर खाना खाकर अहिराने में जा पहुँचा। आज झुनिया से उसकी बहुत-सी बातें हुई थीं। जब वह गाय लेकर चला था तो झुनिया आधे रास्ते तक उसके साथ आई थी। गोबर अकेला गाय कैसे ले जाता। अपरिचित व्यक्ति के साथ जाने में उसे आपत्ति होना स्वाभाविक था। कुछ दूर चलने के बाद झुनिया ने गोबर को मर्म-भरी आँखों से देखकर कहा—अब तुम काहे को यहाँ कभी आओगे।

एक दिन पहले तक गोबर कुमार था। गाँव में जितनी युवतियाँ थीं, वह या तो उसकी बहनें थीं या भाभियाँ। बहनों से तो कोई छेड़छाड़ हो ही क्या सकती थी, भाभियाँ अलबत्ता कभी-कभी उससे ठठोली किया करती थीं; लेकिन वह केवल सरल विनोद होता था। उनकी दृष्टि में अभी उसके यौवन में केवल फूल लगे थे। जब तक फल न लग जायँ, उस पर ढेले फेंकना व्यर्थ की बात थी। और किसी ओर से प्रोत्साहन न पाकर उसका कौमार्य उसके गले से चिपटा हुआ था। झुनिया का वंचित मन जिसे भाभियों के व्यंग्य और हास-विलास ने और भी लोलुप बना दिया था; उसके कौमार्य ही पर ललचा उठा। और उस कुमार में भी पत्ता खड़कते ही किसी सोये हुए शिकारी जानवर की तरह यौवन जाग उठा।

गोबर ने आवरण-हीन रसिकता के साथ कहा—अगर भिच्छुक को भीख मिलने की आशा हो, तो वह दिन-भर और रात-भर दाता के द्वार पर खड़ा रहे।

झुनिया ने कटाक्ष करके कहा—तो यह कहो, तुम भी मतलब के यार हो।

गोबर की धमनियों का रक्त प्रबल हो उठा। बोला—भूखा आदमी अगर हाथ फैलाये, तो उसे क्षमा कर देना चाहिए।

झुनिया और गहरे पानी में उतरी—भिच्छुक जब तक दस द्वारे न जाय, उसका पेट कैसे भरेगा। मैं ऐसे भिच्छुओं को मुँह नहीं लगाती। ऐसे तो गली-गली मिलते हैं। फिर भिच्छुक देता क्या है, असीस! असीसों से तो किसी का पेट नहीं भरता।

मन्द-बुद्धि गोबर झुनिया का आशय न समझ सका। झुनिया छोटी-सी थी, तभी से गाहकों के घर दूध लेकर जाया करती थी। ससुराल में भी उसे गाहकों के घर दूध पहुँचाना पड़ता था। आजकल भी दही बेचने का भार उसी पर था। उसे तरह-तरह के मनुष्यों से साबिका पड़ चुका था। दो-चार रुपये उसके हाथ लग जाते थे, घड़ी-भर के लिए मनोरंजन भी हो जाता था; मगर यह आनन्द जैसे मँगनी की चीज़ हो। उसमें टिकाव न था, समर्पण न था, अधिकार न था। वह ऐसा प्रेम चाहती थी, जिसके लिए वह जिये और मरे, जिस पर वह अपने को समर्पित कर दे। वह केवल जुगनू की चमक नहीं, दीपक का स्थायी प्रकाश चाहती थी। वह एक गृहस्थ की बालिका थी, जिसके गृहिणीत्व को रसिकों की लगावटबाज़ियों ने कुचल नहीं पाया था।

गोबर ने कामना से उद्दीप्त मुख से कहा—भिच्छुक को एक ही द्वार पर भर-पेट मिल जाय, तो क्यों द्वार-द्वार घूमे?

झुनिया ने सदय भाव से उसकी ओर ताका। कितना भोला है, कुछ समझता ही नहीं।

'भिच्छुक को एक द्वार पर भर-पेट कहाँ मिलता है। उसे तो चुटकी ही मिलेगी। सर्वस तो तभी पाओगे, जब अपना सर्बस दोगे।'

'मेरे पास क्या है झुनिया!'

'तुम्हारे पास कुछ नहीं है? मैं तो समझती हूँ, मेरे लिए तुम्हारे पास जो कुछ है, वह बड़े-बड़े लखपतियों के पास नहीं है। तुम मुझसे भीख न माँगकर मुझे मोल ले सकते हो।'

गोबर चकित नेत्रों से उसे देखने लगा।

झुनिया ने फिर कहा—और जानते हो, दाम क्या देना होगा? मेरा होकर रहना पड़ेगा। फिर किसी के सामने हाथ फैलाते देखूँगी, तो घर से निकाल दूँगी।

गोबर को जैसे अँधेरे में टटोलते हुए इच्छित वस्तु मिल गई। एक विचित्र भय-मिश्रित आनन्द से उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा; लेकिन यह कैसे होगा? झुनिया को रख ले, तो रखेली को लेकर घर में रहेगा कैसे? बिरादरी का झंझट जो है। सारा गाँव काँव-काँव करने लगेगा। सभी दुश्मन हो जायँगे। अम्मा तो इसे घर में घुसने भी न देगी; लेकिन जब स्त्री होकर यह नहीं डरती, तो पुरुष होकर वह क्यों डरे। बहुत होगा, लोग उसे अलग कर देंगे। वह अलग ही रहेगा। झुनिया-जैसी औरत गाँव में दूसरी कौन है? कितनी समझदारी की बातें करती है। क्या जानती नहीं कि मैं उसके जोग नहीं हूँ। फिर भी मुझसे प्रेम करती है। मेरी होने को राजी है। गाँववाले निकाल देंगे, तो क्या संसार में दूसरा गाँव ही नहीं है? और गाँव क्यों छोड़े? मातादीन ने चमारिन बैठा ली, तो किसी ने क्या कर लिया। दाता-दीन दाँत कटकटाकर रह गये। मातादीन ने इतना जरूर किया कि अपना धरम बचा लिया। अब भी बिना असनान-पूजा किये मुँह में पानी नहीं डालते। दोनों जून अपना भोजन आप पकाते हैं और अब तो अलग भोजन भी नहीं पकाते। दातादीन और वह साथ बैठकर खाते हैं। झिंगुरीसिंह ने बाम्हनी रख ली, उनका किसी ने क्या कर लिया? उनका जितना आदर-मान तब था, उतना ही आज भी है; बल्कि और बढ़ गया। पहले नौकरी खोजते फिरते थे। अब उसके रुपये से महाजन बन बैठे। ठकुराई का रोब तो था ही, महाजनी का रोब भी जम गया। मगर फिर खयाल आया, कहीं झुनिया दिल्लगी न कर रही हो। पहले इसकी ओर से निश्चिन्त हो जाना आवश्यक था।

उसने पूछा—मन से कहती हो झूना कि खाली लालच दे रही हो? मैं तो हो चुका; लेकिन तुम भी हो जाओगी?

'तुम मेरे हो चुके? कैसे जानूँ?'

'तुम जान भी चाहो तो दे दूँ।'

'जान देने का अरथ भी समझते हो?'

'तुम समझा दो न!'

'जान देने का अरथ है, साथ रहकर निबाह करना। एक बार हाथ पकड़कर

उमिर-भर निबाह करते रहना, चाहे दुनिया कुछ कहे, चाहे मा-बाप, भाई-बन्द, घर-द्वार सब कुछ छोड़ना पड़े। मुँह से जान देनेवाले बहुतों को देख चुकी। भौंरों की भाँति फूल का रस लेकर उड़ जाते हैं। तुम भी वैसे ही न उड़ जाओगे?'

गोबर के एक हाथ में गाय की पगहिया थी। दूसरे हाथ से उसने झुनिया का हाथ पकड़ लिया। जैसे बिजली के तार पर हाथ पड़ गया हो। सारी देह यौवन के पहले स्पर्श से काँप उठी। कितनी मुलायम, गुदगुदी, कोमल कलाई!

झुनिया ने उसका हाथ हटाया नहीं, मानो इस स्पर्श का उसके लिए कोई महत्व ही न हो। फिर एक क्षण के बाद गंभीर भाव से बोली—आज तुमने मेरा हाथ पकड़ा है, याद रखना।

'खूब याद रखूँगा झूना, और मरते दम तक निबाहूँगा।'

झुनिया अविश्वास-भरी मुस्कान से बोली—इसी तरह तो सब कहते हैं गोबर! बल्कि इससे भी मीठे, चिकने शब्दों में। अगर मन में कपट हो, मुझे बता दो। सचेत हो जाऊँ। ऐसों को मन नहीं देती। उनसे तो ख़ाली हँस-बोल लेने का नाता रखती हूँ। बरसों से दूध लेकर बाजार जाती हूँ। एक से एक बाबू, महाजन, ठाकुर, वकील, अमले-अफसर अपना रसियापन दिखाकर मुझे फँसा लेना चाहते हैं। कोई छाती पर हाथ रखकर कहता है, झुनिया तरसा मत; कोई मुझे रसीली, नसीली चितवन से घूरता है, मानो मारे प्रेम के बेहोश हो गया है; कोई रुपये दिखाता है, कोई गहने। सब मेरी गुलामी करने को तैयार रहते हैं, उमिर भर; बल्कि उस जनम में भी, लेकिन मैं उन सबों की नस पहचानती हूँ। सब-के-सब भौंरे हैं, रस लेकर उड़ जानेवाले। मैं भी उन्हें ललचाती हूँ, तिरछी नजरों से देखती हूँ, मुसकराती हूँ। वह मुझे गधी बनाते हैं, मैं उन्हें उल्लू बनाती हूँ। मैं मर जाऊँ, तो उनकी आँखों में आँसू न आयेगा; वह मर जाय, तो मैं कहूँगी, अच्छा हुआ, निगोड़ा मर गया। मैं तो जिसकी हो जाऊँगी, उसकी जनम भर के लिए हो जाऊँगी, सुख में, दुःख में, संपत में, बिपत में, उसके साथ रहूँगी। हरजाई नहीं हूँ कि सबसे हँसती-बोलती फिरूँ। न रुपये की भूखी हूँ, न गहने-कपड़े की। बस, भले आदमी का संग चाहती हूँ, जो मुझे अपना समझे और जिसे मैं भी अपना समझूँ। एक पण्डितजी बहुत तिलक-मुद्रा लगाते हैं। आधा सेर दूध लेते हैं। एक दिन उनकी घरवाली कहीं नेवते में गई थी। मुझे क्या मालूम। और दिनों की तरह दूध लि

भीतर चली गई। वहाँ पुकारती हूँ, बहूजी, बहूजी! कोई बोलता ही नहीं। इतने में देखती हूँ, तो पण्डितजी बाहर के किवाड़ बन्द किये चले आ रहे हैं। मैं समझ गई, इसकी नीयत ख़राब है। मैंने डाँटकर पूछा—तुमने किवाड़ क्यों बन्द कर लिये? क्या बहूजी कहीं गई हैं क्या? घर में सन्नाटा क्यों है?

उसने कहा—वह एक नेवते में गई हैं, और मेरी ओर दो पग और बढ़ आया।

मैंने कहा—तुम्हें दूध लेना हो, तो लो, नहीं मैं जाती हूँ। बोला—आज तो तुम यहाँ से न जाने पाओगी झूना रानी, रोज-रोज कलेजे पर छुरी चलाकर भाग जाती हो, आज मेरे हाथ से न बचोगी। तुमसे सच कहती हूँ गोबर, मेरे रोएँ खड़े हो गये।

गोबर आवेश में बोला—मैं बचा को देख पाऊँ, तो खोदकर जीमन में गाड़ दूँ। खून चूस लूँ। तुम मुझे दिखा तो देना।

'सुनो तो ऐसों का मुँह तोड़ने के लिए मैं ही काफ़ी हूँ। मेरी छाती धक्-धक् करने लगी। यह कुछ बदमासी कर बैठे, तो क्या करूँगी। कोई चिल्लाना भी तो न सुनेगा। लेकिन मन में यह निश्चय कर लिया था कि मेरी देह छुई, तो दूध की भरी हाँडी उसके मुँह पर पटक दूँगी। बला से चार-पाँच सेर दूध जायगा, बचा को याद तो हो जायगा। कलेजा मजबूत करके बोली इस फेर में न रहना पण्डितजी! मैं अहीर की लड़की हूँ। मूँछ का एक-एक बाल चुनवा लूँगी। यही लिखा है तुम्हारे पोथी-पत्रे में कि दूसरों की बहू-बेटी को अपने घर में बन्द करके बेइज्जत करो। इसी लिए तिलक-मुद्रा का जाल बिछाये बैठे हो! लगा हाथ जोड़ने, पैरों पड़ने- एक प्रेमी का मन रख दोगी, तो तुम्हारा क्या बिगड़ जायगा झूना रानी! कभी-कभी गरीबों पर दया किया करो, नहीं भगवान् पूछेंगे, मैंने तुम्हें इतना रूप-धन दिया था, तुमने उससे एक ब्राह्मण का उपकार भी नहीं किया, तो क्या जबाब दोगी? बोलो! मैं विप्र हूँ, रुपये-पैसे का दान तो रोज ही पाता हूँ, आज रूप का दान दो।

'मैंने यों ही उसका मन परखने को कह दिया, मैं पचास रुपये लूँगी। सच कहती हूँ गोबर, तुरन्त कोठरी में गया और दस-दस के पाँच नोट निकालकर मेरे हाथों में देने लगा और जब मैंने नोट ज़मीन पर गिरा दिये और द्वार की ओर चली, तो उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। मैं तो पहले ही से तैयार थी। हाँडी उसके

मुँह पर दे मारी। सिर से पाँव तक सराबोर हो गया। चोट भी खूब लगी। सिर पकड़कर बैठ गया और लगा हाय-हाय करने। मैंने देखा, अब वह कुछ नहीं कर सकता, तो पीठ में दो लातें जमा दीं और किवाड़ खोलकर भागी।'

गोबर ठट्ठा मारकर बोला—बहुत अच्छा किया तुमने। दूध से नहा गया होगा। तिलक-मुद्रा भी धुल गई होगी। मूँछें भी क्यों न उखाड़ लीं?

'दूसरे दिन मैं फिर उसके घर गई। उसकी घरवाली आ गई थी। अपने बैठक में सिर में पट्टी बाँधे पड़ा था। मैंने कहा—कहो तो कल की तुम्हारी करतूत खोल दूँ पण्डित! लगा हाथ जोड़ने मैंने कहा—अच्छा, थूककर चाटो तो छोड़ दूँ। सिर जमीन पर रगड़कर कहने लगा—अब मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ है झूना, यही समझ लो कि पण्डिताइन मुझे जीता न छोड़ेंगी। मुझे भी उस पर दया आ गई।'

गोबर को उसकी दया बुरी लगी—यह तुमने क्या किया? उसकी औरत से जाकर कह क्यों न दिया? जूतों से पीटती। ऐसे पाखंडियों पर दया न करनी चाहिए। तुम मुझे कल उसकी सूरत दिखा दो, फिर देखना, कैसी मरम्मत करता हूँ।

झुनिया ने उसके अर्द्ध-विकसित यौवन को देखकर कहा—तुम उसे न पाओगे। खासा देव है। मुफ्त का माल उड़ाता है कि नहीं!

गोबर अपने यौवन का यह तिरस्कार कैसे सहता। डींग मारकर बोला—मोटे होने से क्या होता है। यहाँ फौलाद की हड्डियाँ हैं। तीन सौ डण्ड रोज मारता हूँ। दूध-घी नहीं मिलता, नहीं अब तक सीना यों निकल आया होता।

यह कहकर उसने छाती फैलाकर दिखाई।

झुनिया ने आश्वस्त आँखों से देखा—अच्छा, कभी दिखा दूँगी। लेकिन यहाँ तो सभी एक-से हैं, तुम किस-किस की मरम्मत करोगे। न जाने मरदों की क्या आदत है कि जहाँ कोई जवान, सुन्दर औरत देखी और बस लगे घूरने, छाती पीटने। और यह जो बड़े आदमी कहलाते हैं, ये तो निरे लंपट होते हैं। फिर मैं तो कोई सुन्दरी नहीं हूँ...

गोबर ने आपत्ति की—तुम! तुम्हें देखकर तो यही जी चाहता है कि कलेजे में बिठा ले।

झुनिया ने उसकी पीठ में हलका-सा घूँसा जमाया—लगे औरों की तरह तुम भी चापलूसी करने। मैं जैसी कुछ हूँ, वह मैं जानती हूँ; मगर इन लोगों को तो

जवान मिल जाय। घड़ी भर मन बहलाने को और क्या चाहिए। गुन तो आदमी उसमें देखता है, जिसके साथ जनम-भर निबाह करना हो। सुनती भी हूँ और देखती भी हूँ, आजकल बड़े घरों की विचित्र लीला है। जिस महल्ले में मेरी ससुराल है, उसी में गपड़ू-गपड़ू नाम के कासमीरी रहते थे। बड़े भारी आदमी थे। उनके यहाँ पाँच सेर दूध लगता था। उनकी तीन लड़कियाँ थीं। कोई बीस बीस, पच्चीस-पच्चीस की होंगी। एक से-एक सुन्दर। तीनों बड़े कालिस में पढ़ने जाती थीं। एक साहत कालिस में पढ़ाती भी थी। तीन सौ का महीना पाती थी। सितार वह सब बजावें, हरमुनियाँ वह सब बजावें, नाचें वह, गावें वह; लेकिन ब्याह कोई न करती थीं। राम जाने, वह किसी मरद को पसन्द नहीं करती थीं कि मरद उन्हीं को पसन्द नहीं करता था। एक बार मैंने बड़ी बीबी से पूछा, तो हँसकर बोलीं—हम लोग यह रोग नहीं पालते; मगर भीतर ही भीतर खूब गुलछर्रे उड़ाती थीं। जब देखूँ, दो-चार लौंडे उनको घेरे हुए हैं। जो सबसे बड़ी थी, वह तो कोट-पतलून पहनकर घोड़े पर सवार होकर मर्दों के साथ सैर करने जाती थी। सारे शहर में उनकी लीला मशहूर थी। गपड़ू बाबू सिर नीचा किये, जैसे मुँह में कालिख-सी लगाये रहते थे। लड़कियों को डाँटते थे; समझाते थे; पर सब-की-सब खुल्लमखुल्ला कहती थीं—तुमको हमारे बीच में बोलने का कुछ मजाल नहीं है। हम अपने मन की रानी हैं, जो हमारी इच्छा होगी, वह हम करेंगे। बेचारा बाप जवान-जवान लड़कियों से क्या बोले। मारने-बाँधने से रहा, डाँटने-डपटने से रहा; लेकिन भाई, बड़े आदमियों की बातें कौन चलाये। वह जो कुछ करें, सब ठीक है। उन्हें तो बिरादरी और पंचायत का भी डर नहीं। मेरी समझ में तो यही नहीं आता कि किसी का रोज-रोज मन कैसे बदल जाता है। क्या आदमी गाय-बकरी से भी गया-बीता हो गया? लेकिन किसी को बुरा नहीं कहती भाई! मन को जैसा बनाओ, वैसा बनता है। ऐसों को भी देखती हूँ, जिन्हें रोज-रोज की दाल-रोटी के बाद कभी-कभी मुँह का सवाद बदलने के लिए हलुवा-पूरी भी चाहिए। और ऐसों को भी देखती हूँ, जिन्हें घर की रोटी-दाल देखकर ज्वर आता है। कुछ बेचारियाँ ऐसी भी हैं, जो अपनी रोटी-दाल में ही मगन रहती हैं। हलुवा-पूरी से उन्हें कोई मतलब नहीं। मेरी दोनों भावजों ही को देखो। हमारे भाई काने-कुबड़े नहीं हैं, दस जवानों में एक जवान हैं; लेकिन भावजों को नहीं भाते। उन्हें तो वह चाहिए, जो सोने की बालियाँ बनवाये, महीन साड़ियाँ लाये, रोज चाट

खिलाये। बालियाँ और साड़ियाँ और मिठाइयाँ मुझे भी कम अच्छी नहीं लगतीं ; लेकिन जो कहो कि इनके लिए अपनी लाज बेचती फिरूँ, तो भगवान् इससे बचायें। एक के साथ मोटा-झोटा खा-पहनकर उमिर काट देना, बस अपना तो यही राग है। बहुत करके तो मर्द ही औरतों को बिगाड़ते हैं। जब मर्द इधर-उधर ताक-झाँक करेगा, तो औरत भी आँख लड़ायेगी। मर्द दूसरी औरतों के पीछे दौड़ेगा, तो औरत भी ज़रूर मर्दों के पीछे दौड़ेगी। मर्द का हरजाईपन औरत को भी उतना ही बुरा लगता है, जितना औरत का मर्द को। यही समझ लो। मैंने तो अपने आदमी से साफ़-साफ़ कह दिया था, अगर तुम इधर-उधर लपके, तो मेरी भी जो इच्छा होगी वह करूँगी। यह चाहो कि तुम तो अपने मन की करो और औरत को मार के डर से अपने काबू में रखो, तो यह न होगा। तुम खुले-खजाने करते हो, वह छिपकर करेगी। तुम उसे जलाकर सुखी नहीं रह सकते।

गोबर के लिए यह एक नई दुनिया की बातें थीं। तन्मय होकर सुन रहा था। कभी-कभी तो आप ही आप उसके पाँव रुक जाते, फिर सचेत होकर चलने लगता। झुनिया ने पहले अपने रूप से मोहित किया था। आज उसने अपने ज्ञान और अनुभव से भरी बातों और अपने सतीत्व के बखान से मुग्ध कर लिया। ऐसी रूप, गुण, ज्ञान की आगरी उसे मिल जाय, तो धन्य भाग! फिर वह क्यों पंचायत और बिरादरी से डरे?

झुनिया ने जब देख लिया कि उसका गहरा रंग जम गया, तो छाती पर हाथ रखकर जीभ दाँत से काटती हुई बोली—अरे, यह तो तुम्हारा गाँव आ गया! तुम भी बड़े मुरहे हो, मुझसे कहा भी नहीं कि लौट जाओ।

यह कहकर वह लौट पड़ी।

गोबर ने आग्रह करके कहा—एक छन के लिए मेरे घर क्यों नहीं चली चलतीं? अम्मा भी तो देख लें।

झुनिया ने लज्जा से आँखें चुराकर कहा—तुम्हारे घर यों न जाऊँगी। मुझे तो यही अचरज होता है कि मैं इतनी दूर कैसे आ गई। अच्छा, बताओ अब कब आओगे? रात को मेरे द्वार पर अच्छी सगत होगी। चले आना, मैं अपने पिछवाड़े मिलूँगी।

'और जो न मिलीं?'

'तो लौट जाना।'

'तो फिर मैं न आऊँगा।'

'आना पड़ेगा, नहीं कहे देती हूँ।'

'तुम भी बचन दो कि मिलोगी?'

'मैं बचन नहीं देती।'

'तो मैं भी नहीं आता।'

'मेरी बला से!'

झुनिया अँगूठा दिखाकर चल दी। प्रथम-मिलन में ही दोनों एक दूसरे पर अपना-अपना अधिकार जमा चुके थे। झुनिया जानती थी, वह आयेगा, कैसे न आयेगा? गोबर जानता था, वह मिलेगी, कैसे न मिलेगी?

जब वह अकेला गाय को हाँकता हुआ चला, तो ऐसा लगता था, मानो स्वर्ग से गिर पड़ा है।

६

जेठ की उदास और गर्म सन्ध्या सेमरी की सड़कों और गलियों में पानी के छिड़काव से शीतल और प्रसन्न हो रही थी। मण्डप के चारों तरफ़ फूलों और पौदों के गमले सजा दिये गये थे और बिजली के पंखे चल रहे थे। राय साहब अपने कारखाने में बिजली बनवा लेते थे। उनके सिपाही पीली वर्दियाँ डाटे, नीले साफ़े बाँधे, जनता पर रोब जमाते फिरते थे। नौकर उजले कुरते पहने और केसरिया पाग बाँधे, मेहमानों और मुखियों का आदर सत्कार कर रहे थे। उसी वक़्त एक मोटर सिंह-द्वार के सामने आकर रुकी और उसमें से तीन महानुभाव उतरे। वह जो खद्दर का कुरता और चप्पल पहने हुए हैं, उनका नाम पण्डित ओंकारनाथ है। आप दैनिक-पत्र 'बिजली' के यशस्वी सम्पादक हैं, जिन्हें देश-चिन्ता ने घुला डाला है। दूसरे महाशय जो कोट-पैंट में हैं, वह हैं तो वकील; पर वकालत न चलने के कारण एक बीमा कंपनी की दलाली करते हैं और ताल्लुकेदारों को महाजनों और बंकों से क़र्ज़ दिलाने में वकालत से कहीं ज्यादा कमाई करते हैं। इनका नाम है श्यामबिहारी तंखा, और तीसरे सज्जन जो रेशमी अचकन और तंग पाजामा पहने हुए हैं, मिस्टर बी० मेहता, युनिवर्सिटी में दर्शन-शास्त्र के अध्यापक हैं। ये तीनों

सज्जन राय साहब के सहपाठियों में हैं और शगून के उत्सव में निमन्त्रित हुए हैं। आज सारे इलाक़े के असामी आयेंगे और शगून के रुपये भेंट करेंगे। रात को धनुष-यज्ञ होगा और मेहमानों की दावत होगी। होरी ने पाँच रुपये शगून के दे दिये हैं और एक गुलाबी मिर्ज़ई पहने, गुलाबी पगड़ी बाँधे, घुटने तक कछनी काछे, हाथ में एक खुरपी लिये और मुख पर पाउडर लगाये राजा जनक का माली बन गया है और गरूर से इतना फूल उठा है, मानो यह सारा उत्सव उसी के पुरुषार्थ से हो रहा है।

राय साहब ने मेहमानों का स्वागत किया। दोहरे बदन के ऊँचे आदमी थे, गठा हुआ शरीर, तेजस्वी चेहरा, ऊँचा माथा, गोरा रंग, जिस पर शर्बती रेशमी चादर खूब खुल रही थी।

पंडित ओंकारनाथ ने पूछा—अबकी कौन-सा नाटक खेलने का विचार है? मेरे रस की तो यहाँ वही वस्तु है।

राय साहब ने तीनों सज्जनों को अपनी रावटी के सामने कुर्सियों पर बैठाते हुए कहा—पहले तो धनुष-यज्ञ होगा, उसके बाद एक प्रहसन। नाटक कोई अच्छा न मिला। कोई तो इतना लंबा कि शायद पाँच घण्टों में भी खतम न हो, और कोई इतना क्लिष्ट कि शायद यहाँ का एक व्यक्ति भी उसका अर्थ न समझे। आखिर मैंने स्वयं एक प्रहसन लिख डाला, जो दो घण्टों में पूरा हो जायगा।

ओंकारनाथ को राय साहब की रचना-शक्ति में बहुत सन्देह था। उनका ख़याल था कि प्रतिभा तो ग़रीबी में ही चमकती है, दीपक की भाँति जो अँधेरे ही में अपना प्रकाश दिखाता है। उपेक्षा के साथ मुँह फेर लिया, जिसे छिपाने की भी उन्होंने चेष्टा नहीं की।

मिस्टर तंखा इन बेमतलब की बातों में न पड़ना चाहते थे, फिर भी राय साहब को दिखा देना चाहते थे कि इस विषय में उन्हें कुछ बोलने का अधिकार है। बोले—नाटक कोई भी अच्छा हो सकता है, अगर उसके अभिनेता अच्छे हों। अच्छे से अच्छा नाटक बुरे अभिनेताओं के हाथ में पड़कर बुरा हो सकता है। जब तक स्टेज पर शिक्षित अभिनेत्रियाँ नहीं आतीं, हमारी नाट्य-कला का उद्धार नहीं हो सकता। अबकी तो आपने कौंसिल में प्रश्नों की धूम मचा दी। मैं तो दावे के साथ कह सकता हूँ कि किसी मेम्बर का रेकार्ड इतना शानदार नहीं है।

दर्शन के अध्यापक मिस्टर मेहता इस प्रशंसा को सहन न कर सकते थे। विरोध तो करना चाहते थे; पर सिद्धान्त की आड़ में। उन्होंने हाल ही में एक पुस्तक कई साल के परिश्रम से लिखी थी। उसकी जितनी धूम होनी चाहिये थी, उसकी शतांश भी नहीं हुई थी इससे बहुत दुखी थे। बोले—भाई, मैं प्रश्नों का क़ायल नहीं। मैं चाहता हूँ, हमारा जीवन हमारे सिद्धान्तों के अनुकूल हो। आप कृषकों के शुभेच्छु हैं, उन्हें तरह-तरह की रिआयतें देना चाहते हैं, ज़मींदारों के अधिकार छीन लेना चाहते हैं, बल्कि उन्हें आप समाज का शाप कहते हैं; फिर भी आप ज़मींदार हैं, वैसे ही ज़मींदार जैसे हज़ारों ज़मींदार हैं। अगर आपकी धारणा है कि कृषकों के साथ रिआयत होनी चाहिए, तो पहले आप .खुद शुरू करें—काश्तकारों को बग़ैर नज़राने लिये पट्टे लिख दें, बेगार बन्द कर दें, इज़ाफ़ा लगान को तिलांजलि दे दें, चरावर ज़मीन छोड़ दें। मुझे उन लोगों से ज़रा भी हमदर्दी नहीं है, जो बातें तो करते हैं कम्युनिस्टों की-सी; मगर जीवन है रईसों का-सा, उतना ही विलासमय, उतना ही स्वार्थ से भरा हुआ।

राय साहब को आघात पहुँचा। वकील साहब के माथे पर बल पड़ गये और संपादकजी के मुंह में जैसे कालिख लग गई। वह .खुद समष्टिवाद के पुजारी थे; पर सीधे घर में आग न लगाना चाहते थे।

तंखा ने राय साहब की वकालत की—मैं समझता हूँ, राय साहब का अपने असामियों के साथ जितना अच्छा व्यवहार है, अगर सभी ज़मींदार वैसे ही हो जायँ, तो यह प्रश्न ही न रहे।

मेहता ने हथौड़े की दूसरी चोट जमाई—मानता हूँ, आपका अपने असामियों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव है; मगर प्रश्न यह है कि उसमें स्वार्थ है या नहीं। इसका एक कारण क्या यह नहीं हो सकता कि मध्यम आँच में भोजन स्वादिष्ट पकता है? गुड़ से मारनेवाला जहर से मारनेवाले की अपेक्षा कहीं सफल हो सकता है। मैं तो केवल इतना जानता हूँ, हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं। हैं तो उसका व्यवहार करें, नहीं हैं तो बकना छोड़ दें। मैं नक़ली ज़िन्दगी का विरोधी हूँ। अगर मांस खाना अच्छा समझते हो, तो खुलकर खाओ। बुरा समझते हो, तो मत खाओ, यह तो मेरी समझ में आता है; लेकिन अच्छा समझना और छिपकर खाना, यह मेरी

समझ में नहीं आता। मैं इसे कायरता भी कहता हूँ और धूर्तता भी, जो वास्तव में एक हैं।

राय साहब सभा-चतुर आदमी थे। अपमान और आघात को धैर्य और उदारता से सहने का उन्हें अभ्यास था। कुछ असमंजस में पड़े हुए बोले आपका विचार बिल्कुल ठीक है मेहताजी! आप जानते हैं, मैं आपकी साफ़गोई का कितना आदर करता हूँ; लेकिन आप यह भूल जाते हैं कि अन्य यात्राओं की भाँति विचारों की यात्रा में भी पड़ाव होते हैं और आप एक पड़ाव को छोड़कर दूसरे पड़ाव तक नहीं जा सकते। मानव-जीवन का इतिहास इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। मैं उस वातावरण में पला हूँ, जहाँ राजा ईश्वर है और ज़मींदार ईश्वर का मन्त्री मेरे स्वर्गवासी पिता असामियों पर इतनी दया करते थे कि पाले या सूखे में कभी आधा और कभी पूरा लगान माफ़ कर देते थे। अपने बखार से अनाज निकालकर असामियों को खिला देते थे घर के गहने बेचकर कन्याओं के विवाह में मदद देते थे; मगर उसी वक्त तक जब तक प्रजा उनको सरकार और धर्मावतार कहती रहे। उन्हें अपना देवता समझकर उनकी पूजा करती रहे। प्रजा को पालना उनका सनातन-धर्म था, लेकिन अधिकार के नाम पर वह कौड़ी का एक दाँत भी फोड़कर देना न जानते थे। मैं उसी वातावरण में पला हूँ और मुझे गर्व है कि मैं व्यवहार में चाहे जो कुछ करूँ, विचारों में उनसे आगे बढ़ गया हूँ और यह मानने लग गया हूँ कि जब तक किसानों को ये रिआयतें अधिकार के रूप में न मिलेंगी, केवल सद्भावना के आधार पर उनकी दशा सुधर नहीं सकती। स्वेच्छा अगर अपना स्वार्थ छोड़ दे, तो अपवाद है। मैं ख़ुद सद्भावना करते हुए भी स्वार्थ नहीं छोड़ सकता और चाहता हूँ कि हमारे वर्ग को शासन और नीति के बल से अपना स्वार्थ छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया जाय। इसे आप कायरता कहेंगे, मैं इसे विवशता कहता हूँ। मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि किसी को भी दूसरे के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नहीं है। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। कर्म करना प्राणी मात्र का धर्म है। समाज की ऐसी व्यवस्था, जिसमें कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पीसें और खपें कभी सुखद नहीं हो सकती पूँजी और शिक्षा, जिसे मैं पूँजी ही का एक रूप समझता हूँ, इनका क़िला जितनी जल्द टूट जाय, उतना ही अच्छा। जिन्हें पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उनके अफ़सर और नियोजक दस-दस पाँच-पाँच हज़ार फटकारें, यह हास्यास्पद है और लज्जास्पद भी। इस

व्यवस्था ने हम ज़मींदारों में कितनी विलासिता, कितना दुराचार, कितनी पराधीनता और कितनी निर्लज्जता भर दी है, यह मैं ख़ूब जानता हूँ ; लेकिन मैं इन कारणों से इस व्यवस्था का विरोध नहीं करता। मेरा तो यह कहना है कि अपने स्वार्थ की दृष्टि से भी इसका अनुमोदन नहीं किया जा सकता। इस शान को निभाने के लिए हमें अपनी आत्मा की इतनी हत्या करनी पड़ती है कि इसमें आत्माभिमान का नाम भी नहीं रहा। हम अपने असामियों को लूटने के लिए मजबूर हैं। अगर अफ़सरों को क़ीमती-क़ीमती डालियाँ न दें, तो बाग़ी समझे जायँ, शान से न रहें, तो कंजूस कहलायें। प्रगति की ज़रा-सी आहट पाते ही हम काँप उठते हैं, और अफ़सरों के पास फ़रियाद लेकर दौड़ते हैं कि हमारी रक्षा कीजिए ? हमें अपने ऊपर विश्वास नहीं रहा, न पुरुषार्थ ही रह गया। बस, हमारी दशा उन बच्चों की-सी है, जिन्हें चम्मच से दूध पिलाकर पाला जाता है, बाहर से मोटे, अन्दर से दुर्बल, सत्वहीन और मुहताज।

मेहता ने ताली बजाकर कहा—हियर, हियर ! आपकी ज़बान में जितनी बुद्धि है, काश उसकी आधी भी मस्तिष्क में होती ! खेद यही है कि सब कुछ समझते हुए भी आप अपने विचारों को व्यवहार में नहीं लाते।

ओंकारनाथ बोले—अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता, मिस्टर मेहता ! हमें समय के साथ चलना भी है और उसे अपने साथ चलाना भी। बुरे कामों में ही सहयोग की ज़रूरत नहीं होती। अच्छे कामों के लिए भी सहयोग उतना ही ज़रूरी है। आप ही क्यों आठ सौ रुपये महीने हड़पते हैं, जब आपके करोड़ों भाई केवल आठ रुपये में अपना निर्वाह कर रहे हैं !

राय साहब ने ऊपरी खेद, लेकिन भीतरी सन्तोष से सम्पादकजी को देखा और बोले—व्यक्तिगत बातों पर आलोचना न कीजिए, संपादकजी ! हम यहाँ समाज की व्यवस्था पर विचार कर रहे हैं।

मिस्टर मेहता उसी ठण्डे मन से बोले—नहीं-नहीं, मैं इसे बुरा नहीं समझता। समाज व्यक्ति ही से बनता है। और व्यक्ति को भूलकर हम किसी व्यवस्था पर विचार नहीं कर सकते। मैं इसलिए इतना वेतन लेता हूँ कि मेरा इस व्यवस्था पर विश्वास नहीं है।

संपादकजी को अचंभा हुआ—अच्छा, तो आप वर्तमान व्यवस्था के समर्थक हैं ?

'मैं इस सिद्धान्त का समर्थक हूँ कि संसार में छोटे-बड़े हमेशा रहेंगे, और उन्हें हमेशा रहना चाहिए। इसे मिटाने की चेष्टा करना मानव-जाति के सर्वनाश का कारण होगा।

कुश्ती का जोड़ बदल गया। राय साहब किनारे खड़े हो गये। सम्पादकजी मैदान में उतरे—आप इस बीसवीं शताब्दी में भी ऊँच-नीच का भेद मानते हैं ?

'जी हाँ, मानता हूँ और बड़े ज़ोरों से मानता हूँ। जिस मत के आप समर्थक हैं, वह भी तो कोई नई चीज़ नहीं। जब से मनुष्य में ममत्व का विकास हुआ, तभी उस मत का जन्म हुआ। बुद्ध और प्लेटो और ईसा सभी समाज में समता के प्रवर्तक थे। यूनान और रोम और सीरिया सभी सभ्यताओं ने उसकी परीक्षा की, पर अप्राकृतिक होने के कारण कभी वह स्थायी न बन सकी।'

'आपकी बातें सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है।'

'आश्चर्य अज्ञान का दूसरा नाम है।'

'मैं आपका कृतज्ञ हूँगा ! अगर आप इस विषय पर कोई लेखमाला शुरू कर दें।'

'जी, मैं इतना अहमक़ नहीं हूँ। अच्छी रक़म दिलवाइए, तो अलबत्ता।'

'आपने सिद्धान्त ही ऐसा लिया है कि खुले ख़ज़ाने पब्लिक को लूट सकते हैं।'

'मुझमें और आपमें अन्तर इतना ही है कि मैं जो कुछ मानता हूँ, उस पर चलता हूँ। आप लोग मानते कुछ हैं, करते कुछ हैं। धन को आप किसी अन्याय से बराबर फैला सकते हैं ! लेकिन बुद्धि को, चरित्र को, और रूप को, प्रतिभा को और बल को बराबर फैलाना तो आपकी शक्ति के बाहर है। छोटे-बड़े का भेद केवल धन से ही तो नहीं होता ! मैंने बड़े-बड़े धन-कुबेरों को भिक्षुकों के सामने घुटने टेकते देखा है, और आपने भी देखा होगा। रूप की चौखट पर बड़े-बड़े महीप नाक रगड़ते हैं, क्या यह सामाजिक विषमता नहीं है ? आप रूस की मिसाल देंगे। वहाँ इसके सिवाय और क्या है कि मिल के मालिक ने राज-कर्मचारी का रूप ले लिया है। बुद्धि तब भी राज करती थी, अब भी करती है और हमेशा करेगी।'

तश्तरी में पान आ गये थे। राय साहब ने मेहमानों को पान और इलायची

देते हुए कहा—बुद्धि अगर स्वार्थ से मुक्त हो, तो हमें उसकी प्रभुता मानने में कोई आपत्ति नहीं। समाजवाद का यही आदर्श है। हम साधु-महात्माओं के सामने इसी लिए सिर झुकाते हैं कि उनमें त्याग का बल है। इसी तरह हम बुद्धि के हाथमें अधिकार भी देना चाहते हैं, सम्मान भी, नेतृत्व भी; लेकिन सम्पत्ति किसी तरह नहीं। बुद्धि का अधिकार और संमान व्यक्ति के साथ चला जाता है; लेकिन उसकी सम्पत्ति विष बोने के लिए, उसके बाद और भी प्रबल हो जाती है। बुद्धि के बगैर किसी समाज का संचालन नहीं हो सकता। हम केवल इस बिच्छू का डंक तोड़ देना चाहते हैं।

दूसरी मोटर आ पहुँची और मिस्टर खन्ना उतरे, जो एक बैंक के मैनेजर और शक्कर-मिल के मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं। दो देवियाँ भी उनके साथ थीं। राय साहब ने दोनों देवियों को उतारा। वह जो खद्दर की साड़ी पहने बहुत गंभीर और विचार-शील-सी हैं, मिस्टर खन्ना की पत्नी कामिनी खन्ना हैं। दूसरी महिला जो ऊँची एँड़ी का जूता पहने हुए हैं और जिनकी मुखछवि पर हँसी फूटी पड़ती है, मिस मालती हैं। आप इंगलैंड से डाक्टरी पढ़ आई हैं और अब प्रैक्टिस करती हैं। ताल्लुकेदारों के महलों में उनका बहुत प्रवेश है। आप नवयुग की साक्षात् प्रतिमा हैं। गात कोमल; पर चपलता कूट-कूटकर भरी हुई। झिझक या संकोच का कहीं नाम नहीं, मेक अप में प्रवीण, बला की हाज़िर-जवाब, पुरुष-मनोविज्ञान की अच्छी जानकार, आमोद-प्रमोद को जीवन का तत्त्व समझनेवाली, लुभाने और रिझाने की कला में निपुण, जहाँ आत्मा का स्थान है, वहाँ प्रदर्शन, जहाँ हृदय का स्थान है, वहाँ हाव-भाव; मनोद्गारों पर कठोर निग्रह, जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप-सा हो गया।

आपने मिस्टर मेहता से हाथ मिलाते हुए कहा—सच कहती हूँ, आप सूरत से ही फ़िलासफ़र मालूम होते हैं। इस नई रचना में तो आपने आत्मवादियों को उधेड़-कर रख दिया। पढ़ते-पढ़ते कई बार मेरे जी में ऐसा आया कि आपसे लड़ जाऊँ। फ़िलासफ़रों में सहृदयता क्यों गायब हो जाती है।

मेहता झेंप गये। बिना-ब्याहे थे और नवयुग की रमणियों से पनाह माँगते थे। पुरुषों की मंडली में ख़ूब चहकते थे; मगर ज्यों ही कोई महिला आई, और आपकी ज़बान बन्द हुई। जैसे बुद्धि पर ताला लग जाता था। स्त्रियों से शिष्ट व्यवहार तक करने की सुधि न रहती थी।

मिस्टर खन्ना ने पूछा—फ़िलासफ़रों की सूरत में क्या खास बात होती है देवीजी ?

मालती ने मेहता की ओर दया-भाव से देखकर कहा—मिस्टर मेहता बुरा न मानें, तो बतला दूँ।

खन्ना मिस मालती के उपासकों में थे। जहाँ मिस मालती जायँ, वहाँ खन्ना का पहुँचना लाज़िम था। उनके आसपास भौंरे की तरह मँडराते रहते थे। हर समय उनकी यही इच्छा रहती थी कि मालती से अधिक से अधिक वही बोलें, उनकी निगाह अधिक से अधिक उन्हीं पर रहे।

खन्ना ने आँखें मारकर कहा—फ़िलासफ़र किसी की बात का बुरा नहीं मानते। उनकी यही सिफ़त है।

'तो सुनिए, फ़िलासफ़र हमेशा मुर्दा-दिल होते हैं, जब देखिए, अपने विचारों में मग्न बैठे हैं आपकी तरफ़ ताकेंगे; मगर आपको देखेंगे नहीं; आप उनसे बातें किये जायँ, कुछ सुनेंगे नहीं जैसे शून्य में उड़ रहे हों।'

सब लोगों ने क़हक़हा मारा। मिस्टर मेहता जैसे ज़मीन में गड़ गये।

'आक्सफ़ोर्ड में मेरे फ़िलासफ़ी प्रोफ़ेसर मिस्टर हसबेंड थे...'

खन्ना ने टोका—नाम तो निराला है।

'जी हाँ, और थे क्वाँरे...'

'मिस्टर मेहता भी तो क्वाँरे हैं...'

'यह रोग सभी फ़िलासफ़रों को होता है।'

अब मेहता को अवसर मिला। बोले—आप भी तो इसी मरज़ में गिरफ़्तार हैं?

'मैंने प्रतिज्ञा की है किसी फ़िलासफ़र से शादी करूँगी और यह वर्ग शादी के नाम से घबराता है। हसबेंड साहब तो स्त्री को देखकर घर में छिप जाते थे। उनके शिष्यों में कई लड़कियाँ थीं। अगर उनमें से कोई कभी कुछ पूछने के लिए उनके आफ़िस में चली जाती थी, तो आप ऐसे घबड़ा जाते थे, जैसे कोई शेर आ गया हो। हम लोग उन्हें ख़ूब छेड़ा करते थे, मगर थे बेचारे बड़े सरल-हृदय। कई हज़ार की आमदनी थी; पर मैंने हमेशा एक ही सूट पहनते देखा। उनकी एक विधवा बहन थीं। वही उनके घर का सारा प्रबन्ध करती थीं; मिस्टर हसबेंड को तो खाने की फ़िक्र ही न रहती थी। मिलनेवालों के डर से अपने कमरे का द्वार बन्द

करके लिखा-पढ़ा करते थे। भोजन का समय आ जाता, तो उनकी बहन आहिस्ता से भीतर के द्वार से उनके पास जाकर किताब बन्द कर देती थीं, तब उन्हें मालूम होता था कि खाने का समय आ गया। रात को भी भोजन का समय बँधा हुआ था। उनकी बहन कमरे की बत्ती बुझा दिया करती थीं। एक दिन बहन ने किताब बन्द करना चाहा, तो आपने पुस्तक को दोनों हाथों से दबा लिया और बहन-भाई में ज़ोर-अज़माई होने लगी। आखिर बहन उनकी पहियेदार कुर्सी को खींचकर भोजन के कमरे में लाई।'

राय साहब बोले—मगर मेहता साहब तो बड़े ख़ुशमिज़ाज और मिलनसार हैं, नहीं इस हंगामे में क्यों आते।

'तो आप फ़िलासफ़र न होंगे। जब अपनी चिन्ताओं से हमारे सिर में दर्द होने लगता है, तो विश्व की चिन्ता सर पर लादकर कोई कैसे प्रसन्न रह सकता है!'

उधर संपादकजी श्रीमती खन्ना से अपनी आर्थिक कठिनाइयों की कथा कह रहे थे—बस यों समझिए श्रीमतीजी कि संपादक का जीवन एक दीर्घ विलाप है, जिसे सुनकर लोग दया करने के बदले कानों पर हाथ रख लेते हैं। बेचारा न अपना उपकार कर सके, न औरों का। पब्लिक उससे आशा तो यह करती है कि हरएक आन्दोलन में वह सबसे आगे रहे, जेल जाय, मार खाय, घर के माल-असबाब की कुर्की कराय, यह उसका धर्म समझा जाता है; लेकिन उसकी कठिनाइयों की ओर किसी का ध्यान नहीं। हो तो वह सब कुछ। उसे हरएक विद्या, हरएक कला में पारंगत होना चाहिए; लेकिन उसे जीवित रहने का अधिकार नहीं। आप तो आज-कल कुछ लिखती ही नहीं। आपकी सेवा करने का जो थोड़ा-सा सौभाग्य मुझे मिल सकता है, उससे क्यों मुझे वंचित करती हैं!

मिसेज़ खन्ना को कविता लिखने का शौक़ था। इस नाते से संपादकजी कभी-कभी उनसे मिल आया करते थे; लेकिन घर के काम-धन्धों में व्यस्त रहने के कारण इधर बहुत दिनों से कुछ लिख न सकी थीं। सच बात तो यह है कि संपादक-जी ने ही उन्हें प्रोत्साहित करके कवि बनाया था। सच्ची प्रतिभा उनमें बहुत कम थी।

'क्या लिखूँ, कुछ सूझता ही नहीं। आपने कभी मिस मालती से कुछ लिखने को नहीं कहा?'

संपादकजी उपेक्षा से बोले—उनका समय मूल्यवान् है कामिनी देवी! लिखते

तो वह लोग हैं, जिनके अन्दर कुछ दर्द है, अनुराग है, लगन है, विचार है। जिन्होंने धन और भोग-विलास को जीवन का लक्ष्य बना लिया, वह क्या लिखेंगे।

कामिनी ने ईर्ष्या-मिश्रित विनोद से कहा—अगर आप उनसे कुछ लिखा सकें, तो आपका प्रचार दुगुना हो जाय। लखनऊ में तो ऐसा कोई रसिक नहीं है, जो आपका ग्राहक न बन जाय।

'अगर धन मेरे जीवन का आदर्श होता, तो आज मैं इस दशा में न होता। मुझे भी धन कमाने की कला आती है। आज चाहूँ तो लाखों कमा सकता हूँ; लेकिन यहाँ तो धन को कभी कुछ समझा ही नहीं। साहित्य की सेवा अपने जीवन का ध्येय है और रहेगा।'

'कम-से-कम मेरा नाम तो ग्राहकों में लिखवा दीजिए।'

'आपका नाम ग्राहकों में नहीं, संरक्षकों में लिखूँगा।'

'संरक्षकों में रानियों-महारानियों को रखिए, जिनकी थोड़ी-सी ख़ुशामद करके आप अपने पत्र को लाभ की चीज़ बना सकते हैं।'

'मेरी रानी-महारानी आप हैं। मैं तो आपके सामने किसी रानी-महारानी की हक़ीक़त नहीं समझता। जिसमें दया और विवेक है, वही मेरी रानी है। ख़ुशामद से मुझे घृणा है।'

कामिनी ने चुटकी ली—लेकिन मेरी ख़ुशामद तो आप कर रहे हैं सम्पादकजी!

सम्पादकजी ने गंभीर होकर श्रद्धा-पूर्ण स्वर में कहा—यह ख़ुशामद नहीं है देवीजी, हृदय के सच्चे उद्गार हैं।

राय साहब ने पुकारा—संपादकजी, ज़रा इधर आइएगा। मिस मालती आपसे कुछ कहना चाहती हैं।

संपादकजी की वह सारी अकड़ ग़ायब हो गई। नम्रता और विनय की मूर्ति बने हुए आकर खड़े हो गये। मालती ने उन्हें सदय नेत्रों से देखकर कहा—मैं अभी कह रही थी कि दुनिया में मुझे सबसे ज़्यादा डर संपादकों से लगता है। आप लोग जिसे चाहें, एक क्षण में बिगाड़ दें। मुझी से चीफ़ सेक्रेटरी साहब ने एक बार कहा—अगर मैं इस ब्लडी ओंकारनाथ को जेल में बन्द कर सकूँ, तो अपने को भगवान् समझूँ।

ओंकारनाथ की बड़ी-बड़ी मूँछें खड़ी हो गईं। आँखों में गर्व की ज्योति चमक

उठी। यों वह बहुत ही शान्त प्रकृति के आदमी थे ; लेकिन ललकार सुनकर उनका पुरुषत्व उत्तेजित हो जाता था। दृढ़ता भरे स्वर में बोले—इस कृपा के लिए आपका कृतज्ञ हूँ उस वज़्म (सभा) में अपना ज़िक्र तो आता है, चाहे किसी तरह आये। आप सेक्रेटरी महोदय से कह दीजिएगा कि ओंकारनाथ उन आदमियों में नहीं है, जो इन धमकियों से डर जाय। उसकी क़लम उसी वक्त विश्राम लेगी, जब उसकी जीवन-यात्रा समाप्त हो जायगी। उसने अनीति और स्वेच्छाचार को जड़ से खोदकर फेंक देने का ज़िम्मा लिया है।

मिस मालती ने और उकसाया—मगर मेरी समझ में आपकी यह नीति नहीं आती कि जब आप मामूली शिष्टाचार से अधिकारियों का सहयोग प्राप्त कर सकते हैं, तो क्यों उनसे कन्नी काटते हैं। अगर आप अपनी आलोचनाओं में आग और ज़रा कम विष दें, तो मैं वादा करती हूँ कि मैं आपको गवर्नमेंट से काफ़ी मदद दिला सकती हूँ। जनता को तो आपने देख लिया। उससे अपील की, उसकी ख़ुशामद की अपनी कठिनाइयों की कथा कही ; मगर कोई नतीजा न निकला। अब ज़रा अधिकारियों को भी आज़मा देखिए। तीसरे महीने मोटर पर न निकलने लगें, और सरकारी दावतों में निमन्त्रित न होने लगें, तो मुझे जितना चाहें कोसिएगा। तब यही रईस और नेशनलिस्ट जो आपकी परवा नहीं करते, आपके द्वार के चक्कर लगायेंगे।

ओंकारनाथ अभिमान के साथ बोले—यही तो मैं नहीं कर सकता देवीजी! मैंने अपने सिद्धान्तों को सदैव ऊँचा और पवित्र रखा है, और जीते-जी उनकी रक्षा करूँगा। दौलत के पुजारी तो गली-गली मिलेंगे, मैं सिद्धान्त के पुजारियों में हूँ।

'मैं इसे दम्भ कहती हूँ।'

'आपकी इच्छा।'

'धन की आपको परवा नहीं है?'

'सिद्धान्तों का ख़ून करके नहीं।'

'तो आपके पत्र में विदेशी वस्तुओं के विज्ञापन क्यों होते हैं? मैंने किसी भी दूसरे पत्र में इतने विदेशी विज्ञापन नहीं देखे। आप बनते तो हैं आदर्शवादी और सिद्धान्तवादी ; पर अपने फ़ायदे के लिए देश का धन विदेश भेजते हुए आपको ज़रा भी खेद नहीं होता! आप किसी तर्क से इस नीति का समर्थन नहीं कर सकते।

ओंकारनाथ के पास सचमुच कोई जवाब न था। उन्हें बगलें झाँकते देखकर

राय साहब ने उनकी हिमायत की—तो आख़िर आप क्या चाहती हैं? इधर से भी मारे जायँ, उधर से भी मारे जायँ तो पत्र कैसे चले?

मिस मालती ने दया करना न सीखा था।

'पत्र नहीं चलता, तो बन्द कीजिए। अपना पत्र चलाने के लिए आपको विदेशी वस्तुओं के प्रचार का कोई अधिकार नहीं। अगर आप मजबूर हैं, तो सिद्धान्त का ढोंग छोड़िए। मैं तो सिद्धान्तवादी पत्रों को देखकर जल उठती हूँ। जी चाहता है, दियासलाई दिखा दूँ। जो व्यक्ति कर्म और वचन में सामंजस्य नहीं रख सकता, वह और चाहे जो कुछ हो, सिद्धान्तवादी नहीं है।'

मेहता खिल उठे। थोड़ी देर पहले उन्होंने ख़ुद इसी विचार का प्रतिपादन किया था। उन्हें मालूम हुआ कि इस रमणी में विचार की शक्ति भी है, केवल तितली नहीं। संकोच जाता रहा।

'यही बात अभी मैं कह रहा था। विचार और व्यवहार में सामंजस्य का न होना ही धूर्तता है, मक्कारी है।'

मिस मालती प्रसन्न मुख से बोली—तो इस विषय में आप और मैं एक हैं, और मैं भी फ़िलासफ़र होने का दावा कर सकती हूँ।

खन्ना की जीभ में खुजली हो रही थी। बोले—आपका एक-एक अंग फ़िलासफ़ी में डूबा हुआ है।

मालती ने उनकी लगाम खींची—अच्छा, आपको फ़िलासफ़ी में दख़ल है। मैं तो समझती थी, आप बहुत पहले अपनी फ़िलासफ़ी को गंगा में डुबो बैठे। नहीं, आप इतने बैंकों और कम्पनियों के डाइरेक्टर न होते।

राय साहब ने खन्ना को सँभाला—तो क्या आप समझती हैं कि फ़िलासफ़रों को हमेशा फ़ाक़ामस्त रहना चाहिए?

'जी हाँ! फ़िलासफ़र अगर मोह पर विजय न पा सके, तो फ़िलासफ़र कैसा?'

'इस लिहाज़ से तो शायद मिस्टर मेहता भी फ़िलासफ़र न ठहरें!'

मेहता ने जैसे आस्तीन चढ़ाकर कहा—मैंने तो कभी यह दावा नहीं किया राय साहब! मैं तो इतना ही जानता हूँ कि जिन औज़ारों से लोहार काम करता है, उन्हीं औज़ारों से सोनार नहीं करता। क्या आप चाहते हैं, आम भी उसी दशा में फलें-फूलें, जैसे बबूल या ताड़? मेरे लिए धन केवल उन सुविधाओं का नाम है, जिनमें

में अपना जीवन सार्थक कर सकूँ। धन मेरे लिए बढ़ने और फलने-फूलनेवाली चीज़ नहीं, केवल साधन है। मुझे धन की बिल्कुल इच्छा नहीं, आप वह साधन जुटा दें, जिसमें मैं अपने जीवन का उपयोग कर सकूँ।

ओंकारनाथ समष्टिवादी थे। व्यक्ति की इस प्रधानता को कैसे स्वीकार करते?

'इसी तरह हर एक मज़दूर कह सकता है कि उसे काम करने की सुविधाओं के लिए एक हज़ार महीने की ज़रूरत है।'

'अगर आप समझते हैं कि उस मज़दूर के बग़ैर आपका काम नहीं चल सकता, तो आपको वह सुविधाएँ देनी पड़ेंगी। अगर वही काम दूसरा मज़दूर थोड़ी-सी मज़दूरी में कर दे, तो कोई वजह नहीं कि आप पहले मज़दूर की ख़ुशामद करें।'

'अगर मज़दूरों के हाथ में अधिकार होता, तो मज़दूरों के लिए स्त्री और शराब भी उतनी ही ज़रूरी सुविधा हो जाती जितना फ़िलासफ़रों के लिए।'

'तो आप विश्वास मानिए, मैं उनसे ईर्ष्या न करता।'

'जब आपका जीवन सार्थक करने के लिए स्त्री इतनी आवश्यक है, तो आप शादी क्यों नहीं कर लेते?'

मेहता ने निस्संकोच भाव से कहा—इसी लिए कि मैं समझता हूँ, मुक्त भोग आत्मा के विकास में बाधक नहीं होता। विवाह तो आत्मा को और जीवन को पिंजरे में बन्द कर देता है।

खन्ना ने इसका समर्थन किया—बन्धन और निग्रह पुरानी थ्योरियाँ हैं। नई थ्योरी है मुक्त भोग।

मालती ने चोटी पकड़ी—तो अब मिसेज़ खन्ना को तलाक़ के लिए तैयार रहना चाहिए?

'तलाक़ का बिल पास तो हो?'

'शायद उसका पहला उपयोग आप ही करेंगे।'

कामिनी ने मालती की ओर विष-भरी आँखों से देखा और मुँह सिकोड़ लिया, मानो कह रही है—खन्ना तुम्हें मुबारक रहें, मुझे परवा नहीं।

मालती ने मेहता की तरफ़ देखकर कहा—इस विषय में आपके क्या विचार हैं मिस्टर मेहता?

मेहता गंभीर हो गये। वह किसी प्रश्न पर अपना मत प्रकट करते थे, तो जैसे अपनी सारी आत्मा उसमें डाल देते थे।

'विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुष को है, न स्त्री को। समझौता करने के पहले आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं।'

'तो आप तलाक़ के विरोधी हैं, क्यों?'

'पक्का।'

'और मुक्त भोगवाला सिद्धान्त?'

'वह उनके लिए है, जो विवाह नहीं करना चाहते।'

'अपनी आत्मा का संपूर्ण विकास सभी चाहते हैं; फिर विवाह कौन करे और क्यों करे?'

'इसी लिए कि मुक्ति सभी चाहते हैं; पर ऐसे बहुत कम हैं, जो लोभ से अपना गला छुड़ा सकें।'

'आप श्रेष्ठ किसे समझते हैं, विवाहित जीवन को या अविवाहित जीवन को?'

'समाज की दृष्टि से विवाहित जीवन को, व्यक्ति की दृष्टि से अविवाहित जीवन को।'

धनुष-यज्ञ का अभिनय निकट था। दस से एक तक धनुष-यज्ञ, एक से तीन तक प्रहसन, यह प्रोग्राम था। भोजन की तैयारी शुरू हो गई। मेहमानों के लिए बँगले में रहने का अलग-अलग प्रबन्ध था। खन्ना-परिवार के लिए दो कमरे रखे गये थे। और भी कितने ही मेहमान आ गये थे। सभी अपने-अपने कमरे में गये और कपड़े बदल-बदलकर भोजनलाय में जमा हो गये। यहाँ छूत-छात का कोई भेद न था। सभी जातियों और वर्णों के लोग साथ भोजन करने बैठे। केवल संपादक ओंकारनाथ सबसे अलग अपने कमरे में फलाहार करने गये। और कामिनी खन्ना को सिर-दर्द हो रहा था, उन्होंने भोजन करने से इनकार किया। भोजनालय में मेहमानों की संख्या पच्चीस से कम न थी। शराब भी थी और मांस भी। इस उत्सव के लिए राय साहब अच्छी क़िस्म की शराब ख़ास तौर पर खिंचवाते थे। खींची जाती थी दवा के नाम से; पर होती थी ख़ालिस शराब। मांस भी कई तरह के पकते थे, कोफ़्ते-कबाब और पुलाव। मुर्ग़, मुर्ग़ियाँ, बकरा, हिरन, तीतर, मोर, जिसे जो पसन्द हो, वह खाये।

भोजन शुरू हो गया, तो मिस मालती ने पूछा—संपादकजी कहाँ रह गये? किसी को भेजो राय साहब, उन्हें पकड़ लाये।

राय साहब ने कहा—वह वैष्णव हैं, उन्हें यहाँ बुलाकर क्यों बेचारे का धर्म नष्ट करोगी। बड़ा ही आचारनिष्ठ आदमी है।

'अजी और कुछ न सही, तमाशा तो रहेगा!'

सहसा एक सज्जन को देखकर उसने पुकारा—आप भी तशरीफ़ रखते हैं मिर्ज़ा खुर्शेद, यह काम आपके सुपुर्द। आपको लियाक़त की परीक्षा हो जायगी।

मिर्ज़ा खुर्शेद गोरे-चिट्टे आदमी थे, भूरी-भूरी मूँछें, नीली आँखें, दोहरी देह, चाँद के बाल सफाचट। छकलिया अचकन और चूड़ीदार पजामा पहने थे। ऊपर से हैट लगा लेते थे। वोटिंग के समय चौंक पड़ते थे और नेशनलिस्टों की तरफ़ से वोट देते थे। सूफ़ी मुसलमान थे। दो बार हज कर आये थे; मगर शराब खूब पीते थे। कहते थे, जब हम ख़ुदा का एक हुक्म भी कभी नहीं मानते, तो दीन के लिये क्यों जान दें। बड़े दिल्लगीबाज़ बेफ़िक्रे जीव थे। पहले बसरे में ठीके का काम करते थे। लखों कमाये; मगर शामत आई कि एक मेम से आशनाई कर बैठे। मुक़दमेबाजी हुई। जेल जाते-जाते बचे। चौबीस घण्टे के अन्दर मुल्क से निकल जाने का हुक्म हुआ। जो कुछ जहाँ था वहीं छोड़ा और सिर्फ़ पचास हज़ार लेकर भाग खड़े हुए। बम्बई में उनके एजेण्ट थे। सोचा था, उनसे हिसाब क़िताब कर लेंगे और जो कुछ निकलेगा उसी में ज़िन्दगी काट देंगे, मगर एजेण्टों ने जाल करके उनसे वह पचास हज़ार भी ऐंठ लिये। निराश होकर वहाँ से लखनऊ चले। गाड़ी में एक महात्मा से साक्षात् हुआ। महात्माजी ने उन्हें सब्ज़ बाग़ दिखाकर उनकी घड़ी, अँगूठियाँ, रुपये सब उड़ा दिये। बेचारे लखनऊ पहुँचे तो देह के कपड़ों के सिवा और कुछ न था। राय साहब से पुरानी मुलाक़ात थी। कुछ उनकी मदद से और कुछ अन्य मित्रों की मदद से एक जूते की दूकान खोल ली। वह अब लखनऊ की सबसे चलती हुई जूते की दूकान थी। चार-पाँच सौ रोज़ की बिक्री थी। जनता को उन पर थोड़े ही दिनों में इतना विश्वास हो गया कि एक बड़े भारी मुसलिम ताल्लुकेदार को नीचा दिखाकर कौंसिल में पहुँच गये।

अपनी जगह पर बैठे-बैठे बोले—जी नहीं, मैं किसी का दीन नहीं बिगाड़ता।

यह काम आपको खुद करना चाहिए। मज़ा तो जब है कि आप उन्हें शराब पिलाकर छोड़ें। यह आपके हुस्न के जादू की आज़माइश है।

चारों तरफ़ से आवाज़ें आईं — हाँ-हाँ, मिस मालती, आज अपना कमाल दिखाइए। मालती ने मिर्ज़ा को ललकारा, कुछ इनाम दोगे?

'सौ रुपये की थैली!'

'हुश! सौ रुपये! लाख रुपये का धर्म बिगाड़ूँ सौ के लिए।'

'अच्छा, आप खुद अपनी फ़ीस बताइए।'

'एक हज़ार, कौड़ी कम नहीं।'

'अच्छा मंजूर।'

'जी नहीं, लाकर मेहताजी के हाथ में रख दीजिए।'

मिर्ज़ाजी ने तुरन्त सौ रुपये का नोट जेब से निकाला और उसे दिखाते हुए खड़े होकर बोले भाइयो! यह हम सब मर्दों की इज़्ज़त का मामला है। अगर मिस मालती की फ़रमाइश न पूरी हुई, तो हमारे लिए कहीं मुंह दिखाने की जगह न रहेगी; अगर मेरे पास रुपये होते, तो मैं मिस मालती की एक-एक अदा पर एक-एक लाख क़ुरबान कर देता। एक पुराने शायर ने अपने माशूक़ के एक काले तिल पर समरक़न्द और बोखारा के सूबे क़ुरबान कर दिये थे। आज आप सभी साहबों की जवाँमर्दी और हुस्नपरस्ती का इम्तहान है। जिसके पास जो कुछ हो, सच्चे सूरमा की तरह निकालकर रख दे। आपको इल्म की क़सम, माशूक़ की अदाओं की क़सम, अपनी इज़्ज़त की क़सम, पीछे क़दम न हटाइए। मर्दो! रुपये ख़र्च हो जायँगे, नाम हमेशा के लिए रह जायगा। ऐसा तमाशा लाखों में भी सस्ता है। देखिए, लखनऊ के हसीनों की रानी एक ज़ाहिद पर अपने हुस्न का मन्त्र कैसे चलाती हैं!

भाषण समाप्त करते ही मिर्ज़ाजी ने हरएक की जेब की तलाशी शुरू कर दी। पहले मिस्टर खन्ना की तलाशी हुई। उनकी जेब से पाँच रुपये निकले।

मिर्ज़ा ने मुँह फीका करके कहा — वाह खन्ना साहब वाह! नाम बड़े, दर्शन थोड़े। इतनी कम्पनियों के डाइरेक्टर, लाखों की आमदनी और आपकी जेब में पांच रुपये! लाहौल बिला क़ूवत! कहाँ हैं मेहता? आप ज़रा जाकर मिसेज़ खन्ना से कम-से-कम सौ रुपये वसूल कर लायें।

खन्ना खिसियाकर बोले—अजी, उनके पास एक पैसा भी न होगा। कौन जानता था कि यहाँ आप तलाशी लेना शुरू करेंगे।

'खैर, आप ख़ामोश रहिए। हम अपनी तक़दीर तो आज़मा लें।'

'अच्छा तो मैं जाकर उससे पूछता हूँ।'

'जी नहीं, आप यहाँ से हिल नहीं सकते। मिस्टर मेहता, आप फ़िलासफ़र हैं, मनोविज्ञान के पण्डित। देखिए, अपनी भद्द न कराइएगा।'

मेहता शराब पीकर मस्त हो जाते थे। उस मस्ती में उनका दर्शन उड़ जाता था और विनोद सजीव हो जाता था। लपककर मिसेज़ खन्ना के पास गये और पाँच मिनट ही में मुँह लटकाये लौट आये।

मिर्ज़ा ने पूछा—अरे! क्या ख़ाली हाथ?

राय साहब हँसे—क़ाज़ी के घर चूहे भी सयाने!

मिर्ज़ा ने कहा—हो बड़े ख़ुशनसीब खन्ना, ख़ुदा की क़सम!

मेहता ने क़हक़हा मारा और जेब से सौ-सौ रुपये के पाँच नोट निकाले।

मिर्ज़ा ने लपककर उन्हें गले लगा लिया।

चारों तरफ़ से आवाज़ें आने लगीं—कमाल है, मानता हूँ उस्ताद, क्यों न हो, फ़िलासफ़र ही जो ठहरे!

मिर्ज़ा ने नोटों को आँखों से लगाकर कहा—भाई मेहता, आज से मैं तुम्हारा शागिर्द हो गया। बताओ, क्या जादू मारा?

मेहता अकड़कर, लाल-लाल आँखों से ताकते हुए बोले—अजी कुछ नहीं। ऐसा कौन-सा बड़ा काम था। जाकर पूछा, अन्दर आऊँ! बोलीं—आप हैं मेहताजी, आइए! मैंने अन्दर जाकर कहा, वहाँ लोग ब्रिज खेल रहे हैं। अँगूठी एक हज़ार से कम की नहीं है। आपने तो देखा है। बस वही। आपके पास रुपये हों, तो पाँच सौ रुपये देकर एक हज़ार की चीज़ ले लीजिए। ऐसा मौक़ा फिर न मिलेगा। मिस मालती ने इस वक्त रुपये न दिये, तो बेदाग़ निकल जायेंगी। पीछे से कौन देता है, शायद इसी लिए उन्होंने अँगूठी निकाली है कि पाँच सौ रुपये किसके पास धरे होंगे। मुसकिराईं और चट अपने बटुवे से पाँच नोट निकालकर दे दिये, और बोलीं—मैं बिना कुछ लिये घर से नहीं निकलती। न जाने कब क्या ज़रूरत पड़े।

खन्ना खिसियाकर बोले—जब हमारे प्रोफ़ेसरों का यह हाल है, तो यूनिवर्सिटी

का ईश्वर ही मालिक है। ख़ुर्शेद ने घाव पर नमक छिड़का—अरे तो ऐसी कौन-सी बड़ी रक़म है, जिसके लिए आपका दिल बैठा जाता है। ख़ुदा झूठ न बुलवाये तो यह आपकी एक दिन की आमदनी है। समझ लीजिएगा, एक दिन बीमार पड़ गये और जायगा तो मिस मालती ही के हाथ में। आपके दर्देजिगर की दवा मिस मालती ही के पास तो है!

मालती ने ठोकर मारी—देखिए मिर्ज़ाजी तबेले में लतियाहुज अच्छी नहीं।

मिर्ज़ाजी ने दुम दबाई—कान पकड़ता हूँ देवीजी!

मिस्टर तंखा की तलाशी हुई। मुश्किल से दस रुपये निकले, मेहता की जेब से केवल अठन्नी निकली। कई सज्जनों ने एक-एक रुपए ख़ुद दे दिये। हिसाब जोड़ा गया, तो तीन सौ की कमी थी। यह कमी राय साहब ने उदारता के साथ पूरी कर दी।

संपादकजी ने मेवे और फल खाये थे और ज़रा कमर सीधी कर रहे थे कि राय साहब ने जाकर कहा—आपको मिस मालती याद कर रही हैं। ख़ुश होकर बोले—मिस मालती मुझे याद कर रही हैं, धन्य-भाग्य! राय साहब के साथ ही हाल में आ विराजे।

उधर नौकरों ने मेज़ें साफ़ कर दी थीं। मालती ने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया।

संपादकजीने नम्रता दिखाई—बैठिए, तकल्लुफ़ न कीजिए। मैं इतना बड़ा आदमी नहीं हूँ।

मालती ने श्रद्धा-भरे स्वर में कहा—आप तकल्लुफ़ समझते होंगे, मैं समझती हूँ, मैं अपना सम्मान बढ़ा रही हूँ; यों आप अपने को कुछ न समझें और आपको शोभा भी नहीं देता है; लेकिन यहाँ जितने सज्जन जमा हैं, सभी आपकी राष्ट्र और साहित्य-सेवा से भली-भाँति परिचित हैं। आपने इस क्षेत्र में जो महत्त्वपूर्ण काम किया है, अभी चाहे लोग उसका मूल्य न समझें; लेकिन वह समय बहुत दूर नहीं है—मैं तो कहती हूँ वह समय आ गया है—जब हर एक नगर में आपके नाम की सड़कें बनेंगी, क्लब बनेंगे, टाउन हालों में आपके चित्र लटकाये जायँगे। इस वक्त जो थोड़ी-बहुत जागृति है, वह आप ही के महान् उद्योग का प्रसाद है। आपको यह जानकर आनन्द होगा कि देश में अब आपके ऐसे अनुयायी पैदा हो गये हैं जो आपके

देहात-सुधार-आन्दोलन में आपका हाथ बटाने को उत्सुक हैं, और उन सज्जनों की बड़ी इच्छा है कि यह काम सङ्गठित रूप से किया जाय और एक देहात सुधार-संघ स्थापित किया जाय, जिसके आप सभापति हों।

ओंकारनाथ के जीवन में यह पहला अवसर था कि उन्हें चोटी के आदमियों में इतना सम्मान मिले। यों वह कभी-कभी आम जलसों में बोलते थे और कई सभाओं के मन्त्री और उपमन्त्री भी थे; लेकिन शिक्षित-समाज ने अब तक उनकी उपेक्षा ही की थी। उन लोगों में वह किसी तरह मिल न पाते थे, इसी लिए आप जलसों में उनकी निष्क्रियता और स्वार्थान्धता की शिकायत किया करते थे, और अपने पत्र में एक-एक को रगेदते थे। क़लम तेज़ थी, वाणी कठोर, साफगोई की जगह उच्छृङ्खलता कर बैठते थे, इसलिए लोग उन्हें ख़ाली ढोल समझते थे। उसी समाज में आज उनका इतना सम्मान! कहाँ हैं आज 'स्वराज्य' और 'स्वाधीन भारत' और 'हटर' के संपादक, आकर देखें और अपना कलेजा ठंडा करें। आज अवश्य ही देवताओं की उन पर कृपा-दृष्टि है। सदुद्योग कभी निष्फल नहीं जाता, यह ऋषियों का वाक्य है। वह स्वयं अपनी नज़रों में उठ गये। कृतज्ञता से पुलकित होकर बोले—देवीजी, आप तो मुझे काँटों में घसीट रही हैं। मैंने तो जनता की जो कुछ भी सेवा की, अपना कर्तव्य समझकर की। मैं इस सम्मान को व्यक्ति का सम्मान नहीं, उस उद्देश्य का सम्मान समझ रहा हूँ, जिसके लिए मैंने अपना जीवन अर्पित कर दिया है, लेकिन मेरा नम्र निवेदन है कि प्रधान का पद किसी प्रभावशाली पुरुष को दिया जाय, मैं पद में विश्वास नहीं रखता। मैं तो सेवक हूँ और सेवा करना चाहता हूँ।

मिस मालती इसे किसी तरह स्वीकार नहीं कर सकतीं। सभापति पण्डितजी को बनना पड़ेगा। नगर में उसे ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति दूसरा नहीं दिखाई देता। जिसकी क़लम में जादू है, जिसकी ज़बान में जादू है, जिसके व्यक्तित्व में जादू है, वह कैसे कह सकता है कि वह प्रभावशाली नहीं है। वह ज़माना गया, जब धन और प्रभाव में मेल था। अब प्रतिभा और प्रभाव के मेल का युग है। संपादकजी को यह पद अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। मन्त्री मिस मालती होंगी। इस सभा के लिए एक हज़ार का चन्दा भी हो गया है और अभी तो सारा शहर और प्रान्त पड़ा हुआ है। चार-पाँच लाख मिल जाना मामूली बात है।

ओंकारनाथ पर कुछ नशा-सा चढ़ने लगा। उनके मन में जो एक प्रकार की

फुरहरी-सी उठ रही थी, उसने गंभीर उत्तरदायित्व का रूप धारण कर लिया। बोले—मगर आप यह समझ लें मिस मालती, कि यह बड़ी ज़िम्मेदारी का काम है और आपको अपना बहुत समय देना पड़ेगा। मैं अपनी तरफ़ से आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप सभा-भवन में मुझे सबसे पहले मौजूद पायेंगी।

मिर्ज़ाजी ने पुचारा दिया—आपका बड़े से बड़ा दुश्मन भी यह नहीं कह सकता कि आप अपना फ़र्ज़ अदा करने में कभी किसी से पीछे रहे।

मिस मालती ने देखा, शराब कुछ-कुछ असर करने लगी है, तो और भी गंभीर बनकर बोलीं—अगर हम लोग इस काम की महानता न समझते, तो न यह सभा स्थापित होती और न आप इसके सभापति होते। हम किसी रईस या ताल्लुकेदार को सभापति बनाकर धन खूब बटोर सकते हैं, और सेवा की आड़ में स्वार्थ सिद्ध कर सकते हैं; लेकिन यह हमारा उद्देश्य नहीं। हमारा एकमात्र उद्देश्य जनता की सेवा करना है। और उसका सबसे बड़ा साधन आपका पत्र है। हमने निश्चय किया है कि हर एक नगर और गाँव में उसका प्रचार किया जाय और जल्द से जल्द उसकी ग्राहक-संख्या को बीस हज़ार तक पहुँचा दिया जाय। प्रान्त की सभी म्युनिसिपैलिटियों और ज़िला बोर्ड के चेयरमैन हमारे मित्र हैं। कई चेयरमैन तो यहीं विराजमान हैं। अगर हरएक ने पाँच-पाँच सौ प्रतियाँ भी ले लीं, तो पचीस हज़ार प्रतियाँ तो आप यक़ीनी समझें। फिर राय साहब और मिर्ज़ा साहब की यह सलाह है कि कौंसिल में इस विषय का एक प्रस्ताव रखा जाय कि प्रत्येक गाँव के लिए 'बिजली' की एक प्रति सरकारी तौर पर मँगाई जाय, या कुछ वार्षिक सहायता स्वीकार की जाय। और हमें पूरा विश्वास है कि यह प्रस्ताव पास हो जायगा।

ओंकारनाथ ने जैसे नशे में झूमते हुए कहा—हमें गवर्नर के पास डेपुटेशन ले जाना होगा।

मिस्टर ख़ुर्शेद बोले—ज़रूर-ज़रूर!

'उनसे कहना होगा कि किसी सभ्य शासन के लिए यह कितनी लज्जा और और कलंक की बात है कि ग्रामोत्थान का अकेला पत्र होने पर भी 'बिजली' का अस्तित्व तक नहीं स्वीकार किया जाता।'

मिर्ज़ा ख़ुर्शेद ने कहा—अवश्य-अवश्य!

'मैं गर्व नहीं करता। अभी गर्व करने का समय नहीं आया; लेकिन मुझे इसका दावा है कि ग्राम्य-संगठन के लिए 'बिजली' ने जितना उद्योग किया है...।'

मिस्टर मेहता ने सुधारा—नहीं महाशय, तपस्या कहिए।

'मैं मिस्टर मेहता को धन्यवाद देता हूँ। हाँ, इसे तपस्या ही कहना चाहिए, बड़ी कठोर तपस्या। 'बिजली' ने जो तपस्या की है, वह इस प्रान्त के ही नहीं, इस राष्ट्र के इतिहास में अभूतपूर्व है।'

मिर्ज़ा ख़ुर्शेद बोले—ज़रूर-ज़रूर।

मिस मालती ने एक पेग और दिया—हमारे संघ ने यह निश्चय भी किया है कि कौंसिल में अबकी जो जगह ख़ाली हो, उसके लिए आपको उम्मेदवार खड़ा किया जाय। आपको केवल अपनी स्वीकृति देनी होगी। शेष सारा काम हम लोग कर लेंगे। आपको न खर्च से मतलब, न प्रोपेगेण्डा से, न दौड़-धूप से।

ओंकारनाथ की आँखों की ज्योति दुगुनी हो गई। गर्वपूर्ण नम्रता से बोले—मैं आप लोगों का सेवक हूँ, मुझसे जो काम चाहे ले लीजिए।

'हम लोगों को आपसे ऐसी ही आशा है। हम अब तक झूठे देवताओं के सामने नाक रगड़ते-रगड़ते हार गये और कुछ हाथ न लगा। अब हमने आपमें अपना सच्चा पथ-प्रदर्शक, सच्चा गुरु पाया है और इस शुभ दिन के आनन्द में आज हमें एकमन, एकप्राण होकर अपने अहंकार को, अपने दंभ को तिलांजलि दे देना चाहिए। हममें आज से कोई ब्राह्मण नहीं है, कोई शूद्र नहीं है, कोई हिन्दू नहीं है, कोई मुसलमान नहीं है, कोई ऊँच नहीं है, कोई नीच नहीं है। हम सब एक ही माता के बालक, एक ही गोद के खेलनेवाले, एक ही थाली के खानेवाले भाई हैं। जो लोग भेद-भाव में विश्वास रखते हैं, जो लोग पृथक्ता और कट्टरता के उपासक हैं, उनके लिए हमारी सभा में स्थान नहीं है। जिस सभा के सभापति पूज्य ओंकारनाथजी जैसे विशाल-हृदय व्यक्ति हों, उस सभा में ऊँच-नीच का, खान-पान का और जाति-पाँति का भेद नहीं हो सकता। जो महानुभाव एकता में और राष्ट्रीयता में विश्वास न रखते हों, वे कृपा करके यहाँ से उठ जायँ।

राय साहब ने शंका की—मेरे विचार में एकता का यह आशय नहीं है कि सब लोग खान-पान का विचार छोड़ दें। मैं शराब नहीं पीता तो क्या मुझे इस सभा से अलग हो जाना पड़ेगा?

मालती ने निर्मम स्वर में कहा—बेशक अलग हो जाना पड़ेगा। आप इस संघ में रहकर किसी तरह का भेद नहीं रख सकते।

मेहता ने घड़े को ठोंका—मुझे सन्देह है कि हमारे सभापतिजी स्वयं खान-पान की एकता में विश्वास रखते हैं।

ओंकारनाथ का चेहरा ज़र्द पड़ गया। इस बदमाश ने यह क्या बेवक्त की शहनाई बजा दी। दुष्ट कहीं गड़े मुर्दे न उखाड़ने लगे, नहीं यह सारा सौभाग्य स्वप्न की भाँति शून्य में विलीन हो जायगा।

मिस मालती ने उनके मुँह की ओर जिज्ञासा की दृष्टि से देखकर दृढ़ता से कहा—आपका सन्देह निराधार है मेहता महोदय! क्या आप समझते हैं कि राष्ट्र की एकता का ऐसा अनन्य उपासक, ऐसा उदारचेता पुरुष, ऐसा रसिक कवि इस निरर्थक और लज्जाजनक भेद को मान्य समझेगा? ऐसी शंका करना उसकी राष्ट्रीयता का अपमान करना है।

ओंकारनाथ का मुख-मंडल प्रदीप्त हो गया। प्रसन्नता और सन्तोष की आभा झलक पड़ी।

मालती ने उसी स्वर में कहा—और इससे भी अधिक उनकी पुरुष-भावना का। एक रमणी के हाथों से शराब का प्याला पाकर वह कौन भद्र पुरुष है, जो इनकार कर दे। यह तो नारी-जाति का अपमान होगा, उस नारी-जाति का जिसके नयन-बाणों से अपने हृदय को बिंधवाने की लालसा पुरुष-मात्र में होती है, जिसकी अदाओं पर मर मिटने के लिए बड़े-बड़े महीप लालायित रहते हैं। लाइए बोतल और प्याले, और दौर चलने दीजिए। इस महान् अवसर पर किसी तरह की शंका, किसी तरह की आपत्ति राष्ट्र-द्रोह से कम नहीं। पहले हम अपने सभापति की सेहत का जाम पियेंगे।

बर्फ़, शराब और सोडा पहले ही से तैयार था। मालती ने ओंकारनाथ को अपने हाथों से लाल विष से भरा हुआ ग्लास दिया, और उन्हें कुछ ऐसी जादू-भरी चितवन से देखा कि उनकी सारी निष्ठा, सारी वर्ण-श्रेष्ठता काफ़ूर हो गई। मन ने कहा—सारा आचार-विचार परिस्थितियों के अधीन है। आज तुम दरिद्र हो, किसी मोटरकार को धूल उड़ाते देखते हो, तो ऐसा बिगड़ते हो कि उसे पत्थरों से चूर-चूर कर दो; लेकिन क्या तुम्हारे मन में कार की लालसा नहीं है? परिस्थिति ही विधि है और

कुछ नहीं। बाप दादों ने नहीं पी थी, न पी हो। उन्हें ऐसा अवसर ही कब मिला था। उनकी जीविका पोथी-पत्रों पर थी। शराब लाते कहाँ से, और पीते भी तो जाते कहाँ। फिर वह तो रेलगाड़ी पर न चढ़ते थे, कल का पानी न पीते थे, अँग्रेजी पढ़ना पाप समझते थे। समय कितना बदल गया है। समय के साथ अगर नहीं चल सकते, तो वह तुम्हें पीछे छोड़कर चला जायगा। ऐसी महिला के कोमल हाथों से विष भी मिले, तो शिरोधार्य करना चाहिए। जिस सौभाग्य के लिए बड़े-बड़े राजे तरसते हैं; वह आज उनके सामने खड़ा है। क्या वह उसे ठुकरा सकते हैं?

उन्होंने ग्लास ले लिया और सिर झुकाकर अपनी कृतज्ञता दिखाते हुए एक ही साँस में पी गये और तब लोगों को गर्व-भरी आँखों से देखा, मानो कह रहे हों, अब तो आपको मुझ पर विश्वास आया। क्या समझते हैं, मैं निरा पोंगा पण्डित हूँ। अब तो मुझे दंभी और पाखण्डी कहने का साहस नहीं कर सकते?

हाल में ऐसा शोर-गुल मचा कि कुछ न पूछो, जैसे पिटारी में बन्द क़हक़हे निकल पड़े हों। वाह देवजी! क्या कहना है! कमाल है मिस मालती, कमाल है! तोड़ दिया, नमक का क़ानून तोड़ दिया; धर्म का क़िला तोड़ दिया, नेम का घड़ा फोड़ दिया;

ओंकारनाथ के कंठ के नीचे शराब का पहुँचना था कि उनकी रसिकता वाचाल हो गई। मुस्कराकर बोले—मैंने अपने धर्म की थाती मिस मालती के कोमल हाथों में सौंप दी और मुझे विश्वास है, वह उसकी यथोचित रक्षा करेंगी। उनके चरण-कमलों के इस प्रसाद पर मैं ऐसे एक हज़ार धर्मों को न्योछावर कर सकता हूँ।

क़हक़हों से हाल गूँज उठा।

संपादकजी का चेहरा फूल उठा था, आँखें झुकी पड़ती थीं। दूसरा ग्लास भरकर बोले—यह मिस मालती की सेहत का जाम है। आप लोग पियें और उन्हें आशीर्वाद दें।

लोगों ने फिर अपने-अपने ग्लास ख़ाली कर दिये।

उसी वक़्त मिर्जा ख़ुर्शेद ने एक माला लाकर संपादकजी के गले में डाल दिया और बोले—सज्जनो, फ़िदवी ने अभी अपने पूज्य सदर साहब की शान में एक क़सीदा कहा है। आप लोगों की इजाज़त हो, तो सुनाऊँ?

चारों तरफ़ से आवाजें आईं—हाँ-हाँ, ज़रूर सुनाइए।

ओंकारनाथ भंग तो आये-दिन पिया करते थे और उनका मस्तिष्क उसका अभ्यस्त हो गया था; मगर शराब पीने का उन्हें यह पहला ही अवसर था। भंग का नशा मन्थर गति से एक स्वप्न की भाँति आता था और मस्तिष्क पर मेघ के समान छा जाता था। उनकी चेतना बनी रहती थी, उन्हें खुद मालूम होता था कि इस समय उनकी वाणी बड़ी लच्छेदार है, और उनकी कल्पना बहुत प्रबल। शराब का नशा उनके ऊपर सिंह की भाँति झपटा और दबोच बैठा। वह कहते कुछ हैं, मुँह से निकलता कुछ है। फिर यह ज्ञान भी जाता रहा। वह क्या कहते हैं और क्या करते हैं, इसकी सुधि ही नहीं रही। यह स्वप्न का रोमानी वैचित्र्य न था, जागृति का वह चक्कर था, जिसमें साकार निराकार हो जाता है।

न जाने कैसे उनके मस्तिष्क में यह कल्पना जाग उठी कि क़सीदा पढ़ना कोई बड़ा अनुचित काम है। मेज़ पर हाथ पटककर बोले—नहीं, कदापि नहीं। यहाँ कोई क़सीदा नई ओगा, नहीं ओगा। हम सभापति हैं। हमारा हुक्म है। हम अभी इस सभा को तोड़ सकते हैं। अबी तोड़ सकते हैं। सभी को निकाल सकते हैं। कोई हमारा कुछ नहीं कर सकता। हम सभापति हैं। कोई दूसरा सभापति नई है।

मिर्ज़ा ने हाथ जोड़कर कहा—हुज़ूर, इस क़सीदे में तो आपकी तारीफ़ की गई है।

संपादकजी ने लाल, पर ज्योतिहीन नेत्रों से देखा—तुम हमारी तारीफ़ क्यों की? क्यों की? बोलो, क्यों हमारी तारीप की? हम किसी का नौकर नहीं है। किसी के बाप का नौकर नई है, किसी साले का दिया नहीं खाते। हम खुद संपादक है। हम बिजली का संपादक है। हम उसमें सबका तारीप करेगा। देवीजी, हम तुम्हारा तारीप नहीं करेगा। हम कोई बड़ा आदमी नई है। हम सबका गुलाम है। हम आपका चरण-रज है। मालती देवी हमारा लक्ष्मी, हमारा सरस्वती, हमारी राधा...

यह कहते हुए वह मालती के चरणों की तरफ़ झुके और मुँह के बल फ़र्श पर गिर पड़े। मिर्ज़ा खुर्शेद ने दौड़कर उन्हें सँभाला और कुर्सियाँ हटाकर वहीं ज़मीन पर लिटा दिया। फिर उनके कानों के पास मुँह ले जाकर बोले—राम-राम सत्त है! कहिए तो आपका जनाज़ा निकालें।

राय साहब ने कहा—कल देखना कितना बिगड़ता है। एक-एक को अपने पत्र में रगेदेगा। और ऐसा रगेदेगा कि आप भी याद करेंगे! एक ही दुष्ट है, किसी पर

दया नहीं करता। लिखने में तो अपना जोड़ नहीं रखता। ऐसा गधा आदमी कैसे इतना अच्छा लिखता है, यह रहस्य है।

कई आदमियों ने संपादकजी को उठाया और ले जाकर उनके कमरे में लिटा दिया। उधर पंडाल में धनुष-यज्ञ हो रहा था। कई बार इन लोगों को बुलाने के लिए आदमी आ चुके थे। कई हुक्काम भी पंडाल में आ पहुँचे थे। लोग इधर जाने को तैयार हो रहे थे कि सहसा एक अफ़ग़ान आकर खड़ा हो गया। गोरा रंग, बड़ी-बड़ी मूँछें, ऊँचा कद, चौड़ा सीना, आँखों में निर्भयता का उन्माद भरा हुआ, ढीला नीचा कुरता, पैरों में शलवार, ज़री के काम की सदरी, सिर पर पगड़ी और कुलाह, कन्धे में चमड़े का बेग लटकाये, कन्धे पर बन्दूक रखे और कमर में तलवार बाँधे न जाने किधर से आ खड़ा हो गया और गरजकर बोला—ख़बरदार! कोई यहाँ से मत जाओ। हमारा साथ का आदमी पर डाका पड़ा है। यहाँ का जो सरदार है वह हमारा आदमी को लूट लिया है, उसका माल तुमको देना होगा। एक-एक कौड़ी देना होगा। कहाँ है सरदार, उसको बुलाओ।

राय साहब ने सामने आकर क्रोध-भरे स्वर में कहा—कैसी लूट! कैसा डाका? यह तुम लोगों का काम है। यहाँ कोई किसी को नहीं लूटता। साफ़-साफ़ कहो, क्या मामला है?

अफ़ग़ान ने आँखें निकालीं और बन्दूक का कुन्दा ज़मीन पर पटककर बोला—हमसे पूछता है कैसा लूट, कैसा डाका? तुम लूटता है, तुम्हारा आदमी लूटता है। अम यहाँ की कोठी का मालिक है। हमारी कोठी में पचीस जवान हैं। हमारा आदमी रुपये तहसील कर लाता था। एक हज़ार। वह तुम लूट लिया, और कहता है कैसा डाका? अम बतलायेगा कैसा डाका होता है। हमारा पचीसों जवान अभी आता है। अम तुम्हारा गाँव लूट लेगा। कोई साला कुछ नहीं कर सकता, कुछ नहीं कर सकता।

खन्ना ने अफ़ग़ानी के तीवर देखे तो चुपके से उठे कि निकल जायँ। सरदार ने ज़ोर से डाँटा—काँ जाता तुम? कोई कईं नईं जा सकता। नईं अम सबको क़तल कर देगा। अबी फ़ैर कर देगा। अमारा तुम कुछ नहीं कर सकता। अम तुम्हारा पुलीस से नहीं डरता। पुलीस का आदमी अमारा सकल देखकर भागता है। अमारा अपना कांसल है, हम उसको ख़त लिखकर लाट साहब के पास जा सकता

है। अम यहाँ से किसी को नईं जाने देगा। तुम अमारा एक हज़ार रुपया लूट लिया। अमारा रुपया नईं देगा, तो हम किसी को ज़िन्दा नईं छोड़ेगा। तुम सब आदमी दूसरों के माल को लूट करता है और याँ माशूक के साथ शराब पीता है।

मिस मालती उसकी आँख बचाकर कमरे से निकलने लगीं कि वह बाज़ की तरह टूटकर उनके सामने आ खड़ा हुआ और बोला—तुम इन बदमाशों से हमारा माल दिलवाये, नईं अम तुमको उठा ले जायगा और अपनी कोठी में जशन मनायेगा। तुम्हारा हुस्न पर अम आशिक़ हो गया। या तो अमको एक हज़ार अबी-अबी दे दे या तुमको अमारे साथ चलना पड़ेगा। तुमको अम नहीं छोड़ेगा। अम तुम्हारा आशिक़ हो गया है, अमारा दिल और जिगर फटा जाता है। अमारा इस जगह पचीस जवान है। इस ज़िला में अमारा पाँच सौ जवान काम करता है। अम अपने क़बीले का ख़ान है। अमारे क़बीला में दस हज़ार सिपाही है। अम क़ाबुल के अमीर से लड़ सकता है। अँग्रेज़ सरकार अमको बीस हज़ार सालाना ख़िराज देता है। अगर तुम अमारा रुपया नहीं देगा, तो अम गाँव लूट लेगा और तुम्हारा माशूक़ को उठा ले जायगा। ख़ून करने में अमको लुतफ़ आता है। अम ख़ून का दरिया बहा देगा!

मजलिस पर आतंक छा गया। मिस मालती अपना चहकना भूल गईं। खन्ना की पिंडलियाँ काँप रही थीं। बेचारे चोट-चपेट के भय से एकमंज़िले बँगले में रहते थे। ज़ीने पर चढ़ना उनके लिए सूली पर चढ़ने से कम न था। गरमी में भी डर के मारे कमरे में सोते थे। राय साहब को ठकुराई का अभिमान था। वह अपने ही गाँव में एक पठान से डर जाना हास्यास्पद समझते थे, लेकिन उसकी बन्दूक़ को क्या करते। उन्होंने ज़रा भी चीं-चपड़ की और इसने बन्दूक़ चलाई। हूश तो होते ही हैं ये सब, और निशाना भी इन सबों का कितना अचूक होता है; अगर उसके हाथ में बन्दूक़ न होती, तो राय साहब उससे सींग मिलाने को भी तैयार हो जाते। मुश्किल यही थी कि दुष्ट किसी को बाहर नहीं जाने देता। नहीं, दम के दम में सारा गाँव जमा हो जाता और इसके पूरे जत्थे को पीट-पाटकर रख देता।

आख़िर उन्होंने दिल मज़बूत किया और जान पर खेलकर बोले—

हमने आपसे कह दिया कि हम चोर-डाकू नहीं हैं। मैं यहाँ की कौंसिल का मेम्बर हूँ और यह देवीजी लखनऊ की सुप्रसिद्ध डाक्टर हैं। यहाँ सभी शरीफ़ और

इज्ज़तदार लोग जमा हैं। हमें बिलकुल ख़बर नहीं, आपके आदमियों को किसने लूटा? आप जाकर थाने में रपट कीजिए।

ख़ान ने जमीन पर पैर पटके, पैंतरे बदले और बन्दूक़ को कंधे से उतारकर हाथ में लेता हुआ दहाड़ा—मत बकबक करो। काउन्सिल का मेम्बर को अम इस तरह पैरों से कुचल देता है। (ज़मीन पर पांव रगड़ता है) अमारा हाथ मज़बूत है, अमारा दिल मज़बूत है, अम ख़ुदा ताला के सिवा और किसी से नहीं डरता। तुम अमारा रुपया नहीं देगा, तो अम (राय साहब की तरफ़ इशारा करके) अभी तुमको क़तल कर देगा।

अपनी तरफ़ बन्दूक़ की दो नाली देखकर राय साहब झुककर मेज़ के बराबर आ गये। अजीब मुसीबत में जान फँसी थी। शैतान बराबर कहे जाता है, तुमने हमारे रुपये लूट लिये। न कुछ सुनता है, न समझता है, न किसी को बाहर आने-जाने देता है। नौकर-चाकर, सिपाही-प्यादे, सब धनुष-यज्ञ देखने में मग्न थे। जमींदारों के नौकर यों भी आलसी और काम-चोर होते ही हैं, जब तक दस दफे न पुकारा जाय, बोलते ही नहीं; और इस वक्त तो वे एक शुभ काम में लगे हुए थे। धनुष-यज्ञ उनके लिए केवल तमाशा नहीं, भगवान की लीला थी; अगर एक आदमी भी इधर आ जाता, तो सिपाहियों को ख़बर हो जाती और दम-भर में ख़ान का सारा ख़ानपन निकल जाता, डाढ़ी के एक-एक बाल नुच जाते। कितना गुस्सेवर है। होते भी तो जल्लाद हैं। न मरने का ग़म, न जीने की ख़ुशी।

मिर्ज़ा साहब से अंग्रेज़ी में बोले—अब क्या करना चाहिए?

मिर्ज़ा साहब ने चकित नेत्रों से देखा—क्या बताऊँ, कुछ अक़ल काम नहीं करती। मैं आज अपना पिस्तौल घर ही छोड़ आया, नहीं मज़ा चखा देता।

खन्ना रोना मुँह बनाकर बोले—कुछ रुपये देकर किसी तरह इस बला को टालिए।

राय साहब ने मालती की ओर देखा—देवीजी, अब आपकी क्या सलाह है?

मालती का मुख-मण्डल तमतमा रहा था। बोलीं—होगा क्या, मेरी इतनी बेइज्ज़ती हो रही है और आप लोग बैठे देख रहे हैं। बीस मर्दों के होते एक उजड्ड पठान मेरी इतनी दुर्गति कर रहा है और आप लोगों के ख़ून में ज़रा भी गर्मी नहीं आती! आपको जान इतनी प्यारी है? क्यों एक आदमी बाहर जाकर शोर नहीं

मचाता ? क्यों आप लोग उस पर झपटकर उसके हाथ से बन्दूक नहीं छीन लेते ? बन्दूक ही तो चलायेगा ? चलाने दो। एक या दो की जान ही तो जायगी ? जाने दो।

मगर देवीजी मर जाना जितना आसान समझती थीं, और लोग न समझते थे। कोई आदमी बाहर निकलने की फिर हिम्मत करे और पठान गुस्से में आकर दस-पाँच फ़ैर कर दे, तो यहाँ सफ़ाया हो जायगा। बहुत होगा, पुलीस उसे फाँसी की सज़ा दे देगी। वह भी क्या ठीक। एक बड़े क़बीले का सरदार है। उसे फाँसी देते हुए सरकार भी सोच-विचार करेगी। ऊपर से दबाव पड़ेगा। राजनीति के सामने न्याय को कौन पूछता है। हमारे ऊपर उलटे मुक़दमे दायर हो जायँ और दण्डकारी पुलीस बिठा दी जाय, तो आश्चर्य नहीं ; कितने मज़े से हँसी-मज़ाक़ हो रहा था। अब तक ड्रामा का आनन्द उठाते होते। इस शैतान ने आकर एक नई विपत्ति खड़ी कर दी, और ऐसा जान पड़ता है, बिना दो-एक ख़ून किये मानेगा भी नहीं

खन्ना ने मालती को फटकारा—देवीजी, आप तो हमें ऐसा लताड़ रही हैं मानो अपनी प्राण-रक्षा करना कोई पाप है ; प्राण का मोह प्राणीमात्र में होता है और हम लोगों में भी हो, तो कोई लज्जा की बात नहीं। आप हमारी जान इतनी सस्ती समझती हैं, यह देखकर मुझे खेद होता है, एक हज़ार का ही तो मुआमला है। आपके पास मुफ़्त के एक हज़ार हैं, उसे देकर क्यों नहीं विदा कर देतीं ? आप ख़ुद अपनी बेइज़्ज़ती करा रही हैं, इसमें हमारा क्या दोष।

राय साहब ने गर्म होकर कहा—अगर इसने देवीजी को हाथ लगाया, तो चाहे मेरी लाश यहीं तड़पने लगे, मैं उससे भिड़ जाऊँगा। आख़िर वह भी आदमी ही तो है।

मिर्ज़ा साहब ने सन्देह से सिर हिलाकर कहा—राय साहब, आप अभी इन सबों के मिज़ाज से वाक़िफ़ नहीं हैं। यह फ़ैर करना शुरू करेगा, तो फिर किसी को ज़िन्दा न छोड़ेगा। इनका निशाना बेख़ता होता है।

मि० तंखा बेचारे आनेवाले चुनाव की समस्या सुलझाने आये थे। दस-पाँच हज़ार का वारा-न्यारा करके घर जाने का स्वप्न देख रहे थे। यहाँ जीवन ही संकट में पड़ गया। बोले—सबसे सरल उपाय वही है, जो अभी खन्नाजी ने बतलाया। एक

हज़ार ही की बात है और रुपये मौजूद हैं, तो आप लोग क्यों इतना सोच-विचार कर रहे हैं?

मिस मालती ने तंखा को तिरस्कार-भरी आँखों से देखा।

'आप लोग इतने कायर हैं, यह मैं न समझती थी।'

'मैं भी यह न समझता था कि आपको रुपये इतने प्यारे हैं और वह भी मुफ़्त के!'

'जब आप लोग मेरा अपमान देख सकते हैं, तो अपने घर की स्त्रियों का अपमान भी देख सकते होंगे?'

'तो आप भी पैसे के लिए अपने घर के पुरुषों को होम करने में सङ्कोच न करेंगी।'

ख़ान इतनी देर तक झल्लाया हुआ-सा इन लोगों की गिटपिट सुन रहा था। एकाएक गरजकर बोला—अम अब नहीं मानेगा। अम इतनी देर यहाँ खड़ा है। तुम लोग कोई जवाब नहीं देता। (जेब से सीटी निकालकर) अम तुमको एक लहमा और देता है; अगर तुम रुपया नहीं देता, तो अम सीटी बजायेगा और अमारा पचीस जवान यहाँ आ जायगा। बस!

फिर आँखों में प्रेम की ज्वाला भरकर उसने मिस मालती को देखा—

'तुम अमारे साथ चलेगा दिलदार! अम तुम्हारे ऊपर फ़िदा हो जायगा। अपना जान तुम्हारे क़दमों पर रख देगा। इतना आदमी तुम्हारा आशिक़ है; मगर कोई सच्चा आशिक़ नहीं है। सच्चा इश्क़ क्या है, अम दिखा देगा। तुम्हारा इशारा पाते ही अम अपने सीने में ख़ञ्जर चुभा सकता है।'

मिर्ज़ा ने घिघियाकर कहा—देवीजी, ख़ुदा के लिए इस मूज़ी को रुपये दे दीजिए।

खन्ना ने हाथ जोड़कर याचना की—हमारे ऊपर दया करो मिस मालती!

राय साहब तनकर बोले—हर्गिज़ नहीं। आज जो कुछ होना है, हो जाने दीजिए। या तो हम ख़ुद मर जायँगे या इन ज़ालिमों को हमेशा के लिए सबक़ दे देंगे।

तंखा ने राय साहब को डाँट बताई—शेर की माँद में घुसना कोई बहादुरी नहीं है। मैं इसे मूर्खता समझता हूँ।

मगर मिस मालती के मनोभाव कुछ और ही थे। ख़ान के लालसाप्रदीप्त नेत्रों ने उन्हें आश्वस्त कर दिया था और अब इस काण्ड में उन्हें मनचलेपन का आनन्द

आ रहा था। उनका हृदय कुछ देर इन नरपुङ्गवों के बीच में रहकर उनके बर्बर प्रेम का आनन्द उठाने के लिए ललचा रहा था। शिष्ट प्रेम की दुर्बलता और निर्जीवता का उन्हें अनुभव हो चुका था। आज अक्खड़; अनघड़ पठानों के उन्मत्त प्रेम के लिए उनका मन दौड़ रहा था, जैसे संगीत का आनन्द उठाने के बाद कोई मस्त-हाथियों की लड़ाई देखने के लिए दौड़े।

उन्होंने ख़ाँ साहब के सामने आकर निश्शंक भाव से कहा—तुम्हें रुपये नहीं मिलेंगे।

ख़ान ने हाथ बढ़ाकर कहा—तो अम तुमको लूट ले जायगा।

'तुम इतने आदमियों के बीच से मुझे नहीं ले जा सकते।'

'अम तुमको एक हज़ार आदमियों के बीच से ले जा सकता है।'

'तुमको जान से हाथ धोना पड़ेगा।'

'अम अपने माशूक के लिए अपने जिस्म का एक-एक बोटी नुचवा सकता है।'

उसने मालती का हाथ पकड़कर खींचा। उसी वक्त होरी ने कमरे में कदम रखा। वह राजा जनक का माली बना हुआ था और उसके अभिनय ने देहातियों को हँसाते-हँसाते लोटा दिया था। उसने सोचा, मालिक अभी तक क्यों नहीं आये। वह भी तो आकर देखें कि देहाती इस काम में कितने कुशल होते हैं। उनके यार-दोस्त भी देखें। कैसे मालिक को बुलाये? वह अवसर खोज रहा था, और ज्यों ही मुहलत मिली, दौड़ा हुआ यहाँ आया; मगर यहाँ का दृश्य देखकर भौंचक्का-सा खड़ा रह गया। सब लोग चुप्पी साधे, थर-थर काँपते, कातर नेत्रों से ख़ान को देख रहे थे और ख़ान मालती को अपनी तरफ़ खींच रहा था। उसकी सहज बुद्धि ने परिस्थिति का अनुमान कर लिया। उसी वक्त राय साहब ने पुकारा—होरी, दौड़कर जा और सिपाहियों को बुला ला, जल्द दौड़!

होरी पीछे मुड़ा था कि ख़ान ने उसके सामने बन्दूक तानकर डाँटा—कहाँ जाता है सुअर, हम गोली मार देगा।

होरी गँवार था। लाल पगड़ी देखकर उसके प्राण निकल जाते थे; लेकिन मस्त साँड़ पर लाठी लेकर पिल पड़ता था। वह कायर न था, मरना और मारना दोनों ही जानता था; मगर पुलीस के हथकंडों के सामने उसकी एक न चलती थी। बँधे-बँधे कौन फिरे, रिश्वत के रुपये कहाँ से लाये, बाल-बच्चों को किस पर छोड़े;

मगर जब मालिक ललकारते हैं, तो फिर किसका डर। तब तो वह मौत के मुँह में भी कूद सकता है।

उसने झपटकर ख़ान की कमर पकड़ी और ऐसा अड़ंगा मारा कि ख़ान चारों खाने चित ज़मीन पर आ रहे और लगे पुश्तो में गालियाँ देने। होरी उनकी छाती पर चढ़ बैठा और ज़ोर से दाढ़ी पकड़कर खींची। दाढ़ी उसके हाथ में आ गई। ख़ान ने तुरन्त अपनी कुलाह उतार फेंकी और ज़ोर मारकर खड़ा हो गया। अरे! यह तो मिस्टर मेहता हैं। वही!

लोगों ने चारों तरफ़ से मेहता को घेर लिया। कोई उनके गले लगता था, कोई उनकी पीठ पर थपकियाँ देता था और मिस्टर मेहता के चेहरे पर न हँसी थी, न गर्व; चुपचाप खड़े थे, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

मालती ने नकली रोष से कहा—आपने यह बहुरूपपन कहाँ सीखा, मेरा दिल अभी तक धड़-धड़ कर रहा है।

मेहता ने मुसकराते हुए कहा—ज़रा इन भले आदमियों की जवाँमर्दी की परीक्षा ले रहा था। जो गुस्ताख़ी हुई हो, उसे क्षमा कीजिएगा।

७

यह अभिनय जब समाप्त हुआ, तो उधर रंगशाला में धनुष-यज्ञ भी समाप्त हो चुका था और सामाजिक प्रहसन की तैयारी हो रही थी; मगर इन सज्जनों को उससे विशेष दिलचस्पी न थी। केवल मिस्टर मेहता देखने गये और आदि से अन्त तक जमे रहे। उन्हें बड़ा मज़ा आ रहा था। बीच-बीच में तालियाँ बजाते जाते थे और 'फिर कहो, फिर कहो' का आग्रह करके अभिनेताओं को प्रोत्साहन भी देते जाते थे। राय साहब ने इस प्रहसन में एक मुक़दमेबाज़ देहाती ज़मींदार का ख़ाका उड़ाया था। कहने को तो प्रहसन था; मगर करुणा से भरा हुआ। नायक का बात-बात में क़ानून की धाराओं का उल्लेख करना, पत्नी पर केवल इसलिए मुक़दमा दायर कर देना कि उसने भोजन तैयार करने में ज़रा-सी देर कर दी, फिर वकीलों के नख़रे और देहाती गवाहों की चालाकियाँ और झाँसे, पहले गवाही के लिए चट-पट तैयार हो जाना; मगर इजलास पर तलबी के समय ख़ूब मनावन कराना और नाना प्रकार की फरमाइशें करके उल्लू बनाना, ये सभी दृश्य देखकर लोग

हँसी के मारे लोटे जाते थे। सबसे सुन्दर वह दृश्य था, जिसमें वकील गवाहों को उनके बयान रटा रहा था। गवाहों का बार-बार भूलें करना, वकील का बिगड़ना, फिर नायक का देहाती बोली में गवाहों को समझाना और अन्त में इजलास पर गवाहों का बदल जाना, ऐसा सजीव और सत्य था कि मिस्टर मेहता उछल पड़े, और तमाशा समाप्त होने पर नायक को गले लगा लिया और सभी नटों को एक-एक मेडल देने की घोषणा की। राय साहब के प्रति उनके मन में श्रद्धा के भाव जाग उठे। राय साहब स्टेज के पीछे ड्रामा का संचालन कर रहे थे। मेहता दौड़कर उनके गले लिपट गये और मुग्ध होकर बोले—आपकी दृष्टि इतनी पैनी है, इसका मुझे अनुमान न था।

दूसरे दिन जलपान के बाद शिकार का प्रोग्राम था। वहीं किसी नदी के तट पर बाग में भोजन बने, खूब जल-क्रीड़ा की जाय और शाम को लोग घर आयें। देहाती जीवन का आनन्द उठाया जाय। जिन मेहमानों को विशेष काम था, वह तो विदा हो गये, केवल वे ही लोग बच रहे। जिनकी राय साहब से घनिष्ठता थी। मिसेज़ खन्ना के सिर में दर्द था। न जा सकीं, और संपादकजी इस मण्डली से जले हुए थे और इनके विरुद्ध एक लेखमाला निकालकर इनकी ख़बर लेने के विचार में मग्न थे। सब-के-सब छटे हुए गुण्डे हैं। हराम के पैसे उड़ाते हैं और मूँछों पर ताव देते हैं। दुनिया में क्या हो रहा है, इन्हें क्या ख़बर। इनके पड़ोस में कौन मर रहा है इन्हें क्या परवा। इन्हें तो अपने भोग-विलास से काम है। यह मेहता जो फिलासफर बना फिरता है, उसे यही धुन है कि जीवन को संपूर्ण बनाओ। महीने में एक हज़ार मार लाते हो, तुम्हें अख्तियार है जीवन को संपूर्ण बनाओ या परिपूर्ण बनाओ। जिसको यह फ़िक्र दबाये डालती है कि लड़कों का ब्याह कैसे हो, या बीमार स्त्री के लिए वैद्य कैसे आयें या अबकी घर का किराया किसके घर से आयेगा, वह अपना जीवन कैसे संपूर्ण बनाये। छूटे साँड़ बने दूसरों के खेत में मुँह मारते फिरते हो और समझते हो, संसार में सब सुखी हैं। तुम्हारी आँखें तब खुलेंगी, जब क्रान्ति होगी और तुमसे कहा जायगा—बचा, खेत में चलकर हल जोतो। तब देखें, तुम्हारा जीवन कैसे संपूर्ण होता है। और वह जो है मालती, जो बहत्तर घाटों का पानी पीकर भी मिस बनी फिरती है। शादी नहीं करेगी, इससे जीवन बन्धन में पड़ जाता है, और बन्धन में जीवन का पूरा विकास नहीं होता। बस, जीवन का पूरा विकास इसी में है कि दुनिया को लूटे जाओ और निर्द्वन्द्व विलास किये जाओ। सारे बन्धन तोड़ दो, धर्म और समाज को

गोली मारो, जीवन के कर्त्तव्यों को पास न फटकने दो, बस, तुम्हारा जीवन संपूर्ण हो गया। इससे ज़्यादा आसान और क्या होगा। मा-बाप से नहीं पटती, उन्हें धता बताओ; शादी मत करो, यह बन्धन है, बच्चे होंगे, यह मोहपाश है; मगर टैक्स क्यों देते हो? क़ानून भी तो बन्धन है, उसे क्यों नहीं तोड़ते? उससे क्यों कन्नी कटाते हो। जानते हो न कि क़ानून की ज़रा भी अवज्ञा की और बेड़ियाँ पड़ जायँगी। बस वही बन्धन तोड़ो, जिसमें अपनी भोग-लिप्सा में बाधा नहीं पड़ती। रस्सी को साँप बनाकर पीटो और तीसमार खाँ बनो। जीते साँप के पास जाओ ही क्यों। वह फुंकार भी मारेगा, तो लहरें आने लगेंगी। उसे आते देखो, तो दुम दबाकर भागो। यह तुम्हारा सम्पूर्ण जीवन है!

आठ बजे शिकार-पार्टी चली। खन्ना ने कभी शिकार न खेला था, बन्दूक़ की आवाज़ से काँपते थे; लेकिन मिस मालती जा रही थीं, वह कैसे रुक सकते थे। मिस्टर तंखा को अभी तक एलेक्शन के विषय में बातचीत करने का अवसर न मिला था। शायद वहाँ वह अवसर मिल जाय। राय साहब अपने इस इलाक़े में बहुत दिनों से नहीं गये थे। वहाँ, का रंग-ढंग देखना चाहते थे। कभी-कभी इलाक़े में आने-जाने से आदमियों से एक संबन्ध भी हो जाता है और रोब भी रहता है। कारकुन और प्यादे भी सचेत रहते हैं। मिर्ज़ा ख़ुर्शेद को जीवन के नये अनुभव प्राप्त करने का शौक़ था, विशेषकर ऐसे जिनमें कुछ साहस दिखाना पड़े। मिस मालती अकेले कैसे रहतीं। उन्हें तो रसिकों का जमघट चाहिए। केवल मिस्टर मेहता शिकार खेलने के सच्चे उत्साह से जा रहे थे। राय साहब की इच्छा तो थी कि भोजन की सामग्री, रसोइया, कहार, ख़िदमतगार, सब साथ चलें, लेकिन मिस्टर मेहता ने इसका विरोध किया।

खन्ना ने कहा—आख़िर वहाँ भोजन करेंगे या भूखों मरेंगे?

मेहता ने जवाब दिया—भोजन क्यों न करेंगे; लेकिन आज हम लोग ख़ुद अपना सारा काम करेंगे। देखना तो चाहिए कि नौकरों के बग़ैर भी हम ज़िन्दा रह सकते हैं या नहीं। मिस मालती पकायेंगी और हम लोग खायेंगे। देहातों में हाँडियाँ और पत्तल मिल ही जाते हैं, और ईंधन की कोई कमी नहीं। शिकार हम करेंगे ही।

मालती ने गिला किया—क्षमा कीजिए। आपने रात मेरी कलाई इतने ज़ोर से पकड़ी कि अभी तक दर्द हो रहा है।

'काम तो हम लोग करेंगे, आप केवल बताती जाइएगा।'

मिर्ज़ा .खुर्शेद बोले—अजी आप लोग तमाशा देखते रहियेगा। मैं सारा इन्तज़ाम कर दूँगा। बात ही कौन-सी है। जंगल में हाँडी और बर्तन ढूँढ़ना हिमाक़त है। हिरन का शिकार कीजिए, खाइए और वहीं दरख़्त के साये में खर्राटे लीजिए।

यही प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। दो मोटरें चलीं। एक मिस मालती ड्राइव कर रही थीं, दूसरी .खुद राय साहब। कोई बीस-पचीस मील पर पहाड़ी प्रान्त शुरू हो गया। दोनों तरफ ऊँची पर्वतमाला दौड़ी चली जा रही थी। सड़क भी पेचदार होती जाती थी। कुछ दूर की चढ़ाई के बाद एकाएक ढाल आ गया और मोटर नीचे की ओर चली। दूर से नदी का घाट नजर आया, किसी रोगी की भाँति दुर्बल, निःस्पन्द। कगार पर एक घने वटवृक्ष की छाँह में कारें रोक दी गईं और लोग उतरे। यह सलाह हुई कि दो-दो की टोली बने और शिकार खेलकर बारह बजे तक यहाँ आ जायँ। मिस मालती मेहता के साथ चलने को तैयार हो गईं। खन्ना मन में ऐंठकर रह गये। जिस विचार से आये थे, उसमें जैसे पंचर हो गया; अगर जानते, मालती दग़ा देंगी, तो घर लौट जाते; लेकिन राय साहब का साथ उतना रोचक न होते हुए भी बुरा न था। उनसे बहुत-सी मुआमले की बातें करनी थीं। .खुर्शेद और तंखा बच रहे। उनकी टोली बनी-बनाई थी। तीनों टोलियाँ एक-एक तरफ चल दीं।

कुछ दूर तक पथरीली पगडण्डी पर मेहता के साथ चलने के बाद मालती ने कहा—तुम तो चले ही जाते हो। ज़रा दम ले लेने दो।

मेहता मुस्कराये—अभी तो हम एक मील भी नहीं आये। अभी से थक गईं?

'थकी नहीं; लेकिन क्यों न ज़रा दम ले लो।'

'जब तक कोई शिकार हाथ न आ जाय, हमें आराम करने का अधिकार नहीं।'

'मैं शिकार खेलने न आई थी।'

मेहता ने अनजान बनकर कहा—अच्छा! यह मैं न जानता था। फिर क्या करने आई थीं?

'अब तुमसे क्या बताऊँ।'

हिरनों का एक झुण्ड चरता हुआ नज़र आया। दोनों एक चट्टान की आड़ में छिप गये। और निशान बाँधकर गोली चलाई। निशाना खाली गया। झुण्ड भाग निकला।

मालती ने पूछा—अब ?

'कुछ नहीं, चलो, फिर कोई शिकार मिलेगा।'

दोनों कुछ देर तक चुपचाप चलते रहे। फिर मालती ने ज़रा रुककर कहा—गर्मी के मारे बुरा हाल हो रहा है। आओ, एक वृक्ष के नीचे बैठ जायँ।

'अभी नहीं। तुम बैठना चाहती हो, तो बैठो। मैं तो नहीं बैठता।'

'बड़े निर्दयी हो तुम, सच कहती हूँ।'

'जब तक कोई शिकार न मिल जाय, मैं बैठ नहीं सकता।'

'तब तो तुम मुझे मार ही डालोगे। अच्छा बताओ; रात तुमने मुझे इतना क्यों सताया ? मुझे तुम्हारे ऊपर बड़ा क्रोध आ रहा है। याद है, तुमने मुझे क्या कहा था ? तुम हमारे साथ चलेगा दिलदार ! मैं न जानती थी, तुम इतने शरीर हो। अच्छा, सच कहना, तुम उस वक्त मुझे अपने साथ ले जाते ?'

मेहता ने कोई जवाब न दिया, मानो सुना ही नहीं।

दोनों कुछ दूर चलते रहे। एक तो जेठ को धूप, दूसरे पथरीला रास्ता। मालती थककर बैठ गई।

मेहता खड़े-खड़े बोले—अच्छी बात है, तुम आराम कर लो। मैं यहीं आ जाऊँगा।

'मुझे अकेले छोड़कर चले जाओगे ?'

'मैं जानता हूँ, तुम अपनी रक्षा कर सकती हो'

'कैसे जानते हो ?'

'नये युग की देवियों की यही सिफ़त है। वह मर्द का आश्रय नहीं चाहतीं, उससे कंधा मिलाकर चलना चाहती हैं।'

मालती ने झेंपते हुए कहा—तुम कोरे फ़िलासफ़र हो मेहता, सच।

सामने वृक्ष पर एक मोर बैठा हुआ था। मेहता ने निशाना साधा और बन्दूक चलाई। मोर उड़ गया।

मालती प्रसन्न होकर बोली—अच्छा हुआ। बहुत अच्छा हुआ। मेरा शाप पड़ा।

मेहता ने बन्दूक कन्धे पर रखकर कहा—तुमने मुझे नहीं, अपने आपको शाप दिया। शिकार मिल जाता, तो मैं तुम्हें दस मिनट की मुहलत देता। अब तो तुमको फ़ौरन चलना पड़ेगा।

मालती उठकर मेहता का हाथ पकड़ती हुई बोली—फ़िलासफ़रों के शायद हृदय नहीं होता। तुमने अच्छा किया विवाह नहीं किया। उस गरीब को मार ही डालते; मगर मैं यों न छोड़ूँगी। तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकते।

मेहता ने एक झटके से हाथ छुड़ा लिया और आगे बढ़े।

मालती सजल-नेत्र होकर बोली—मैं कहती हूँ, मत जाओ। नहीं मैं इसी चट्टान पर सिर पटक दूँगी।

मेहता ने तेज़ी से कदम बढ़ाये। मालती उन्हें देखती रही। जब वह बीस क़दम निकल गये, तो झुँझलाकर उठी और उनके पीछे दौड़ी। अकेले विश्राम करने में कोई आनन्द न था।

समीप आकर बोली—मैं तुम्हें इतना पशु न समझती थी।

'मैं जो हिरन मारूँगा, उसकी खाल तुम्हें भेंट करूँगा।'

'खाल जाय भाड़ में। मैं अब तुमसे बात न करूँगी।'

'कहीं हम लोगों के हाथ कुछ न लगा और दूसरों ने अच्छे शिकार मारे, तो मुझे बड़ी झेंप होगी।'

एक चौड़ा नाला मुँह फैलाये बीच में खड़ा था। बीच की चट्टानें उसके दाँतों-सी लगती थीं। धार में इतना वेग था कि लहरें उछली पड़ती थीं। सूर्य मध्याह्न पर आ पहुँचा था और उसकी प्यासी किरणें जल में क्रीड़ा कर रही थीं।

मालती ने प्रसन्न होकर कहा—अब तो लौटना पड़ा।

'क्यों? उस पार चलेंगे। वहीं तो शिकार मिलेंगे।'

'धारा में कितना वेग है। मैं तो बह जाऊँगी।'

'अच्छी बात है। तुम यहीं बैठो, मैं जाता हूँ।'

'हाँ, आप जाइए। मुझे अपनी जान से वैर नहीं है।'

मेहता ने पानी में क़दम रखा और पाँव साधते हुए चले। ज्यों-ज्यों आगे जाते थे, पानी गहरा होता जाता था। यहाँ तक कि छाती तक आ गया।

मालती अधीर हो उठी। शंका से मन चंचल हो उठा। ऐसी विकलता तो उसे

कभी न होती थी। ऊँचे स्वर में बोली—पानी गहरा है। ठहर जाओ। मैं भी आती हूँ।

'नहीं, नहीं, तुम फिसल जाओगी। धार तेज़ है।'

'कोई हरज नहीं, मैं आ रही हूँ। आगे न बढ़ना, खबरदार।'

मालती साड़ी ऊपर चढ़ाकर नाले में पैठी; मगर दस हाथ आते-आते पानी उसकी कमर तक आ गया।

मेहता घबड़ाये। दोनों हाथों से उसे लौट जाने को कहते हुए बोले—तुम यहाँ मत आओ मालती! यहाँ तुम्हारी गर्दन तक पानी है।

मालती ने एक क़दम और आगे बढ़कर कहा—होने दो। तुम्हारी यही इच्छा है कि मैं मर जाऊँ, तो तुम्हारे पास ही मरूँगी।

मालती पेट तक पानी में थी। धार इतनी तेज़ थी कि मालूम होता था, कदम उखड़ा। मेहता लौट पड़े और मालती को एक हाथ से पकड़ लिया।

मालती ने नशीली आँखों में रोष भरकर कहा—मैंने तुम्हारे-जैसा बेदर्द आदमी कभी न देखा था। बिल्कुल पत्थर हो। ख़ैर, आज सता लो, जितना सताते बने, मैं भी कभी समझूँगी।

मालतीके पाँव उखड़ते हुए मालूम हुए। वह बन्दूक सँभालती हुई उनसे चिमट गई।

मेहता ने आश्वासन देते हुए कहा—तुम यहाँ खड़ी नहीं रह सकतीं। मैं तुम्हें अपने कन्धे पर बिठाये लेता हूँ।

मालती ने भृकुटी टेढ़ी करके कहा—तो उस पार जाना क्या इतना ज़रूरी है?

मेहता ने कुछ उत्तर न दिया। बन्दूक कनपटी से कन्धे पर दबा ली और मालती को दोनों हाथों से उठाकर कन्धे पर बैठा लिया।

मालती अपनी पुलक को छिपाती हुई बोली—अगर कोई देख ले?

'तो देख ले। इसमें शर्म की क्या बात है?'

'भद्दा तो लगता है।'

दो पग के बाद उसने करुण स्वर में कहा—अच्छा बताओ, मैं यहीं पानी में डूब जाऊँ, तो तुम्हें रंज होगा या नहीं। मैं तो समझती हूँ, तुम्हें बिल्कुल रंज न होगा।

मेहता ने आहत स्वर से कहा—तुम समझती हो, मैं आदमी नहीं हूँ ?

'मैं तो यही समझती हूँ, क्यों छिपाऊँ !'

'सच कहती हो मालती ?'

'तुम क्या समझते हो ?'

'मैं ! कभी बतलाऊँगा ।'

पानी मेहता की गर्दन तक आ गया। कहीं क़दम उठाते ही सिर तक न आ जाय। मालती का हृदय धक्-धक् करने लगा। बोली—मेहता, ईश्वर के लिए अब आगे मत जाओ, नहीं मैं पानी में कूद पड़ूँगी।

उस संकट में मालती को ईश्वर याद आया, जिसका वह मज़ाक उड़ाया करती थी। जानती थी, ईश्वर कहीं बैठा नहीं है जो आकर उन्हें उबार लेगा; लेकिन मन को जिस अवलंबन और शक्ति की ज़रूरत थी, वह और कहाँ मिल सकती थी।

पानी कम होने लगा था। मालती ने प्रसन्न होकर कहा—अब तुम मुझे उतार दो।

'नहीं-नहीं, चुपचाप बैठी रहो। कहीं आगे कोई गढ़ा मिल जाय।'

'तुम समझते होगे, यह कितनी स्वार्थिनी है।'

'मुझे इसकी मजदूरी दे देना।'

मालती के मन में गुदगुदी हुई।

'क्या मजदूरी लोगे ?'

'यही कि जब तुम्हें जीवन में ऐसा ही कोई अवसर आये तो मुझे बुला लेना।'

किनारे आ गये। मालती ने रेत पर अपनी साड़ी का पानी निचोड़ा, जूते का पानी निकाला, मुँह-हाथ धोया; पर ये शब्द अपने रहस्यमय आशय के साथ उसके सामने नाचते रहे।

उसने इस अनुभव का आनन्द उठाते हुए कहा—यह दिन याद रहेगा।

मेहता ने पूछा—तुम बहुत डर रही थीं !

'पहले तो डरी; लेकिन फिर मुझे विश्वास हो गया कि तुम हम दोनों की रक्षा कर सकते हो।'

मेहता ने गर्व से मालती को देखा—उनके मुँह पर परिश्रम की लाली के साथ तेज था।

'मुझे यह सुनकर कितना आनन्द आ रहा है, तुम यह समझ सकोगे मालती ?'

'तुमने समझाया कब । उलटे और जंगलों में घसीटते फिरते हो और अभी फिर लौटती बार यही नाला पार करना पड़ेगा । तुमने कैसी आफ़त में जान डाल दी । मुझे तुम्हारे साथ रहना पड़े, तो एक दिन न पटे ।'

मेहता मुस्कराये । इन शब्दों का संकेत ख़ूब समझ रहे थे

'तुम मुझे इतना दुष्ट समझती हो ! और जो मैं कहूँ कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ । मुझसे विवाह करोगी ?'

'ऐसे काठ-कठोर से कौन विवाह करेगा । रात-दिन जलाकर मार डालोगे ।'

और मधुर नेत्रों से देखा, मानो कह रही हो—इसका आशय तुम ख़ूब समझते हो । इतने बुद्धू नहीं हो ।

मेहता ने जैसे सचेत होकर कहा—तुम सच कहती हो मालती । मैं किसी रमणी को प्रसन्न नहीं रख सकता । मुझसे कोई स्त्री प्रेम का स्वाँग नहीं कर सकती । मैं उसके अन्तस्तल तक पहुँच जाऊँगा । फिर मुझे उससे अरुचि हो जायगी !

मालती काँप उठी । इन शब्दों में कितना सत्य था !

उसने पूछा—अच्छा बताओ, तुम कैसे प्रेम से सन्तुष्ट होगे ?

'बस यही कि जो मन में हो, वही मुख पर हो । मेरे लिए रंग-रूप और हाव-भाव और नाज़ो-अन्दाज़ का मूल्य उतना ही है, जितना होना चाहिए । मैं वह भोजन चाहता हूँ. जिससे आत्मा की तृप्ति हो । उत्तेजक और शोषक पदार्थों की मुझे ज़रूरत नहीं ।'

मालती ने ओंठ सिकोड़कर ऊपर को साँस खींचते हुए कहा—तुमसे कोई पेश न पायगा । एक ही घाघ हो । अच्छा बताओ, मेरे विषय में तुम्हारा क्या ख़याल है !

मेहता ने नटखटपन से मुस्कराकर कहा—तुम सब कुछ कर सकती हो, बुद्धि-मती हो, चतुर हो प्रतिभावान हो, दयालु हो, चंचल हो, स्वाभिमानिनी हो, त्याग कर सकती हो . लेकिन प्रेम नहीं कर सकतीं ।

मालती ने पैनी दृष्टि से ताककर कहा—झूठे हो तुम, बिल्कुल झूठे । मुझे तुम्हारा यह दावा निस्सार मालूम होता है कि तुम नारी-हृदय तक पहुँच जाते हो ।

दोनों नाले के किनारे-किनारे चले जा रहे थे । बारह बज चुके थे; पर अब मालती को न विश्राम की इच्छा थी, न लौटने की । आज के सम्भाषण में उसे एक

ऐसा आनन्द आ रहा था, जो उसके लिए बिल्कुल नया था। उसने कितने ही विद्वानों और नेताओं को एक मुस्कान में, एक चितवन में, एक रसीले वाक्य में उल्लू बनाकर छोड़ दिया था। ऐसी बालू की दीवार पर वह जीवन का आधार नहीं रख सकती थी। आज उसे वह कठोर, ठोस, पत्थर-सी भूमि मिल गई थी, जो फावड़ों से चिनगारियाँ निकाल रही थी और उसकी कठोरता उसे उत्तरोत्तर मोहे लेती थी।

धायँ की आवाज़ हुई। एक लालसर नाले पर उड़ा जा रहा था। मेहता ने निशाना मारा। चिड़िया चोट खाकर भी कुछ दूर उड़ी, फिर बीच धार में गिर पड़ी और लहरों के साथ बहने लगी।

'अब ?'

'अभी जाकर लाता हूँ। जाता कहाँ है।'

यह कहने के साथ वह रेत में दौड़े और बन्दूक किनारे पर रख गड़ाप से पानी में कूद पड़े और बहाव की ओर तैरने लगे; मगर आध मील तक पूरा ज़ोर लगाने पर भी वह चिड़िया न पा सके चिड़िया मरकर भी जैसे उड़ी जा रही थी।

सहसा उन्होंने देखा, एक युवती किनारे की एक झोंपड़ी से निकली, चिड़िया को बहते देखकर साड़ी को जाँघों तक चढ़ाया और पानी में घुस पड़ी। एक क्षण में उसने चिड़िया पकड़ ली और मेहता को दिखाती हुई बोली -- पानी से निकल आओ बाबूजी, तुम्हारी चिड़िया यह है। मेहता युवती की चपलता और साहस देखकर मुग्ध हो गये। तुरत किनारे की ओर हाथ चलाये और दो मिनट में युवती के पास जा खड़े हुए।

युवती का रंग था तो काला और वह भी गहरा, कपड़े बहुत ही मैले और फूहड़, आभूषण के नाम पर केवल हाथों में दो-दो मोटी चूड़ियाँ, सिर के बाल उलझे, अलग-अलग। मुख-मंडल का कोई भाग ऐसा नहीं, जिसे सुन्दर या सुघड़ कहा जा सके; लेकिन उस स्वच्छ, निर्मल जलवायु ने उसके कालेपन में ऐसा लावण्य भर दिया था और प्रकृति की गोद में पलकर उसके अंग इतने सुडौल, सुगठित और स्वच्छन्द हो गये थे कि यौवन का चित्र खींचने के लिए उससे सुन्दर कोई रूप न मिलता। उसका सबल स्वास्थ्य जैसे मेहता के मन में बल और तेज भर रहा था।

मेहता ने उसे धन्यवाद देते हुए कहा—तुम बड़े मौक़े से पहुँच गईं, नहीं मुझे न जाने कितनी दूर तैरना पड़ता।

युवती ने प्रसन्न मुख से कहा—मैंने तुम्हें तैरते आते देखा, तो दौड़ी। सिकार खेलने आये होगे?

'हाँ, आये तो थे शिकार ही खेलने; मगर दोपहर हो गया और यही चिड़िया मिली है।'

'तेंदुआ मारना चाहो, तो मैं उसका ठौर दिखा दूँ। रात को यहाँ रोज पानी पीने आता है। कभी-कभी दोपहर में भी आ जाता है।'

फिर ज़रा सकुचाकर सिर झुकाये हुए बोली—उसकी खाल हमें देनी पड़ेगी। चलो मेरे द्वार पर। वहाँ पीपल की छाया है। यहाँ धूप में कब तक खड़े रहोगे। कपड़े भी तो गीले हो गये हैं।

मेहता ने उसकी देह में चिपकी हुई गीली साड़ी की ओर देखकर कहा—तुम्हारे कपड़े भी तो गीले हैं।

उसने लापरवाही से कहा—ऊँह, हमारा क्या, हम तो जङ्गल के हैं। दिन-दिन भर धूप और पानी में खड़े रहते हैं। तुम थोड़े ही रह सकते हो।

लड़की कितनी समझदार है और बिल्कुल गँवार।

'तुम खाल लेकर क्या करोगी?'

'हमारे दादा बाजार में बेचते हैं। यही तो हमारा काम है।'

'लेकिन दोपहरी यहाँ काटें, तो तुम खिलाओगी क्या?'

युवती ने लजाते हुए कहा—तुम्हारे खाने लायक हमारे घर में क्या है। मक्के की रोटियाँ खाओ, जो धरी हैं। चिड़िये का सालन पका दूँगी। तुम बताते जाना जैसे बनाना हो। थोड़ा-सा दूध भी है। हमारी गैया को एक बार तेंदुए ने घेरा था। उसे सींगों से भगाकर भाग आई, तबसे तेंदुआ उससे डरता है।

'लेकिन मैं अकेला नहीं हूँ। मेरे साथ एक औरत भी है।'

'तुम्हारी घरवाली होगी?'

'नहीं, घरवाली तो अभी नहीं है, जान-पहचान की है।'

'तो मैं दौड़के उनको बुला लाती हूँ। तुम चलकर छाँह में बैठो।'

'नहीं-नहीं, मैं बुला लाता हूँ।'

'तुम थक गये होगे। शहर के रहैया जङ्गल में काहे को आते होगे। हम तो जङ्गली आदमी हैं। किनारे ही तो खड़ी होंगी।'

जब तक मेहता कुछ बोलें, वह हवा हो गई। मेहता ऊपर चढ़कर पीपल की छाँह में बैठे। इस स्वच्छन्द जीवन से उनके मन में अनुराग उत्पन्न हुआ। सामने की पर्वत-माला दर्शन-तत्त्व की भाँति अगम्य और अत्यन्त फैली हुई, मानो ज्ञान का विस्तार कर रही हो, मानो आत्मा उस ज्ञान को, उस प्रकाश को, उस अगम्यता को, उसके प्रत्यक्ष विराट् रूप में देख रही हो। दूर के एक बहुत ऊँचे शिखर पर एक छोटा-सा मन्दिर था, जो उस अगम्यता में बुद्धि की भाँति ऊँचा, पर खोया हुआ-सा खड़ा था, मानो वहाँ तक पर मारकर पक्षी विश्राम लेना चाहता है और कहीं स्थान नहीं पाता।

मेहता इन्हीं विचारों में डूबे हुए थे कि युवती मिस मालती को साथ लिये आ पहुँची, एक वन-पुष्प की भाँति धूप में खिली हुई, दूसरी गमले के फूल की भाँति धूप में मुरझाई और निर्जीव।

मालती ने बेदिली के साथ कहा—पीपल की छाँह बहुत अच्छी लग रही है, क्यों? और यहाँ भूख के मारे प्राण निकले जा रहे हैं।

युवती दो बड़े-बड़े मटके उठा लाई और बोली—तुम जब तक यहीं बैठो, मैं अभी दौड़कर पानी लाती हूँ, फिर चूल्हा जला दूँगी और मेरे हाथ का खाओ, तो मैं एक छन में बाटियाँ सेंक दूँगी, नहीं, अपने आप सेंक लेना। हाँ, गेहूँ का आटा मेरे घर में नहीं है और यहाँ कहीं कोई दूकान भी नहीं है कि ला दूँ।

मालती को मेहता पर क्रोध आ रहा था। बोली—तुम यहाँ क्य आकर पड़ रहे?

मेहता ने चिढ़ाते हुए कहा—एक दिन ज़रा इस जीवन का आनन्द भी तो उठाओ। देखो, मक्के की रोटियों में कितना स्वाद है!

'मुझसे मक्के की रोटियाँ खाई ही न जायँगी, और किसी तरह निगल भी जाऊँ; तो हज़म न होंगी। तुम्हारे साथ आकर मैं बहुत पछता रही हूँ। रास्ते-भर दौड़ा के मार डाला और अब यहाँ लाकर पटक दिया!'

मेहता ने कपड़े उतार दिये थे और केवल एक नीला जाँघिया पहने बैठे हुए थे। युवती को मटके ले जाते देखा, तो उसके हाथ से मटके छीन लिये और कुएँ

पर पानी भरने चले। दर्शन के गहरे अध्ययन में भी उन्होंने अपने स्वास्थ्य की रक्षा की थी और दोनों मटके लेकर चलते हुए उनकी मांसल भुजाएँ और चौड़ी छाती और मछलीदार जाँघें किसी यूनानी प्रतिमा के सुगठित अङ्गों की भाँति उनके पुरुषार्थ का परिचय दे रही थीं युवती उन्हें पानी खींचते हुए अनुराग भरी आँखों से देख रही थी। वह अब उसकी दया के पात्र नहीं, श्रद्धा के पात्र हो गये थे।

कुआँ बहुत गहरा था, कोई साठ हाथ, मटके भारी थे और मेहता कसरत का अभ्यास करते रहने पर भी एक मटका खींचते-खींचते शिथिल हो गये। युवती ने दौड़कर उनके हाथ से रस्सी छीन ली और बोली — तुमसे न खिंचेगा। तुम जाकर खाट पर बैठो, मैं खींचे लेती हूँ।

मेहता अपने पुरुषत्व का यह अपमान न सह सके। रस्सी उसके हाथ से फिर ले ली और जोर मारकर एक क्षण में दूसरा मटका भी खींच लिया और दोनों हाथों में दोनों मटके लिये आकर झोपड़ी के द्वार पर खड़े हो गये। युवती ने चटपट आग जलाई, लालसर के पंख झुलस डाले। छुरे से उसकी बोटियाँ बनाईं और चूल्हे में आग जलाकर मांस चढ़ा दिया और चूल्हे के दूसरे ऐले पर कढ़ाई में दूध उबालने लगी।

और मालती भौंवें चढ़ाये, खाट पर खिन्न-मन पड़ी, इस तरह यह दृश्य देख रही थी, मानो उसके आपरेशन की तैयारी हो रही हो।

मेहता झोपड़ी के द्वार पर खड़े होकर, युवती के गृह-कौशल को अनुरक्त नेत्रों से देखते हुए बोले— मुझे भी तो कोई काम बताओ, मैं क्या करूँ?

युवती ने मीठी झिड़की के साथ कहा— तुम्हें कुछ नहीं करना है, जाकर बाई के पास बैठो, बेचारी बहुत भूखी हैं। दूध गरम हुआ जाता है, उसे पिला देना।

उसने एक घड़े से आटा निकाला और गूँधने लगी। मेहता उसके अंगों का विलास देखते रहे। युवती भी रह-रहकर उन्हें कनखियों से देखकर अपना काम करने लगती थी।

मालती ने पुकारा— तुम वहाँ क्या खड़े हो? मेरे सिर में जोर का दर्द हो रहा है। आधा सिर ऐसा फटा जाता है, जैसे गिर जायगा।

मेहता ने आकर कहा— मालूम होता है, धूप लग गई है।

'मैं क्या जानती थी, तुम मुझे मार डालने के लिए यहाँ ला रहे हो।'

'तुम्हारे साथ कोई दवा भी तो नहीं है?'

'क्या मैं किसी मरीज़ को देखने आ रही थी, जो दवा लेकर चलती ? मेरा एक दवाओं का बक्स है, वह सेमरी में है। उफ़ ! सिर फटा जाता है।'

मेहता ने उसके सिर की ओर ज़मीन पर बैठकर धीरे धीरे उसका सिर सहलाना शुरू किया। मालती ने आँखें बन्द कर लीं।

युवती हाथों में आँटा भरे, सिर के बाल बिखरे, आँखें धुएँ से लाल और सजल, सारी देह पसीने में तर, जिससे उसका उभरा हुआ वक्ष साफ़ झलक रहा था, आकर खड़ी हो गई और मालती को आँखें बन्द किये पड़ी देखकर बोली—बाई को क्या हो गया है ?

मेहता बोले – सिर में बड़ा दर्द है।

'पूरे सिर में है कि आधे में ?'

'आधे में बतलाती हैं।'

'दाईं ओर है, कि बाईं ओर ?'

'बाईं ओर।'

'मैं अभी दौड़के एक दवा लाती हूँ। घिसकर लगाते ही अच्छा हो जायगा।'

'तुम इस धूप में कहाँ जायगी ?'

युवती ने सुना ही नहीं। वेग से एक ओर जाकर पहाड़ियों में छिप गई। कोई आध घण्टे के बाद मेहता ने उसे एक ऊँची पहाड़ी पर चढ़ते देखा। दूर से बिल्कुल गुड़िया-सी लग रही थी। मन में सोचा—इस जंगली छोकरी में सेवा का कितना भाव और कितना व्यावहारिक ज्ञान है। लू और धूप में आसमान पर चढ़ी चली जा रही है।

मालती ने आँखें खोलकर देखा—कहाँ गई वह कलूटी। गज़ब की काली है, जैसे आबनूस का कुन्दा हो। इसे भेज दो, राय साहब से कह आये, कार यहाँ भेज दें। इस तपिश में मेरा दम निकल जायगा।

'कोई दवा लेने गई है। कहती है, उससे आधा-सीसी का दर्द बहुत जल्द आराम हो जाता है।'

इनकी दवाएँ इन्हीं को फ़ायदा करती हैं। मुझे न करेंगी। तुम तो इस छोकरी पर लट्टू हो गये। कितने छिछोरे हो। जैसी रूह वैसे फ़रिश्ते !'

मेहता को कटु सत्य कहने में संकोच न होता था।

'कुछ बातें तो उसमें ऐसी हैं कि अगर तुममें होतीं, तो तुम सचमुच देवी हो जातीं।'

'उसकी ख़ूबियाँ उसे मुबारक, मुझे देवी बनने की इच्छा नहीं है।'

'तुम्हारी इच्छा हो, तो मैं जाकर कार लाऊँ, यद्यपि कार यहाँ आ भी सकेगी, मैं नहीं कह सकता।'

'उस कलूटी को क्यों नहीं भेज देते ?'

'वह तो दवा लेने गई है, फिर भोजन पकायेगी।'

'तो आज आप उसके मेहमान हैं। शायद रात को भी यहीं रहने का विचार होगा। रात को शिकार भी तो अच्छे मिलते हैं।'

मेहता ने इस आक्षेप से चिढ़कर कहा—इस युवती के प्रति मेरे मन में जो प्रेम और श्रद्धा है, वह ऐसी है कि अगर मैं उसकी ओर वासना से देखूँ, तो आँखें फूट जायँ। मैं अपने किसी घनिष्ठ मित्र के लिए भी इस धूप और लू में उस ऊँची पहाड़ी पर न जाता। और हम केवल घड़ी-भर के मेहमान हैं; यह वह जानती है। वह किसी ग़रीब औरत के लिए भी इसी तत्परता से दौड़ जायगी। मैं विश्व-बन्धुत्व और विश्व-प्रेम पर केवल लेख लिख सकता हूँ, केवल भाषण दे सकता हूँ; वह उस प्रेम और त्याग का व्यवहार कर सकती है। कहने से करना कहीं कठिन है। इसे तुम भी जानती हो।

मालती ने उपहास-भाव से कहा—बस बस, वह देवी है। मैं मान गई। उसके वक्ष में उभार है, नितंबों में भारीपन है, देवी होने के लिए और क्या चाहिए।

मेहता तिलमिला उठे। तुरत कपड़े पहने जो सूख गये थे, बन्दूक उठाई और चलने को तैयार हुए। मालती ने फुंकार मारी—तुम नहीं जा सकते, मुझे अकेली छोड़कर।

'तब कौन जायगा ?'

'वही तुम्हारी देवी।'

मेहता हतबुद्धि-से खड़े थे। नारी पुरुष पर कितनी आसानी से विजय पा सकती है, इसका आज उन्हें जीवन में पहला अनुभव हुआ।

वह दौड़ी हाँफती चली आ रही थी। वही कलूटी युवती, हाथ में एक झाड़ लिये हुए। समीप आकर मेहता को कहीं जाने को तैयार देखकर बोली—मैं बट जड़ी खोज लाई। अभी घिसकर लगाती हूँ; लेकिन तुम कहाँ जा रहे हो ? माँस तो पक

गया होगा। मैं रोटियाँ सेंक देती हूँ। दो-एक खा लेना। बाई दूध पी लेगी। ठंडा हो जाय तो चले जाना।

उसने निस्संकोच भाव से मेहता के अचकन के बटन खोल दिये। मेहता अपने को बहुत रोके हुए थे। जी होता था, इस गँवारिन के चरणों को चूम लें।

मालती ने कहा—अपनी दवाई रहने दे। नदी के किनारे, बरगद के नीचे हमारी मोटरकार खड़ी है। वहाँ और लोग होंगे। उनसे कहना, कार यहाँ लावें। दौड़ी हुई जा।

युवती ने दीन नेत्रों से मेहता को देखा। इतनी मेहनत से बूटी लाई, उसका यह अनादर! इस गँवारिन की दवा इन्हें नहीं जँची, तो न सही, उसका मन रखने को ही ज़रा-सी लगवा लेतीं, तो क्या होता?

उसने बूटी ज़मीन पर रखकर पूछा—तब तक तो चूल्हा ठण्डा हो जायगा बाईजी! कहो तो रोटियाँ सेंककर रख दूँ। बाबूजी खाना खा लें, तुम दूध पी लो और दोनों जनें आराम करो। तब तक मैं मोटरवाले को बुला लाऊँगी।

वह झोंपड़ी में गई, बुझी हुई आग फिर जलाई। देखा तो मांस उबल गया था। कुछ जल भी गया था। जल्दी-जल्दी रोटियाँ सेकीं, दूध गर्म था, उसे ठण्डा किया और एक कटोरे में मालती के पास लाई। मालती ने कटोरे के भद्देपन पर मुँह बनाया; लेकिन दूध त्याग न सकी। मेहता झोंपड़ी के द्वार पर बैठकर एक थाली में मांस और रोटियाँ खाने लगे। युवती खड़ी पंखा झल रही थी।

मालती ने युवती से कहा—उन्हें खाने दे। कहीं भागे नहीं जाते हैं। तू जाकर गाड़ी ला।

युवती ने मालती की ओर एक बार सवाल की आँखों से देखा—यह क्या चाहती हैं? इनका आशय क्या है? उसे मालती के चेहरे पर रोगियों की-सी नम्रता और कृतज्ञता और याचना न दिखाई दी। उसकी जगह अभिमान और प्रमाद की झलक थी। गँवारिन मनोभावों के पहचानने में चतुर थी। बोली—मैं किसी की लौंडी नहीं हूँ बाईजी! तुम बड़ी हो, अपने घर की बड़ी हो। मैं तुमसे कुछ माँगने तो नहीं जाती। मैं गाड़ी लेने न जाऊँगी।

मालती ने डाँटा—अच्छा तूने गुस्ताख़ी पर कमर बाँधी! बता तू किसके इलाक़े में रहती है?

'यह राय साहब का इलाका है।'

'तो तुझे उन्हीं राय साहब के हाथों हंटरों से पिटवाऊँगी।'

'मुझे पिटवाने मे तुम्हें सुख मिले, तो पिटवा लेना बाईजी! कोई रानी-महरानी थोड़ी हूँ कि लस्कर भेजना पड़ेगी।'

मेहता ने दो-चार कौर निगले थे कि मालती की यह बातें सुनीं। कौर कण्ठ में अटक गया। जल्दी से हाथ धोया और बोले—वह नहीं जायगी। मैं जा रहा हूँ।

मालती भी खड़ी हो गई—उसे जाना पड़ेगा।

मेहता ने अंग्रेज़ी में कहा—उसका अपमान करके तुम अपना सम्मान बढ़ा नहीं रही हो मालती!

मालती ने फटकार बताई—ऐसी ही लौंडियाँ तो मर्दों को पसन्द आती हैं, जिनमें और कोई गुण हो या न हो, उनकी टहल दौड़-दौड़कर प्रसन्न मन से करें और अपना भाग्य सराहें कि इस पुरुष ने मुझसे यह काम करने को तो कहा! वह देवियाँ हैं, शक्तियाँ हैं, विभूतियाँ हैं। मैं समझती थी, वह पुरुषत्व तुममें कम-से-कम नहीं है; लेकिन अन्दर से, संस्कारों से, तुम भी वही बर्बर हो।

मेहता मनोविज्ञान के पण्डित थे। मालती के मनोरहस्यों को समझ रहे थे। ईर्ष्या का ऐसा अनोखा उदाहरण उन्हें कभी न मिला था। उस रमणी में जो इतनी मृदु-स्वभाव, इतनी उदार, इतनी प्रसन्नमुख थी, ईर्ष्या की ऐसी प्रचण्ड ज्वाला!

बोले—कुछ भी कहो, मैं उसे न जाने दूँगा। उसकी सेवाओं और कृपाओं का यह पुरस्कार देकर मैं अपनी नज़रों में नीच नहीं बन सकता।

मेहता के स्वर में कुछ ऐसा तेज था कि मालती धीरे से उठी और चलने को तैयार हो गई।

उसने जलकर कहा—अच्छा, तो मैं ही जाती हूँ, तुम उसके चरणों की पूजा करके पीछे आना!

मालती दो-तीन कदम चली गई, तो मेहता ने युवती से कहा—अब मुझे आज्ञा दो बहन; तुम्हारा यह स्नेह, तुम्हारी यह निःस्वार्थ सेवा हमेशा याद रहेगी।

युवती ने दोनों हाथों से, सजलनेत्र होकर उन्हें प्रणाम किया और झोंपड़ी के अन्दर चली गई।

× × ×

दूसरी टोली-राय साहब और खन्ना की थी। राय साहब तो अपने उसी रेशमी कुरते और रेशमी चादर में थे। मगर खन्ना ने शिकारी सूट डाँटा था, जो शायद आज ही के लिए बनवाया गया था; क्योंकि खन्ना को असामियों के शिकार से इतनी फुरसत कहाँ थी कि जानवरों का शिकार करते। खन्ना ठिगने, इकहरे, रूपवान् आदमी थे; गेहुआँ रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, मुँह पर चेचक के दाग; बात-चीत में बड़े कुशल।

कुछ दूर चलने के बाद खन्ना ने मिस्टर मेहता का ज़िक्र छेड़ दिया जो कल से ही उनके मस्तिष्क में राहु की भाँति समाये हुए थे।

बोले—यह मेहता भी कुछ अजीब आदमी है। मुझे तो कुछ बना हुआ मालूम होता है।

राय साहब मेहता की इज़्ज़त करते थे और उन्हें सच्चा और निष्कपट आदमी समझते थे; पर खन्ना से लेन-देन का व्यवहार था, कुछ स्वभाव से शान्ति-प्रिय भी थे, विरोध न कर सके। बोले—मैं तो उन्हें केवल मनोरंजन की वस्तु समझता हूँ। कभी उनसे बहस नहीं करता। और करना भी चाहूँ, तो उतनी विद्या कहाँ से लाऊँ। जिसने जीवन के क्षेत्र में कभी कदम ही न रखा, वह अगर जीवन के विषय में कोई नया सिद्धान्त अलापता है, तो मुझे उस पर हँसी आती है। मज़े से एक हज़ार माहवार फटकारते हैं, न जोरू, न जाँता, न कोई चिन्ता, न बाधा। वह दर्शन न बघारें, तो कौन बघारे? आप निर्द्वन्द्व रहकर जीवन को सपूर्ण बनाने का स्वप्न देखते हैं। ऐसे आदमी से क्या बहस की जाय।

'मैंने सुना, चरित्र का अच्छा नहीं है।

'बेफ़िक्री में चरित्र अच्छा रह ही कैसे सकता है। समाज में रहो और समाज के कर्तव्यों और मर्यादाओं का पालन करो, तब पता चले।'

'मालती न जाने क्या देखकर उन पर लट्टू हुई जाती हैं।'

'मैं समझता हूँ, वह केवल तुम्हे जला रही हैं।'

'मुझे वह क्या जलायेंगी बेचारी। मैं उन्हें खिलौने से ज़्यादा नहीं समझता।'

'यह तो न कहो मिस्टर खन्ना, मिस मालती पर जान तो देते हो तुम।'

'यों तो मैं आपको भी यही इलज़ाम दे सकता हूँ।'

'मैं सचमुच खिलौना समझता हूँ। आप उन्हें प्रतिमा बनाये हुए हैं।'

खन्ना ने ज़ोर से क़हक़हा मारा, हालाँकि हँसी की कोई बात न थी।

'अगर एक लोटा जल चढ़ा देने से वरदान मिल जाय, तो क्या बुरा है।'

अबकी राय साहब ने ज़ोर से क़हक़हा मारा, जिसका कोई प्रयोजन न था।

'तब आपने उस देवी को समझा ही नहीं। आप जितना ही उनकी पूजा करेंगे, उतना ही वह आपसे दूर भागेंगी। जितनी ही दूर भागिएगा, उतना ही आपकी ओर दौड़ेंगी।'

'तब तो उन्हें आपकी ओर दौड़ना चाहिए था।'

'मेरी ओर! मैं उस रसिक-समाज से बिल्कुल बाहर हूँ मिस्टर खन्ना, सच कहता हूँ। मुझमें जितनी बुद्धि, जितना बल है, वह इस इलाक़े के प्रबन्ध में ही खर्च हो जाता है। घर के जितने प्राणी हैं, सभी अपनी-अपनी धुन में मस्त, कोई उपासना में, कोई विषय-वासना में। कोऊ काहू में मगन, कोऊ काहू में मगन। और इन सब अजगरों को भक्ष्य देना मेरा काम है, कर्त्तव्य है। मेरे बहुत से ताल्लुक़ेदार भाई भोग-विलास करते हैं, यह मैं जानता हूँ, मगर वह लोग घर फूँककर तमाशा देखते हैं। क़र्ज़ का बोझ सिर पर लदा जा रहा है, रोज़ डिग्रियाँ हो रही हैं, जिससे लेते हैं, उसे देना नहीं जानते, चारों तरफ़ बदनाम। मैं तो ऐसी ज़िन्दगी से मर जाना अच्छा समझता हूँ। मालूम नहीं, किस संस्कार से मेरी आत्मा में ज़रा-सी जान बाक़ी रह गई, जो मुझे देश और समाज के बन्धन में बाँधे हुए है। सत्याग्रह-आन्दोलन छिड़ा। मेरे सारे भाई शराब-कबाब में मस्त थे। मैं अपने को न रोक सका। जेल गया और लाखों रुपये की ज़ेरबारी उठाई, और अभी तक उसका तावान दे रहा हूँ। मुझे उसका पछतावा नहीं है। बिल्कुल नहीं। मुझे उसका गर्व है। मैं उस आदमी को आदमी नहीं समझता, जो देश और समाज की भलाई के लिए उद्योग न करे, और बलिदान न करे। मुझे क्या यह अच्छा लगता है कि निर्जीव किसानों का रक्त चूसूँ और अपने परिवारवालों की वासनाओं की तृप्ति के साधन जुटाऊँ; मगर करूँ क्या? जिस व्यवस्था में पला और जिया, उससे घृणा होने पर भी उसका मोह त्याग नहीं सकता और उसी चरखे में रात-दिन पड़ा रहता हूँ कि किसी तरह इज्ज़त-आबरू बची रहे, और आत्मा की हत्या न होने पाये। ऐसा आदमी मिस मालती क्या, किसी भी मिस के पीछे नहीं पड़ सकता, और पड़े तो उसका सर्वनाश ही समझिए। हाँ, थोड़ा-सा मनोरंजन कर लेना दूसरी बात है।'

मिस्टर खन्ना भी साहसी आदमी थे, संग्राम में आगे बढ़नेवाले। दो बार जेल हो आये थे। किसी से दबना न जानते थे। खद्दर पहनते थ। और फ्रांस को शराब पीते थ। अवसर पड़ने पर बड़ी-बड़ी तकलीफ़ें झेल सकते थे। जेल में शराब छुई तक नहीं, और ए० क्लास में रहकर भी सी० क्लास की रोटियाँ खाते रहे, हालाँकि उन्हें हर तरह का आराम मिल सकता था; मगर रण-क्षेत्र में जानेवाला रथ भी तो बिना तेल के नहीं चल सकता! उनके जीवन में थोड़ी-सी रसिकता लाजिमी थी। बोले—आप संन्यासी बन सकते हैं, मैं तो नहीं बन सकता। मैं तो समझता हूँ, जो भोगी नहीं है, वह संग्राम में भी पूरे उत्साह से नहीं जा सकता। जो रमणी से प्रेम नहीं कर सकता, उसके देश-प्रेम में मुझे विश्वास नहीं।

राय साहब मुस्कराये—आप मुझी पर आवाज़ें कसने लगे।

'अवाज़ा नहीं है, तत्त्व की बात है।'

'शायद हो।'

'आप अपने दिल के अन्दर पैठ कर देखिए तो पता चले।'

'मैंने तो पैठकर देखा है, और आपको विश्वास दिलाता हूँ, वहाँ और चाहे जितनी बुराइयाँ हों, विषय की लालसा नहीं है।'

'तब मुझे आपके ऊपर दया आती है। आप जो इतने दुखी और निराश और चिन्तित हैं, इसका एकमात्र कारण आपका निग्रह है। मैं तो यह नाटक खेलकर रहूँगा, चाहे दुःखान्त ही क्यों न हो? वह मुझसे मज़ाक़ करती हैं, दिखाती हैं कि मुझे तेरी परवा नहीं है; लेकिन मैं हिम्मत हारनेवाला मनुष्य नहीं हूँ। मैं अब तक उनका मिज़ाज पहचान नहीं पाया। कहाँ निशाना ठीक बैठेगा, इसका निश्चय न कर सका।'

'लेकिन वह कुंजी आपको शायद ही मिले। मेहता शायद आपसे बाज़ी मार ले जायँ।'

एक हिरन कई हिरनियों के साथ चर रहा था, बडे सींगोंवाला, बिलकुल काला। राय साहब ने निशाना बाँधा। खन्ना ने रोका—क्यों हत्या करते हो यार? बेचारा चर रहा है, चरने दो। धूप तेज़ हो गई है, आइए कहीं बैठ जायँ। आपसे कुछ बातें करनी हैं।

राय साहब ने बन्दूक चलाई; मगर हिरन भाग गया। बोले—एक शिकार मिला भी तो निशाना ख़ाली गया।

'एक हत्या से बचे।'

'हाँ कहिए, क्या बात करने को कह रहे थे?'

'आपके इलाक़े में ऊख होती है?'

'बड़ी कसरत से।'

'तो फिर क्यों न हमारे शुगर मिल में शामिल हो जाइए। हिस्से धड़ाधड़ बिक रहे हैं। आप ज़्यादा नहीं, एक हज़ार हिस्से ख़रीद लें।'

'ग़ज़ब किया, मैं इतने रुपये कहाँ से लाऊँगा?'

'इतने नामी इलाक़ेदार और आपको रुपयों की कमी! कुल पचास हज़ार ही तो होते हैं। उसमें भी अभी २५ फी सदी ही देना है।'

'नहीं भाई साहब, मेरे पास इस वक्त बिल्कुल रुपये नहीं हैं।'

'रुपये जितने चाहें, मुझसे लीजिए। बैंक आपका है। हाँ, अभी आपने अपनी ज़िन्दगी इंश्योर्ड न कराई होगी। मेरी कंपनी में एक अच्छी-सी पालिसी लीजिए। सौ-दो-सौ रुपये तो आप बड़ी आसानी से हर महीने दे सकते हैं और इकट्ठी रक़म मिल जायगी चालीस-पचास हज़ार। लड़कों के लिए इससे अच्छा प्रबन्ध आप नहीं कर सकते। हमारी नियमावली देखिए। हम पूर्ण सहकारिता के सिद्धान्त पर काम करते हैं। दफ़्तर और कर्मचारियों के ख़र्च के सिवा नफ़े की एक पाई भी किसी की जेब में नहीं जाती। आपको आश्चर्य होगा कि इस नीति से कंपनी चल कैसे रही है। और मेरी सलाह से थोड़ा-सा स्पेकुलेशन का काम भी शुरू कर दीजिए। यह जो आज सैकड़ों करोड़पति बने हुए हैं, सब इसी स्पेकुलेशन से बने हैं। रुई, शक्कर, गेहूँ, रबर किसी जिन्स का सट्टा कीजिए। मिनटों में लाखों का वारा-न्यारा होता है। काम ज़रा अटपटा है। बहुत से लोग गच्चा खा जाते हैं; लेकिन वही, जो अनाड़ी हैं। आप जैसे अनुभवी, सुशिक्षित और दूरन्देश लोगों के लिए तो इससे ज़्यादा नफ़े का काम ही नहीं। बाज़ार का चढ़ाव-उतार कोई आकस्मिक घटना नहीं। इसका भी विज्ञान है। एक बार उसे ग़ौर से देख लीजिए, फिर क्या मजाल कि धोखा हो जाय।'

राय साहब कंपनियों पर अविश्वास करते थे, दो-एक बार इसका उन्हें कड़ुवा अनुभव हो भी चुका था, लेकिन मिस्टर खन्ना को उन्होंने अपनी आँखों से बढ़ते

देखा था और उनकी कार्यदक्षता के क़ायल हो गये थे। अभी दस साल पहले जो व्यक्ति बैंक में क्लर्क था, वह केवल अपने अध्यवसाय, पुरुषार्थ और प्रतिभा से शहर में पुजता है। उसकी सलाह की उपेक्षा न की जा सकती थी। इस विषय में अगर खन्ना उनके पथप्रदर्शक हो जायँ, तो उन्हें बहुत कुछ कामयाबी हो सकती है। ऐसा अवसर क्यों छोड़ा जाय। तरह-तरह के प्रश्न करते रहे।

सहसा एक देहाती एक बड़ी-सी टोकरी में कुछ जड़ें, कुछ पत्तियाँ, कुछ फूल लिये जाता नज़र आया।

खन्ना ने पूछा—अरे, क्या बेचता है?

देहाती सकपका गया। डरा, कहीं बेगार में न पकड़ जायँ। बोला—कुछ तो नहीं मालिक! यही घास-पात है।

'क्या करेगा इनको?'

'बेचूँगा मालिक! जड़ी-बूटी है।'

'कौन-कौन-सी जड़ी-बूटी है, बता?'

देहाती ने अपना औषधालय खोलकर दिखलाया। मामूली चीज़ें थीं जो जंगल के आदमी उखाड़कर ले जाते हैं और शहर में अत्तारों के हाथ दो-चार आने में बेच आते हैं। जैसे मकोय, कंघी, सहदेइया, कुकरौंधे, धतूरे के बीज, मदार के फूल, करंजे, घुमची आदि। हरएक चीज़ दिखाता था और रटे हुए शब्दों में उसके गुण भी बयान करता जाता था। यह मकोय है सरकार! ताप हो, मंदागिन हो, तिल्ली हो, धड़कन हो, शूल हो, खाँसी हो, एक खेराक में आराम हो जाता है। यह धतूरे के बीज हैं मालिक, गठिया हो, बाई हो...

खन्ना ने दाम पूछा—उसने आठ आने कहे। खन्ना ने एक रुपया फेंक दिया और उसे पड़ाव तक रख आने का हुक्म दिया। ग़रीब ने मुँह-माँगा दाम ही नहीं पाया, उसका दुगुना पाया। आशीर्वाद देता चला गया।

राय साहब ने पूछा—आप यह घास-पात लेकर क्या करेंगे?

खन्ना ने मुस्कराकर कहा—इनको अशर्फ़ियाँ बनाऊँगा। मैं कीमियागर हूँ। यह आपको शायद नहीं मालूम।

'तो यार, वह मन्त्र हमें सिखा दो।'

'हाँ-हाँ, शौक से। मेरी शागिर्दी कीजिए। पहले सवा सेर लड्डू लाकर चढ़ा-

इए, बत बताऊँगा। बात यह है कि मेरा तरह-तरह के आदमियों से साबका पड़ता है। कुछ ऐसे लोग भी आते हैं, जो जड़ी-बूटियों पर जान देते हैं। उनको इतना मालूम हो जाय कि यह किसी फ़क़ीर की दी हुई बूटी है, फिर आपकी खुशामद करेंगे, नाक रगड़ेंगे और आप वह चीज़ उन्हें दे दें, तो हमेशा के लिए आपके ऋणी हो जायँगे। एक रुपये में अगर दस-बीस बुद्धुओं पर एहसान का नमदा कसा जा सके, तो क्या बुरा है। ज़रा-से एहसान से बड़े-बड़े काम निकल जाते हैं।'

राय साहब ने कुतूहल से पूछा—मगर इन बूटियों के गुण आपको याद कैसे रहेंगे?

खन्ना ने कहकहा मारा—आप भी राय साहब! बड़े मजे की बातें करते हैं। जिस बूटी में जो गुण चाहे बता दीजिए, वह आपकी लियाकत पर मुनहसर है। सेहत तो रुपये में आठ आने विश्वास से होती है। आप जो इन बड़े-बड़े अफ़सरों को देखते हैं, और इन लम्बी पूँछवाले विद्वानों को, और इन रईसों को, ये सब अन्धविश्वासी होते हैं। मैं तो बनस्पति-शास्त्र के प्रोफेसरों को जानता हूँ जो कुकरौंधे का नाम भी नहीं जानते। इन विद्वानों का मज़ाक़ तो हमारे स्वामीजी खूब उड़ाते हैं। आपको तो कभी उनके दर्शन न हुए होंगे। अबकी आप आयेंगे, तो उनसे मिलाऊँगा। जबसे मेरे बगीचे में ठहरे हैं, रात-दिन लोगों का ताँता लगा रहता है। माया तो उन्हें छू भी नहीं गई। केवल एक बार दूध पीते हैं। ऐसा विद्वान् महात्मा मैंने आज तक नहीं देखा। न जाने कितने वर्ष हिमालय पर तप करते रहे। पूरे सिद्ध पुरुष हैं। आप उनसे अवश्य दीक्षा लीजिए। मुझे विश्वास है, आपकी यह सारी कठिनाइयाँ छू मन्तर हो जायँगी। आपको देखते ही आपका भूत-भविष्य सब कह सुनायेंगे। ऐसे प्रसन्नमुख हैं कि देखते ही मन खिल उठता है। ताज्जुब तो यह है कि खुद इतने बड़े महात्मा हैं; मगर संन्यास और त्याग, मंदिर और मठ, संप्रदाय और ग्रन्थ, इन सबको ढोंग कहते हैं, पाखण्ड। कहते हैं रूढ़ियों के बन्धन को तोड़ो और मनुष्य बनो। देवता बनने का खयाल छोड़ो। देवता बनकर तुम मनुष्य न रहोगे।

राय साहब के मन में शंका हुई। महात्माओं में उन्हें भी वह विश्वास था, जो प्रभुतावालों में आमतौर पर होता है। दुःखी प्राण को आत्म-चिन्तन में जो शान्ति मिलती है, उसके लिए वह भी लालायित रहते थे। जब आर्थिक कठिनाइयों

से निराश हो जाते, मन में आता, संसार से मुँह मोड़कर एकान्त में जा बैठें और मोक्ष की चिन्ता करें। संसार के बन्धनों को वह भी साधारण मनुष्यों की भाँति आत्मोन्नति के मार्ग की बाधाएँ समझते थे और इनसे दूर हो जाना ही उनके जीवन का भी आदर्श था ; लेकिन संन्यास और त्याग के बिना बन्धनों को तोड़ने का और क्या उपाय है ?'

'लेकिन जब वह संन्यास को ढोंग कहते हैं, तो ख़ुद क्यों संन्यास लिया है ?'

'उन्होंने संन्यास कब लिया है साहब, वह तो कहते हैं, आदमी को अन्त तक कर्म करते रहना चाहिए। विचार-स्वातन्त्र्य उनके उपदेशों का तत्त्व है।'

'मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है। विचार-स्वातन्त्र्य का आशय क्या है ?'

'समझ में तो मेरी भी कुछ नहीं आया, अबकी आइए, तो उनसे बातें हों। वह प्रेम को जीवन का सत्य कहते हैं और इसकी ऐसी सुन्दर व्याख्या करते हैं कि मन मुग्ध हो जाता है।'

'मिस मालती को उनसे मिलाया या नहीं ?'

'आप भी दिल्लगी करते हैं। मालती को भला इनसे क्या मिलता...'

वाक्य पूरा न हुआ था कि वह सामने की झाड़ी में सरसराहट की आवाज़ सुनकर चौंक पड़े और प्राण-रक्षा की प्रेरणा से राय साहब के पीछे आ गये। झाड़ी में से एक तेंदुआ निकला और मन्द-गति से सामने की ओर चला।

राय साहब ने बन्दूक उठाई और निशाना बाँधना चाहते थे कि खन्ना ने कहा—यह क्या करते हैं आप ? ख़्वाहमख़्वाह उसे छेड़ रहे हैं ! कहीं लौट पड़े तो ?

'लौट क्या पड़ेगा, वहीं ढेर हो जायगा।'

'तो मुझे उस टीले पर चढ़ जाने दीजिए। मैं शिकार का ऐसा शौक़ीन नहीं हूँ।'

'तब क्या शिकार खेलने चले थे ?'

'शामत और क्या।'

राय साहब ने बन्दूक़ नीचे कर ली।

'बड़ा अच्छा शिकार निकल गया। ऐसे अवसर कम मिलते हैं।'

'मैं तो अब यहाँ नहीं ठहर सकता। ख़तरनाक जगह है।'

'एकाध शिकार तो मार लेने दीजिए। ख़ाली हाथ लौटते शर्म आती है।'

'आप मुझे कृपा करके कार के पास पहुँचा दीजिए, फिर चाहे तेंदुए का शिकार कीजिए या चीते का।'

'आप बड़े डरपोक हैं मिस्टर खन्ना, सच।'

'व्यर्थ में अपनी जान खतरे में डालना बहादुरी नहीं है।'

'अच्छा तो आप खुशी से लौट सकते हैं।'

'अकेला?'

'रास्ता बिल्कुल साफ़ है।'

'जी नहीं। आपको मेरे साथ चलना पड़ेगा।'

राय साहब ने बहुत समझाया; मगर खन्ना ने एक न मानी। मारे भय के उनका चेहरा पीला पड़ गया था। उस वक्त अगर झाड़ी में से एक गिलहरी भी निकल आती, तो वह चीख मारकर गिर पड़ते। बोटी-बोटी काँप रही थी। पसीने से तर हो गये थे। राय साहब को लाचार होकर उनके साथ लौटना पड़ा।

जब दोनों आदमी बड़ी दूर निकल आये, तो खन्ना के होश ठिकाने आये।

बोले—खतरे से नहीं डरता; लेकिन खतरे के मुँह में उँगली डालना हिमाक़त है।

'अजी जाओ भी। ज़रा-सा तेंदुआ देख लिया, तो जान निकल गई।'

'मैं शिकार खेलना उस ज़माने का संस्कार समझता हूँ, जब आदमी पशु था। तबसे संस्कृति बहुत आगे बढ़ गई।'

'मैं मिस मालती से आपकी क़लई खोलूँगा।'

'मैं अहिंसावादी होना लज्जा की बात नहीं समझता।'

'अच्छा, तो यह आपका अहिंसावाद था। शाबाश!'

खन्ना ने गर्व से कहा—जी हाँ, यह मेरा अहिंसावाद था। आप बुद्ध और शंकर के नाम पर गर्व करते हैं और पशुओं की हत्या करते हैं, लज्जा आपको आनी चाहिए, न कि मुझे।

कुछ दूर दोनों फिर चुपचाप चलते रहे। तब खन्ना बोले—तो आप कब तक आयेंगे? मैं चाहता हूँ, आप पालिसी का फ़ार्म आज ही भर दें और शक्कर के हिस्सों का भी। मेरे पास दोनों फ़ार्म मौजूद हैं।

राय साहब ने चिन्तित स्वर में कहा—ज़रा सोच लेने दीजिए।

'इसमें सोचने की ज़रूरत नहीं ।'

× × ×

तीसरा टोली मिर्ज़ा ख़ुर्शेद और मिस्टर तंखा की थी। मिर्ज़ा ख़ुर्शेद के लिए भूत और भविष्य सादे कागज़ की भाँति था। वह वर्तमान में रहते थे। न भूत का पछतावा था, न भविष्य की चिन्ता। जो कुछ सामने आ जाता था, उसमें जी-जान से लग जाते थे। मित्रों की मंडली में वह विनोद के पुतले थे। कौंसिल में उनसे ज़्यादा उत्साही मेम्बर कोई न था। जिस प्रश्न के पीछे पड़ जाते, मिनिस्टरों को रुला देते। किसी के साथ रू-रिआयत करना न जानते थे। बीच-बीच में परिहास भी करते जाते थे। उनके लिए आज जीवन था, कल का पता नहीं। गुस्सेवर भी ऐसे थे कि ताल ठोंककर सामने आ जाते थे। नम्रता के सामने दंडवत् करते थे; लेकिन जहाँ किसी ने शान दिखाई और यह हाथ धोकर उसके पीछे पड़े। न अपना लेना याद रखते थे, न दूसरों का देना। शौक़ था शायरी का और शराब का। औरत केवल मनोरंजन की वस्तु थी। बहुत दिन हुए हृदय का दिवाला निकाल चुके थे।

मिस्टर तंखा दाँव-पेंच के आदमी थे, सौदा पटाने में, मुआमला सुलझाने में, अड़ंगा लगाने में, बालू से तेल निकालने में, गला दबाने में, दुम झाड़कर निकल जाने में बड़े सिद्धहस्त। कहिए रेत में नाव चला दें, पत्थर पर दूब उगा दें। ताल्लुकेदारों को महाजनों से क़र्ज दिलाना, नई कंपनियाँ खोलना, चुनाव के अवसर पर उम्मेदवार खड़े करना, यही उनका व्यवसाय था। ख़ासकर चुनाव के समय उनकी तक़दीर चमकती थी। किसी पोढ़े उम्मेदवार को खड़ा करते, दिलोजान से उसका काम करते और दस-बीस हज़ार बना लेते। जब कांग्रेस का ज़ोर था तो कांग्रेस के उम्मेदवारों के सहायक थे। जब साम्प्रदायिक दल का ज़ोर हुआ, तो हिन्दू-सभा की ओर से काम करने लगे; मगर इस उलट-फेर के समर्थन के लिए उनके पास ऐसी दलीलें थीं कि कोई उँगली न दिखा सकता था। शहर के सभी रईस, सभी हुक्काम, सभी अमीरों से उनका याराना था। दिल में चाहे लोग उनकी नीति पसन्द न करें; पर वह स्वभाव के इतने नम्र थे कि कोई मुँह पर कुछ न कह सकता था।

मिर्ज़ा ख़ुर्शेद ने रूमाल से माथे का पसीना पोंछकर कहा—आज तो शिकार खेलने के लायक़ दिन नहीं है। आज तो कोई मुशायरा होना चाहिए था।

वकील ने समर्थन किया—जी हाँ, वहीं बाग़ में। बड़ी बहार रहती।

थोड़ी देर के बाद मिस्टर तंखा ने मामले की बात छेड़ी।

'अबकी चुनाव में बड़े-बड़े गुल खिलेंगे। आपके लिए भी मुश्किल है।'

मिर्ज़ा विरक्त मन से बोले—अबकी मैं खड़ा ही न हूँगा।

तंखा ने पूछा—क्यों?

'मुफ्त की बकबक कौन करे। फ़ायदा ही क्या। मुझे अब इस डेमाक्रेसी में भक्ति नहीं रही। ज़रा-सा काम और महीनों की बहस। हाँ, जनता की आँखों में धूल झोंकने के लिए अच्छा स्वाँग है। इससे तो कहीं अच्छा है कि एक गवर्नर रहे, चाहे वह हिन्दुस्तानी हो, या अंग्रेज़, इससे बहस नहीं। एक इंजिन जिस गाड़ी को बड़े मज़े से हज़ारों मील खींच ले जा सकता है, उसे दस हज़ार आदमी मिलकर भी उतनी तेज़ी से नहीं खींच सकते। मैं तो यह सारा तमाशा देखकर कौंसिल से बेज़ार हो गया हूँ। मेरा बस चले,तो कौंसिलों में आग लगा दूँ। जिसे हम डेमाक्रेसी कहते हैं, वह व्यवहार में बड़े-बड़े व्यापारियों और ज़मींदारों का राज्य है। और कुछ नहीं। चुनाव में वही बाज़ी ले जाता है, जिसके पास रुपये हैं। रुपये के ज़ोर से उसके लिए सभी सुविधाएँ तैयार हो जाती है। बड़े-बड़े पण्डित, बड़े-बड़े मौलवी, बड़े-बड़े लिखने और बोलनेवाले, जो अपनी ज़बान और क़लम से पबलिक को जिस तरफ़ चाहें फेर दें, सभी सोने के देवता के पैरों पर माथा रगड़ते हैं। मैंने तो इरादा कर लिया है, अब एलेक्शन के पास न जाऊँगा। मेरा प्रोपेगंडा अब डेमाक्रेसी के ख़िलाफ़ होगा।'

मिर्ज़ा साहब ने क़ुरान की आयतों से सिद्ध किया कि पुराने ज़माने के बादशाहों के आदर्श कितने ऊँचे थे। आज तो हम उसकी तरफ़ ताक भी नहीं सकते। हमारी आँखों में चकाचौंध आ जायगी। बादशाह को ख़ज़ाने की एक कौड़ी भी निजी ख़र्च में लाने का अधिकार न था। वह किताबें नक़ल करके, कपड़े सीकर, लड़कों को पढ़ाकर अपना गुज़र करता था। मिर्ज़ा ने आदर्श महीपों की एक लंबी सूची गिना दी। कहाँ तो वह प्रजा को पालनेवाले बादशाह, और कहाँ आजकल के मन्त्री और मिनिस्टर, पाँच, छः, सात, आठ हज़ार माहवार मिलना चाहिए। यह लूट है या डेमाक्रेसी!

हिरनों का एक झुण्ड चरता हुआ नज़र आया। मिर्ज़ा के मुख पर शिकार का जोश चमक उठा। बन्दूक़ सँभाली और निशाना मारा। एक काला-सा हिरन गिर

पड़ा। वह मारा! इस उन्मत्त ध्वनि के साथ मिर्ज़ा भी बेतहाशा दौड़े। बिल्कुल बच्चों की तरह उछलते-कूदते, तालियाँ बजाते।

समीप ही एक वृक्ष पर एक आदमी लकड़ियाँ काट रहा था। वह भी चटपट वृक्ष से उतरकर मिर्ज़ाजी के साथ दौड़ा। हिरन की गर्दन में गोली लगी थी, उसके पैरों में कम्पन हो रहा था और आँखें पथरा गई थीं।

लकड़हारे ने हिरन को करुण नेत्रों से देखकर कहा—अच्छा पट्ठा था, मन-भर से कम न होगा। हुकुम हो, तो मैं उठाकर पहुँचा दूँ?

मिर्ज़ा कुछ बोले नहीं। हिरन की टँगी हुई, दीन बेदना से भरी आँखें देख रहे थे। अभी एक मिनट पहले इसमें जीवन था। ज़रा-सा पत्ता भी खड़कता, तो कान खड़े करके चौकड़ियाँ भरता हुआ निकल भागता। अपने मित्रों और बाल-बच्चों के साथ ईश्वर की उगाई हुई घास खा रहा था; मगर अब निःस्पन्द पड़ा है। उसकी खाल उधेड़ लो, उसकी बोटियाँ कर डालो, उसका क़ीमा बना डालो, उसे ख़बर न होगी। उसके क्रीड़ामय जीवन में जो आकर्षण था, जो आनन्द था, वह क्या इस निर्जीव शव में है? कितना सुन्दर गठन था, कितनी प्यारी आँखें, कितनी मनोहर छबि? उसकी छलांगें हृदय में आनन्द की तरंगें पैदा कर देती थीं, उसकी चौकड़ियों के साथ हमारा मन भी चौकड़ियाँ भरने लगता था। उसकी स्फूर्ति जीवन-सा बिखेरती चलती थी, जैसे फूल सुगन्ध बिखेरता है; लेकिन अब? उसे देखकर ग्लानि होती है।

लकड़हारे ने पूछा—कहाँ पहुँचाना होगा मालिक? मुझे भी दो-चार पैसे दे देना।

मिर्ज़ाजी जैसे ध्यान से चौंक पड़े। बोले—अच्छा उठा ले। कहाँ चलेगा?

'जहाँ हुकुम हो मालिक!'

'नहीं, जहाँ तेरी इच्छा हो, वहाँ ले जा। मैं तुझे देता हूँ।'

लकड़हारे ने मिर्ज़ा की ओर कुतूहल से देखा। कानों पर विश्वास न आया।

'अरे नहीं मालिक, हजूर ने सिकार किया है, तो हम कैसे खा लें।'

'नहीं-नहीं, मैं ख़ुशी से कहता हूँ, तुम इसे ले जाओ। तुम्हारा घर यहाँ से कितनी दूर है?'

'कोई आधा कोस होगा मालिक!'

'तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। देखूँगा, तुम्हारे बाल-बच्चे कैसे ख़ुश होते हैं।'

'ऐसे तो मैं न ले जाऊँगा सरकार! आप इतनी दूर से आये, इस कड़ी धूप में सिकार किया, मैं कैसे उठा ले जाऊँ?'

'उठा-उठा देर न कर। मुझे मालूम हो गया तू भला आदमी है।'

लकड़हारे ने डरते-डरते और रह-रहकर मिर्ज़ाजी के मुख की ओर सशंक नेत्रों से देखते हुए कि कहीं बिगड़ न जायँ, हिरन को उठाया। सहसा उसने हिरन को छोड़ दिया और खड़ा होकर बोला—मैं समझ गया मालिक, हुजूर ने इसकी हलाली नहीं की।

मिर्ज़ाजी ने हँसकर कहा—बस-बस, तूने खूब समझा। अब उठा ले और घर चल।

मिर्ज़ाजी धर्म के इतने पाबन्द न थे। दस साल से उन्होंने नमाज़ न पढ़ी थी। दो महीने में एक दिन व्रत रख लेते थे। बिलकुल निराहार, निर्जल; मगर लकड़हारे को इस ख़याल से जो सन्तोष हुआ था कि हिरन अब इन लोगों के लिए अखाद्य हो गया है, उसे फीका न करना चाहते थे।

लकड़हारे ने हलके मन से हिरन को गरदन पर रख लिया और घर की ओर चला। तंखा अभी तक तटस्थ-से वहीं पेड़ के नीचे खड़े थे। धूप में हिरन के पास जाने का कष्ट क्यों उठाते। कुछ समझ में न आ रहा था कि मुआमला क्या है; लेकिन जब लकड़हारे को उल्टी दिशा में जाते देखा, तो आकर मिर्ज़ा से बोले—आप उधर कहाँ जा रहे हैं हज़रत! क्या रास्ता भूल गये?

मिर्ज़ा ने अपराधी भाव से मुस्कराकर कहा—मैंने शिकार इस गरीब आदमी को दे दिया। अब ज़रा इसके घर चल रहा हूँ। आप भी आइए न!

तंखा ने मिर्ज़ा को कुतूहल की दृष्टि से देखा और बोले—आप अपने होश में हैं या नहीं?

'कह नहीं सकता। मुझे ख़ुद नहीं मालूम।'

'शिकार इसे क्यों दे दिया?'

'इसी लिए कि उसे पाकर इसे जितनी ख़ुशी होगी, मुझे या आपको न होगी।'

तंखा खिसियाकर बोले—जाइए! सोचा था, ख़ूब कबाब उड़ायेंगे, सो आपने

सारा मज़ा किरकिरा कर दिया। ख़ैर, राय साहब और मेहता कुछ न कुछ लायेंगे ही। कोई ग़म नहीं। मैं इस एलेक्शन के बारे में कुछ अर्ज़ करना चाहता हूँ। आप नहीं खड़ा होना चाहते, न सही, आपकी जैसी मर्ज़ी; लेकिन आपको इसमें क्या ताम्मुल है कि जो लोग खड़े हो रहे हैं, उनसे इसकी अच्छी क़ीमत वसूल की जाय। मैं आपसे सिर्फ़ इतना चाहता हूँ कि आप किसी पर यह भेद न खुलने दें कि आप नहीं खड़े हो रहे हैं। सिर्फ़ इतनी मेहरबानी कीजिए मेरे साथ। ख़्वाजा जमाल ताहिर इसी शहर से खड़े हो रहे हैं। रईसों के वोट तो सोलहो आने उनकी तरफ़ हैं ही, हुक्काम भी उनके मददगार हैं। फिर भी पबलिक पर आपका जो असर है, इससे उनकी कोर दब रही है। आप चाहें तो आपको उनसे दस-बीस हज़ार रुपये महज़ यह जाहिर कर देने के लिए मिल सकते हैं कि आप उनकी ख़ातिर बैठ जाते हैं··· नहीं, मुझे अर्ज़ कर लेने दीजिए। इस मुआमले में आपको कुछ नहीं करना है। आप बेफ़िक्र बैठे रहिए। मैं आपकी तरफ़ से एक मैनिफेस्टो निकाल दूँगा और उसी शाम को आप मुझसे दस हज़ार नक़द वसूल कर लीजिए।

मिर्ज़ा साहब ने उनकी ओर हिकारत से देखकर कहा—मैं ऐसे रुपये पर और आप पर लानत भेजता हूँ।

मिस्टर तंखा ने ज़रा भी बुरा नहीं माना। माथे पर बल तक न आने दिया।

'मुझ पर आप जितनी लानतें चाहें भेजें; मगर रुपये पर लानत भेजकर आप अपना ही नुक़सान कर रहे हैं।'

'मैं ऐसी रक़म को हराम समझता हूँ।'

'आप शरीयत के इतने पाबन्द तो नहीं हैं।'

'लूट की कमाई को हराम समझने के लिए शरीयत का पाबन्द होने की ज़रूरत नहीं है।'

'तो इस मुआमले में क्या आप अपना फ़ैसला तबदील नहीं कर सकते?'

'जी नहीं।'

'अच्छी बात है, इसे जाने दीजिए। किसी बीमा कंपनी के डाइरेक्टर बनने में तो आपको कोई एतराज़ नहीं है? आपको कंपनी का एक हिस्सा भी न खरीदना पड़ेगा। आप सिर्फ़ अपना नाम दे दीजिएगा।'

'जी नहीं, मुझे यह भी मंज़ूर नहीं है। मैं कई कंपनियों का डाइरेक्टर, कई

का मैनेजिङ्ग एजेण्ट, कई का चेयरमैन था। दौलत मेरे पाँव चूमती थी। मैं जानता हूँ, दौलत से आराम और तकल्लुफ़ के कितने सामान जमा किये जा सकते हैं; मगर यह भी जानता हूँ कि दौलत इंसान को कितना ख़ुद-ग़रज़ बना देती है, कितना ऐश-पसन्द, कितना मक्कार, कितना बेग़ैरत।'

वकील साहब को फिर कोई प्रस्ताव करने का साहस न हुआ। मिर्ज़ाजी की बुद्धि और प्रभाव में उनका जो विश्वास था, वह बहुत कम हो गया। उनके लिए धन ही सब कुछ था और ऐसे आदमी से, जो लक्ष्मी को ठोकर मारता हो, उनका कोई मेल न हो सकता था।

लकड़हारा हिरन को कंधे पर रखे लपका चला जा रहा था। मिर्ज़ा ने भी क़दम बढ़ाया; पर स्थूलकाय तंखा पीछे रह गये।

उन्होंने पुकारा—ज़रा सुनिए, मिर्ज़ाजी, आप तो भागे जा रहे हैं।

मिर्ज़ाजी ने बिना रुके हुए जवाब दिया—वह ग़रीब बोझ लिये इतनी तेज़ी से चला जा रहा है। हम क्या अपना बदन लेकर भी उसके बराबर नहीं चल सकते?

लकड़हारे ने हिरन को एक ठूँठ पर उतारकर रख दिया था और दम लेने लगा था।

मिर्ज़ा साहब ने आकर पूछा—थक गये, क्यों?

लकड़हारे ने सकुचाते हुए कहा—बहुत भारी है सरकार!

'तो लाओ, कुछ दूर मैं ले चलूँ!'

लकड़हारा हँसा। मिर्ज़ा डील-डौल में उससे कहीं ऊँचे और मोटे-ताज़े थे, फिर भी वह दुबला-पतला आदमी उनकी इस बात पर हँसा। मिर्ज़ाजी पर जैसे चाबुक पड़ गया।

'तुम हँसे क्यों? क्या तुम समझते हो, मैं इसे नहीं उठा सकता?'

लकड़हारे ने मानो क्षमा माँगी—सरकार, आप लोग बड़े आदमी हैं। बोझ उठाना तो हम-जैसे मजूरों ही का काम है।

'मैं तुम्हारा दुगुना जो हूँ।'

'इससे क्या होता है मालिक!

मिर्ज़ाजी का पुरुषत्व अपना और अपमान न सह सका। उन्होंने बढ़कर हिरन को गर्दन पर उठा लिया और चले; मगर मुश्किल से पचास कदम चले होंगे कि

गर्दन फटने लगी, पाँव थरथराने लगे और आँखों में तितलियाँ उड़ने लगीं। कलेजा मज़बूत किया और एक बीस क़दम और चले। कम्बख़्त कहाँ रह गया। जैसे इस लाश में शीशा भर दिया गया हो। ज़रा मिस्टर तंखा की गर्दन पर रख दूँ, तो मज़ा आये। मशक की तरह जो फूले चलते हैं, ज़रा उसका मज़ा भी देखें; लेकिन बोझा उतारें कैसे? दोनों अपने दिल में कहेंगे, बड़ी जवाँमर्दी दिखाने चले थे। पचास क़दम में चीं बोल गये।

लकड़हारे ने चुटकी ली—कहो मालिक, कैसे रंग-ढंग हैं। बहुत हलका है न?

मिर्ज़ाजी को बोझ कुछ हलका मालूम होने लगा। बोले—उतनी दूर तो ले ही जाऊँगा, जितनी दूर तुम लाये हो।

'कई दिन गर्दन दुखेगी मालिक!'

'तुम क्या समझते हो, मैं यों ही फूला हुआ हूँ?'

'नहीं मालिक अब तो ऐसा नहीं समझता। मुदा आप हैरान न हों; वह चट्टान है, उस पर उतार दीजिए।'

'मैं अभी इसे इतनी ही दूर और ले जा सकता हूँ।'

'मगर यह अच्छा तो नहीं लगता कि मैं ठाला चलूँ और आप लदे रहें।'

मिर्ज़ा साहब ने चट्टान पर हिरन को उतारकर रख दिया। वकील साहब भी आ पहुँचे।

मिर्ज़ा ने दाना फेंका—अब आपको भी कुछ दूर ले चलना पड़ेगा जनाब!

वकील साहब की नज़रों में मिर्ज़ाजी का कोई महत्त्व न था। बोले—मुआफ़ कीजिए। मुझे अपनी पहलवानी का दावा नहीं है।

'बहुत भारी नहीं है, सच।'

'अजी रहने भी दीजिए।'

'आप अगर इसे सौ क़दम ले चलें, तो मैं वादा करता हूँ, आप मेरे सामने जो तजवीज़ रखेंगे, उसे मंज़ूर कर लूँगा।'

'मैं इन चकमों में नहीं आता।'

'मैं चकमा नहीं दे रहा हूँ, वल्लाह! आप जिस हलक़े से कहेंगे, खड़ा हो जाऊँगा। जब हुक्म देंगे, बैठ जाऊँगा। जिस कंपनी का डाइरेक्टर, मेम्बर, मुनीम,

कनवेसर, जो कुछ कहिएगा, बन जाऊँगा। बस सौ क़दम ले चलिए। मेरी तो ऐसे ही दोस्तों से निभती है, जो मौक़ा पड़ने पर सब कुछ कर सकते हों।'

तंखा का मन चुलबुला उठा। मिर्ज़ा अपने क़ौल के पक्के हैं, इसमें कोई सन्देह न था। हिरन ऐसा क्या बहुत भारी होगा। आख़िर मिर्ज़ा इतनी दूर ले ही आये। बहुत ज़्यादा थके तो नहीं जान पड़ते; अगर इनकार करते हैं, तो सुनहरा अवसर हाथ से जाता है। आख़िर ऐसा क्या कोई पहाड़ है। बहुत होगा, चार-पाँच पँसेरी होगा। दो-चार दिन गर्दन ही तो दुखेगी। जेब में रुपये हों, तो थोड़ी-सी बीमारी सुख की वस्तु है।

'सौ क़दम की रही।'

'हाँ, सौ क़दम। मैं गिनता चलूँगा।'

'देखिए, निकल न जाइएगा।'

'निकल जानेवाले पर लानत भेजता हूँ।'

तंखा ने जूते का फीता फिर से बाँधा, कोट उतारकर लकड़हारे को दिया, पतलून ऊपर चढ़ाया, रूमाल से मुँह पोंछा और इस तरह हिरन को देखा, मानो ओखली में सिर देने जा रहे हैं। फिर हिरन को उठाकर गर्दन पर रखने की चेष्टा की। दो-तीन बार ज़ोर लगाने पर लाश गर्दन पर तो आ गई; पर गर्दन न उठ सकी। कमर झुक गई, हाँफ उठे और लाश को ज़मीन पर पटकनेवाले थे कि मिर्ज़ा ने उन्हें सहारा देकर आगे बढ़ाया।

तंखा ने एक डग इस तरह उठाया जैसे दलदल में पाँव रख रहे हों। मिर्ज़ा ने बढ़ावा दिया—शाबाश! मेरे शेर, वाह-वाह!

तंखा ने एक डग और रखा। मालूम हुआ, गर्दन टूटी जाती है।

'मार लिया मैदान! जीते रहो पट्ठे!'

तंखा दो डग और बढ़े। आँखें निकली पड़ती थीं।

'बस, एक बार और ज़ोर मारो दोस्त। सौ क़दम की शर्त ग़लत। पचास क़दम की ही रही।'

वकील साहब का बुरा हाल था। वह बेजान हिरन शेर की तरह उनको दबोचे हुए, उनका हृदय-रक्त चूस रहा था। सारी शक्तियाँ जवाब दे चुकी थीं। केवल लोभ, किसी लोहे की धरन की तरह छत को सँभाले हुए था। एक से पचीस हज़ार तक

को गोटी थी ; मगर अन्त में वह शहतीर भी जवाब दे गई। लोभ की कमर भी टूट गई। आँखों के सामने अँधेरा छा गया। सिर में चक्कर आया और वह शिकार गर्दन पर लिये पथरीली ज़मीन पर गिर पड़े।

मिर्ज़ा ने तुरन्त उन्हें उठाया और अपने रूमाल से हवा करते हुए उनकी पीठ ठोंकी।

'ज़ोर तो यार तुमने ख़ूब मारा ; लेकिन तक़दीर के खोटे हो।'

तंखा ने हाँफते हुए लंबी साँस खींचकर कहा—आपने तो आज मेरी जान ही ले ली थी। दो मन से कम न होगा ससुर।

मिर्ज़ा ने हँसते हुए कहा—लेकिन भाईजान, मैं भी तो इतनी दूर उठाकर लाया ही था।

वकील साहब ने ख़ुशामद करनी शुरू की—मुझे तो आपकी फ़रमाइश पूरी करनी थी। आपको तमाशा देखना था, वह आपने देख लिया। अब आपको अपना वादा पूरा करना होगा।

'आपने मुआहदा कब पूरा किया?'

'कोशिश तो जान तोड़कर की।'

'इसकी सनद नहीं।'

लकड़हारे ने फिर हिरन उठा लिया था और भागा चला जा रहा था। वह दिखा देना चाहता था कि तुम लोगों ने काँख-कूँखकर दस क़दम इसे उठा लिया, तो यह न समझो कि पास हो गये। इस मैदान में मैं दुर्बल होने पर भी तुमसे आगे रहूँगा। हाँ, कागद तुम चाहे जितना काला करो और झूठे मुक़दमे चाहे जितने बनाओ।

एक नाला मिला, जिसमें बहुत थोड़ा पानी था। नाले के उस पार टीले पर एक छोटा-सा पाँच-छः घरों का पुरवा था और कई लड़के इमली के पेड़ के नीचे खेल रहे थे। लकड़हारे को देखते ही सबों ने दौड़कर उसका स्वागत किया और लगे पूछने—किसने मारा, बापू, कैसे मारा, कहाँ मारा, कैसे गोली लगी, कहाँ लगी, इसी को क्यों लगी, और हिरनों को क्यों न लगी! लकड़हारा हूँ-हाँ करता इमली के नीचे पहुँचा और हिरन को उतारकर पास की झोंपड़ी से दोनों महानुभावों के लिए खाट लेने दौड़ा। उसके चारों लड़कों और लड़कियों ने शिकार को अपने चार्ज में ले लिया और अन्य लड़कों को भगाने की चेष्टा करने लगे।

सबसे छोटे बालक ने कहा—यह हमारा है।

उसकी बड़ी बहन ने, जो चौदह-पन्द्रह साल की थी, मेहमानों की ओर देखकर छोटे भाई को डाँटा—चुप, नहीं सिपाई पकड़ ले जायगा।

मिर्ज़ा ने लड़के को छेड़ा—तुम्हारा नहीं, हमारा है।

बालक ने हिरन पर बैठकर अपना कब्ज़ा सिद्ध कर दिया और बोला—बापू तो लाये हैं।

बहन ने सिखाया—कह दे भैया, तुम्हारा है।

इन बच्चों की मा बकरी के लिए पत्तियाँ तोड़ रही थी। दो नये भले आदमियों को देखकर उसने ज़रा-सा घूँघट निकाल लिया और शर्माई कि उसकी साड़ी कितनी मैली, कितनी फटी, कितनी उटङ्गी है। वह इस वेष में मेहमानों के सामने कैसे जाय! और गये बिना काम नहीं चलता। पानी-वानी देना है।

अभी दोपहर होने में कुछ कसर थी; लेकिन मिर्ज़ा साहब ने दोपहरी इसी गाँव में काटने का निश्चय किया। गाँव के आदमियों को जमा किया। शराब मँगवाई, शिकार पका, समीप के बाज़ार से घी और मैदा मँगाया और सारे गाँव को भोज दिया। छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष सबों ने दावत उड़ाई। मर्दों ने ख़ूब शराब पी और मस्त होकर शाम तक गाते रहे। और मिर्ज़ाजी बालकों के साथ बालक, शराबियों के साथ शराबी, बूढ़ों के साथ बूढ़े, जवानों के साथ जवान बने हुए थे। इतनी ही देर में सारे गाँव से उनका इतना घनिष्ठ परिचय हो गया था, मानो यहीं के निवासी हों। लड़के तो उन पर लदे पड़ते थे। कोई उनकी फुँदनेदार टोपी सिर पर रखे लेता था, कोई उनकी राइफल कन्धे पर रखकर अकड़ता हुआ चलता था, कोई उनकी क़लाई की घड़ी खोलकर अपनी क़लाई पर बाँध लेता था। मिर्ज़ा ने ख़ुद ख़ूब देशी शराब पी और झूम-झूमकर जङ्गली आदमियों के साथ गाते रहे।

जब ये लोग सूर्यास्त के समय यहाँ से बिदा हुए, तो गाँव-भर के नर-नारी इन्हें बड़ी दूर तक पहुँचाने आये। कई तो रोते थे। ऐसा सौभाग्य उन गरीबों के जीवन में शायद पहली ही बार आया हो कि किसी शिकारी ने उनकी दावत की हो। ज़रूर यह कोई राजा है, नहीं तो इतना दरियाव दिल किसका होता है। इनके दर्शन फिर काहे को होंगे।

कुछ दूर चलने के बाद मिर्ज़ा ने पीछे फिरकर देखा और बोले—बेचारे कितने

ख़ुश थे। काश मेरी ज़िन्दगी में ऐसे मौक़े रोज़ आते। आज का दिन बड़ा मुबारक था।

तंखा ने बेरुखी के साथ कहा—आपके लिए मुबारक होगा, मेरे लिए तो मनहूस ही था। मतलब की कोई बात न हुई। दिन-भर जंगलों और पहाड़ों की ख़ाक छानने के बाद अपना-सा मुँह लिये लौटे जाते हैं।

मिर्ज़ा ने निर्दयता से कहा—मुझे आपके साथ हमदर्दी नहीं है।

दोनों आदमी जब बरगद के नीचे पहुँचे, तो दोनों टोलियाँ लौट चुकी थीं। मेहता मुँह लटकाये हुए थे। मालती बिमन-सी अलग बैठी थी, जो नई बात थी। राय साहब और खन्ना दोनों भूखे रह गये थे और किसी के मुँह से बात न निकलती थी। वकील साहब इसलिए दुखी थे कि मिर्ज़ा ने उनके साथ बेवफाई की। अकेले मिर्ज़ा साहब प्रसन्न थे और वह प्रसन्नता अलौकिक थी।

८

जबसे होरी के घर में गाय आ गई है, घर की श्री ही कुछ और हो गई है। धनिया का घमण्ड तो उसकी सँभाल से बाहर हो-हो जाता है। जब देखो गाय की चर्चा।

भूसा छिज गया था। ऊख में थोड़ी-सी चरी बो दी गई थी। उसी की कुट्टी काटकर जानवरों को खिलाना पड़ता था। आँखें आकाश की ओर लगी रहती थीं कि कब पानी बरसे और घास निकले। आधा असाढ़ बीत गया, वर्षा न हुई।

सहसा एक दिन बादल उठे और असाढ़ का पहला दौंगड़ा गिरा। किसान खरीफ बोने के लिए हल ले-लेकर निकले कि राय साहब के कारकुन ने कहला भेजा, जब तक बाक़ी न चुक जायगी, किसी को खेत में हल न ले जाने दिया जायगा। किसानों पर जैसे वज्रपात हो गया। और कभी तो इतनी कड़ाई न होती थी, अबकी यह कैसा हुक्म। कोई गाँव छोड़कर भागा थोड़ा ही जाता है; अगर खेतों में हल न चले, तो रुपये कहाँ से आ जायँगे। निकालेंगे तो खेत ही से। सब मिलकर कारकुन के पास जाकर रोये। कारकुन का नाम था पण्डित नोखेराम। आदमी बुरे न थे; मगर मालिक का हुक्म था। उसे कैसे टालें। अभी उस दिन राय साहब ने होरी से कैसी दया और धर्म की बातें की थीं। और आज असामियों पर यह ज़ुल्म! होरी

मालिक के पास जाने को तैयार हुआ ; लेकिन फिर सोचा, उन्होंने कारकुन को एक बार जो हुक्म दे दिया, उसे क्यों टालने लगे। वह अगुवा बनकर क्यों बुरा बने। जब और कोई कुछ नहीं बोलता, तो वही क्यों आग में कूदे। जो सबके सिर पड़ेगी, वह भी झेल लेगा।

किसानों में खलबली मची हुई थी। सभी गाँव के महाजनों के पास रुपये के लिए दौड़े। गाँव में मँगरू साह की आजकल चढ़ी हुई थी। इस साल सन में उसे अच्छा फ़ायदा हुआ था। गेहूँ और अलसी में भी उसने कुछ कम नहीं कमाया था। पण्डित दातादीन और दुलारी सहुआइन भी लेन देन करती थीं। सबसे बड़े महाजन थे झिंगुरीसिंह। वह शहर के एक बड़े महाजन के एजेण्ट थे। उनके नीचे कई आदमी और थे, जो आस-पास के देहातों में घूम-घूमकर लेन-देन करते थे। इनके उपरान्त और भी कई छोटे-मोटे महाजन थे, जो दो आने रुपये ब्याज पर बिना लिखा-पढ़ी के रुपये देते थे। गाँववालों को लेन-देन का कुछ ऐसा शौक़ था कि जिसके पास दस बीस रुपये जमा हो जाते, वही महाजन बन बैठता था। एक समय होरी ने भी महाजनी की थी। उसी का यह प्रभाव था कि लोग अभी तक यही समझते थे कि होरी के पास दबे हुए रुपये हैं। आख़िर वह धन गया कहाँ। बँटवारे में निकला नहीं, होरी ने कोई तीर्थ, व्रत, भोज किया नहीं, गया तो कहाँ गया। जूते जाने पर भी उसके घट्ठे बने रहते हैं।

किसी ने किसी देवता को सीधा किया, किसी ने किसी को। किसी ने आना रुपया ब्याज देना स्वीकार किया, किसी ने दो आना। होरी में आत्मसम्मान का सर्वथा लोप न हुआ था। जिन लोगों के रुपये उस पर बाक़ी थे, उनके पास कौन मुँह लेकर जाय। झिंगुरीसिंह के सिवा उसे और कोई न सूझा। वह पक्का काग़ज़ लिखाते थे, नज़राना अलग लेते थे, दस्तूरी अलग, स्टाम्प की लिखाई अलग। उस पर एक साल का ब्याज पेशगी काटकर रुपया देते थे। पचीस रुपये का काग़ज़ लिखो, तो मुशकिल से सत्रह रुपये हाथ लगते थे ; मगर इस गाढ़े समय में और क्या किया जाय। राय साहब की ज़बरदस्ती है, नहीं इस समय किसी के सामने क्यों हाथ फैलाना पड़ता।

झिंगुरीसिंह बैठे दतून कर रहे थे। नाटे, मोटे, खल्वाट, काले, लम्बी नाक और बड़ी-बड़ी मूछोंवाले आदमी थे, बिलकुल विदूषक-जैसे। और थे भी बड़े हँसोड़।

इस गाँव को अपनी ससुराल बनाकर मर्दों से साले या ससुर और औरतों से साली या सलहज का नाता जोड़ लिया था। रास्ते में लड़के उन्हें चिढ़ाते—पण्डितजी पालगी! और झिंगुरीसिंह उन्हें चटपट आशीर्वाद देते—तुम्हारी आँखें फूटें, घुटना टूटे, मिर्गी आये, घर में आग लग जाय आदि। लड़के इस आशीर्वाद से कभी न अघाते थे; मगर लेन-देन के मामले में बड़े कठोर थे। सूद की एक पाई न छोड़ते थे, और वादे पर बिना रुपये लिये द्वार से न टलते थे।

होरी ने सलाम करके अपनी विपत्ति-कथा सुनाई।

झिंगुरीसिंह ने मुस्कराकर कहा—वह सब पुराना रुपया क्या कर डाला?

'पुराने रुपये होते ठाकुर, तो महाजनों से अपना गला न छुड़ा लेता, कि सूद भरते किसी को अच्छा लगता है!'

'गड़े रुपये न निकलें चाहे सूद कितना ही देना पड़े। तुम लोगों की यही नीति है।'

'कहाँ के गड़े रुपये बाबू साहब, खाने को तो होता नहीं। लड़का जवान हो गया; ब्याह का कहीं ठिकाना नहीं। बड़ी लड़की भी ब्याहने जोग हो गई। रुपये होते, तो किस दिन के लिए गाड़ रखते?'

झिंगुरीसिंह ने जबसे उसके द्वार पर गाय देखी थी, उस पर दाँत लगाये हुए थे। गाय का डील-डौल और गठन कह रहा था कि उसमें पाँच सेर से कम दूध नहीं है। मन में सोच लिया था, होरी को किसी अरदब में डालकर गाय को उड़ा लेना चाहिए। आज वह अवसर आ गया।

बोले—अच्छा भाई, तुम्हारे पास कुछ नहीं है, अब राजी हुए। जितने रुपये चाहो, ले जाओ; लेकिन तुम्हारे भले के लिए कहते हैं, कुछ गहने-गाठे हों, तो गिरो रखकर रुपये ले लो। इसटाम लिखोगे, तो सूद बढ़ेगा और झमेले में पड़ जाओगे।

होरी ने क़सम खाई कि घर में गहने के नाम कच्चा सूत भी नहीं है। धनिया के हाथों में कड़े हैं, वह भी गिलट के।

झिंगुरीसिंह ने सहानुभूति का रंग मुँह पर पोतकर कहा—तो एक बात करो, यह नई गाय जो लाये हो, इसे हमारे हाथ बेच दो। सूद-इसटाम सब झगड़ों से बच जाओ; चार आदमी जो दाम कहें, वह हमसे ले लो। हम जानते हैं, तुम उसे

अपने शौक़ से लाये हो और बेचना नहीं चाहते; लेकिन यह संकट तो टालना ही पड़ेगा।

होरी पहले तो इस प्रस्ताव पर हँसा, उस पर शान्त मन से विचार भी न करना चाहता था; लेकिन ठाकुर ने ऐसा ऊँच-नीच सुझाया, महाजनी के हथकण्डों का ऐसा भीषण रूप दिखाया कि उसके मन में भी यह बात बैठ गई। ठाकुर ठीक ही तो कहते हैं, जब हाथ में रुपये आ जायँ, गाय ले लेना। तीस रुपये का कागद लिखने पर कहीं पचीस रुपये मिलेंगे और तीन-चार साल तक न दिये गये, तो पूरे सौ हो जायँगे। पहले का अनुभव यही बता रहा था कि कर्ज़ वह मेहमान है, जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता।

बोला—मैं घर जाकर सबसे सलाह कर लूँ, तो बताऊँ।

'सलाह नहीं करना है, उनसे कह देना है कि रुपये उधार लेने में अपनी बर्बादी के सिवा और कुछ नहीं।'

'मैं समझ रहा हूँ ठाकुर, अभी आके जवाब देता हूँ।'

लेकिन घर आकर उसने ज्यों ही वह प्रस्ताव किया कि कुहराम मच गया। धनिया तो कम चिल्लाई, दोनों लड़कियों ने तो दुनिया सिर पर उठा ली। नहीं देते अपनी गाय, रुपये जहाँ से चाहे लाओ। सोना ने तो यहाँ तक कह डाला, इससे तो कहीं अच्छा है, मुझे बेच डालो। गाय से कुछ बेसी ही मिल जायगा। होरी असमंजस में पड़ गया।

दोनों लड़कियाँ सचमुच गाय पर जान देती थीं। रूपा तो उसके गले से लिपट जाती थी और बिना उसे खिलाये कौर मुँह में न डालती थी। गाय कितने प्यार से उसका हाथ चाटती थी, कितनी स्नेह-भरी आँखों से उसे देखती थी। उसका बछड़ा कितना सुन्दर होगा। अभी से उसका नामकरण हो गया था—मटरू। वह उसे अपने साथ लेकर सोयेगी। इस गाय के पीछे दोनों बहनों में कई बार लड़ाइयाँ हो चुकी थीं। सोना कहती, मुझे ज़्यादा चाहती है, रूपा कहती, मुझे। इसका निर्णय अभी तक न हो सका था और दोनों दावे क़ायम थे।

मगर होरी ने आगा-पीछा सुझाकर आख़िर धनिया को किसी तरह राज़ी कर लिया। एक मित्र से गाय उधार लेकर बेच देना था बहुत ही वैसी बात; लेकिन बिपत में तो आदमी का धरम तक चला जाता है, यह कौन-सी बड़ी बात है। ऐसा न हो, तो लोग बिपत से इतना डरें क्यों? गोबर ने भी विशेष आपत्ति न की। वह

आजकल दूसरी ही धुन में मस्त था। यह तय किया गया कि जब दोनों लड़कियाँ रात को सो जायँ, तो गाय झिंगुरीसिंह के पास पहुँचा दी जाय।

दिन किसी तरह कट गया। साँझ हुई। दोनों लड़कियाँ आठ बजते-बजते खा-पीकर सो गईं। गोबर इस करुण दृश्य से भागकर कहीं चला गया था। वह गाय को जाते कैसे देख सकेगा? अपने आँसुओं को कैसे रोक सकेगा? होरी भी ऊपर ही से कठोर बना हुआ था। मन उसका चंचल था। ऐसा कोई माई का लाल नहीं, जो इस वक्त उसे पचीस रुपये उधार दे दे, चाहे फिर पचास रुपये ही ले ले। वह गाय के सामने जाकर खड़ा हुआ, तो उसे ऐसा जान पड़ा कि उसकी काली-काली सजीव आँखों में आँसू भरे हुए हैं और वह कह रही है—क्या चार दिन में ही तुम्हारा मन मुझसे भर गया? तुमने तो वचन दिया था कि जीते-जी इसे न बेचूँगा। यही वचन था तुम्हारा? मैंने तो तुमसे कभी किसी बात का गिला नहीं किया। जो कुछ रूखा-सूखा तुमने दे दिया, वही खाकर सन्तुष्ट हो गई। बोलो!

धनिया ने कहा—लड़कियाँ तो सो गईं। अब इसे ले क्यों नहीं जाते। जब बेचना ही है, तो अभी बेच दो।

होरी ने काँपते हुए स्वर में कहा—मेरा तो हाथ नहीं उठता धनिया! उसका मुँह नहीं देखती? रहने दे, रुपये सूद पर ले लूँगा। भगवान ने चाहा, तो सब अदा हो जायँगे। तीन-चार सौ होते ही क्या हैं। एक बार ऊख लग जाय।

धनिया ने गर्व-भरे प्रेम से उसकी ओर देखा—और क्या। इतनी तपस्या के बाद तो घर में गऊ आई। उसे भी बेच दो। ले लो कल रुपये। जैसे और सब चुकाये जायँगे, वैसे इसे भी चुका देंगे!

भीतर बड़ी उमस हो रही थी। हवा बन्द थी। एक पत्ती भी न हिलती थी। बादल छाये हुए थे; पर वर्षा के लक्षण न थे। होरी ने गाय को लाकर बाँध दिया। धनिया ने टोका भी, कहाँ लिये जाते हो? पर होरी ने सुना नहीं, बोला—बाहर हवा में बाँधे देता हूँ। आराम से रहेगी। उसके भी तो जान है। गाय बाँधकर वह अपने मँझले भाई शोभा को देखने गया। शोभा को इधर कई महीने से दमे का आरज़ा हो गया था। दवा-दारू की जुगत नहीं। खाने-पीने का प्रबन्ध नहीं, और काम करना पड़ता था जी तोड़कर; इसलिए उसकी दशा दिन-दिन बिगड़ती जाती थी। शोभा सहनशील आदमी था, लड़ाई-झगड़े से कोसों भागनेवाला। किसी से मतलब

नहीं। अपने काम से काम। होरी उसे चाहता था। और वह भी होरी का अदब करता था। दोनों में रुपये-पैसे की बातें होने लगीं। राय साहब का यह नया फ़रमान आलोचनाओं का केन्द्र बना हुआ था।

कोई ग्यारह बजते-बजते होरी लौटा और भीतर जा रहा था कि उसे भास हुआ, जैसे गाय के पास कोई आदमी खड़ा है। पूछा—कौन है वहाँ खड़ा?

हीरा बोला—मैं हूँ दादा, तुम्हारे कौड़े में आग लेने आया था।

हीरा उसके कौड़े में आग लेने आया है, इस ज़रा-सी बात में होरी को भाई की आत्मीयता का परिचय मिला। गाँव में और भी तो कौड़े हैं। कहीं से भी आग मिल सकती थी। हीरा उसके कौड़े में आग ले रहा है, तो अपना ही समझकर तो। सारा गाँव इस कौड़े में आग लेने आता था। गाँव में सबसे संपन्न यही कौड़ा था; मगर हीरा का आना दूसरी बात थी। और उस दिन की लड़ाई के बाद! हीरा के मन में कपट नहीं रहता। गुस्सैल है; लेकिन दिल का साफ़।

उसने स्नेह-भरे स्वर में पूछा—तमाखू है कि ला दूँ?

'नहीं, तमाखू तो है दादा!'

'सोभा तो आज बहुत बेहाल है।'

'कोई दवाई नहीं खाता, तो क्या किया जाय। उसके लेखे तो सारे बैद, डाक्टर, हकीम अनाड़ी हैं। भगवान् के पास जितनी अक्कल थी, वह उसके और उसकी घर-वाली के हिस्से पड़ गई।'

होरी ने चिन्ता से कहा—यही तो बुराई है उसमें। अपने सामने किसी को गिनता ही नहीं। और चिढ़ने तो बीमारी में सभी हो जाते हैं। तुम्हें याद है कि नहीं, जब तुम्हें इफ़िजा हो गया था, तो दवाई उठाकर फेंक देते थे। मैं तुम्हारे दोनों हाथ पकड़ता था, तब तुम्हारी भाभी तुम्हारे मुँह में दवाई डालती थी। उस पर तुम उसे हज़ारों गालियाँ देते थे।

'हाँ दादा, भला वह बात भूल सकता हूँ! तुमने इतना न किया होता, तो तुमसे लड़ने के लिए कैसे बचा रहता।'

होरी को ऐसा मालूम हुआ कि हीरा का स्वर भारी हो गया है। उसका गला भी भर आया।

'बेटा, लड़ाई-झगड़ा तो जिन्दगी का धरम है। इससे जो अपने हैं, वह पराये

थोड़े ही हो जाते हैं। जब घर में चार आदमी रहते हैं, तभी तो लड़ाई-झगड़े भी होते हैं। जिसके कोई है ही नहीं, उसके कौन लड़ाई करेगा।'

दोनों ने साथ चिलम पी। तब हीरा अपने घर गया, होरी अन्दर भोजन करने चला।

धनिया रोष से बोली—देखो अपने सपूत की लीला? इतनी रात हो गई और अभी उसे अपने सैल से छुट्टी नहीं मिली। मैं सब जानती हूँ। मुझको सारा पता मिल गया है। भोला की वह राँड़ लड़की नहीं है, झुनिया! उसी के फेर में पड़ा रहता है।

होरी के कानों में भी इस बात की भनक पड़ी थी, पर उसे विश्वास न आया था। गोबर बेचारा इन बातों को क्या जाने।

बोला—किसने कहा तुमसे?

धनिया प्रचण्ड हो गई—तुमसे छिपी होगी, और तो सभी जगह चर्चा चल रही है। यह है भुग्गा, वह बहत्तर घाट का पानी पिये हुए। इसे उँगलियों पर नचा रही है, और यह समझता है, वह इस पर जान देती है। तुम उसे समझा दो, नहीं कोई ऐसी-वैसी बात हो गई, तो कहीं के न रहोगे।

होरी का दिल उमङ्ग पर था। चुहल की सूझी—झुनिया देखने-सुनने में तो बुरी नहीं है। उसी से कर ले सगाई। ऐसी सस्ती मेहरिया और कहाँ मिली जाती है।

धनिया को यह चुहल तीर-सी लगी—झुनिया इस घर में आये, तो मुँह झुलस दूँ राँड़ का। गोबर को चहेती है, तो उसे लेकर जहाँ चाहे रहे।

'और जो गोबर इसी घर में लाये?'

'तो यह दोनों लड़कियाँ किसके गले बाँधोगे? फिर बिरादरी में तुम्हें कौन पूछेगा, कोई द्वार पर खड़ा तक तो होगा नहीं।'

'उसे इसकी क्या परवाह।'

'इस तरह नहीं छोड़ूँगी लाला को। मर-मर मैंने पाला है और झुनिया आकर राज करेगी। मुँह में आग लगा दूँगी राँड़ के।'

सहसा गोबर आकर घबड़ाई हुई आवाज़ में बोला—दादा, सुन्दरिया को क्या हो गया? क्या काले ने छू लिया? वह तो पड़ी तड़प रही है।

होरी चौके में जा चुका था। थाली सामने छोड़कर बाहर निकल आया और बोला—क्या असगुन मुँह से निकालते हो। अभी तो मैं देखे आ रहा हूँ। लेटी थी।

तीनों बाहर गये। चिराग लेकर देखा। सुन्दरिया के मुँह से फिचकुर निकल रहा था। आँखें पथरा गई थीं, पेट फूल गया था और चारों पाँव फैल गये थे। धनिया सिर धुनने लगी। होरी पण्डित दातादीन के पास दौड़ा। गाँव में पशु-चिकित्सा के वही आचार्य थे। पण्डितजी सोने जा रहे थे। दौड़े हुए आये। दम के दम में सारा गाँव जमा हो गया। गाय को किसी ने कुछ खिला दिया। लक्षण स्पष्ट थे। साफ़ विष दिया गया है; लेकिन गाँव में कौन ऐसा मुद्दई है, जिसने विष दिया हो; ऐसी वारदात तो इस गाँव में कभी हुई नहीं; लेकिन बाहर का कौन आदमी गाँव में आया। होरी की किसी से दुश्मनी भी न थी कि उस पर सन्देह किया जाय। हीरा से कुछ कहा-सुनी हुई थी; मगर वह भाई-भाई का झगड़ा था। सबसे ज़्यादा दुखी तो हीरा ही था। धमकियाँ दे रहा था कि जिसने यह हत्यारों का काम किया है, उसे पाये तो ख़ून पी जाय। वह लाख गुस्सैल हो; पर इतना नीच काम नहीं कर सकता।

आधी रात तक जमघट रहा। सभी होरी के दुःख में दुखी थे और बधिक को गालियाँ देते थे। वह इस समय पकड़ा जा सकता, तो उसके प्राणों की कुशल न थी। जब यह हाल है तो कोई जानवरों को बाहर कैसे बाँधेगा। अभी तक रात-बिरात सभी जानवर बाहर पड़े रहते थे। किसी तरह की चिन्ता न थी; लेकिन अब तो एक नई विपत्ति आ खड़ी हुई थी। क्या गाय थी कि बस देखता रहे। पूजने जोग। पाँच सेर से कम दूध न था। सौ-सौ का एक-एक बाछा होता। आते देर न हुई और यह वज्र गिर पड़ा।

जब सब लोग अपने-अपने घर चले गये, तो धनिया होरी को कोसने लगी—तुम्हें कोई लाख समझाये, करोगे अपने मन की। तुम गाय खोलकर आँगन से चले, तब तक मैं जूझती रही कि बाहर न ले जाओ। हमारे दिन पतले हैं, न जाने कब क्या हो जाय; लेकिन नहीं, उसे गर्मी लग रही है। अब तो ख़ूब ठण्डी हो गई और तुम्हारा कलेजा भी ठण्डा हो गया। ठाकुर माँगते थे; दे दिया होता, तो एक बोझ सिर से उतर जाता और निहोरे का निहोरा होता; मगर फिर यह तमाचा कैसे पड़ता। कोई बुरी बात होनेवाली है तो मति पहले ही हर जाती है। इतने दिन

मजे से घर में बँधती रही, न गर्मी लगी, न जूड़ी आई। इतनी जल्दी सबको पहचान गई थी कि मालूम ही न होता था कि बाहर से आई है। बच्चे उसके सींगों से खेलते रहते थे। सिर तक न हिलाती थी। जो कुछ नाँद में डाल दो, चाट-पोंछकर साफ़ कर देती थी। लच्छमी थी, अभागों के घर क्या रहती। सोना और रूपा भी यह हलचल सुनकर जाग गई थीं और बिलख-बिलखकर रो रही थीं। उसकी सेवा का भार अधिकतर उन्हीं दोनों पर था। उनकी संगिनी हो गई थी। दोनों खाकर उठतीं, तो एक-एक टुकड़ा रोटी उसे अपने हाथों से खिलातीं। कैसा जीभ निकालकर खा लेती थी, और जब तक उनके हाथ का कौर न पा लेती, खड़ी ताकती रहती। भाग्य फूट गये!

गोबर और दोनों लड़कियाँ रो-धोकर सो गई थीं। होरी भी लेटा। धनिया उसके सिरहाने पानी का लोटा रखने आई, तो होरी ने धीरे से कहा—तेरे पेट में बात पचती नहीं, कुछ सुन पायेगी, तो गाँव-भर में ढिंढोरा पीटती फिरेगी।

धनिया ने आपत्ति की—भला सुनूँ; मैंने कौन-सी बात पीट दी कि यों ही नाम बदनाम कर दिया।

'अच्छा, तेरा सन्देह किसी पर होता है?'

'मेरा सन्देह तो किसी पर नहीं है। कोई बाहरी आदमी था।'

'किसी से कहेगी तो नहीं?'

'कहूँगी नहीं, तो गाँववाले मुझे गहने कैसे गढ़वा देंगे!'

'अगर किसी से कहा, तो मार ही डालूँगा।'

'मुझे मारकर सुखी न रहोगे। अब दूसरी मेहरिया नहीं मिली जाती। जब तक हूँ, तुम्हारा घर सँभाले हुए हूँ। जिस दिन मर जाऊँगी, सिर पर हाथ धरकर रोओगे। अभी मुझमें सारी बुराइयाँ ही बुराइयाँ हैं, तब आँखों से आँसू निकलेंगे।'

'मेरा सन्देह हीरा पर होता है।'

'झूठ, बिल्कुल झूठ! हीरा इतना नीच नहीं है। वह मुँह का ही ख़राब है।'

'मैंने अपनी आँखों देखा। सच, तेरे सिर की सौंह।'

'तुमने अपनी आँखों देखा! कब?'

'वही, मैं सोभा को देखकर आया, तो वह सुन्दरिया की नाँद के पास खड़ा था। मैंने पूछा—कौन है, तो बोला, मैं हूँ हीरा, कौड़े में से आग लेने आया था। थोड़ी

देर मुझसे बातें करता रहा। मुझे चिलम पिलाई। वह उधर गया, मैं भीतर आया और वही गोबर ने पुकार मचाई। मालूम होता है, मैं गाय बाँधकर सोभा के घर गया हूँ, और इसने इधर आकर कुछ खिला दिया है। साइत फिर यह देखने आया था कि मरी या नहीं।

धनिया ने लम्बी साँस लेकर कहा—इस तरह के होते हैं भाई, जिन्हें भाई का गला काटने में भी हिचक नहीं होती! उफ़्फ़ोह! हीरा मन का इतना काला है! और दाढ़ीजार को मैंने पाल-पोसकर बड़ा किया।

'अच्छा, जा सो रह; मगर किसी से भूलकर भी जिकर न करना।'

'कौन, सबेरा होते ही लाला को थाने न पहुँचाऊँ, तो अपने असल बाप की नहीं। यह हत्यारा भाई कहने जोग है! यही भाई का काम है! वह बैरी है, पक्का बैरी, और बैरी को मारने में पाप नहीं, छोड़ने में पाप है।'

होरी ने धमकी दी—मैं कहे देता हूँ धनिया, अनर्थ हो जायगा।

धनिया आवेश में बोली—अनर्थ नहीं, अनर्थ का बाप हो जाय। मैं बिना लाला को बड़े घर भेजवाये मानूँगी नहीं। तीन साल चक्की पिसवाऊँगी, तीन साल। वहाँ से छूटेंगे, तो हत्या लगेगी। तीरथ करना पड़ेगा। भोज देना पड़ेगा। इस धोखे में न रहें लाला! और गवाही दिलाऊँगी तुमसे, बेटे के सिर पर हाथ रखकर।

उसने भीतर जाकर किवाड़ बन्द कर लिये और होरी बाहर अपने को कोसता पड़ा रहा। जब स्वयं उसके पेट में बात न पची, तो धनिया के पेट में क्या पचेगी। अब यह चुड़ैल माननेवाली नहीं। ज़िद पर आ जाती है, तो किसी की सुनती ही नहीं। आज उसने अपने जीवन में सबसे बड़ी भूल की।

चारों ओर नीरव अन्धकार छाया हुआ था। दोनों बैलों के गले की घण्टियाँ कभी-कभी बज उठती थीं। दस क़दम पर मृतक गाय पड़ी हुई थी और होरी घोर पश्चात्ताप में करवटें बदल रहा था। अन्धकार में प्रकाश की रेखा कहीं नज़र न आती थी।

६

प्रातःकाल होरी के घर में एक पूरा हंगामा हो गया। होरी धनिया को मार रहा था। धनिया उसे गालियाँ दे रही थी। दोनों लड़कियाँ बाप के पाँवों से लिपटी चिल्ला

रही थीं और गोबर मा को बचा रहा था। बार-बार होरी का हाथ पकड़कर पीछे ढकेल देता; पर ज्यों ही धनिया के मुँह से कोई गाली निकल जाती, होरी अपने हाथ छुड़ाकर उसे दो-चार घूँसे और लात जमा देता। उसका बूढ़ा क्रोध जैसे किसी गुप्त संचित शक्ति को निकाल लाया हो। सारे गाँव में हलचल पड़ गई। लोग सम-झाने के बहाने तमाशा देखने आ पहुँचे। शोभा लाठी टेकता आ खड़ा हुआ। दाता-दीन ने डाँटा—यह क्या है होरी, तुम बावले हो गये हो क्या? कोई इस तरह घर की लक्ष्मी पर हाथ छोड़ता है? तुम्हें तो यह रोग न था। क्या हीरा की छूत तुम्हें भी लग गई?

होरी ने पालागन करके कहा—महाराज, तुम इस वखत न बोलो। मैं आज इसकी बान छुड़ाकर तब दम लूँगा। मैं जितना ही तरह देता हूँ, उतना ही यह सिर चढ़ती जाती है।

धनिया सजल क्रोध में बोली—महाराज, तुम गवाह रहना। मैं आज इसे और इसके हत्यारे भाइयों को जेहल भेजवाकर तब पानी पीऊँगी। इसके भाई ने गाय को माहुर खिलाकर मार डाला। अब जो मैं थाने में रपट लिखाने जा रही हूँ, तो यह हत्यारा मुझे मारता है। इसके पीछे अपनी जिन्दगी चौपट कर दी, उसका यह इनाम दे रहा है।

होरी ने दाँत पीसकर और आँखें निकालकर कहा—फिर वही बात मुँह से निकाली। तूने देखा था हीरा को माहुर खिलाते?

'तू कसम खा जा कि तूने हीरा को गाय की नाँद के पास खड़े नहीं देखा?'

'हाँ, मैंने नहीं देखा, कसम खाता हूँ।'

'बेटे के माथ पर हाथ रखके कसम खा!'

होरी ने गोबर के माथ पर काँपता हुआ हाथ रखकर काँपते हुए स्वर में कहा—मैं बेटे की कसम खाता हूँ कि मैंने हीरा को नाँद के पास नहीं देखा।

धनिया ने ज़मीन पर थूककर कहा—थुड़ी है, तेरी झुठाई पर! तूने ख़ुद मुझसे कहा कि हीरा चोरों की तरह नाँद के पास खड़ा था। और अब भाई के पच्छ में झूठ बोलता है। थुड़ी है! अगर मेरे बेटे का बाल भी बाँका हुआ, तो घर में आग लगा दूँगी। सारी गृहस्ती में आग लगा दूँगी। भगवान्, आदमी मुँह से बात कहकर इतनी बेसरमी से मुकुर जाता है!

होरी पाँव पटककर बोला—धनिया ,गुस्सा मत दिला, नहीं बुरा होगा।

'मार तो रहा है, और मार ले। जा तू अपने बाप का बेटा होगा, तो आज मुझे मारकर तब पानी पियेगा। पापी ने मारते-मारते मेरा भुरकस निकाल लिया, फिर भी इसका जी नहीं भरा। मुझे मारकर समझता है, मैं बड़ा बीर हूँ। भाइयों के सामने भीगी बिल्ली बन जाता है, पापी कहीं का, हत्यारा!'

फिर वह बैन कहकर रोने लगी—इस घर में आकर उसने क्या नहीं झेला, किस-किस तरह पेट-तन नहीं काटा, किस तरह एक-एक लत्ते को तरसी, किस तरह एक-एक पैसा प्राणों की तरह संचा, किस तरह घर भर को खिलाकर आप पानी पीकर सो रही। और आज उन सारे बलिदानों का यह पुरस्कार। भगवान् बैठे यह अन्याय देख रहे हैं और उसकी रक्षा को नहीं दौड़ते। गज की और द्रौपदी की रक्षा करने वैकुण्ठ से दौड़े थे। आज क्यों नींद में सोये हुए हैं।

जनमत धीरे-धीरे धनिया की ओर आने लगा। इसमें अब किसी को सन्देह नहीं रहा कि हीरा ने ही गाय को ज़हर दिया। होरी ने बिल्कुल झूठी कसम खाई है, इसका भी लोगों को विश्वास हो गया। गोबर को भी बाप की इस झूठी क़सम और उसके फलस्वरूप आनेवाली विपत्ति की शंका ने होरी के विरुद्ध कर दिया। उस पर जो दातादीन ने डाँट बताई, तो होरी परास्त हो गया। चुपके से बाहर चला गया, सत्य ने विजय पाई।

दातादीन ने शोभा से पूछा—तुम कुछ जानते हो सोभा, क्या बात हुई?

शोभा ज़मीन पर लेटा हुआ बोला—मैं तो महाराज आठ दिन से बाहर नहीं निकला। होरी दादा कभी-कभी जाकर कुछ दे आते हैं, उसी से काम चलता है। रात भी वह मेरे पास गये थे। किसने क्या किया, मैं कुछ नहीं जानता। हाँ, कल साँझ को हीरा मेरे घर खुरपी माँगने गया था। कहता था, एक जड़ी खोदना है। फिर तबसे मेरी उससे भेंट नहीं हुई।

धनिया इतना शह पाकर बोली—पण्डित दादा, यह उसी का काम है। सोभा के घर से खुरपी माँगकर लाया और कोई जड़ी खोदकर गाय को खिला दी। उस रात को जो झगड़ा हुआ था, उसी दिन से वह खार खाये बैठा था।

दातादीन बोले—यह बात साबित हो गई, तो उसे हत्या लगेगी। पुलीस कुछ करे या न करे, धरम तो बिना दण्ड दिये न रहेगा। चली तो जा रुपिया, हीरा को

बुला ला। कहना, पण्डित दादा बुला रहे हैं। अगर उसने हत्या नहीं की है, तो गंगाजली उठा ले और चौरे पर चढ़कर क़सम खाय।

धनिया बोली—महाराज, उसके क़सम का भरोसा नहीं। चटपट खा लेगा। जब इसने झूठी क़सम खा ली, जो बड़ा धर्मात्मा बनता है, तो हीरा का क्या बिसवास!

अब गोबर बोला—खा ले झूठी क़सम। बन्स का अन्त हो जाय! बूढ़े जीते रहें। जवान जीकर क्या करेंगे?

रूपा एक क्षण में आकर बोली—काका घर में नहीं हैं, पण्डित दादा! काकी कहती हैं, कहीं चले गये हैं।

दातादीन ने लंबी दाढ़ी फटकारकर कहा—तूने पूछा नहीं, कहाँ चले गये हैं? घर में छिपा बैठा न हो। देख तो सोना, भीतर तो नहीं बैठा है।

धनिया ने टोका—उसे मत भेजो दादा! हीरा के सिर हत्या सवार है, न जाने क्या कर बैठे।

दातादीन ने ख़ुद लकड़ी सँभाली और ख़बर लाये कि हीरा सचमुच कहीं चला गया है। पुनिया कहती है, लुटिया-डोर और डण्डा सब लेकर गये हैं। पुनिया ने पूछा भी, कहाँ जाते हो; पर बताया नहीं। उसने पाँच रुपये आले में रखे थे। रुपये वहाँ नहीं हैं। साइत रुपये भी लेता गया।

धनिया शीतल हृदय से बोली—मुँह में कालिख लगाकर कहीं भागा होगा।

शोभा बोला—भाग के कहाँ जायगा। गंगा नहाने न चला गया हो।

धनिया ने शंका की—गंगा जाता तो रुपये क्यों ले जाता, और आजकल कोई परब भी तो नहीं है?

इस शंका का कोई समाधान न मिला। धारणा दृढ़ हो गई।

आज होरी के घर भोजन नहीं पका। न किसी ने बैलों को पानी दिया। सारे गाँव में सनसनी फैली हुई थी। दो-दो, चार-चार आदमी जगह-जगह जमा होकर इसी विषय की आलोचना कर रहे थे। हीरा अवश्य कहीं भाग गया। देखा होगा कि भेद खुल गया, अब जेहल जाना पड़ेगा, हत्या अलग लगेगी। बस, कहीं भाग गया। पुनिया अलग रो रही थी, कुछ कहा न सुना, न जाने कहाँ चल दिये।

जो कुछ कसर रह गई थी वह संध्या-समय हलके के थानेदार ने आकर पूरी कर दी। गाँव के चौकीदार ने इस घटना की रपट की, जैसा उसका कर्तव्य था।

और थानेदार साहब भला अपने कर्तव्य से कब चूकनेवाले थे। अब गाँववालों को उनका सेवा-सत्कार करके अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। दातादीन, झिंगुरी-सिंह, नोखेराम, उनके चारों प्यादे, मँगरू साह और लाला पटेश्वरी, सभी आ पहुँचे और दारोग़ाजी के सामने हाथ बाँधकर खड़े हो गये। होरी की तलबी हुई। जीवन में यह पहला अवसर था कि वह दारोग़ा के सामने आया। ऐसा डर रहा था, जैसे फाँसी हो जायगी। धनिया को पीटते समय उसका एक-एक अंग फड़क रहा था। दारोग़ा के सामने कछुए की भाँति भीतर सिमटा जाता था। दारोग़ा ने उसे आलोचक नेत्रों से देखा और उसके हृदय तक पहुँच गये। आदमियों की नस पहचानने का उन्हें अच्छा अभ्यास था। किताबी मनोविज्ञान में कोरे, पर व्यावहारिक मनोविज्ञान के मर्मज्ञ थे। यक़ीन हो गया, आज अच्छे का मुँह देखकर उठे हैं। होरी का चेहरा कहे देता था, इसे केवल एक घुड़की काफ़ी है।

दारोग़ा ने पूछा—तुझे किस पर शुबहा है?

होरी ने ज़मीन छुई और हाथ बाँधकर बोला—मेरा सुबहा किसी पर नहीं है सरकार, गाय अपनी मौत से मरी है। बुड्ढी हो गई थी।

धनिया भी आकर पीछे खड़ी थी। तुरत बोली—गाय मारी है तुम्हारे भाई हीरा ने। सरकार ऐसे बौड़म नहीं हैं कि जो कुछ तुम कह दोगे, वह मान लेंगे। यहाँ जाँच-तहक़िक़ात करने आये हैं।

दारोग़ाजी ने पूछा—यह कौन औरत है?

कई आदमियों ने दारोग़ाजी से कुछ बातचीत करने का सौभाग्य प्राप्त करने के लिए चढ़ा-ऊपरी की। एक साथ बोले और अपने मन को इस कल्पना से सन्तोष दिया कि पहले मैं बोला—होरी की घरवाली है सरकार!

'तो इसे बुलाओ, मैं पहले इसी का बयान लिखूँगा। वह कहाँ है हीरा?'

विशिष्ट जनों ने एक स्वर से कहा—वह तो आज सबेरे से कहीं चला गया है सरकार!

'मैं उसके घर की तलाशी लूँगा।'

तलाशी! होरी की साँस तले-ऊपर होने लगी। उसके भाई हीरा के घर तलाशी होगी और हीरा घर में नहीं है। तो फिर होरी के जीते जी, और उसके देखते यह तलाशी न होने पायेगी, और धनिया से अब उसका कोई संबन्ध नहीं। जहाँ चाहे

जाय। जब वह उसकी इज्ज़त बिगाड़ने पर आ गई है, तो उसके घर में कैसे रह सकती है। जब गली-गली ठोकर खायेगी, तब पता चलेगा।

गाँव के विशिष्ट जनों ने इस महान् संकट को टालने के लिए काना-फूसी शुरू की।

दातादीन ने गंजा सिर हिलाकर कहा—यह सब कमाने के ढंग हैं। पूछो, हीरा के घर में क्या रखा है।

पटेश्वरीलाल बहुत लंबे थे; पर लंबे होकर भी बेवकूफ़ न थे। अपना लंबा काला मुँह और लंबा करके बोले—और यहाँ आया है किस लिए, और जब आया है, बिना कुछ लिये-दिये गया कब है?

झिंगुरीसिंह ने होरी को बुलाकर कान में कहा—निकालो, जो कुछ देना हो। यों गला न छूटेगा।

दारोगाजी ने अब ज़रा गरजकर कहा—मैं हीरा के घर की तलाशी लूँगा।

होरी के मुख का रंग ऐसा उड़ गया था, जैसे देह का सारा रक्त सूख गया हो। तलाशी उसके घर हुई तो, उसके भाई के घर हुई तो, एक ही बात है। हीरा अलग सही; पर दुनिया तो जानती है, वह उसका भाई है; मगर इस वक्त, उसका कुछ बस नहीं। उसके पास रुपये होते, तो इसी वक्त पचास रुपये लाकर दारोगाजी के चरणों पर रख देता और कहता—सरकार, मेरी इज़्ज़त अब आपके हाथ है। मगर उसके पास तो ज़हर खाने को भी एक पैसा नहीं है। धनिया के पास चाहे दो-चार रुपये पड़े हों; पर वह चुड़ैल भला क्यों देने लगी। मृत्यु-दण्ड पाये हुए आदमी की भाँति सिर झुकाये, अपने अपमान की वेदना का तीव्र अनुभव करता हुआ चुपचाप खड़ा रहा।

दातादीन ने होरी को सचेत किया—अब इस तरह खड़े रहने से काम न चलेगा होरी, रुपये की कोई जुगत करो।

होरी दीन-स्वर में बोला—अब मैं क्या अरज करूँ महाराज! अभी तो पहले ही की गठरी सिर पर लदी है, और किस मुँह से माँगूँ; लेकिन इस संकट से उबार लो। जीता रहा, तो कौड़ी-कौड़ी चुका दूँगा। मैं मर भी जाऊँ, तो गोबर तो है ही।

नेताओं में सलाह होने लगी—दारोगाजी को क्या भेंट की जाय, दातादीन ने पचास का प्रस्ताव किया। झिंगुरीसिंह के अनुमान में सौ से कम पर सौदा न होगा। नोखेराम भी सौ के पक्ष में थे। और होरी के लिए सौ और पचास में कोई अन्तर

न था। इस तलाशी का संकट उसके सिर से टल जाय। पूजा चाहे कितनी ही चढ़ानी पड़े। मरे को मन-भर लकड़ी से जलाओ, या दस मन से, उसे क्या चिन्ता !

मगर पटेश्वरी से यह अन्याय न देखा गया। कोई डाका या क़तल तो हुआ नहीं। केवल तलाशी हो रही है। इसके लिए बीस रुपये बहुत हैं।

नेताओं ने धिक्कारा—तो फिर तुम्हीं दारोग़ाजी से बातचीत करना। हम लोग नगीच न जायँगे। कौन घुड़कियाँ खाय।

होरी ने पटेश्वरी के पाँव पर सिर रख दिया—भैया, मेरा उद्धार करो। जब तक जीऊँगा, तुम्हारी ताबेदारी करूँगा।

दारोग़ाजी ने फिर अपने विशाल वक्ष और विशालतर उदर को पूरी शक्ति से कहा—कहाँ है होरा का घर? मैं उसके घर की तलाशी लूँगा।

पटेश्वरी ने आगे बढ़कर दारोग़ाजी के कान में कहा—तलाशी लेकर क्या करोगे हुजूर, उसका भाई आपकी ताबेदारी के लिए हाज़िर है।

दोनों आदमी ज़रा अलग जाकर बातें करने लगे।

'कैसा आदमी है?'

'बहुत ही ग़रीब हुजूर! भोजन का ठिकाना भी नहीं?'

'सच!'

'हाँ हुजूर, ईमान से कहता हूँ।'

'अरे तो क्या एक पचासे का डौल भी नहीं है?'

'कहाँ की बात हुजूर! दस मिल जायँ, तो हज़ार समझिए। पचास तो पचास जनम में भी मुमकिन नहीं और वह भी जब कोई महाजन खड़ा हो जायगा!'

दारोग़ाजी ने एक मिनट तक विचार करके कहा—तो फिर उसे सताने से क्या फ़ायदा। मैं ऐसों को नहीं सताता, जो आप ही मर रहे हों।

पटेश्वरी ने देखा, निशाना और आगे जा पड़ा। बोले—नहीं हुजूर, ऐसा न कीजिए, नहीं फिर हम कहाँ जायँगे। हमारे पास दूसरी कौन-सी खेती है।

'तुम इलाके के पटवारी हो जी, कैसी बातें करते हो!'

'जब ऐसा ही कोई अवसर आ जाता है, तो आपकी बदौलत हम भी कुछ पा जाते हैं। नहीं, पटवारी को कौन पूछता है।'

'अच्छा जाओ, तीस रुपये दिलवा दो। बीस रुपये हमारे, दस रुपये तुम्हारे।'

'चार मुखिया हैं, इसका ख़याल कीजिए।'

'अच्छा, आधे-आध पर रखो और जल्दी करो। मुझे देर हो रही है।'

पटेश्वरी ने झिंगुरी से कहा, झिंगुरी ने होरी को इशारे से बुलाया, अपने घर ले गये, तीस रुपये गिनकर उसके हवाले किये और एहसान से दबाते हुए बोले—आज ही कागद लिखा लेना। तुम्हारा मुँह देखकर रुपये दे रहा हूँ, तुम्हारी भलमनसी पर।

होरी ने रुपये लिये और अँगोछे के कोर में बाँधे, प्रसन्न-मुख आकर दारोगाजी की ओर चला।

सहसा धनिया झपटकर आगे आई और अँगोछी एक झटके के साथ उसके हाथ से छीन ली। गाँठ पक्की न थी। झटका पाते ही खुल गई और सारे रुपये ज़मीन पर बिखर गये। नागिन की तरह फुँकारकर बोली—ये रुपये कहाँ लिये जा रहा है। बता। भला चाहता है, तो सब रुपये लौटा दे, नहीं कहे देती हूँ। घर के परानी रात-दिन मरें और दाने-दाने को तरसें, लत्ता भी पहनने को मयस्सर न हो और अँजुली भर रुपये लेकर चला है इज़्ज़त बचाने! ऐसी बड़ी है तेरी इज़्ज़त! जिसके घर में चूहे लोटें, वह भी इज़्जतवाला है! दारोगा तलासी ही तो लेगा। ले-ले जहाँ चाहे तलासी; एक तो सौ रुपये की गाय गई, उस पर यह पलेथन! वाह री तेरी इज़्ज़त!

होरी ख़ून का घूँट पीकर रह गया। सारा समूह जैसे थर्रा उठा। नेताओं के सिर झुक गये और दारोगा का मुँह ज़रा-सा निकल आया। अपने जीवन में उसे ऐसी लताड़ न मिली थी।

होरी स्तंभित-सा खड़ा रहा। जीवन में आज पहली बार धनिया ने उसे भरे अखाड़े में पटकनी दी, आकाश तका दिया। अब वह कैसे सिर उठाये।

मगर दारोगाजी इतनी जल्द हार माननेवाले न थे। खिसियाकर बोले—मुझे ऐसा मालूम होता है, कि इस शैतान की खाला ने हीरा को फँसाने के लिए ख़ुद गाय को ज़हर दे दिया।

धनिया हाथ मटकाकर बोली—हाँ दे दिया। अपनी गाय थी, मार डाली, फिर? किसी दूसरे का जानवर तो नहीं मारा? तुम्हारे तहकियात में यही निकलता है, तो यही लिखो। पहना दो मेरे हाथ में हथकड़ियाँ। देख लिया तुम्हारा न्याय और

तुम्हारे अक्ल की दौड़। गरीबों का गला काटना दूसरी बात है। दूध का दूध और पानी का पानी करना दूसरी बात।

होरी आँखों से अँगारे बरसाता धनिया की ओर लपका; पर गोबर सामने आकर खड़ा हो गया और उग्र भाव से बोला—अच्छा दादा, अब बहुत हुआ। पीछे हट जाओ, नहीं मैं कहे देता हूँ, मेरा मुँह न देखोगे। तुम्हारे ऊपर हाथ न उठाऊँगा। ऐसा कपूत नहीं हूँ। यहीं गले में फाँसी लगा लूँगा।

होरी पीछे हट गया और धनियाँ शेर होकर बोली—तू हट जा गोबर, देखूँ तो क्या करता है मेरा। दारोगाजी बैठे हैं। इसकी हिम्मत देखूँ। घर में तलासी होने से इसकी इज्जत जाती है। अपनी मेहरिया को सारे गाँव के सामने लतियाने से इसकी इज्जत नहीं जाती! यही तो बीरों का धरम है। बड़ा बीर है, तो किसी मर्द से लड़। जिसकी बाँह पकड़कर लाया, उसे मारकर बहादुर न कहलायेगा। तू समझता होगा, मैं इसे रोटी-कपड़ा देता हूँ। आज से अपना घर सँभाल। देख तो इसी गाँव में तेरी छाती पर मूँग दलकर रहती हूँ कि नहीं, और उससे अच्छा खाऊँ-पहनूँगी। इच्छा हो देख ले।

होरी परास्त हो गया। उसे ज्ञात हुआ, स्त्री के सामने पुरुष कितना निर्बल, कितना निरुपाय है।

नेताओं ने रुपये चुनकर उठा लिये थे और दारोगाजी को वहाँ से चलने का इशारा कर रहे थे। धनिया ने एक ठोकर और जमाई—जिसके रुपये हों, ले जाकर उसे दे दो। हमें किसी से उधार नहीं लेना है। और जो देना है, तो उसी से लेना। मैं दमड़ी भी न दूँगी, चाहे मुझे हाकिम के इजलास तक ही चढ़ना पड़े। हम बाकी चुकाने को पचीस रुपये माँगते थे, किसी ने न दिया। आज अँजुली-भर रुपये ठनाठन निकाल के दिये। मैं सब जानती हूँ। यहाँ तो बाँट-बखरा होनेवाला था। सभी के मुँह मीठे होते। ये हत्यारे गाँव के मुखिया हैं, गरीबों का ख़ून चूसनेवाले। सूद-ब्याज, डेढ़ी-सवाई, नजर-नजराना, घूस-घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेहल जाने से सुराज न मिलेगा सुराज मिलेगा धरम से, न्याय से।

नेताओं के मुँह में कालिख-सी लगी हुई थी। दारोगाजी के मुँह पर झाड़ू-सी फिरी हुई थी। इज्ज़त बचाने के लिए हीरा के घर की ओर चले।

रास्ते में दारोगा ने स्वीकार किया—औरत है बड़ी दिलेर !

पटेश्वरी बोले—दिलेर क्या है हुजूर, कर्कशा है। ऐसी औरत को तो गोली मार दे।

'तुम लोगों का क़ाफ़िया तंग कर दिया उसने। चार-चार तो मिलते ही।'

'हुज़ूर के भी तो पन्द्रह रुपये गये।'

'मेरे कहाँ जा सकते हैं। वह न देगा, गाँव के मुखिया देंगे और पन्द्रह रुपये की जगह पूरे पचास रुपये। आप लोग चटपट इन्तज़ाम कीजिए।'

पटेश्वरीलाल ने हँसकर कहा—हुज़ूर बड़े दिल्लगीबाज़ हैं।

दातादीन बोले—बड़े आदमियों के यही लक्षण हैं। ऐसे भाग्यवानों के दर्शन कहाँ होते हैं।

दारोगाजी ने कठोर स्वर में कहा—यह खुशामद फिर कीजिएगा। इस वक्त तो मुझे पचास रुपये दिलवाइए, नक़द; और यह समझ लो कि आना-कानी की, तो मैं तुम चारों के घर की तलाशी लूँगा। बहुत मुमकिन है कि तुमने हीरा और होरी को फँसाकर उनसे सौ-पचास ऐंठने के लिए यह पाखण्ड रचा हो।

नेतागण अभी तक यह समझ रहे हैं, दारोगाजी विनोद कर रहे हैं।

झिंगुरीसिंह ने आँखें मारकर कहा—निकालो पचास रुपये पटवारी साहब।

नोखेराम ने उनका समर्थन किया—पटवारी साहब का इलाक़ा है। उन्हें ज़रूर आपकी खातिर करनी चाहिए।

पण्डित नोखेरामजी की चौपाल आ गई। दारोगाजी एक चारपाई पर बैठ गये और बोले—तुम लोगों ने क्या निश्चय किया ? रुपये निकालते हो या तलाशी करवाते हो ?

दातादीन ने आपत्ति की—मगर हुज़ूर...

'मैं अगर-मगर कुछ नहीं सुनना चाहता।'

झिंगुरीसिंह ने साहस किया—सरकार यह तो सरासर...

'मैं पन्द्रह मिनट का समय देता हूँ। अगर इतनी देर में पूरे पचास रुपये न आये, तो तुम चारों के घर की तलाशी होगी। और गण्डासिंह को जानते हो। उसका मारा पानी भी नहीं माँगता।'

पटेश्वरीलाल ने तेज़ होकर कहा—आपको अख़्तियार है, तलाशी ले लें। यह अच्छी दिल्लगी है, काम कौन करे, पकड़ा कौन जाय।

'मैंने पचीस साल थानेदारी की है, जानते हो?'

'लेकिन ऐसा अन्धेर तो कभी नहीं हुआ।'

'तुमने अभी अन्धेर नहीं देखा। कहो तो वह भी दिखा दूँ। एक-एक को पाँच-पाँच साल के लिए भेजवा दूँ। यह मेरे बायें हाथ का खेल है। डाके में सारे गाँव को काले पानी भेजवा सकता हूँ। इस धोखे में न रहना!'

चारों सज्जन चौपाल के अन्दर जाकर विचार करने लगे।

फिर क्या हुआ, किसी को मालूम नहीं; हाँ, दारोगाजी प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। और चारों सज्जनों के मुँह पर फटकार बरस रही थी।

दारोगाजी घोड़े पर सवार होकर चले, तो चारों नेता दौड़ रहे थे। घोड़ा दूर निकल गया, तो चारों सज्जन लौटे, इस तरह मानो किसी प्रियजन का संस्कार करके श्मशान से लौट रहे हों।

सहसा दातादीन बोले—मेरा सराप न पड़े तो मुँह न दिखाऊँ।

नोखेराम ने समर्थन किया—ऐसा धन कभी फलते नहीं देखा।

पटेश्वरी ने भविष्यवाणी की—हराम की कमाई हराम में जायगी।

झिंगुरीसिंह को आज ईश्वर की न्यायपरता में सन्देह हो गया था। भगवान् न जाने कहाँ हैं कि यह अन्धेर देखकर भी पापियों को दण्ड नहीं देते।

इस वक्त इन सज्जनों की तस्वीर खींचने लायक़ थी।

१०

हीरा का कहीं पता न चला और दिन गुज़रते जाते थे। होरी से जहाँ तक दौड़-धूप हो सकी, की, फिर हारकर बैठ रहा। खेती-बारी की भी फ़िक्र करनी थी। अकेला आदमी क्या-क्या करता। और अब अपनी खेती से ज़्यादा फ़िक्र थी पुनिया की खेती की। पुनिया अब अकेली होकर और भी प्रचण्ड हो गई थी। होरी को अब उसकी ख़ुशामद करते बीतती थी। हीरा था, तो वह पुनिया को दबाये रहता था। उसके चले जाने से अब पुनिया पर कोई अँकुस न रह गया था। होरी की पट्टीदारी हीरा से थी। पुनिया अबला थी। उससे वह क्या तनातनी करता। और पुनिया उसके

स्वभाव से परिचित थी और उसकी सज्जनता का उसे खूब दण्ड देती थी। खैरियत यही हुई कि कारकुन साहब ने पुनिया से बक़ाया लगान वसूल करने की कोई सख़्ती न की, केवल थोड़ी-सी पूजा लेकर राज़ी हो गये। नहीं होरी अपने बक़ाया के साथ उसका बक़ाया चुकाने के लिए भी क़र्ज़ लेने को तैयार था। सावन में धान की रोपाई की ऐसी धूम रही कि मजूर न मिले और होरी अपने खेत में धान न रोप सका; लेकिन पुनिया के खेतों में कैसे न रोपाई होती। होरी ने पहर रात-रात तक काम करके उसके धान रोपे। अब होरी ही तो उसका रक्षक है। अगर पुनिया को कोई कष्ट हुआ, तो दुनिया उसी को तो हँसेगी! नतीजा यह हुआ कि होरी को खरीफ़ की फसल में बहुत थोड़ा अनाज मिला, और पुनिया के बखार में धान रखने को जगह न रही।

होरी और धनिया में उस दिन से बराबर मनमुटाव चला आता था। गोबर से भी होरी की बोल-चाल बन्द थी। माँ-बेटे ने मिलकर जैसे उसका बहिष्कार कर दिया था। अपने घर में परदेशी बना हुआ था। दो नावों पर सवार होनेवालों की जो दुर्गती होती है, वही उसकी हो रही थी। गाँव में भी अब उसका उतना आदर न था। धनिया ने अपने साहस से स्त्रियों का ही नहीं, पुरुषों का नेतृत्व भी प्राप्त कर लिया था। महीनों तक आसपास के इलाक़ों में इस काण्ड की खूब चर्चा रही। यहाँ तक कि वह अलौकिक रूप तक धारण करता जाता था—'धनिया नाम है उसका जी। भवानी का इष्ट है उसे। दारोग़ाजी ने ज्यों ही उसके आदमी के हाथ में हथकड़ी डाली कि धनिया ने भवानी का सुमिरन किया। भवानी उसके सिर आ गईं। फिर तो उसमें इतनी शक्ति आ गई कि उसने एक झटके में पति की हथकड़ी तोड़ डाली और दारोग़ा की मूँछें पकड़कर उखाड़ लीं, फिर उसकी छाती पर चढ़ बैठी। दारोग़ा ने जब बहुत मानता की, तब जाकर उसे छोड़ा।' कुछ दिन तक तो लोग धनिया के दर्शनों को आते रहे। वह बात अब पुरानी पड़ गयी थी; लेकिन गाँव में धनिया का सम्मान बहुत बढ़ गया। उसमें अद्भुत साहस है और समय पड़ने पर वह मर्दों के भी कान काट सकती है।

मगर धीरे-धीरे धनिया में एक परिवर्तन हो रहा था। होरी को पुनिया की खेती में लगे देखकर भी वह कुछ न बोलती थी। और यह इसलिए नहीं कि वह होरी से विरक्त हो गई थी; बल्कि इसलिए कि पुनिया पर अब उसे भी दया आती

हीरा का घर से भाग जाना उसकी प्रतिशोध-भावना की तुष्टि के लिए काफ़ी था।

इसी बीच में होरी को ज्वर आने लगा। फस्ली बुखार फैला था ही। होरी उसके चपेट में आ गया। और कई साल के बाद जो ज्वर आया, तो उसने सारा बकाया चुका लिया। एक महीने तक होरी खाट पर पड़ा रहा। इस बीमारी ने होरी को तो कुचल डाला ही; पर धनिया पर भी विजय पा ली। पति जब मर रहा है तो उससे कैसा वैर। ऐसी दशा में तो वैरियों से भी वैर नहीं रहता, वह तो अपना पति है। लाख बुरा हो; पर उसी के साथ जीवन के पचीस साल कटे हैं, सुख किया है, तो उसी के साथ; दुख भोगा है, तो उसी के साथ, अब तो चाहे वह अच्छा है या बुरा, अपना है। दाढ़ीजार ने मुझे सबके सामने मारा, सारे गाँव के सामने मेरा पानी उतार लिया; लेकिन तबसे कितना लज्जित है कि सीधे ताकता नहीं। खाने आता है, तो सिर झुकाये खाकर उठ जाता है, डरता रहता है कि मैं कुछ कह न बैठूँ।

होरी जब अच्छा हुआ, तो पति-पत्नी में मेल हो गया था।

एक दिन धनिया ने कहा — तुम्हें इतना गुस्सा कैसे आ गया। मुझे तो तुम्हारे ऊपर कितना ही गुस्सा आये; मगर हाथ न उठाऊँगी।

होरी लजाता हुआ बोला—अब उसकी चर्चा न कर धनिया! मेरे ऊपर कोई भूत सवार था। इसका मुझे कितना दुख हुआ है, वह मैं ही जानता हूँ।

'और जो मैं भी उसी क्रोध में डूब मरी होती!'

'तो क्या मैं रोने के लिए बैठा रहता? मेरी लहास भी तेरे साथ चिता पर जाती।'

'अच्छा चुप रहो, बेबात की बात मत बको।'

'गाय गई सो गई, मेरे सिर पर एक विपत्ति डाल गई। पुनिया की फिकर मुझे मार डालती है।'

'इसी लिए तो कहते हैं, भगवान् घर का बड़ा न बनाये? छोटों को कोई नहीं हँसता। नेकी-बदी सब बड़ों के सिर जाती है।'

माघ के दिन थे। महावट लगी हुई थी। घटाटोप अँधेरा छाया हुआ था। एक तो जाड़ों की रात, दूसरे माघ की वर्षा। मौत का-सा सन्नाटा छाया हुआ था। अँधेरा तक न सूझता था। होरी भोजन करके पुनिया के मटर के खेत की मेंड़ पर

अपनी मँड़ैया में लेटा हुआ था। चाहता था, शीत को भूल जाय और सो रहे; लेकिन तार-तार कम्बल और फटी हुई मिर्जई और शीत के झोंकों से गीली पुआल, इतने शत्रुओं के सम्मुख आने का नींद में साहस न था। आज तमाखू भी न मिला कि उसी से मन बहलाता। उपला सुलगा लाया था; पर शीत में वह भी बुझ गया। बेवाय फटे पैरों को पेट में डालकर और हाथों को जाँघों के बीच में दबाकर और कम्बल में मुँह छिपाकर अपनी ही गर्म साँसों से अपने को गर्म करने की चेष्टा कर रहा था। पाँच साल हुए, यह मिर्जई बनवाई थी। धनिया ने एक प्रकार से जबर-दस्ती बनवा दी थी, वही जब एक बार काबुली से कपड़े लिये थे, जिसके पीछे कितनी साँसत हुई, कितनी गालियाँ खानी पड़ीं। और कम्बल तो उसके जन्म से भी पहले का है। बचपन में अपने बाप के साथ वह इसी में सोता था, जवानी में गोबर को लेकर इसी कम्बल में उसके जाड़े कटे थे और बुढ़ापे में आज वही बूढ़ा कम्बल उसका साथी है; पर अब वह भोजन को चबानेवाला दाँत नहीं, दुखनेवाला दाँत है। जीवन में ऐसा तो कोई दिन ही नहीं आया कि लगान और महाजन को देकर कभी कुछ बचा हो। और बैठे-बैठाये यह एक नया जंजाल पड़ गया। न करो तो दुनिया हँसे, करो तो यह संशय बना रहे कि लोग क्या कहते हैं। सब यह समझते हैं कि वह पुनिया को लूटे लेता है, उसकी सारी उपज घर में भर लेता है। एहसान तो क्या होगा उलटा कलंक लग रहा है। और उधर भोला कई बेर याद दिला चुके हैं कि कहीं कोई सगाई का डौल करो, अब काम नहीं चलता। सोभा उससे कई बार कह चुका है कि पुनिया के विचार उसकी ओर से अच्छे नहीं हैं। न हों। पुनिया की गृहस्थी तो उसे सँभालनी ही पड़ेगी, चाहे हँसकर सँभाले या रोकर। धनिया का दिल भी अभी तक साफ़ नहीं हुआ। अभी तक उसके मन में मलाल बना हुआ है। मुझे सब आदमियों के सामने उसको मारना न चाहिए था। जिसके साथ पचीस साल गुज़र गये, उसे मारना और सारे गाँव के सामने, मेरी नीचता थी; लेकिन धनिया ने भी तो मेरी आबरू उतारने में कोई कसर नहीं छोड़ी। मेरे सामने से कैसा कतराकर निकल जाती है, जैसे कभी की जान-पहचान ही नहीं। कोई बात कहनी होती है, तो सोना या रूपा से कहलाती है। देखता हूँ, उसकी साड़ी फट गई है; मगर कल मुझसे कहा भी, तो सोना की साड़ी के लिए, अपनी साड़ी का नाम तक न लिया। सोना की साड़ी अभी दो-एक महीने थेगलियाँ लगाकर चल सकती है। उसकी साड़ी तो सारे पेवँदों के

बिल्कुल कथरी हो गई है। और फिर मैं ही कौन उसका मनुहार कर रहा हूँ। अगर मैं ही उसके मन की दो-चार बातें करता रहता, तो कौन छोटा हो जाता। यही तो होता, वह थोड़ा-सा अदरावन कराती, दो-चार लगनेवाली बात कहती, तो क्या मुझे चोट लग जाती; लेकिन मैं बुड्ढा होकर भी उल्लू बना रह गया। वह तो कहो इस बीमारी ने आकर उसे नर्म कर दिया, नहीं जाने कब तक मुँह फुलाये रहती।

और आज उन दोनों में जो बातें हुई थीं, वह मानों भूखे का भोजन थीं। वह दिल से बोली थी और होरी गद्गद हो गया था। उसके जी में आया, उसके पैरों पर सिर रख दे और कहे—मैंने तुझे मारा है तो ले मैं सिर झुकाये देता हूँ, जितना चाहे, मार ले, जितनी गालियाँ देना चाहे, दे ले।

सहसा उसे मँड़ैया के सामने चूड़ियों की झंकार सुनाई दी। उसने कान लगाकर सुना। हाँ, कोई है। पटवारी की लड़की होगी, चाहे पण्डित की घरवाली हो। मटर उखाड़ने आई होगी। न जाने क्यों इन लोगों की नीयत इतनी खोटी है। सारे गाँव से अच्छा पहनते हैं, सारे गाँव से अच्छा खाते हैं, घर में हज़ारों रुपये गड़े हैं, लेन-देन करते हैं, ड्योढ़ी-सवाई चलाते हैं, घूस लेते हैं, दस्तूरी लेते हैं, एक-न-एक मामला खड़ा करके हमा-सुमा को पीसते ही रहते हैं, फिर भी नीयत का यह हाल! बाप जैसा होगा, वैसी ही सन्तान भी तो होगी! और आप नहीं आते, औरतों को भेजते हैं। अभी उठकर हाथ पकड़ लूँ तो क्या पानी रह जाय। नीच कहने ही को नीच हैं, जो ऊँचे हैं, उनका मन तो और भी नीचा है। औरत जात का हाथ पकड़ते भी तो नहीं बनता; आँखों देखकर मक्खी निगलनी पड़ती है। उखाड़ ले भाई, जितना तेरा जी चाहे। समझ ले, मैं नहीं हूँ। बड़े आदमी अपनी लाज न रखें, छोटों को तो उनकी लाज रखनी ही पड़ती है।

मगर नहीं, यह तो धनिया है। पुकार रही है।

धनिया ने पुकारा—सो गये कि जागते हो!

होरी झटपट उठा और मँड़ैया के बाहर निकल आया। आज मालूम होता है, देवी प्रसन्न हो गईं, उसे वरदान देने आई हैं; इसके साथ ही इस बादल-बूँदी और जाड़े-पाले में इतनी रात गये, उसका आना शंकाप्रद भी था। जरूर कोई न कोई बात हुई है।

बोला—ठण्ड के मारे नींद भी आती है? तू इस जाड़े-पाले में कैसे आई! कुसल तो है?

'हाँ, सब कुसल है।'

'गोबर को भेजकर मुझे क्यों नहीं बुलवा लिया?'

धनिया ने कोई उत्तर न दिया। मँड़ैया में आकर पुआल पर बैठती हुई बोली— गोबर ने तो मुँह में कालिख लगा दी, उसकी करनी क्या पूछते हो। जिस बात को डरती थी, वह होकर रही।

'क्या हुआ क्या? किसी से मार-पीट कर बैठा?'

'अब मैं क्या जानूँ, क्या कर बैठा, चलकर पूछो उसी राँड़ से?'

'किस राँड़ से? क्या कहती है तू? बौड़ा तो नहीं गई?'

'हाँ, बौड़ा क्यों न जाऊँगी। बात ही ऐसी हुई है कि छाती दुगुनी हो जाय?'

होरी के मन में प्रकाश की एक लम्बी रेखा ने प्रवेश किया।

'साफ़-साफ़ क्यों नहीं कहती। किस राँड़ को कह रही है?'

'उसी झुनिया को, और किसको!'

'तो झुनिया क्या यहाँ आई है?'

'और कहाँ जाती, पूछता कौन?'

'गोबर क्या घर मे नहीं है?'

'गोबर का कहीं पता नहीं। जाने कहाँ भाग गया। इसे पाँच महीने का पेट है।'

होरी सब कुछ समझ गया। गोबर को बार-बार अहिराने जाते देखकर वह खटका था ज़रूर; मगर उसे ऐसा खिलाड़ी न समझता था। युवकों में कुछ रसिकता होती ही है, इसमें कोई नई बात नहीं। मगर जिस रूई के गाले को उसने नीले आकाश में हवा के झोंके से उड़ते देखकर केवल मुस्करा दिया था, वह सारे आकाश में छाकर उसके मार्ग को इतना अन्धकारमय बना देगा, यह तो कोई देवता भी न जान सकता था। गोबर ऐसा लंपट! वह सरल गँवार जिसे वह अभी बच्चा समझता था; लेकिन उसे भोज की चिन्ता न थी, पंचायत का भय न था, झुनिया घर में कैसे रहेगी, इसकी चिन्ता भी उसे न थी, उसे चिन्ता थी गोबर की। लड़का लज्जाशील है, अनाड़ी है, आत्माभिमानी है, कहीं कोई नादानी न कर बैठे।

घबड़ाकर बोला—झुनिया ने कुछ कहा नहीं, गोबर कहाँ गया ? उससे कहकर ही गया होगा।

धनिया झुँझलाकर बोली—तुम्हारी अक्कल तो घास खा गई है। उसकी चहेती तो यहाँ बैठी है, भाग के जायगा कहाँ। यहीं-कहीं छिपा बैठा होगा। दूध थोड़े ही पीता है कि खो जायगा। मुझे तो इस कलमुँही झुनिया की चिन्ता है कि इसे क्या करूँ ? अपने घर में तो मैं छन भर भी न रहने दूँगी। जिस दिन गाय लाने गया है, उसी दिन से दोनों में तक-झक होने लगी। पेट न रहता, तो अभी बात न खुलती, मगर जब पेट रह गया, तो झुनिया लगी घबड़ाने। कहने लगी, कहीं भाग चलो। गोबर टालता रहा। एक औरत को साथ लेके कहाँ जाय, कुछ न सूझा। आखिर जब आज वह सिर हो गई कि मुझे यहाँ से ले चलो, नहीं मैं परान दे दूँगी, तो बोला—तू चलकर मेरे घर में रह, कोई कुछ न बोलेगा, अम्मा को मना लूँगा। यह गधी उसके साथ चल पड़ी। कुछ दूर तो आगे-आगे आता रहा, फिर न जाने किधर सरक गया। यह खड़ी खड़ी उसे पुकारती रही। जब रात भींग गई और वह न लौटा, भागी यहाँ चली आई। मैंने तो कह दिया। जैसा किया है, उसका फल भोग। चुड़ैल ने लेके मेरे लड़के को चौपट कर दिया। तबसे बैठी रो रही है। उठती ही नहीं। कहती है, अपने घर कौन मुँह लेकर जाऊँ। भगवान् ऐसी सन्तान से तो बाँझ ही रखें तो अच्छा। सबेरा होते-होते सारे गाँव में काँव-काँव मच जायगी। ऐसा जी होता है, माहुर खा लूँ। मैं तुमसे कहे देती हूँ, मैं अपने घर में न रखूँगी। गोबर को रखना हो, अपने सिर पर रखे। मेरे घर में ऐसी छत्तीसियों के लिए जगह नहीं है। और अगर तुम बीच में बोले, तो फिर या तो तुम्हीं रहोगे, या मैं ही रहूँगी।

होरी बोला—तुमसे बना नहीं। उसे घर में आने ही न देना चाहिए था।

'सब कुछ कहके हार गई। टलती ही नहीं। धरना दिये बैठी है।'

'अच्छा चल, देखूँ कैसे नहीं उठती। घसीटकर बाहर निकाल दूँगा।'

'दाढ़ीजार भोला सब कुछ देख रहा था; पर चुप्पी साधे बैठा रहा। बाप भी ऐसे बेहया होते हैं!'

'वह क्या जानता था, इनके बीच में क्या खिचड़ी पक रही है।'

'जानता क्यों नहीं था। गोबर रात-दिन घेरे रहता था, तो क्या उसकी आँखें फूट गई थीं ! सोचना चाहिए था न कि यहाँ क्यों दौड़-दौड़ आता है!'

'चल, मैं झुनिया से पूछता हूँ न!'

दोनों मँड़ैया से निकलकर गाँव की ओर चले। होरी ने कहा—पाँच घड़ी रात के ऊपर गई होगी।

धनिया बोली—हाँ, और क्या; मगर कैसा सोता पड़ गया है! कोई चोर आये, तो सारे गाँव को मूस ले जाय।

'चोर ऐसे गाँव में नहीं आते। धनियों के घर जाते हैं।'

धनिया ने ठिठककर होरी का हाथ पकड़ लिया और बोली—देखो, हल्ला न मचाना, नहीं सारा गाँव जाग उठेगा और बात फैल जायगी।

होरी ने कठोर स्वर में कहा—मैं यह कुछ नहीं जानता। हाथ पकड़कर घसीट लाऊँगा और गाँव के बाहर कर दूँगा। बात तो एक दिन खुलनी ही है, फिर आज ही क्यों न खुल जाय। वह मेरे घर आई क्यों? जाय जहाँ गोबर है। उसके साथ कुकरम किया, तो क्या हमसे पूछकर किया था?

धनिया ने फिर उसका हाथ पकड़ा और धीरे से बोली—तुम उसका हाथ पकड़ोगे, तो वह चिल्लायेगी।

'तो चिल्लाया करे।'

'मुदा इतनी रात गये इस अँधेरे, सन्नाटे में जायगी कहाँ, यह तो सोचो।'

'जाय जहाँ उसके सगे हों। हमारे घर में उसका क्या रखा है।'

'हाँ, लेकिन इतनी रात गये घर से निकालना उचित नहीं। पाँव भारी है, कहीं डर-डरा जाय, तो और आफ़त हो। ऐसी दशा में कुछ करते धरते भी तो नहीं बनता!'

'हमें क्या करना है, मरे या जीये। जहाँ चाहे जाय। क्यों अपने मुँह में कालिख लगाऊँ। मैं तो गोबर को भी निकाल बाहर करूँगा।'

धनिया ने गंभीर चिन्ता से कहा—कालिख जो लगनी थी, वह तो अब लग चुकी। वह अब जीते-जी नहीं छूट सकती, गोबर ने नौका डुबा दी।

'गोबर ने नहीं डुबाई, इसी ने। वह बच्चा था। इसके पंजे में आ गया।'

'किसी ने डुबाई, अब तो डूब गई।'

दोनों द्वार के सामने पहुँच गये। सहसा धनिया ने होरी के गले में हाथ डालकर

कहा—देखो, तुम्हें मेरी सौंह, उस पर हाथ न उठाना। वह तो आप ही रो रही है। भाग की खोटी न होती, तो यह दिन ही क्यों आता।

होरी की आँखें आर्द्र हो गईं। धनिया का यह मातृ-स्नेह उस अँधेरे में भी जैसे दीपक के समान उसकी चिन्ता-जर्जर आकृति को शोभा प्रदान करने लगा। दोनों ही के हृदय में जैसे अतीत-यौवन सचेत हो उठा। होरी को इस बीत-यौवना में भी वही कोमल-हृदय बालिका नज़र आई, जिसने पचीस साल पहले उसके जीवन में प्रवेश किया था। उस आलिंगन में जितना अथाह वात्सल्य था, जो सारे कलंक, सारी बाधाओं और सारी मूलबद्ध परंपराओं को अपने अन्दर समेटे लेता था।

दोनों ने द्वार पर आकर किवाड़ों के दराज़ से अन्दर झाँका। दीवट पर तेल की कुप्पी जल रही थी और उसके मध्यम प्रकाश में झुनिया घुटने पर सिर रखे, द्वार की ओर मुँह किये अन्धकार में उस आनन्द को खोज रही थी, जो एक क्षण पहले अपनी मोहिनी छवि दिखाकर विलीन हो गया था। वह आफ़त की मारी व्यंग्य-बाणों से आहत और जीवन के आघातों से व्यथित किसी वृक्ष की छाँह खोजती फिरती थी, और उसे एक भवन मिल गया था, जिसके आश्रय में वह अपने को सुरक्षित और सुखी समझ रही थी; पर आज वह भवन अपना सारा सुख-विलास लिये अलादीन के राजमहल की भाँति गायब हो गया था और भविष्य एक विकराल दानव के समान उसे निगल जाने को खड़ा था।

एकाएक द्वार खुलते और होरी को आते देखकर वह भय से काँपती हुई उठी और होरी के पैरों पर गिरकर रोती हुई बोली—दादा, अब तुम्हारे सिवाय मुझे दूसरा ठौर नहीं है, चाहे मारो, चाहे काटो; लेकिन अपने द्वार से दुर-दुराओ मत।

होरी ने झुककर उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए प्यार-भरे स्वर में कहा—डर मत बेटी, डर मत। तेरा घर है, तेरा द्वार है, तेरे हम हैं। आराम से रह। जैसी तू भोला की बेटी है, वैसी ही मेरी बेटी है। जब तक हम जीते हैं, किसी बात की चिन्ता मत कर। हमारे रहते कोई तुझे तिरछी आँखों न देख सकेगा। भोज-भात जो लगेगा, वह हम सब दे लेंगे, तू खातिर-जमा रख।

झुनिया सान्त्वना पाकर और भी होरी के पैरों से चिमट गई और बोली—

दादा, अब तुम्हीं मेरे बाप हो और अम्मा, तुम्हीं मेरी मा हो। मैं अनाथ हूँ। मुझे सरन दो, नहीं मेरे काका और भाई मुझे कच्चा ही खा जायँगे।

धनिया अपनी करुणा के आवेश को अब न रोक सकी। बोली—तू चल, घर में बैठ, मैं देख लूँगी काका और भैया को। संसार में उन्हीं का राज नहीं है। बहुत करेंगे, अपने गहने ले लेंगे। फेंक देना उतारकर।

अभी ज़रा देर पहले धनिया ने क्रोध के आवेश में झुनिया को कुलटा और कलङ्किनी और कलमुँही न जाने क्या-क्या कह डाला था। झाड़ू मारकर घर से निकालने जा रही थी। अब जो झुनिया ने स्नेह और क्षमा और आश्वासन से भरे यह वाक्य सुने, तो होरी के पाँव छोड़कर धनिया के पाँव से लिपट गई और वही साध्वी जिसने होरी के सिवा किसी पुरुष को आँख भरकर देखा भी न था, इस पापिष्ठ को गले लगाये उसके आँसू पोंछ रही थी और उसके त्रस्त हृदय को अपने कोमल शब्दों से शान्त कर रही थी, जैसे कोई चिड़िया अपने बच्चे को परों में छिपाये बैठी हो।

होरी ने धनिया को संकेत किया कि इसे कुछ खिला-पिला दे और झुनिया से पूछा—क्यों बेटी, तुझे कुछ मालूम है, गोबर किधर गया है?

झुनिया ने सिसकते हुए कहा—मुझसे तो कुछ नहीं कहा। मेरे कारन तुम्हारे ऊपर...यह कहते-कहते उसकी आवाज़ आँसुओं में डूब गई।

होरी अपनी व्याकुलता न छिपा सका।

'जब तूने आज उसे देखा, तो कुछ दुखी था?'

'बातें तो हँस-हँसकर कर रहे थे। मन का हाल भगवान जाने।'

'तेरा मन क्या कहता है, है गाँव में ही कि कहीं बाहर चला गया?'

'मुझे तो शंका होती है, कहीं बाहर चले गये हैं।'

'यही मेरा मन भी कहता है। कैसी नादानी की। हम उसके दुसमन थोड़े ही थे। जब भली या बुरी एक बात हो गई, तो उसे निभानी पड़ती है। इस तरह भागकर तो उसने हमारी जान आफ़त में डाल दी।'

धनिया ने झुनिया का हाथ पकड़कर अन्दर ले जाते हुए कहा—कायर कहीं का, जिसकी बाँह पकड़ी, उसका निबाह करना चाहिए कि मुँह में कालिख लगाकर भाग जाना चाहिए। अब जो आये, तो घर में पैठने न दूँ।

होरी वहीं पुआल में लेटा। गोबर कहाँ गया? यह प्रश्न उसके हृदयाकाश में किसी पक्षी की भाँति मँडराने लगा।

११

ऐसे असाधारण काण्ड पर गाँव में जो कुछ हलचल मचना चाहिए था, वह मचा और महीनों तक मचता रहा। झुनिया के दोनों भाई लाठियाँ लिये गोबर को खोजते फिरते थे। भोला ने क़सम खाई कि अब न झुनिया का मुँह देखेंगे और न इस गाँव का। होरी से उन्होंने अपनी सगाई की जो बातचीत की थी, वह अब टूट गई थी। अब वह अपनी गाय के दाम लेंगे और नक़द और इसमें विलंब हुआ, तो होरी पर दावा करके उसका घर-द्वार नीलाम करा लेंगे। गाँववालों ने होरी को जाति-बाहर कर दिया। कोई उसका हुक्का नहीं पीता, न उसके घर का पानी पीता है। पानी बन्द कर देने की कुछ बातचीत थी; लेकिन धनिया का चण्डी-रूप सब देख चुके थे; इसलिए किसी की आगे आने की हिम्मत न पड़ी। धनिया ने सबको सुना-सुनाकर कह दिया—किसी ने उसे पानी भरने से रोका, तो उसका और अपना ख़ून एक कर देगी। इस ललकार ने सभी के पित्ते पानी कर दिये। सबसे दुखी है झुनिया, जिसके कारण यह सब उपद्रव हो रहा है, और गोबर की कोई खोज-खबर न मिलना इस दुःख को और भी दारुण बना रहा है। सारे दिन मुँह छिपाये घर में पड़ी रहती है। बाहर निकले, तो चारों ओर से वग्बाणों की ऐसी वर्षा हो कि जान बचाना मुश्किल हो जाय। दिन-भर घर के धन्धे करती रहती है और जब अवसर पाती है, रो लेती है। हरदम थरथर काँपती रहती है कि कहीं धनिया कुछ कह न बैठे। अकेले भोजन तो नहीं पका सकती; क्योंकि कोई उसके हाथ का खायेगा नहीं, बाक़ी सारा काम उसने अपने ऊपर ले लिया। गाँव में जहाँ चार स्त्री-पुरुष जमा हो जाते हैं, यही कुत्सा होने लगती है।

एक दिन धनिया हाट से चली आ रही थी कि रास्ते में पण्डित दातादीन मिल गये। धनिया ने सिर नीचा कर लिया और चाहती थी कि कतराकर निकल जाय; पर पण्डितजी छेड़ने का अवसर पाकर कब चूकनेवाले थे। छेड़ ही तो दिया—गोबर का कुछ सर-सन्देस मिला कि नहीं धनिया? ऐसा कपूत निकला कि घर की सारी मरजाद बिगाड़ दी।

धनिया के मन में स्वयं यही भाव आते रहते थे। उदास मन से बोली—बुरे दिन आते हैं बाबा, तो आदमी की मति फिर जाती है, और क्या कहूँ।

दातादीन बोले—तुम्हें उस दुष्टा को घर में न रखना चाहिए था। दूध में मक्खी पड़ जाती है, तो आदमी उसे निकालकर फेंक देता है, और दूध पी जाता है। सोचो, कितनी बदनामी और जग-हँसाई हो रही है। वह कुलटा घर में न रहती, तो कुछ न होता। लड़कों से इस तरह की भूल-चूक होती ही रहती है। जब तक बिरादरी को भात न दोगे, बाम्हनों को भोज न दोगे, कैसे उद्धार होगा? उसे घर में न रखते तो कुछ न होता। होरी तो पागल है ही, तू कैसे धोखा खा गई?

दातादीन का लड़का मातादीन एक चमारिन से फँसा हुआ था। इसे सारा गाँव जानता था; पर वह तिलक लगाता था, पोथी-पत्रे बाँचता था, कथा-भागवत कहता था, धर्म संस्कार कराता था। उसकी प्रतिष्ठा में ज़रा भी कमी न थी। वह नित्य स्नान-पूजा करके अपने पापों का प्रायश्चित्त कर लेता था। धनिया जानती थी, झुनिया को आश्रय देने ही से यह सारी विपत्ति आई है। उसे न जाने कैसे दया आ गई, नहीं उसी रात को झुनिया को निकाल देती, तो क्यों इतना उपहास होता; लेकिन यह भय भी होता था कि तब उसके लिए नदी या कुआँ के सिवा और ठिकाना कहाँ था। एक प्राण का मूल्य देकर—एक नहीं दो प्राणों का वह अपने मरजाद की रक्षा कैसे करती। फिर झुनिया के गर्भ में जो बालक है, वह धनिया ही के हृदय का टुकड़ा तो है। हँसी के डर से उसके प्राण कैसे ले लेती! और फिर झुनिया की नम्रता और दीनता भी उसे निरस्त्र करती रहती थी। वह जली-भुनी बाहर से आती; पर ज्योंही झुनिया लोटे का पानी लाकर रख देती और उसके पाँव दबाने लगती, उसका क्रोध पानी हो जाता। बेचारी अपनी लज्जा और दुःख से आप ही दबी हुई है, उसे और क्या दबाये, मरे को क्या मारे!

उसने तीव्र स्वर में कहा—हमको कुल-परतिसठा इतनी प्यारी नहीं है महाराज, कि उसके पीछे एक जीव की हत्या कर डालते। ब्याहता न सही; पर उसकी बाँह तो पकड़ी है मेरे बेटे ने ही। किस मुँह से निकाल देती। वही काम बड़े-बड़े करते हैं, मुदा उनसे कोई नहीं बोलता, उन्हें कलंक ही नहीं लगता। वही काम छोटे आदमी करते हैं, तो उनकी मरजाद बिगड़ जाती है, नाक कट जाती है। बड़े

आदमियों को अपनी नाक दूसरों की जान से प्यारी होगी, हमें तो अपनी नाक इतनी प्यारी नहीं।

दातादीन हार माननेवाले जीव न थे। वह इस गाँव के नारद थे, यहाँ की वहाँ, वहाँ की यहाँ, यही उनका व्यवसाय था। वह चोरी तो न करते थे, उसमें जान-जोखिम था; पर चोरी के माल में हिस्सा बँटाने के समय अवश्य पहुँच जाते थे। कहीं पीठ में धूल न लगने देते थे। ज़मींदार को आज तक लगान की एक पाई न दी थी, कुर्की आती, तो कुँए में गिरने चलते, नोखेराम के किये कुछ न बनता; मगर असामियों को सूद पर रुपये उधार देते थे। किसी स्त्री को कोई आभूषण बनवाना है, दातादीन उसकी सेवा के लिए हाज़िर हैं। शादी-ब्याह तय करने में उन्हें बड़ा आनन्द आता है, यश भी मिलता है, दक्षिणा भी मिलती है। बीमारी में दवा-दारू भी करते हैं, झाड़-फूँक भी, जैसी मरीज़ की इच्छा हो। और सभा-चतुर इतने हैं कि जवानों में जवान बन जाते हैं, बालकों में बालक और बूढ़ों में बूढ़े। चोर के भी मित्र हैं और साह के भी। गाँव में किसी को उन पर विश्वास नहीं है; पर उनकी वाणी में कुछ ऐसा आकर्षण है कि लोग बार-बार धोखा खाकर भी उन्हीं की शरण जाते हैं।

सिर और दाढ़ी हिलाकर बोले—यह तू ठीक कहती है धनिया! धर्मात्मा लोगों का यही धरम है; लेकिन लोक-रीति का निबाह तो करना ही पड़ता है।

इसी तरह एक दिन लाला पटेश्वरी ने होरी को छेड़ा। वह गाँव में पुण्यात्मा मशहूर थे। पूर्णमासी को नित्य सत्यनारायण की कथा सुनते; पर पटवारी होने के नाते खेत बेगार में जुतवाते थे, सिंचाई बेगार में करवाते थे और असामियों को एक-दूसरे से लड़ाकर रक़में मारते थे। सारा गाँव उनसे काँपता था। ग़रीबों को दस-दस, पाँच-पाँच क़र्ज़ देकर उन्होंने कई हज़ार की सम्पत्ति बना ली थी। फ़सल की चीज़ें असामियों से लेकर कचहरी और पुलीस के अमलों की भेंट करते रहते थे। इससे इलाक़े भर में उनकी अच्छी धाक थी। अगर कोई उनके हत्थे नहीं चढ़ा, तो वह दारोग़ा गंडासिंह थे, जो हाल में इस इलाक़े में आये थे। परमार्थी भी थे। बुखार के दिनों में सरकारी कुनैन बाँटकर यश कमाते थे, कोई बीमार आराम हो, तो उसकी कुशल पूछने अवश्य जाते थे। छोटे-मोटे झगड़े आपस ही में तय करा देते थे। शादी-ब्याह अपनी पालकी, क़ालीन और महफ़िल के सामान मँगनी देकर लोगों का उबार

कर देते थे। मौक़ा पाकर न चूकते थे, पर जिसका खाते थे, उसका काम भी करते थे।

बोले—यह तुमने क्या रोग पाल लिया होरी ?

होरी ने पीछे फिरकर पूछा—तुमने क्या कहा लाला—मैंने सुना नहीं ?

पटेश्वरी पीछे से क़दम बढ़ाते हुए बराबर आकर बोले, यही कह रहा था कि धनिया के साथ क्या तुम्हारी बुद्धि भी घास खा गई ? झुनिया को क्यों नहीं उसके बाप के घर भेज देते, सेंत-मेंत में अपनी हँसी करा रहे हो। न जाने किसका लड़का लेकर आ गई और तुमने घर में बैठा लिया। अभी तुम्हारा दो-दो लड़कियाँ ब्याहने को बैठी हुई हैं ; सोचो, कैसे बेड़ा पार होगा ?

होरी इस तरह की आलोचनाएँ, और शुभ कामनाएँ सुनते-सुनते तंग आ गया था। खिन्न होकर बोला—यह मैं सब समझता हूँ लाला ! लेकिन तुम्हीं बताओ; मैं क्या करूँ ! मैं झुनिया को निकाल दूँ, तो भोला उसे रख लेंगे ? अगर वह राजी हों, तो आज मैं उसे उनके घर पहुँचा दूँ; अगर तुम उन्हें राजी कर दो, तो जनम भर तुम्हारा औसान मानूँ ; मगर वहाँ तो उनके दोनों लड़के खून करने को उतारू हो रहे हैं। फिर मैं उसे कैसे निकाल दूँ। एक तो नालायक आदमी मिला कि उसकी बाँह पकड़कर दगा दे गया। मैं भी निकाल दूँगा, तो इस दशा में वह कहीं मेहनत-मजूरी भी तो न कर सकेगी। कहीं डूब-धस मरी तो किसे अपराध लगेगा। रहा लड़कियों का ब्याह, सो भगवान् मालिक हैं। जब उसका समय आयेगा, कोई न कोई रास्ता निकल ही आयेगा। लड़की तो हमारी बिरादरी में आज तक कभी कुँआरी नहीं रही। बिरादरी के डर से हत्यारे का काम नहीं कर सकता।

होरी नम्र स्वभाव का आदमी था। सदा सिर झुकाकर चलता और चार बातें थम खा लेता था। होरी को छोड़कर गाँव में कोई उसका अहित न चाहता था ; पर समाज इतना बड़ा अनर्थ कैसे सह ले। और उसकी मुटमर्दी तो देखो कि समझाने पर भी नहीं समझता। स्त्री-पुरुष दोनों जैसे समाज को चुनौती दे रहे हैं कि देखें कोई उनका क्या कर लेता है। तो समाज भी दिखा देगा कि उसकी मर्यादा तोड़नेवाले सुख की नींद नहीं सो सकते।

उसी रात को इस समस्या पर विचार करने के लिए गाँव के विधाताओं की बैठक हुई।

दातादीन बोले—मेरी आदत किसी की निन्दा करने की नहीं है। संसार में क्या-क्या कुकर्म नहीं होता; अपने से क्या मतलब। मगर वह राँड़ धनिया तो मुझसे लड़ने पर उतारू हो गई। भाइयों का हिस्सा दबाकर हाथ में चार पैसे हो गये, तो अब कुपंथ के सिवा और क्या सूझेगी। नीच जात, जहाँ पेट-भर रोटी खाई और टेढ़े चले, इसी से सासतरों में कहा है—नीच जात लतियाये अच्छा।

पटेश्वरी ने नारियल का कश लगाते हुए कहा—यही तो इनमें बुराई है कि जहाँ चार पैसे देखे और आँखें बदलीं। आज होरी ने ऐसी हेकड़ी जताई कि मैं अपना-सा मुँह लेकर रह गया। न जाने अपने को क्या समझता है। अब सोचो, इस अनीति का गाँव में क्या फल होगा। झुनिया को देखकर दूसरी विधवाओं का मन बढ़ेगा कि नहीं? आज भोला के घर में यह बात हुई। कल हमारे-तुम्हारे घर में भी होगी। समाज तो भय के बल से चलता है। आज समाज का आँकुस जाता रहे, फिर देखो, संसार में क्या-क्या अनर्थ होने लगते हैं।

झिंगुरीसिंह दो स्त्रियों के पति थे। पहली स्त्री पाँच लड़के-लड़कियाँ छोड़कर मरी थी। उस समय इनकी अवस्था पैंतालिस के लगभग थी; पर आपने दूसरा ब्याह किया और जब उससे कोई सन्तान न हुई, तो तीसरा ब्याह कर डाला। अब इनकी पचास की अवस्था थी और दो जवान पत्नियाँ घर में बैठी हुई थीं। उन दोनों ही के विषय में तरह-तरह की बातें फैल रही थीं; पर ठाकुर साहब के डर से कोई कुछ कह न सकता था, और कहने का अवसर भी तो हो। पति की आड़ में सब कुछ जायज़ है। मुसीबत तो उसकी है, जिसे कोई आड़ नहीं। ठाकुर साहब स्त्रियों पर बड़ा कठोर शासन रखते थे और उन्हें घमण्ड था कि उनकी पत्नियों का घूँघट तक किसी ने न देखा होगा; मगर घूँघट की आड़ में क्या होता है, इसकी उन्हें क्या ख़बर!

बोले—ऐसी औरत का तो सिर काट ले। होरी ने इस कुलटा को घर रखकर समाज में विष बोया है। ऐसे आदमी को गाँव में रहने देना सारे गाँव को भ्रष्ट करना है। राय साहब को इसकी सूचना देनी चाहिए। साफ़-साफ़ कह देना चाहिए, अगर गाँव में यह अनीति चली, तो किसी की आबरू सलामत न रहेगी।

पण्डित नोखेराम कारकुन बड़े कुलीन ब्राह्मण थे। इनके दादा किसी राजा के दीवान थे। पर अपना सब-कुछ भगवत् के चरणों में भेंट करके साधु हो गये थे। इनके बाप ने भी राम-नाम की खेती में उम्र काट दी। नोखेराम ने भी वही भक्ति तरके में पाई थी। प्रातःकाल पूजा पर बैठ जाते थे और दस बजे तक बैठे राम-नाम लिखा करते थे; मगर भगवान् के सामने से उठते ही उनकी मानवता इस अवरोध से विकृत होकर उनके मन, वचन और कर्म सभी को विषाक्त कर देती थी। इस प्रस्ताव में उनके अधिकार का अपमान होता था। फूले हुए गालों में धँसी हुई आँखें निकालकर बोले—इसमें राय साहब से क्या पूछना है। मैं जो चाहूँ, कर सकता हूँ। लगा दो सौ रुपये डाँड़। आप गाँव छोड़कर भागेगा। इधर मैं बेदखली भी दायर किये देता हूँ।

पटेश्वरी ने कहा—मगर लगान तो बेबाक़ कर चुका है?

झिंगुरीसिंह ने समर्थन किया—हाँ, लगान के लिए ही तो हमसे तीस रुपये लिये हैं।

नोखेराम ने घमण्ड के साथ कहा—लेकिन अभी रसीद तो नहीं दी। सबूत क्या है कि लगान बेबाक़ कर दिया।

सर्वसम्मति से यही तय हुआ कि होरी पर सौ रुपये तावान लगा दिया जाय। केवल एक दिन गाँव के आदमियों को बटोरकर उनकी मंजूरी ले लेने का अभिनय आवश्यक था। संभव था, इसमें दस-पाँच दिन की देर हो जाती पर आज ही रात को झुनिया के लड़का पैदा हो गया और दूसरे ही दिन गाँववालों की पंचायत बैठ गई। होरी और धनिया, दोनों अपनी क़िस्मत का फ़ैसला सुनने के लिए बुलाये गये चौपाल में इतनी भीड़ थी कि कहीं तिल रखने की जगह न थी। पंचायत ने फ़ैसला किया कि होरी पर सौ रुपये नक़द और तीस मन अनाज डाँड लगाया जाय।

धनिया भरी सभा में रुँधे हुए कण्ठ से बोली—पंचो, ग़रीब को सताकर सुख न पाओगे इतना समझ लेना हम तो मिट जायँगे, कौन जाने, इस गाँव में रहें, या न रहें, लेकिन मेरा सराप तुमको भी जरूर से जरूर लगेगा। मुझसे इतना कड़ा जरीबाना इसलिए लिया जा रहा है, कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा। क्यों उसे घर से निकालकर सड़क की भिखारिन नहीं बना दिया। यही न्याय है, ऐं?

पटेश्वरी बोले—वह तेरी बहू नहीं है, हरजाई है।

होरी ने धनिया को डाँटा—तू क्यों बोलती है धनिया ! पंच में परमेसर रहते हैं। उनका जो न्याय है, वह सिर-आँखों पर ; अगर भगवान् की यही इच्छा है कि हम गाँव छोड़कर भाग जायँ, तो हमारा क्या बस। पंचो, हमारे पास जो कुछ है, वह अभी खलिहान में है। एक दाना भी घर में नहीं आया, जितना चाहो, ले लो। सब लेना चाहो, सब ले लो। हमारा भगवान् मालिक है, जितनी कमी पड़े, उसमें हमारे दोनों बैल ले लेना।

धनिया दाँत कटकटाकर बोली—मैं न एक दाना अनाज दूँगी, न एक कौड़ी डाँड़। जिसमें बूता हो, चलकर मुझसे ले। अच्छी दिल्लगी है। सोचा होगा, डाँड़ के बहाने इसकी सब जैजात ले लो और नजराना लेकर दूसरों को दे दो। बाग-बगीचा बेचकर मजे से तर माल उड़ाओ। धनिया के जीते-जी यह नहीं होने का, और तुम्हारी लालसा तुम्हारे मन में ही रहेगी। हमें नहीं रहना है बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकुत न हो जायगी। अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं, तब भी अपने पसीने की कमाई खायँगे।

होरी ने उसके सामने हाथ जोड़कर कहा—धनिया, तेरे पैरों पड़ता हूँ, चुप रह। हम सब बिरादरी के चाकर हैं, उसके बाहर नहीं जा सकते। वह जो डाँड़ लगाती है, उसे सिर झुकाकर मंजूर कर। नक्कू बनकर जीने से तो गले में फाँसी लगा लेना अच्छा है। आज मर जायँ, तो बिरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगायेगी ? बिरादरी ही तारेगी तो तरेंगे। पंचो, मुझे अपने जवान बेटे का मुँह देखना नसीब न हो, अगर मेरे पास खलिहान के अनाज के सिवा और कोई चीज़ हो। मैं बिरादरी से दगा न करूँगा। पंचों को मेरे बाल-बच्चों पर दया आये, तो उनकी कुछ परवरिस करें, नहीं मुझे तो उनकी आज्ञा पालनी है।

धनिया झल्लाकर वहाँ से चली गई और होरी पहर रात तक खलिहान से अनाज ढो-ढोकर झिंगुरीसिंह के चौपाल में ढेर करता रहा। बीस मन जौ था, पाँच मन गेहूँ और इतना ही मटर, थोड़ा-सा चना और तेलहन भी था। अकेला आदमी और दो गृहस्थियों का बोझ। यह जो कुछ हुआ, धनिया के पुरुषार्थ से हुआ। झुनिया भीतर का सारा काम कर लेती थी और धनिया अपनी लड़कियों के साथ खेती में जुट गई थी। दोनों ने सोचा था, गेहूँ और तेलहन से लगान की एक क़िस्त अदा हो जायगी और हो सके, तो थोड़ा-थोड़ा सूद भी दे देंगे। जौ खाने के काम में

आयेगा। लंगे-तंगे पाँच-छः महीने कट जायँगे, तब तक जुआर, मक्का, सावाँ, धान के दिन आ जायँगे। वह सारी आशा मिट्टी में मिल गई। अनाज तो हाथ से गये ही, सौ रुपये की गठरी और सिर पर लद गई। अब भोजन का कहीं ठिकाना नहीं। और गोबर का क्या हाल हुआ, भगवान् जानें। न हाल, न हवाल। अगर दिल इतना कच्चा था, तो ऐसा काम ही क्यों किया; मगर होनहार को कौन टाल सकता है। बिरादरी का वह आतंक था कि अपने सिर पर लादकर अनाज ढो रहा था, मानो अपने हाथों अपनी कब्र खोद रहा हो। ज़मींदार, साहूकार, सरकार किसका इतना रोब था? कल बाल-बच्चे क्या खायँगे, इसकी चिन्ता प्राणों को सोखे लेती थी; पर बिरादरी का भय पिशाच की भाँति सिर पर सवार आँकुस दिये जा रहा था। बिरादरी से पृथक् जीवन की वह कोई कल्पना ही न कर सकता था। शादी-ब्याह, मूँड़न-छेदन, जन्म-मरण सब कुछ बिरादरी उसके जीवन में वृक्ष की भाँति जड़ जमाये हुए थी और उसकी नसें उसके रोम-रोम में बिंधी हुई थीं। बिरादरी से निकालकर उसका जीवन विश्रृङ्खल हो जायगा—तार-तार हो जायगा।

जब खलिहान में केवल डेढ़-दो मन जौ और रह गया, तो धनिया ने दौड़कर उसका हाथ पकड़ लिया और बोली—अच्छा, अब रहने दो। ढो तो चुके बिरादरी की लाज। बच्चों के लिए भी कुछ छोड़ोगे कि सब बिरादरी के भाड़ में झोंक दोगे। मैं तुमसे हार जाती हूँ। मेरे भाग्य में तुम्हीं-जैसे बुद्धू का संग लिखा था!

होरी ने अपना हाथ छुड़ाकर टोकरी में शेष अनाज भरते हुए कहा—यह न होगा धनिया, पंचों की आँख बचाकर एक दाना भी रख लेना मेरे लिए हराम है। मैं ले जाकर सब-का-सब वहाँ ढेर कर देता हूँ। फिर पंचों के मन में दया उपजेगी, तो कुछ मेरे बाल-बच्चों के लिए देंगे, नहीं भगवान् मालिक हैं।

धनिया तिलमिलाकर बोली—यह पंच नहीं हैं, राछस हैं, पक्के राछस! यह सब हमारी जगह-जमीन छीनकर माल मारना चाहते हैं। डाँड़ तो बहाना है। समझाती जाती हूँ; पर तुम्हारी आँखें नहीं खुलतीं। तुम इन पिसाचों से दया की आसा रखते हो। सोचते हो, दस-पाँच मन निकालकर तुम्हें दे देंगे। मुँह धो रखो।

जब होरी न माना और टोकरी सिर पर रखने लगा, तो धनिया ने दोनों हाथों से पूरी शक्ति के साथ टोकरी पकड़ ली और बोली—इसे तो मैं न ले जाने दूँगी, चाहे तुम मेरी जान ही ले लो। मर-मरकर हमने कमाया, पहर रात-रात को

सींचा, अगोरा, इसी लिए कि पंच लोग मूँछों पर ताव देकर भोग लगायें और हमारे बच्चे दाने-दाने को तरसें। तुमने अकेले ही सब कुछ नहीं कर लिया है। मैं भी अपनी बच्चियों के साथ सती हुई हूँ। सीधे टोकरी यहीं रख दो, नहीं आज सदा के लिए नाता टूट जायगा। कहे देती हूँ।

होरी सोच में पड़ गया। धनिया के कथन में सत्य था। उसे अपने बाल-बच्चों की कमाई छीनकर तावान देने का क्या अधिकार है? वह घर का स्वामी इसलिए है कि सबका पालन करे, इसलिए नहीं कि उनकी कमाई छीनकर बिरादरी की नज़र में सुर्ख़रू बने। टोकरी उसके हाथ से छूट गई। धीरे से बोला तू ठीक कहती है धनिया! दूसरों के हिस्से पर मेरा कोई ज़ोर नहीं है। जो कुछ बचा है, वह ले जा, मैं जाकर पंचों से कहे देता हूँ।

धनिया अनाज की टोकरी घर में रखकर अपनी दोनों लड़कियों के साथ पोते के जन्मोत्सव में गला फाड़-फाड़कर सोहर गा रही थी, जिसमें सारा गाँव सुन ले। आज यह पहला मौक़ा था कि ऐसे शुभ अवसर पर बिरादरी की कोई औरत न थी। सौर से झुनिया ने कहला भेजा था, सोहर गाने का काम नहीं है; लेकिन धनिया कब मानने लगी। अगर बिरादरी को उसकी परवा नहीं, तो वह भी बिरादरी की परवा नहीं करती।

उसी वक्त होरी अपने घर को अस्सी रुपये पर झिंगुरीसिंह के हाथ गिरो रख रहा था। डाँड़ के रुपये का इसके सिवा वह और कोई प्रबन्ध न कर सकता था। बीस रुपये तो तेलहन और गेहूँ और मटर में मिल गये। शेष के लिए घर लिखना पड़ गया। नोखेराम तो चाहते थे कि बैल बिकवा लिये जायँ; लेकिन पटेश्वरी और दातादीन ने इसका विरोध किया। बैल बिक गये, तो होरी खेती कैसे करेगा? बिरादरी उसकी जायदाद से रुपये वसूल करे; पर ऐसा तो न करे कि वह गाँव छोड़कर भाग जाय। इस तरह बैल बच गये।

होरी रेहननामा लिखकर कोई ग्यारह बजे रात घर आया तो, धनिया ने पूछा—इतनी रात तक वहाँ क्या करते रहे?

होरी ने जुलाहे का गुस्सा दाढ़ी पर उतारते हुए कहा—करता क्या रहा, इस लौंडे की करनी भरता रहा। अभागा आप तो चिनगारी छोड़कर भागा, आग मुझे

बुझानी पड़ रही है। अस्सी रुपये में घर रेहन लिखना पड़ा। करता क्या। अब हुक्का खुल गया। बिरादरी ने अपराध क्षमा कर दिया।

धनिया ने ओठ चबाकर कहा—न हुक्का खुलता, तो हमारा क्या बिगड़ा जाता था। चार-पाँच महीने नहीं किसी का हुक्का पिया, तो क्या छोटे हो गये? मैं कहती हूँ, तुम इतने भोंदू क्यों हो? मेरे सामने तो बड़े बुद्धिमान बनते हो, बाहर तुम्हारा मुँह क्यों बन्द हो जाता है? ले-दे के बाप-दादों की निसानी एक घर बच रहा था, आज तुमने उसका भी वारा न्यारा कर दिया। इसी तरह कल यह तीन-चार बीघे जमीन है, इसे भी लिख देना और तब गली-गली भीख माँगना। मैं पूछती हूँ, तुम्हारे मुँह में जीभ न थी कि उन पंचों से पूछते, तुम कहाँ के बड़े धर्मात्मा हो, जो दूसरों पर डाँड़ लगाते फिरते हो, तुम्हारा तो मुँह देखना भी पाप है।

होरी ने डाँटा—चुप रह, बहुत बढ़-बढ़ न बोल। बिरादरी के चक्कर में अभी पड़ी नहीं है, नहीं मुँह से बात न निकलती।

धनिया उत्तेजित हो गई—कौन-सा पाप किया है, जिसके लिए बिरादरी से डरें, किसी की चोरी की है, किसी का माल काटा है? मेहरिया रख लेना पाप नहीं है, हाँ, रख के छोड़ देना पाप है। आदमी का बहुत सीधा होना भी बुरा है। उसके सीधेपन का फल यही होता है कि कुत्ते भी मुँह चाटने लगते हैं। आज उधर तुम्हारी वाह-वाह हो रही होगी कि बिरादरी की कैसी मरजाद रख ली। मेरे भाग फूट गये थे कि तुम-जैसे मर्द से पाला पड़ा। कभी सुख की रोटी न मिली।

'मैं तेरे बाप के पाँव पड़ने गया था? वही तुझे मेरे गले बाँध गया।'

'पत्थर पड़ गया था उनकी अक्कल पर और उन्हें क्या कहूँ! न जाने क्या देखकर लट्टू हो गये। ऐसे कोई बड़े सुन्दर भी तो न थे तुम।'

विवाद विनोद के क्षेत्र में आ गया। अस्सी रुपये गये तो गये, लाख रुपये का बालक तो मिल गया! उसे तो कोई न छीन लेगा। गोबर घर लौट आये, धनिया अलग झोंपड़ी में भी सुखी रहेगी।

होरी ने पूछा—बच्चा किसको पड़ा है?

धनिया ने प्रसन्न-मुख होकर जवाब दिया—बिल्कुल गोबर को पड़ा है। सच!

'रिस्ट-पुस्ट तो है?'

'हाँ, अच्छा है।'

१२

रात को गोबर झुनिया के साथ चला, तो ऐसा काँप रहा था, जैसे उसकी नाक कटी हुई हो। झुनिया को देखते ही सारे गाँव में कुहराम मच जायगा, लोग चारों ओर से आकर कैसी हाय-हाय मचायेंगे, धनिया कितनी गालियाँ देगी, यह सोच-सोचकर उसके पाँव पीछे रहे जाते थे। होरी का तो उसे भय न था। वह केवल एक बार झाड़ेंगे, फिर शान्त हो जायँगे, डर था धनिया का, ज़हर खाने लगेगी, घर में आग लगाने लगेगी। नहीं, इस वक्त वह झुनिया के साथ घर नहीं, जा सकता।

लेकिन कहीं धनिया ने झुनिया को घर में घुसने ही न दिया और झाड़ू लेकर मारने दौड़ी, तो वह बेचारी कहाँ जायगी? अपने घर तो लौट ही नहीं सकती। कहीं कुएँ में कूद पड़े, या गले में फाँसी लगा ले, तो क्या हो—उसने लम्बी साँस ली। किसकी शरण ले।

मगर अम्मा इतनी निर्दयी नहीं हैं कि मारने दौड़ें। क्रोध में दो-चार गालियाँ देंगी। लेकिन जब झुनिया उनके पाँव पड़कर रोने लगेगी, तो उन्हें ज़रूर दया आ जायगी। तब तक वह खुद कहीं छिपा रहेगा। जब उपद्रव शान्त हो जायग, तब वह एक दिन धीरे से आयेगा और अम्मा को मना लेगा, अगर इस बीच में उसे मजूरी मिल जाय और दो-चार रुपये लेकर घर लौटे, तो फिर धनिया का मुँह बन्द हो जायगा।

झुनिया बोली—मेरी छाती धक्-धक् कर रही है। मैं क्या जानती थी, तुम मेरे गले यह रोग मढ़ दोगे। न जाने किस बुरी साइत में तुमको देखा। न तुम गाय लेने आते, न यह सब कुछ होता। तुम आगे-आगे जाकर जो कुछ कहना सुनना हो, कह-सुन लेना। मैं पीछे से आ जाऊँगी।

गोबर ने कहा—नहीं-नहीं, पहले तुम जाना और कहना, मैं बाजार से सौदा बेचकर घर जा रही थी। रात हो गई है, अब कैसे जाऊँ। तब तक मैं आ जाऊँगा।

झुनिया ने चिन्तित मन से कहा—तुम्हारी अम्मा बड़ी गुस्सैल हैं। मेरा तो जी काँपता है। कहीं मुझे मारने लगें, तो क्या करूँगी।

गोबर ने धीरज दिलाया—अम्मा की आदत ऐसी नहीं। हम लोगों तक को तो

कभी एक तमाचा मारा नहीं, तुम्हें क्या मारेंगी। इनको जो कुछ कहना होगा, मुझे कहेंगी, तुमसे तो बोलेंगी भी नहीं।

गाँव समीप आ गया। गोबर ने ठिठककर कहा—अब तुम जाओ।

झुनिया ने अनुरोध किया—तुम भी देर न करना।

'नहीं-नहीं, छन-भर में आता हूँ, तू चल तो!'

'मेरा जी न-जाने कैसा हो रहा है। तुम्हारे ऊपर क्रोध आता है।'

'तुम इतना डरती क्यों हो? मैं तो आ ही रहा हूँ।'

'इससे तो कहीं अच्छा था कि किसी दूसरी जगह भाग चलते।'

'जब अपना घर है, तो क्यों कहीं भागें? तुम नाहक डर रही हो।'

'जल्दी से आओगे न?'

'हाँ-हाँ, अभी आता हूँ।'

'मुझसे दगा तो नहीं कर रहे हो? मुझे घर भेजकर आप कहीं चलते बनो!'

'इतना नीच नहीं हूँ झूना! जब तेरी बाँह पकड़ी है, तो मरते दम तक निभाऊँगा।'

झुनिया घर की ओर चली। गोबर एक क्षण दुविधे में पड़ा खड़ा रहा। फिर एकाएक सिर पर मँडरानेवाली धिक्कार की कल्पना भयंकर रूप धारण करके उसके सामने खड़ी हो गई। कहीं सचमुच अम्मा मारने दौड़ें, तो क्या हो? उसके पाँव जैसे धरती से चिमट गये। उसके और उसके घर के बीच केवल आमों का छोटा-सा बाग था। झुनिया की काली परछाईं धीरे-धीरे जाती हुई दीख रही थी। उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ बहुत तेज़ हो गई थीं। उसके कानों में ऐसी भनक पड़ी, जैसे अम्मा झुनिया को गाली दे रही हैं। उसके मन की कुछ ऐसी दशा हो रही थी, मानो सिर पर गड़ाँसे का हाथ पड़नेवाला हो। देह का सारा रक्त जैसे सूख गया हो। एक क्षण के बाद उसने देखा, जैसे धनिया घर से निकलकर कहीं जा रही हो। दादा के पास जाती होगी! साइत दादा खा-पीकर मटर अगोरने चले गये हैं। वह मटर के खेत की ओर चला। जौ-गेहूँ के खेतों को रौंदता हुआ, वह इस तरह भागा जा रहा था, मानो पीछे दौड़ आ रही है। वह है दादा की मँड़ैया। वह रुक गया और दबे पाँव जाकर मड़ैया के पीछे बैठ गया। उसका अनुमान ठीक निकला। वह पहुँचा ही था कि धनिया की बोली सुनाई दी। ओह! गजब हो गया। अम्मा इतनी कठोर

हैं ! एक अनाथ लड़की पर इन्हें तनिक भी दया नहीं आती ! और जो मैं भी सामने जाकर फटकार दूँ कि तुमको झुनिया से बोलने का कोई मजाल नहीं है, तो सारी सेखी निकल जाय। अच्छा ! दादा भी बिगड़ रहे हैं। केले के लिए आज ठोकरा भी तेज हो गया। मैं जरा अदब करता हूँ, यह उसी का फल है। यह तो दादा भी वहीं जा रहे हैं। अगर झुनिया को इन्होंने मारा-पीटा, तो मुझसे न सहा जायगा। भगवान् ! अब तुम्हारा ही भरोसा है। मैं न जानता था, इस विपत में जान फँसेगी ! झुनिया मुझे अपने मन में कितना धूर्त और कायर और नीच समझ रही होगी; मगर उसे मार कैसे सकते हैं ? घर से निकाल भी कैसे सकते हैं ? क्या घर में मेरा हिस्सा नहीं है ? अगर झुनिया पर किसी ने हाथ उठाया, तो आज महाभारत हो जायगा। मा-बाप जब तक लड़कों की रक्षा करें, तब तक मा-बाप हैं। जब उनमें ममता नहीं है, तो कैसे मा-बाप !

होरी ज्यों ही मँड़ैया से निकला, गोबर भी दबे पाँव धीरे-धीरे पीछे-पीछे चला; लेकिन द्वार पर प्रकाश देखकर उसके पाँव बँध गये। उस प्रकाशरेखा के अन्दर वह पाँव नहीं रख सकता। वह अँधेरे में ही दीवार से चिमटकर खड़ा हो गया। उसकी हिम्मत ने जवाब दे दिया। हाय ! बेचारी झुनिया पर निरपराध यह लोग झल्ला रहे हैं, और वह कुछ नहीं कर सकता। उसने खेल-खेल में जो एक चिनगारी फेंक दी थी, वह सारे खलिहान को भस्म कर देगी, यह उसने न समझा था। और अब उसमें इतना साहस न था कि सामने आकर कहे—हाँ, मैंने चिनगारी फेंकी थी। जिन टिकौनों से उसने अपने मन को सँभाला था, वे सब इस भूकम्प में नीचे आ रहे और वह झोंपड़ा नीचे गिर पड़ा। वह पीछे लौटा। अब वह झुनिया को क्या मुँह दिखाये !

वह सौ क़दम चला; पर इस तरह, जैसे कोई सिपाही मैदान से भागे। उसने झुनिया से प्रीति और निबाह की जो बातें की थीं, वह सब याद आने लगीं। वह अभिसार की मीठी स्मृतियाँ याद आईं जब वह अपने उन्मत्त उसासों में, अपनी नशीली चितवनों में मानो अपने प्राण निकालकर उसके चरणों पर रख देता था। झुनिया किसी वियोगी पक्षी की भाँति अपने छोटे-से घोंसले में एकान्त-जीवन काट रही थी। वहाँ नर का मत्त आग्रह न था, न वह उद्दीप्त उल्लास, न शावकों की मीठी आवाजें; मगर बहेलिये का जाल और छल भी तो वहाँ न था। गोबर ने उसके

एकान्त घोंसले में जाकर उसे कुछ आनन्द पहुँचाया या नहीं, कौन जाने ; पर उसे विपत्ति में तो डाल ही दिया। वह सँभल गया। भागता हुआ सिपाही मानो अपने एक साथी का बढ़ावा सुनकर पीछे लौट पड़ा।

उसने द्वार पर आकर देखा, तो किवाड़ बन्द हो गये थे। किवाड़ों के दराजों से प्रकाश की रेखाएँ बाहर निकल रही थीं। उसने एक दराज़ से अन्दर झाँका। धनिया और झुनिया बैठी हुई थी। होरी खड़ा था। झुनिया की सिसकियाँ सुनाई दे रही थीं और धनिया उसे समझा रही थी—बेटी, तू चलकर घर में बैठ। मैं तेरे काका और भाइयों को देख लूँगी। जब तक हम जीते हैं किसी बात की चिन्ता नहीं है। हमारे रहते कोई तुझे तिरछी आँखों देख भी न सकेगा। गोबर गद्गद् हो गया। आज वह किसी लायक होता, तो दादा और अम्मा को सोने से मढ़ देता और कहता—अब तुम कुछ काम न करो, आराम से बैठे खाओ और जितना दान-पुन करना चाहो करो। झुनिया के प्रति अब उसे कोई शंका नहीं है। वह उसे जो आश्रय देना चाहता था वह मिल गया। झुनिया उसे दग़ाबाज समझती है, तो समझे। वह तो अब तभी घर आयेगा, जब वह पैसे के बल से सारे गाँव का मुँह बन्द कर सके और दादा और अम्मा उसे कुल का कलंक न समझकर कुल का तिलक समझें। मन पर जितना ही गहरा आघात होता है, उसकी प्रतिक्रिया भी उतनी ही गहरी होती है। इस अपकीर्ति और कलंक ने गोबर के अन्तस्तल को मथकर वह रत्न निकाल लिया, जो अभी तक छिपा पड़ा था। आज पहली बार उसे अपने दायित्व का ज्ञान हुआ और उसके साथ ही संकल्प भी। अब तक वह कम-से-कम काम करता और ज़्यादा से ज़्यादा खाना अपना हक़ समझता था। उसके मन में कभी यह विचार ही नहीं उठा था कि घरवालों के साथ उसका भी कुछ कर्तव्य है। आज माता-पिता की उदात्त क्षमा ने जैसे उसके हृदय में प्रकाश डाल दिया। जब धनिया और झुनिया भीतर चली गईं, तो वह होरी की उसी मँड़ैया में जा बैठा और भविष्य के मंसूबे बाँधने लगा।

शहर में बेलदारों को पाँच-छः आने रोज़ मिलते हैं, यह उसने सुन रखा था। अगर उसे छः आने रोज़ मिलें और वह एक आने में गुज़र कर ले, तो पाँच आने रोज़ बच जायँ। महीने में दस रुपये होते हैं, और साल-भर में सवा सौ। वह सवा सौ की थैली लेकर घर आये, तो किसकी मजाल है, जो उसके सामने मुँह खोल

सके। यही दातादीन और यही पटेश्वरी आकर उसकी हाँ में हाँ मिलायेंगे। और झुनिया तो मारे गर्व के फूल जाय। दो-चार साल वह इसी तरह कमाता रहे, तो घर का सारा दलिद्दर मिट जाय। अभी तो सारे घर की कमाई भी सवा सौ नहीं होती। अब वह अकेला सवा सौ कमायेगा। यही तो लोग कहेंगे कि मजूरी करता है। कहने दो। मजूरी करना कोई पाप तो नहीं है। और सदा छः आने ही थोड़े मिलेंगे। जैसे-जैसे वह काम में होशियार होगा, मजूरी भी तो बढ़ेगी। तब वह दादा से कहेगा, अब तुम घर बैठकर भगवान् का भजन करो। इस खेती में जान खपाने के सिवा और क्या रखा है। सबसे पहले वह एक पछाईं गाय लायेगा, जो चार-पाँच सेर दूध देगी और दादा से कहेगा, तुम गऊ माता की सेवा करो। इससे तुम्हारा लोक भी बनेगा, परलोक भी।

और क्या, एक आने में उसका गुज़र आराम से न होगा? घर-द्वार लेकर क्या करना है। किसी के ओसारे में पड़ रहेगा। सैकड़ों मन्दिर हैं, धरमसाले हैं। और फिर जिसकी वह मजूरी करेगा, क्या वह उसे रहने के लिए जगह न देगा? आटा रुपये का दस सेर आता है। एक आने का ढाई पाव हुआ। एक आने का तो वह आटा ही खा जायगा। लकड़ी, दाल, नमक, साग यह सब कहाँ से आयेगा? दोनों जून के लिए सेर भर तो आटा ही चाहिए। ओह! खाने की तो कुछ न पूछो। मुट्ठी-भर चने में भी काम चल सकता है। हलुवा और पूरी खाकर भी काम चल सकता है। जैसी कमाई हो। वह आध सेर आटा खाकर दिन-भर मज़े से काम कर सकता है। इधर-उधर से उपले चुन लिये, लकड़ी का काम चल गया। कभी एक पैसे की दाल ले ली, कभी आलू। आलू भूनकर भुरता बना लिया। यहाँ दिन काटना है कि चैन करना है! पत्तल पर आटा गूँधा, उपलों पर बाटियाँ सेंकीं, आलू भूनकर भुरता बनाया और मज़े से खाकर सो रहे। घर ही पर कौन दोनों जून रोटी मिलती है। एक जून चबेना ही मिलता है। वहाँ भी एक जून चबेने पर काटेंगे।

उसे शंका हुई; अगर कभी मजूरी न मिली, तो वह क्या करेगा? मगर मजूरी क्यों न मिलेगी? जब वह जी तोड़कर काम करेगा, तो सौ आदमी उसे बुलायेंगे। काम सबको प्यारा होता है, चाम नहीं प्यारा होता। यहाँ भी तो सूखा पड़ता है, पाला गिरता है, ऊख में दीमक लगते हैं, जौ में गेरुई लगती है, सरसों में लाही लग जाती है। उसे रात को कोई काम मिल जायगा, तो उसे भी न छोड़ेगा। दिन-

भर मजूरी की, रात कहीं चौकीदारी कर लेगा। दो आने भी रात के काम में मिल जायँ, तो चांदी है। जब वह लौटेगा, तो सबके लिए साड़ियाँ लायेगा। झुनिया के लिए हाथ का कंगन ज़रूर बनवायेगा और दादा के लिए एक मुँडासा लायेगा।

इन्हीं मनमोदकों का स्वाद लेता हुआ वह सो गया; लेकिन ठंड में नींद कहाँ। किसी तरह रात काटी और तड़के उठकर लखनऊ की सड़क पकड़ ली। बीस कोस ही तो है। साँझ तक पहुँच जायगा। गाँव का कौन आदमी वहाँ आता-जाता है, और वह अपना ठिकाना नहीं लिखेगा, नहीं दादा दूसरे ही दिन सिर पर सवार हो जायँगे। उसे कुछ पछतावा था, तो यही कि झुनिया से क्यों न साफ़-साफ़ कह दिया, अभी तू घर जा, मैं थोड़े दिनों में कुछ कमा-धमाकर लौटूँगा; लेकिन तब वह घर जाती ही क्यों? कहती—मैं भी तुम्हारे साथ लौटूँगी। उसे वह कहाँ-कहाँ बाँधे फिरता।

दिन चढ़ने लगा। रात को कुछ न खाया था। भूख मालूम होने लगी। पाँव लड़खड़ाने लगे। कहीं बैठकर दम लेने की इच्छा होती थी। बिना कुछ पेट में डाले अब वह नहीं चल सकता; लेकिन पास एक पैसा भी नहीं है। सड़क के किनारे झड़बेरियों के झाड़ थे। उसने थोड़े-से बेर तोड़ लिये और उदर को बहलाता हुआ चला। एक गाँव में गुड़ पकने की सुगन्ध आई। अब मन न माना। कोल्हाड़ में जाकर लोटा-डोर माँगा और पानी भरकर चुल्लू से पीने बैठा कि एक किसान ने कहा—अरे भाई, क्या निराला ही पानी पियोगे? थोड़ा-सा मीठा खा लो। अबकी और बना लें खाँड़। अगले साल तक मिल तैयार हो जायगी। सारी ऊख खड़ी बिक जायगी। गुड़ और खाँड़ के भाव चीनी मिलेगी, तो हमारा गुड़ कौन लेगा। उसने एक कटोरे में गुड़ की कई पिंड़िया लाकर दीं। गोबर ने गुड़ खाया, पानी पिया। तमाखू तो पीते होगे? गोबर ने बहाना किया, अभी चिलम नहीं पीता। बुड्ढे ने प्रसन्न होकर कहा—बड़ा अच्छा करते हो भैया। बुरा रोग है। एक बेर पकड़ ले, तो जिन्दगी भर नहीं छोड़ता।

इंजन को कोयला-पानी भी मिल गया, चाल तेज़ हुई। जाड़े के दिन, न जाने कब दोपहर हो गया। एक जगह देखा, एक युवती एक वृक्ष के नीचे पति से सत्याग्रह किये बैठी थी, पति सामने खड़ा उसे मना रहा था। दो-चार राहगीर तमाशा देखने खड़े हो गये थे। गोबर भी खड़ा हो गया। मान-लीला से रोचक और कौन जीवन-नाटक होगा।

युवती ने पति की ओर घूरकर कहा—मैं न जाऊँगी, न जाऊँगी, न जाऊँगी।

पुरुष ने जैसे अलटिमेटम दिया—न जायगी ?

'न जाऊँगी।'

'न जायगी ?'

'न जाऊँगी।'

पुरुष ने उसके केश पकड़कर घसीटना शुरू किया। युवती भूमि पर लोट गई।

पुरुष ने हारकर कहा—मैं फिर कहता हूँ, उठकर चल।

स्त्री ने उसी दृढ़ता से कहा—मैं तेरे घर सात जनम न जाऊँगी, बोटी-बोटी काट डाल।

'मैं तेरा गला काट लूँगा।'

'तो फाँसी पाओगे।'

पुरुष ने उसके केश छोड़ दिये और सिर पर हाथ रखकर बैठ गया। पुरुषत्व अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया। इसके आगे अब उसका कोई बस नहीं है।

एक क्षण में वह फिर खड़ा हुआ और परास्त स्वर में बोला—आखिर तू क्या चाहती है ?

युवती भी उठ बैठी और निश्चल भाव से बोली—मैं यही चाहती हूँ, तू मुझे छोड़ दे।

'कुछ मुँह से कहेगी, क्या बात हुई ?'

'मेरे भाई-बाप को कोई क्यों गाली दे ?'

'किसने गाली दी, तेरे भाई-बाप को ?'

'जाकर अपने घर में पूछ।'

'चलेगी, तभी तो पूछूँगा।'

'तू क्या पूछेगा ? कुछ दम भी है। जाकर अम्मा के अंचल में मुँह ढाँककर सो। वह तेरी मा होगी। मेरी कोई नहीं है। तू उसकी गालियाँ सुन। मैं क्यों सुनूँ ? एक रोटी खाती हूँ, तो चार रोटी का काम करती हूँ। क्यों किसी की धौंस सहूँ ? मैं तेरा एक पीतल का छल्ला भी तो नहीं जानती।'

राहगीरों को इस कलह में अभिनय का आनन्द आ रहा था; मगर उसके जल्द समाप्त होने की कोई आशा न थी। मंज़िल खोटी होती थी। एक-एक करके लोग

खिसकने लगे। गोबर को पुरुष की निर्दयता बुरी लग रही थी। भीड़ के सामने तो कुछ न कह सकता था। मैदान ख़ाली हुआ, तो बोला—भाई, मर्द और औरत के बीच में बोलना तो न चाहिए, मगर इतनी बेदरदी भी अच्छी नहीं होती।

पुरुष ने कौड़ी की-सी आँखें निकालकर कहा—तुम कौन हो?

गोबर ने निःशंक भाव से कहा—मैं कोई हूँ; लेकिन अनुचित बात देखकर सभी को बुरा लगता है।

पुरुष ने सर हिलाकर कहा—मालूम होता है, अभी मेहरिया नहीं आई, तभी इतना दरद है!

'मेहरिया अयेगी, तो भी उसके झोंटे पकड़कर न खींचूँगा।'

'अच्छा तो अपनी राह लो। मेरी औरत है, मैं उसे मारूँगा-काटूँगा। तुम कौन होते हो बोलनेवाले। चले जाओ सीधे से यहाँ मत खड़े हो।'

गोबर का गर्म ख़ून और गर्म हो गया। वह क्यों चला जाय। सड़क सरकार की है। किसी के बाप की नहीं है। वह जब तक चाहे वहाँ खड़ा रह सकता है। वहाँ से उसे हटाने का किसी को अधिकार नहीं है।

पुरुष ने ओठ चबाकर कहा—तो तुम न जाओगे। आऊँ?

गोबर ने अंगोछा कमर में बाँध लिया और समर के लिए तैयार होकर बोला—तुम आओ या न आओ। मैं तो तभी जाऊँगा, जब मेरी इच्छा होगी।

'तो मालूम होता है, हाथ-पैर तुड़वाकर जाओगे।'

'यह कौन जानता है, किसके हाथ-पाँव टूटेंगे।'

'तो तुम न जाओगे?'

'ना।'

पुरुष मुट्ठी बाँधकर गोबर की ओर झपटा। उसी क्षण युवती ने उसकी धोती पकड़ ली और उसे अपनी ओर खींचती हुई गोबर से बोली—तुम क्यों लड़ाई करने पर उतारू हो रहे हो जी, अपनी राह क्यों नहीं जाते। यहाँ कोई तमासा है? हमारा आपस का झगड़ा है। कभी वह मुझे मारता है, कभी मैं उसे डाँटती हूँ। तुमसे मतलब?

गोबर यह धिक्कार पाकर चलता बना। दिल में कहा—यह औरत मार खाने ही लायक है!

गोबर आगे निकल गया, तो युवती ने पति को डाँटा—तुम सबसे लड़ने क्यों लगते हो। उसने कौन-सी बुरी बात कही थी कि तुम्हें चोट लग गई। बुरा काम करोगे, तो दुनिया बुरा कहेगी ही; मगर है किसी भले घर का और अपनी बिरादरी का ही जान पड़ता है। क्यों उसे अपनी बहन के लिए नहीं ठीक कर लेते?

पति ने सन्देह के स्वर में कहा—क्या अब तक क्वारा बैठा होगा?

'तो पूछ ही क्यों न लो?'

पुरुष ने दस क़दम दौड़कर गोबर को आवाज़ दी और हाथ से ठहर जाने का इशारा किया। गोबर ने समझा, शायद फिर इसके सिर भूत सवार हुआ, तभी ललकार रहा है। बगैर मार खाये न मानेगा। अपने गाँव में कुत्ता भी शेर हो जाता है, लेकिन आने दो।

लेकिन उसके मुख पर समर की ललकार न थी। मैत्री का निमन्त्रण था। उसने गाँव और नाम और जात पूछी। गोबर ने ठीक-ठीक बता दिया। उस पुरुष का नाम कोदई था।

कोदई ने मुस्कराकर कहा—हम दोनों में लड़ाई होते-होते बची। तुम चले आये, तो मैंने सोचा, तुमने ठीक ही कहा। मैं हकनाहक तुमसे तन बैठा। कुछ खेती-बारी घर में होती है न?

गोबर ने बताया, उसके मौरूसी पाँच बीघे खेत हैं और एक हल की खेती होती है।

'मैंने तुम्हें जो भला-बुरा कहा है, उसकी माफ़ी दे दो भाई! क्रोध में आदमी अन्धा हो जाता है। औरत गुन-सहूर में लच्छमी है, मुदा, कभी-कभी न जाने कौन-सा भूत इस पर सवार हो जाता है। अब तुम्हीं बताओ, माता पर मेरा क्या बस है? जन्म तो उन्हीं ने दिया है, पाला-पोसा तो उन्हीं ने है। जब कोई बात होगी, तो मैं तो जो कुछ कहूँगा, लुगाई ही से कहूँगा। उस पर अपना बस है। तुम्हीं सोचो, मैं कुपद तो नहीं कह रहा हूँ। हाँ, मुझे उसका बाल पकड़कर घसीटना न था; लेकिन औरत जात बिना कुछ ताड़ना दिये काबू में नहीं रहती। चाहती है, मा से अलग हो जाऊँ। तुम्हीं सोचो, कैसे अलग हो जाऊँ और किससे अलग हो जाऊँ? अपनी मा से? जिसने जनम दिया! यह मुझसे न होगा, औरत रहे या जाय!'

गोबर को भी अपनी राय बदलनी पड़ी। बोला—माता का आदर करना तो सबका धरम ही है भाई! माता से कौन उरिन हो सकता है!

कोदई ने उसे अपने घर चलने का नेवता दिया। आज वह किसी तरह लखनऊ नहीं पहुँच सकता। कोस-दो-कोस जाते-जाते साँझ हो जायगी। रात को कहीं-न-कहीं टिकना ही पड़ेगा।

गोबर ने विनोद किया—लुगाई मान गई?

'न मानेगी तो क्या करेगी?'

'मुझे तो उसने ऐसी फटकार बताई कि मैं लजा गया।'

'वह खुद पछता रही है। चलो, जरा माताजी को समझा देना। मुझसे तो कुछ कहते नहीं बनता। उन्हें भी सोचना चाहिए कि बहू को बाप-भाई की गाली क्यों देती हैं। हमारी ही बहन है। चार दिन में उसकी सगाई हो जायगी। उसकी सास हमें गालियाँ देगी, तो उससे सुना जायगा? सब दोस लुगाई ही का नहीं है। माता का भी दोस है। जब हर बात में वह अपनी बेटी का पच्छ करेंगी, तो हमें बुरा लगेगा ही। इसमें इतनी बात अच्छी है कि घर से रूठकर चली जाय; पर गाली का जवाब गाली से नहीं देती।

गोबर को रात के लिए कोई ठिकाना चाहिए था ही। कोदई के साथ हो लिया। दोनों फिर उसी जगह आये, जहाँ युवती बैठी हुई थी। वह अब गृहिणी बन गई थी। ज़रा-सा घूँघट निकाल लिया था और लजाने लगी थी।

कोदई ने मुस्कराकर कहा—यह तो आते ही न थे। कहते थे, ऐसी डाँट सुनने के बाद उनके घर कैसे जाएँ!

युवती ने घूँघट की आड़ से गोबर को देखकर कहा—इतनी ही डाँट में डर गये? लुगाई आ जायगी, तब कहाँ भागोगे?

गाँव समीप ही था। गाँव क्या था, पुरवा था, दस-बारह घरों का, जिसमें आधे खपरैल के थे, आधे फूस के। कोदई ने अपने घर पहुँचकर खाट निकाली, उस पर एक दरी डाल दी, शर्बत बनाने को कह, चिलम भर लाया। और एक क्षण में वही युवती लोटे में शर्बत लेकर आई और गोबर को पानी का एक छींटा मारकर मानों क्षमा माँग ली। वह अब उसका ननदोई हो रहा था। फिर क्यों न अभी से छेड़-छाड़ शुरू कर दे!

१३

गोबर अँधेरे ही मुँह उठा और कोदई से बिदा माँगी। सबको मालूम हो गया था कि उसका ब्याह हो चुका है; इसलिए उससे कोई विवाह-संबन्धी चरचा नहीं की। उसके शील स्वभाव ने सारे घर को मुग्ध कर लिया था। कोदई की माता को तो उसने ऐसे मीठे शब्दों में और उसके मातृपद की रक्षा करते हुए, ऐसा उपदेश दिया कि उसने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया था—तुम बड़ी हो माताजी, पूज्य हो। पुत्र माता के रिन से सौ जन्म लेकर भी उरिन नहीं हो सकता, लाख जन्म लेकर भी उरिन नहीं हो सकता। करोड़ जन्म लेकर भी नहीं...

बुढ़िया इस संख्यातीत श्रद्धा पर गद्गद हो गई। इसके बाद गोबर ने जो कुछ कहा, उसमें बुढ़िया को अपना मंगल ही दिखाई दिया। वैद्य एक बार रोगी को चंगा कर दे, फिर रोगी उसके हाथों विष भी ख़ुशी से पी लेगा—अब जैसे आज ही बहू घर से रूठकर चली गई, तो किसकी हेठी हुई? बहू को कौन जानता है! किसकी लड़की है, किसकी नातिन है, कौन जानता है! संभव है, उसका बाप घसियारा ही रहा हो...

बुढ़िया ने निश्चयात्मक भाव से कहा—घसियारा तो है ही बेटा, पक्का घसियारा। सबेरे उसका मुँह देख लो, तो दिन-भर पानी न मिले।

गोबर बोला—तो ऐसे आदमी की क्या हँसी हो सकती है! हँसी हुई तुम्हारी और तुम्हारे आदमी की। जिसने पूछा, यही पूछा कि किसकी बहू है। फिर वह अभी लड़की है, अबोध, अल्हड़। नीच माता-पिता की लड़की है, अच्छी कहाँ से बन जाय! तुमको तो बूढ़े तोते को राम-नाम पढ़ाना पड़ेगा। मारने से तो वह पढ़ेगा नहीं, उसे तो सहज स्नेह ही से पढ़ाया जा सकता है। ताड़ना भी दो; लेकिन उसके मुँह मत लगो। उसका तो कुछ नहीं बिगड़ता, तुम्हारा अपमान होता है।

जब गोबर चलने लगा, तो बुढ़िया ने खाँड़ और सत्तू मिलाकर उसे खाने को दिया। गाँव के और कई आदमी मजूरी की टोह में शहर जा रहे थे। बातचीत में रास्ता कट गया और नौ बजते-बजते सब लोग अमीनाबाद के बाजार में जा पहुँचे। गोबर हैरान था, इतने आदमी नगर में कहाँ से आ गये? आदमी पर आदमी गिरा पड़ता था।

उस दिन बाज़ार में चार-पाँच सौ मजूरों से कम न थे। राज और बढ़ई और लोहार और बेलदार और खाट बुननेवाले और टोकरी ढोनेवाले और संगतराश सभी जमा थे। गोबर यह जमघट देखकर निराश हो गया। इतने सारे मजूरों को कहाँ काम मिला जाता है। और उसके हाथ में तो कोई औज़ार भी नहीं है। कोई क्या जानेगा कि वह क्या काम कर सकता है। कोई उसे क्यों रखने लगा। बिना औज़ार के उसे कौन पूछेगा!

धीरे-धीरे एक-एक करके मजूरों को काम मिलता जा रहा था। कुछ लोग निराश होकर घर लौटे जा रहे थे। अधिकतर वह बूढ़े और निकम्मे बच रहे थे, जिनका कोई पुछत्तर न था। और उन्हीं में गोबर भी था। लेकिन अभी आज उसके पास खाने को है। कोई ग़म नहीं।

सहसा मिर्ज़ा खुर्शेद ने मज़दूरों के बीच में आकर ऊँची आवाज़ से कहा—जिसको छः आने पर आज काम करना हो, वह मेरे साथ आये। सबको छः आने मिलेंगे। पाँच बजे छुट्टी मिलेगी।

दस-पाँच राजों और बढ़इयों को छोड़कर सब-के-सब उनके साथ चलने को तैयार हो गये। चार सौ फटे-हालों की एक विशाल सेना सज गई। आगे मिर्ज़ा थे, कन्धे पर मोटा सोटा रखे हुए। पीछे भुख-मरों की लम्बी क़तार थी, जैसे भेड़ें हों।

एक बूढ़े ने मिर्ज़ा से पूछा—कौन काम करना है मालिक?

मिर्ज़ा साहब ने जो काम बतलाया, उस पर सब और भी चकित हो गये। केवल एक कबड्डी खेलना! यह कैसा आदमी है, जो कबड्डी खेलने के लिए छः आना रोज़ दे रहा है। सनकी तो नहीं है कोई! बहुत धन पाकर आदमी सनक हो जाता है। बहुत पढ़ लेने से भी आदमी पागल हो जाते हैं। कुछ लोगों को सन्देह होने लगा, कहीं यह कोई मखौल तो नहीं है! यहाँ से घर पर ले जाकर कह दे, कोई काम नहीं है, तो कौन इसका क्या कर लेगा। वह चाहे कबड्डी खेलाये, चाहे आँखमिचौनी, चाहे गुल्ली डंडा, मजूरी पेशगी दे दे। ऐसे फक्कड़ आदमी का क्या भरोसा?

गोबर ने डरते-डरते कहा—मालिक, हमारे पास कुछ खाने को नहीं है। पैसे मिल जायँ, तो कुछ लेकर खा लूँ।

मिर्ज़ा ने झट छः आने पैसे उसके हाथ में रख दिये और ललकारकर बोले—मजूरी सबको चलते-चलते पेशगी दे दी जायगी। इसकी चिन्ता मत करो।

मिर्ज़ा साहब ने शहर के बाहर थोड़ी-सी ज़मीन ले रखी थी। मजूरों ने जाकर देखा, तो एक बड़ा अहाता घिरा हुआ था और उसके अन्दर केवल एक छोटी-सी फूस की झोंपड़ी थी, जिसमें तीन-चार कुर्सियाँ थीं, एक मेज। थोड़ी-सी किताबें मेज़ पर रखी हुई थीं। झोंपड़ी बेलों और लताओं से ढकी हुई बहुत ही सुन्दर लगती थी। अहाते में एक तरफ़ आम और नीबू और अमरूद के पौधे लगे थे, दूसरी तरफ़ कुछ फूल। बड़ा हिस्सा परती था। मिर्ज़ा ने सबको एक क़तार में खड़ा करके ही मजूरी बाँट दी। अब किसी को उनके पागलपन में सन्देह न रहा।

गोबर पैसे पहले ही पा चुका था, मिर्ज़ा ने उसे बुलाकर पौधे सींचने का काम सौंपा। उसे कबड्डी खेलने को न मिलेगी। मन में ऐंठकर रह गया। इन बुड्ढों को उठा-उठाकर पटकता; लेकिन कोई परवाह नहीं। बहुत कबड्डी खेल चुका है। पैसे तो पूरे मिल गये।

आज युगों के बाद इन जरा-ग्रस्तों को कबड्डी खेलने का सौभाग्य मिला। अधिकतर तो ऐसे थे, जिन्हें याद भी न आता था कि कभी कबड्डी खेली है या नहीं। दिन-भर शहर में पिसते थे। पहर रात गये घर पहुँचते थे और जो कुछ रूखा-सूखा मिल जाता था, खाकर पड़ रहते थे। प्रातःकाल फिर वही चरखा शुरू हो जाता था। जीवन नीरस, निरानन्द, केवल एक ढर्रा मात्र हो गया था। आज जो यह अवसर मिला, तो बूढ़े भी जवान हो गये। अधमरे बूढ़े, ठठरियाँ लिये, मुँह में दाँत न पेट में आत, जाँघ के ऊपर धोतियाँ या तहमद चढ़ाये ताल ठोक-ठोककर उछल रहे थे, मानो उन बूढ़ी हड्डियों में जवानी धँस पड़ी हो। चटपट पाली बन गई, दो नायक बन गये। गोइयों का चुनाव होने लगा। और बारह बजते-बजते खेल शुरू हो गया। जाड़ों की ठण्डी धूप ऐसी क्रीड़ाओं के लिए आदर्श ऋतु है।

उधर अहाते के फाटक पर मिर्ज़ा साहब तमाशाइयों को टिकट बाँट रहे थे। उन पर इस तरह की कोई-न-कोई सनक हमेशा सवार रहती थी। अमीरों से पैसा लेकर ग़रीबों को बाँट देना। इस बूढ़ी कबड्डी का विज्ञापन कई दिन से हो रहा था। बड़े-बड़े पोस्टर चिपकाये गये थे, नोटिस बाँटे गये थे। यह खेल अपने ढंग

का निराला होगा, बिल्कुल अभूतपूर्व। भारत के बूढ़े आज भी कैसे पोढ़ हैं, जिन्हें यह देखना हो, आयें और अपनी आँखें तृप्त कर लें। जिसने यह तमाशा न देखा, वह पछतायेगा। ऐसा सुअवसर फिर न मिलेगा। टिकट दस रुपये से लेकर दो आने तक के थे। तीन बजते-बजते सारा अहाता भर गया। मोटरों और फिटनों का ताँता लगा हुआ था। दो हज़ार से कम की भीड़ न थी। रईसों के लिए कुर्सियों और बेंचों का इन्तज़ाम था। साधारण जनता के लिए साफ़-सुथरी ज़मीन।

मिस मालती, मेहता, खन्ना, तंखा और राय साहब सभी विराजमान थे।

खेल शुरू हुआ, तो मिर्ज़ा ने मेहता से कहा—आइए डाक्टर साहब, एक गोई हमारी और आपकी भी हो जाय।

मिस मालती बोली—फ़िलासफ़र का जोड़ फ़िलासफ़र ही से हो सकता है।

मिर्ज़ा ने मूँछों पर ताव देकर कहा—तो क्या आप समझती हैं, मैं फ़िलासफ़र नहीं हूँ! मेरे पास पुछल्ला नहीं है; लेकिन हूँ मैं फ़िलासफ़र। आप मेरा इम्तहान ले सकते हैं मेहताजी!

मालती ने पूछा—अच्छा बतलाइए, आप आइडियलिस्ट हैं या मेटीरियलिस्ट?

'मैं दोनों हूँ।'

'यह क्योंकर?

'बहुत अच्छी तरह। जब जैसा मौक़ा देखा, वैसा बन गया।'

'तो आपका अपना कोई निश्चय नहीं है?'

'जिस बात का आज तक कभी निश्चय न हुआ, और कभी न होगा, उसका निश्चय मैं भला क्या कर सकता हूँ। और लोग आँखें फोड़कर और किताबें चाटकर जिस नतीजे पर पहुँचे हैं, वहाँ मैं यों ही पहुँच गया। आप बता सकती हैं, किसी फ़िलासफ़र ने अक़्ली गद्दे लड़ाने के सिवा और कुछ किया है!'

डाक्टर मेहता ने अचकन के बटन खोलते हुए कहा—तो चलिए, हमारी और आपकी हो ही जाय। और कोई माने या न माने, मैं आपको फ़िलासफ़र मानता हूँ।

मिर्ज़ा ने खन्ना से पूछा—आपके लिए भी कोई जोड़ ठीक करूँ!

मालती ने पुचारा दिया—हाँ-हाँ, इन्हें ज़रूर ले जाइए। मिस्टर तंखा के साथ।

खन्ना झेंपते हुए बोले—जी नहीं, मुझे क्षमा कीजिए।

मिर्ज़ा ने राय साहब से पूछा—आपके लिए कोई जोड़ लाऊँ?

राय साहब बोले—मेरा जोड़ तो ओंकारनाथ का है, मगर वह आज नज़र ही नहीं आते। मिर्ज़ा और मेहता भी नंगी देह, केवल जाँघिये पहने हुए मैदान में पहुँच गये। एक इधर दूसरा उधर। खेल शुरू हो गया।

जनता बूढ़े कुलेलों पर हँसती थी, तालियाँ बजाती थी, गालियाँ देती थी, ललकारती थी, बाज़ियाँ लगाती थी। वाह! ज़रा इन बूढ़े बाबा को देखो। किस शान से जा रहे हैं, जैसे सबको मारकर ही लौटेंगे। अच्छा, दूसरी तरफ़ से भी उन्हीं के बड़े भाई निकले। दोनों कैसे पैंतरे बदल रहे हैं! इन हड्डियों में अभी बहुत जान है भाई! इन लोगों ने जितना घी खाया है, उतना अब हमें पानी भी मयस्सर नहीं। लोग कहते हैं, भारत धनी हो रहा है। होता होगा। हम तो यही देखते हैं कि इन बुड्ढों-जैसे जीवट के जवान भी आज मुश्किल से निकलेंगे। वह उधरवाले बुड्ढे ने इसे दबोच लिया। बेचारा छूट निकलने के लिए कितना ज़ोर मार रहा है; मगर अब नहीं जा सकते बच्चा। एक को तीन लिपट गये। इस तरह लोग अपनी दिलचस्पी ज़ाहिर कर रहे थे। उनका सारा ध्यान मैदान की ओर था। खिलाड़ियों के आघात-प्रतिघात, उछल-कूद, धर-पकड़ और उनके मरने-जीने में सभी तन्मय हो रहे थे। कभी चारों तरफ़ से क़हक़हे पड़ते, कभी कोई अन्याय या धाँधली देखकर लोग 'छोड़ दो, छोड़ दो' का गुल मचाते, कुछ लोग तैश में आकर पाली की तरफ़ दौड़ते; लेकिन जो थोड़े-से सज्जन शामियाने में ऊँचे दरजे के टिकट लेकर बैठे थे, उन्हें इस खेल में विशेष आनन्द न मिल रहा था। वे इससे अधिक महत्त्व की बातें कर रहे थे।

खन्ना ने जिंजर का ग्लास ख़ाली करके सिगार सुलगाया और राय साहब से बोले—मैंने आपसे कह दिया, बैंक इससे कम सूद पर किसी तरह राज़ी न होगा और यह रिआयत भी मैंने आपके साथ की है; क्योंकि आपके साथ घर का मुआमला है।

राय साहब ने मूछों में मुस्कराहट को लपेटकर कहा—आपकी नीति में घरवालों को ही उलटे छुरे से हलाल करना चाहिए?

'यह आप क्या फ़रमा रहे हैं?'

'ठीक कह रहा हूँ। सूर्यप्रतापसिंह से आपने केवल सात फ़ी सदी लिया है, मुझसे नौ फ़ी सदी माँग रहे हैं और उस पर एहसान भी रखते हैं। क्यों न हो।'

खन्ना ने क़हक़हा मारा, मानो यह कथन हँसने के ही योग्य था।

'उन शर्तों पर मैं आपसे भी वही सूद ले लूँगा। हमने उनकी जायदाद रेहन रख ली है। और शायद वह जायदाद फिर उनके हाथ न जायगी।'

'मैं भी अपनी कोई जायदाद निकाल दूँगा। नौ परसेंट देने से यह कहीं अच्छा है कि फ़ालतू जायदाद अलग कर दूँ। मेरी जैकसन रोडवाली कोठी आप निकलवा दें। कमीशन ले लीजिएगा।'

'उस कोठी का सुभीते से निकलना ज़रा मुश्किल है। आप जानते हैं, वह जगह बस्ती से कितनी दूर है; मगर ख़ैर, देखूँगा। आप उसकी क़ीमत का क्या अन्दाज़ा करते हैं?'

राय साहब ने एक लाख पच्चीस हज़ार बताये। पन्द्रह बीघे ज़मीन भी तो है उसके साथ? खन्ना स्तंभित हो गये। बोले—आप आज के पन्द्रह साल पहले का स्वप्न देख रहे हैं राय साहब! आपको मालूम होना चाहिए कि इधर जायदादों के मूल्य में पचास परसेंट की कमी हो गई है।

राय साहब ने बुरा मानकर कहा—जी नहीं, पन्द्रह साल पहले उसकी क़ीमत डेढ़ लाख थी।

'मैं ख़रीदार की तलाश में रहूँगा; मगर मेरा कमीशन ५% होगा आपसे।'

'औरों से शायद १०% हो, क्यों; क्या करोगे इतने रुपये लेकर?'

'आप जो चाहें, दे दीजिएगा। अब तो राज़ी हुए? शुगर के हिस्से अभी तक आपने न ख़रीदे। अब बहुत थोड़े-से हिस्से बच रहे हैं। हाथ मलते रह जाइएगा। इंश्योरेंस की पालिसी भी आपने न ली। आपमें टाल-मटोल की बुरी आदत है। जब अपने लाभ की बातों में इतना टाल-मटोल है, तब दूसरों को आप लोगों से क्या लाभ हो सकता है। इसी से कहते हैं, रियासत आदमी की अक़ल चर जाती है। मेरा बस चले, तो मैं ताल्लुक़ेदारों की रियासतें ज़ब्त कर लूँ।'

मिस्टर तंखा मालती पर जाल फेंक रहे थे। मालती ने साफ़ कह दिया था कि वह एलेक्शन के झमेले में नहीं पड़ना चाहती; पर तंखा इतनी आसानी से हार माननेवाले व्यक्ति न थे। आकर कुहनियों के बल मेज़ पर टिककर बोले—आप ज़रा उस मुआमले पर फिर विचार करें। मैं कहता हूँ, ऐसा मौक़ा शायद आपको फिर न मिले। रानी साहब चन्दा को आपके मुक़ाबले में रुपये में एक आना भी

चांस नहीं है। मेरी इच्छा केवल यह है कि कौंसिल में ऐसे लोग जायँ, जिन्होंने जीवन में कुछ अनुभव प्राप्त किया है और जनता की कुछ सेवा की है। जिस महिला ने भोग-विलास के सिवा कुछ जाना ही नहीं, जिसने जनता को हमेशा अपनी कार का पेट्रोल समझा, जिसकी सबसे मूल्यवान् सेवा वे पार्टियाँ हैं, जो वह गवर्नरों और सेक्रेटरियों को दिया करती हैं, उनके लिए इस कौंसिल में स्थान नहीं है। नई कौंसिलों में बहुत कुछ अधिकार प्रतिनिधियों के हाथ में होगा, और मैं नहीं चाहता कि वह अधिकार अनधिकारियों के हाथ में जाय।

मालती ने पीछा छुड़ाने के लिए कहा—लेकिन साहब, मेरे पास दस-बीस हज़ार एलेक्शन पर ख़र्च करने के लिए कहाँ हैं। रानी साहब तो दो-चार लाख ख़र्च कर सकती हैं। मुझे भी साल में हज़ार-पाँच सौ रुपये उनसे मिल जाते हैं, यह रक़म भी हाथ से निकल जायगी।

'पहले आप यह बता दें कि आप जाना चाहती हैं, या नहीं?'

'जाना तो चाहती हूँ; मगर फ्री पास मिल जाय।'

'तो यह मेरा ज़िम्मा रहा। आपको फ्री पास मिल जायगा।'

'जी नहीं, क्षमा कीजिए। मैं हार की ज़िल्लत नहीं उठाना चाहती। जब रानी साहब रुपये की थैलियाँ खोल देंगी और एक-एक वोट पर एक-एक अशर्फ़ी चढ़ने लगेगी, तो शायद आप भी उधर वोट देंगे।'

'आपके ख़याल में एलेक्शन महज़ रुपये से जीता जा सकता है?'

'जी नहीं, व्यक्ति भी एक चीज़ है; लेकिन मैंने केवल एक बार जेल जाने के सिवा और क्या जन-सेवा की है? और सच पूछिए तो उस बार भी मैं अपने मतलब ही से गई थी, उसी तरह जैसे राय साहब और खन्ना गये थे। इस नई सभ्यता का आधार धन है, विद्या और सेवा और कुल और जाति सब धन के सामने हेच है। कभी-कभी इतिहास में ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब धन को आन्दोलन के सामने नीचा देखना पड़ता है; मगर इसे अपवाद समझिए। मैं अपनी ही बात कहती हूँ। कोई ग़रीब औरत दवाख़ाने में आ जाती है, तो घण्टों उससे बोलती तक नहीं; पर कोई महिला कार पर आ गईं, तो द्वार तक जाकर उनका स्वागत करती हूँ और उनकी ऐसी उपासना करती हूँ, मानो साक्षात् देवी हैं। मेरा और

रानी साहब का कोई मुकाबला नहीं। जिस तरह के कौंसिल बन रहे हैं, उनके लिए रानी साहब ही ज़्यादा उपयुक्त हैं।'

उधर मैदान में मेहता की टीम कमज़ोर पड़ती जाती थी। आधे से ज़्यादा खिलाड़ी मर चुके थे। मेहता ने अपने जीवन में कभी कबड्डी न खेली थी। मिर्ज़ा इस फन के उस्ताद थे; मेहता की तातीलें अभिनय के अभ्यास में कटती थीं। रूप भरने में वह अच्छे-अच्छों को चकित कर देते थे। और मिर्ज़ा के लिए सारी दिलचस्पी अखाड़े में थी, पहलवानों के भी और परियों के भी।

मालती का ध्यान उधर भी लगा हुआ था। उठकर राय साहब से बोलीं—मेहता की पार्टी तो बुरी तरह पिट रही है।

राय साहब और खन्ना में इंश्योरेंस की बातें हो रही थीं। राय साहब उस प्रसंग से ऊबे हुए मालूम होते थे। मालती ने मानो उन्हें एक बन्धन से मुक्त कर दिया। उठकर बोले—जी हाँ, पिट तो रही है। मिर्ज़ा पक्का खिलाड़ी है।

'मेहता को यह क्या सनक सूझी। व्यर्थ अपनी भद्द करा रहे हैं।'

'इसमें काहे की भद्द। दिल्लगी ही तो है।'

'मेहता की तरफ़ से जो बाहर निकलता है, वही मर जाता है।'

एक क्षण के बाद उसने पूछा—क्या इस खेल में हाफ़ टाइम नहीं होता?

खन्ना को शरारत सूझी। बोले—आप चले थे मिर्ज़ा से मुकाबला करने। समझते थे, यह भी फ़िलसफ़ी है।

'मैं पूछती हूँ, इस खेल में हाफ़ टाइम नहीं होता?'

खन्ना ने फिर चिढ़ाया—अब खेल ही ख़तम हुआ जाता है। मज़ा आयेगा तब, जब मिर्ज़ा मेहता को दबोचकर रगड़ेंगे और मेहता साहब 'चीं' बोलेंगे।

'मैं तुमसे नहीं पूछती। राय साहब से पूछती हूँ।'

राय साहब बोले—इस खेल में हाफ़ टाइम! एक ही एक आदमी तो सामने आता है!

'अच्छा, मेहता का एक आदमी और मर गया।'

खन्ना बोले—आप देखती रहिए! इसी तरह सब मर जायँगे और आख़िर में मेहता साहब भी मरेंगे।

मालती जल गई—आपकी हिम्मत न पड़ी बाहर निकलने की

'मैं गँवारों के खेल नहीं खेलता। मेरे लिए टेनिस है।'

'टेनिस में भी मैं तुम्हें सैकड़ों गेम दे चुकी हूँ।'

'आपसे जीतने का दावा ही कब है?'

'अगर दावा हो, तो मैं तैयार हूँ।'

मालती उन्हें फटकार बताकर फिर अपनी जगह पर आ बैठी। किसी को मेहता से हमदर्दी नहीं है। कोई यह नहीं कहता कि अब खेल ख़त्म कर दिया जाय। मेहता भी अजीब बुद्धू आदमी हैं, कुछ धाँधली क्यों नहीं कर बैठते। यहाँ अपनी न्याय-प्रियता दिखा रहे हैं। अभी हारकर लौटेंगे, तो चारों तरफ़ से तालियाँ पड़ेंगी। अब शायद बीस आदमी उनकी तरफ़ और होंगे और लोग कितने ख़ुश हो रहे हैं।

ज्यों-ज्यों अन्त समीप आता जाता था, लोग अधीर होते जाते थे। और पाली की तरफ़ बढ़ते जाते थे। रस्सी का जो एक कठघरा-सा बनाया गया था, वह तोड़ दिया गया। स्वयं-सेवक रोकने की चेष्टा कर रहे थे; पर उस उत्सुकता के उन्माद में उनकी एक न चलती थी। यहाँ तक कि जुआर अन्तिम बिन्दु तक आ पहुँचा और मेहता अकेले बच गये और अब उन्हें गूँगे का पार्ट खेलना पड़ेगा। अब सारा दार-मदार उन्हीं पर है; अगर वह बचकर अपनी पाली में लौट आते हैं, तो उनका पक्ष बचता है। नहीं हार का सारा अपमान और लज्जा लिये हुए उन्हें लौटना पड़ता है। वह दूसरे पक्ष के जितने आदमियों को छूकर अपनी पाली में जायँगे, वह सब मर जायँगे और उतने ही आदमी उनकी तरफ़ जी उठेंगे। सबकी आँखें मेहता की ओर लगी हुई थीं। वह मेहता चले। जनता ने चारों ओर से आकर पाली को घेर लिया। तन्मयता अपनी पराकाष्ठा पर थी। मेहता कितने शान्त-भाव से शत्रुओं की ओर जा रहे हैं। उनकी प्रत्येक गति जनता पर प्रतिबिम्बित हो जाती है, किसी की गरदन टेढ़ी हुई जाती है, कोई आगे को झुका पड़ता है। वातावरण गर्म हो गया है। पारा ज्वाला-बिन्दु पर आ पहुँचा है। मेहता शत्रुदल में घुसे। दल पीछे हटता जाता है। उनका संगठन इतना दृढ़ है, कि मेहता की पकड़ या स्पर्श में कोई नहीं आ रहा है बहुतों को जो आशा थी कि मेहता कम-से-कम अपने पक्ष के दस-पाँच आदमियों को तो जिला ही लेंगे, वे निराश होते जा रहे हैं।

सहसा मिर्ज़ा एक छलाँग मारते हैं और मेहता की कमर पकड़ लेते हैं। मेहता अपने को छुड़ाने के लिए ज़ोर मार रहे हैं। मिर्ज़ा को पाली की तरफ़ खींचे लिये

आ रहे हैं। लोग उन्मत्त हो जाते हैं। अब इसका पता चलना मुश्किल है कि कौन खिलाड़ी है, कौन तमाशाई। सब एक गड्डबड हो गये हैं। मिर्ज़ा और मेहता में मल्लयुद्ध हो रहा है। मिर्ज़ा के कई बुड्ढे मेहता की तरफ़ लपके और उनसे लिपट गये। मेहता ज़मीन पर चुपचाप पड़े हुए हैं; अगर वह किसी तरह खींच-खाँचकर दो हाथ और ले जायँ, तो उनके पचासों आदमी जी उठते हैं; मगर वह एक इञ्च भी नहीं खिसक सकते। मिर्ज़ा उनकी गरदन पर बैठे हुए हैं। मेहता का मुख लाल हो रहा है। आँखें बीरहूटी बनी हुई हैं। पसीना टपक रहा है। और मिर्ज़ा अपने स्थूल शरीर का भार लिये उनकी पीठ पर हुमच रहे हैं।

मालती ने समीप जाकर उत्तेजित स्वर में कहा—मिर्ज़ा खुर्शेद, यह फ़ेयर नहीं है! बाजी ड्रान रही।

खुर्शेद ने मेहता की गरदन पर एक घस्सा लगाकर कहा—जब तक यह 'चीं' न बोलेंगे, मैं हरगिज़ न छोड़ूँगा। क्यों नहीं 'चीं' बोलते?

मालती और आगे बढ़ी—'चीं' बुलाने के लिए आप इतनी ज़बरदस्ती नहीं कर सकते।

मिर्ज़ा ने मेहता की पीठ पर हुमचकर कहा—बेशक कर सकता हूँ। आप इनसे कह दें, 'चीं' बोलें, मैं अभी उठा जाता हूँ।

मेहता ने एक बार फिर उठने की चेष्टा की; पर मिर्ज़ा ने उनकी गरदन दबा दी।

मालती ने उनका हाथ पकड़कर घसीटने की कोशिश करके कहा—यह खेल नहीं, अदावत है।

'अदावत ही सही।'

'आप न छोड़ेंगे?'

उसी वक्त जैसे कोई भूकम्प आ गया। मिर्ज़ा साहब ज़मीन पर पड़े हुए थे और मेहता दौड़े हुए पाली की ओर भागे जा रहे थे और हज़ारों आदमी पागलों की तरह टोपियाँ और पगड़ियाँ और छड़ियाँ उछाल रहे थे। कैसे यह कायापलट हुई, कोई समझ न सका।

मिर्ज़ा ने मेहता को गोद में उठा लिया और लिये हुए शामियाने तक आये। प्रत्येक मुख पर यह शब्द थे—डाक्टर साहब ने बाज़ी मार ली। और प्रत्येक आदमी

इस हारी हुई बाज़ी के एकबारगी पलट जाने पर विस्मित थे। सभी मेहता के जीवट और दम और धैर्य का बखान कर रहे थे।

मजदूरों के लिए पहले से नारङ्गियाँ मँगा ली गई थीं। उन्हें एक-एक नारङ्गी देकर बिदा किया गया। शामियाने में मेहमानों के चाय-पानी का आयोजन था। मेहता और मिर्ज़ा एक ही मेज़ पर आमने-सामने बैठे। मालती मेहता की बगल में बैठी।

मेहता ने कहा—मुझे आज एक नया अनुभव हुआ। महिला की सहानुभूति हार को जीत बना सकती है।

मिर्ज़ा ने मालती की ओर देखा—अच्छा! यह बात थी! जभी तो मुझे हैरत हो रही थी कि आप एकाएक कैसे ऊपर आ गये।

मालती शर्म से लाल हुई जाती थीं। बोलीं—आप बड़े बेमुरौवत आदमी हैं मिर्ज़ाजी! मुझे आज मालूम हुआ।

'क़ुसूर इनका था। यह क्यों 'चीं' नहीं बोलते थे?'

'मैं तो 'चीं' न बोलता, चाहे आप मेरी जान ही ले लेते।'

कुछ देर मित्रों में गप-शप होती रही। फिर धन्यवाद के और मुबारकबाद के भाषण हुए और मेहमान लोग बिदा हुए। मालती को भी एक बिज़िट करनी थी। वह भी चली गईं। केवल मेहता और मिर्ज़ा रह गये। उन्हें अभी स्नान करना था। मिट्टी में सने हुए थे; कपड़े कैसे पहनते। गोबर पानी खींच लाया और दोनों दोस्त नहाने लगे।

मिर्ज़ा ने पूछा—शादी कबतक होगी?

मेहता ने अचंभे में आकर पूछा—किसकी?

'आपकी।'

'मेरी शादी! किसके साथ हो रही है?'

'वाह! आप तो ऐसा उड़ रहे हैं, गोया यह भी छिपाने की बात है।'

'नहीं-नहीं, मैं सच कहता हूँ, मुझे बिल्कुल ख़बर नहीं है। क्या मेरी शादी होने जा रही है?'

'और आप क्या समझते हैं, मिस मालती आपकी कम्पेनियन बनकर रहेंगी?'

मेहता गंभीर-भाव से बोले—आपका क़यास बिल्कुल ग़लत है। मिर्ज़ाजी!

मिस मालती हसीन हैं, खुशमिज़ाज हैं, समझदार हैं, रोशन-ख़याल हैं, और भी उनमें कितनी ख़ूबियाँ हैं। लेकिन मैं अपनी जीवन-संगिनी में जो बात देखना चाहता हूँ, वह उनमें नहीं है, और न शायद हो सकती है। मेरे ज़ेहन में औरत वफ़ा और त्याग की मूर्ति है जो अपनी बेज़बानी से, अपनी कुर्बानी से, अपने को बिलकुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है, पर आत्मा स्त्री की होती है। आप कहेंगे, मर्द अपने को क्यों नहीं मिटाता? औरत ही से क्यों इसकी आशा करता है! मर्द में वह सामर्थ्य ही नहीं है। वह अपने को मिटायेगा, तो शून्य हो जायगा। वह किसी खोह में जा बैठेगा और सर्वात्मा में मिल जाने का स्वप्न देखेगा। वह तेजप्रधान जीव है, और अपने अहंकार में यह समझकर कि वह ज्ञान का पुतला है, सीधा ईश्वर में लीन होने की कल्पना किया करता है। स्त्री पृथ्वी की भाँति धैर्यवान् है, शान्ति-सम्पन्न है, सहिष्णु है। पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं, तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं तो वह कुल्टा हो जाती है। पुरुष आकर्षित होता है स्त्री की ओर, जो सर्वांश में स्त्री हो। मालती ने अभी तक मुझे आकर्षित नहीं किया। मैं आपसे किन शब्दों में कहूँ कि स्त्री मेरी नज़रों में क्या है। संसार में जो कुछ सुन्दर है, उसी की प्रतिमा को मैं स्त्री कहता हूँ, मैं उससे यह आशा रखता हूँ कि मैं उसे मार ही डालूँ तो भी प्रतिहिंसा का भाव उसमें न आये, अगर मैं उसकी आँखों के सामने किसी स्त्री को प्यार करूँ, तो भी उसकी ईर्ष्या न जागे। ऐसी नारी पाकर मैं उसके चरणों में गिर पड़ूँगा और उस पर अपने को अर्पण कर दूँगा।

मिर्ज़ा ने सिर हिलाकर कहा—ऐसी औरत आपको इस दुनिया में तो शायद ही मिले।

मेहता ने हाथ मारकर कहा—एक नहीं हज़ारों; वरना दुनिया वीरान हो जाती।

'ऐसी एक ही मिसाल दीजिए।'

'मिसेज़ खन्ना ही को ले लीजिए।'

'लेकिन खन्ना!'

'खन्ना अभागे हैं, जो हीरा पाकर काँच का टुकड़ा समझ रहे हैं। सोचिए, कितना त्याग है और उसके साथ ही कितना प्रेम है! खन्ना के रूपासक्त मन में शायद उसके लिए रत्ती भर स्थान भी नहीं है, लेकिन आज खन्ना पर कोई आफत

आ जाय, तो वह अपने को उन पर न्योछावर कर देगी। खन्ना आज अन्धे या कोढ़ी हो जायँ, तो भी उसकी वफ़ादारी में फ़र्क न आयेगा। अभी खन्ना उसकी क़द्र नहीं कर सकते हैं, मगर आप देखेंगे, एक दिन यही खन्ना उसके चरण धो-धोकर पियेंगे। मैं ऐसी बीबी नहीं चाहता, जिससे मैं आइंस्टीन के सिद्धान्त पर बहस कर सकूँ, या जो मेरी रचनाओं के प्रूफ़ देखा करे। मैं ऐसी औरत चाहता हूँ, जो मेरे जीवन को पवित्र और उज्ज्वल बना दे, अपने प्रेम और त्याग से।'

खुर्शेद ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए जैसे कोई भूली हुई बात याद करके कहा—आपका खयाल बहुत ठीक है मिस्टर मेहता! ऐसी औरत अगर कहीं मिल जाय, तो मैं भी शादी कर लूँ, लेकिन मुझे उम्मीद नहीं है कि मिले।

मेहता ने हँसकर कहा—आप भी तलाश में रहिए, मैं भी तलाश में हूँ। शायद कभी तक़दीर जागे।

'मगर मिस मालती आपको छोड़नेवाली नहीं। कहिए लिख दूँ।'

'ऐसी औरतों से मैं केवल मनोरंजन कर सकता हूँ, ब्याह नहीं। ब्याह तो आत्म-समर्पण है।'

'अगर ब्याह आत्म-समर्पण है, तो प्रेम क्या है?'

'प्रेम जब आत्म-समर्पण का रूप लेता है, तभी ब्याह है, उसके पहले ऐयाशी है।'

मेहता ने कपड़े पहने और बिदा हो गये। शाम हो गई थी। मिर्ज़ा ने जाकर देखा, तो गोबर अभी तक पेड़ों को सींच रहा था। मिर्ज़ा ने प्रसन्न होकर कहा—जाओ, अब तुम्हारी छुट्टी है। कल फिर आओगे?

गोबर ने कातर भाव से कहा—मैं कहीं नौकरी करना चाहता हूँ मालिक!

'नौकरी करना है तो हम तुझे रख लेंगे।'

'कितना मिलेगा हजूर!'

'जितना तू माँगे।'

'मैं क्या माँगूँ! आप जो चाहे दे दें।'

'हम तुम्हें पन्द्रह रुपये देंगे और खूब कसकर काम लेंगे।'

गोबर मेहनत से नहीं डरता। उसे रुपये मिलें, तो वह आठों पहर काम करने को तैयार है। पन्द्रह रुपये मिलें, तो क्या पूछना। वह तो प्राण भी दे देगा।

बोला—मेरे लिए कोठरी मिल जाय, वहीं पड़ा रहूँगा।

'हाँ-हाँ, जगह का इन्तज़ाम मैं कर दूँगा। इसी झोंपड़े में एक किनारे तुम भी पड़ रहना।'

गोबर को जैसे स्वर्ग मिल गया।

१४

होरी की फ़सल सारी की सारी डाँड़ की भेंट हो चुकी थी। बैशाख तो किसी तरह कटा, मगर जेठ लगते-लगते घर में अनाज का एक दाना न रहा। पाँच-पाँच पेट खानेवाले, और घर में अनाज नदारद। दोनों जून न मिले, एक जून तो मिलना ही चाहिए। भर पेट न मिले, आधा पेट तो मिले! निराहार कोई कै दिन रह सकता है! उधार ले तो किससे! गाँव के सभी छोटे-बड़े महाजनों से तो मुँह चुराना पड़ता था। मजूरी भी करे, तो किसकी! जेठ में अपना ही काम ढेरों था। ऊख की सिंचाई लगी हुई थी; लेकिन खाली पेट मेहनत भी कैसे हो।

साँझ हो गई थी। छोटा बच्चा रो रहा था। मा को भोजन न मिले, तो दूध कहाँ से निकले। सोना परिस्थिति समझती थी; मगर रूपा क्या समझे। बार-बार रोटी-रोटी चिल्ला रही थी। दिन-भर तो कच्ची अमिया से जी बहला; मगर अब तो कोई ठोस चीज़ चाहिए। होरी दुलारी सहुआइन से अनाज उधार माँगने गया था; पर वह दूकान बन्द करके पैठ चली गई थी। मँगरू साह ने केवल इनकार ही न किया, लताड़ भी दी—उधार माँगने चले हैं, तीन साल से धेला सूद नहीं दिया, उस पर उधार दिये जाओ। अब आकबत में देंगे। खोटी नीयत हो जाती है, तो यही हाल होता है। भगवान् से भी यह अनीति नहीं देखी जाती। कारकुन की डाँट पड़ी, तो कैसे चुपके से रुपये उगल दिये। मेरे रुपये, रुपये ही नहीं हैं। और मेहरिया है, उसका मिजाज ही नहीं मिलता।

वहाँ से रुआँसा होकर उदास बैठा था कि पुन्नी आग लेने आई। रसोई के द्वार पर जाकर देखा तो अँधेरा पड़ा हुआ था। बोली—आज रोटी नहीं बना रही हो क्या भाभीजी? अब तो बेला हो गई।

जबसे गोबर भागा था, पुन्नी और धनिया में बोल-चाल हो गई थी। होरी का एहसान भी मानने लगी थी। हीरा को अब वह गलियाँ देती थी—हत्यारा गऊ-हत्या करके भागा। मुँह में कालिख लगी है, घर कैसे आये। और आये भी तो घर के अन्दर

पाँव न रखने दूँ। गऊ-हत्या करने इसे लाज भी न आई। बहुत अच्छा होता, पुलिस बाँधकर ले जाती और चक्की पिसवाती।

धनिया कोई बहाना न कर सकी। बोली—रोटी कहाँ से बने, घर में दाना तो है ही नहीं। तेरे महतो ने बिरादरी का पेट भर दिया, बाल-बच्चे मरें या जियें। अब बिरादरी झाँकती तक नहीं।

पुन्नी की फसल अच्छी हुई थी, और वह स्वीकार करती थी कि यह होरी का पुरुषार्थ है। हीरा के हाथ कभी इतनी बरकत न हुई थी।

बोली—अनाज मेरे घर से क्यों न मँगवा लिया। वह भी तो महतो ही की कमाई है कि किसी और की? सुख के दिन आयें, तो लड़ लेना, दुःख तो साथ रोने ही से कटता है। मैं क्या ऐसी अन्धी हूँ कि आदमी का दिल नहीं पहचानती? महतो ने न सँभाला होता, तो आज मुझे कहाँ सरन मिलती?

वह उलटे पाँव लौटी और सोना को भी साथ लेती गई। एक क्षण में दो डल्ले अनाज से भरे लाकर आँगन में रख दिये। दो मन से कम जौ न था। धनिया अभी कुछ कहने न पाई थी कि वह फिर चल दी और एक क्षण में एक बड़ी-सी टोकरी अरहर की दाल से भरी हुई लाकर रख दी, और बोली—चलो, मैं आग जलाये देती हूँ।

धनिया ने देखा तो जौ के ऊपर एक छोटी-सी डलिया में चार-पाँच सेर आटा भी था। आज जीवन में पहली बार वह परास्त हुई। आँखों में प्रेम और कृतज्ञता के मोती भरकर बोली—सब-का-सब उठा लाई कि घर में भी कुछ छोड़ा? कहीं भागा जाता था!

आँगन में बच्चा खटोले पर पड़ा रो रहा था। पुनिया उसे गोद में लेकर दुलराती हुई बोली—तुम्हारी दया से अभी बहुत है भाभीजी! पन्द्रह मन तो जौ हुआ और दस मन गेहूँ। पाँच मन मटर हुआ, तुमसे क्या छिपाना है। दोनों घरों का काम चल जायगा। दो-तीन महीने में फिर मकई हो जायगी। आगे भगवान् मालिक है।

झुनिया ने आकर अंचल से छोटी सास के चरण छुए। पुनिया ने असीस दिया। सोना आग जलाने चली, रूपा ने पानी के लिए कलसा उठाया। रुकी हुई गाड़ी चल निकली। जल में अवरोध के कारण जो चक्कर था, फेन था, शोर था,

गति की तीव्रता थी, वह अवरोध के हट जाने से शांत, मधुर-ध्वनि के साथ सम, धीमी, एक-रस धार में बहने लगी।

पुनिया बोली—महतो को डाँड़ देने की ऐसी जल्दी क्या पड़ी थी?

धनिया ने कहा—बिरादरी में सुरखरू कैसे होते।

'भाभी, बुरा न मानो, तो एक बात कहूँ?'

'कह, बुरा क्यों मानूँगी।'

'न कहूँगी, कहीं तुम बिगड़ने न लगो।'

'कहती हूँ, कुछ न बोलूँगी, कह तो!'

'तुम्हें झुनिया को घर में रखना न चाहिए था।'

'तब क्या करती! वह डूबी मरती थी।'

'मेरे घर में रख देतीं। तब तो कोई कुछ न कहता?'

'यह तो तू आज कहती है। उस दिन भेज देती, तो झाड़ू लेकर दौड़ती।'

'इतने खरच में तो गोबर का ब्याह हो जाता!'

'होनहार को कौन टाल सकता है पगली! अभी इतने ही से गला नहीं छूटा। भोला अब अपनी गाय के दाम माँग रहा है। तब तो गाय दी थी कि मेरी सगाई कहीं ठीक कर दो। अब कहता है, मुझे सगाई नहीं करनी, मेरे रुपये दे दो। उसके दोनों बेटे लाठी लिये फिरते हैं। हमारे कौन बैठा है, जो उससे लड़े। इस सत्यानाशी गाय ने आकर घर चौपट कर दिया।'

कुछ और बातें करके पुनिया आग लेकर चली गई। होरी सब कुछ देख रहा था। भीतर आकर बोला—पुनिया दिल की साफ़ है।

'हीरा भी तो दिल का साफ़ था!'

धनिया ने अनाज तो रख लिया था; पर मन में लज्जित और अपमानित हो रही थी। यह दिनों का फेर है कि आज उसे यह नीचा देखना पड़ा।

'तू किसी का औसान नहीं मानती, यही तुझमें बुराई है।'

'औसान क्यों मानूँ। मेरा आदमी उसकी गिरस्ती के पीछे जान नहीं दे रहा है? फिर मैंने दान थोड़े ही लिया है। उसका एक-एक दाना भर दूँगी।'

मगर पुनिया अपनी जिठानी के मनोभाव समझकर भी होरी का एहसान चुकाती जाती थी। जब यहाँ अनाज चुक जाता, मन-दो-मन दे जाती; मगर जब चौमासा

आ गया और वर्षा न हुई, तो समस्या अत्यन्त जटिल हो गई। सावन का महीना आ गया था और बगूले उठ रहे थे। कुओं का पानी भी सूख गया था और ऊख ताप से जली जाती थी। नदी से थोड़ा-थोड़ा पानी मिलता था; मगर उसके पीछे आये दिन लाठियाँ निकलती थीं। यहाँ तक कि नदी ने भी जवाब दे दिया। जगह-जगह चोरियाँ होने लगीं, डाके पड़ने लगे। सारे प्रान्त में हाहाकार मच गया। बारे कुशल हुई कि भादों में वर्षा हो गई और किसानों के प्राण हरे हुए। कितना उछाह था, उस दिन। प्यासी पृथ्वी जैसे अघाती ही न थी और प्यासे किसान ऐसे उछल रहे थे, मानो पानी नहीं, अशर्फियाँ बरस रही हैं। बटोर लो, जितना बटोरते बने। खेतों में जहाँ बगूले उठते थे; वहाँ हल चलने लगे। बालवृन्द निकल-निकलकर तालाबों और पोखरों और गड़हियों का मुआयना कर रहे थे। ओहो! तालाब तो आधा भर गया, और वहाँ से गड़हिया की तरफ़ दौड़े।

मगर अब कितना ही पानी बरसे, ऊख तो बिदा हो गई। एक-एक हाथ की होके रह जायगी, मक्का और जुआर और कोदो से लगान थोड़े ही चुकेगा, महाजन का पेट थोड़े ही भरा जायगा। हाँ, चौओं के लिए चारा हो गया और आदमी जी गया।

जब माघ बीत गया और भोला के रुपये न मिले, तो एक दिन वह झल्लाया हुआ होरी के घर आ धमका और बोला—यही है तुम्हारा क़ौल! इसी मुँह से तुमने ऊख पेरकर मेरे रुपये देने का वादा किया था? अब तो ऊख पेर चुके। लाओ रुपये मेरे हाथ में।

होरी जब अपनी विपत्ति सुनाकर और सब तरह चिरौरी करके हार गया और भोला द्वार से न हटा, तो उसने झुँझलाकर कहा—तो महतो, इस बखत तो मेरे पास रुपये नहीं हैं और न मुझे कहीं उधार ही मिल सकते हैं। मैं कहाँ से लाऊँ। दाने-दाने की तंगी हो रही है। विश्वास न हो, घर में आकर देख लो। जो कुछ मिले, उठा ले जाओ।

भोला ने निर्मम भाव से कहा—मैं तुम्हारे घर में क्यों तलाशी लेने जाऊँ और न मुझे इससे मतलब है कि तुम्हारे पास रुपये हैं या नहीं। तुमने ऊख पेरकर रुपये देने कहा था। ऊख पेर चुके। अब मेरे रुपये मेरे हवाले करो।

'तो फिर जो कहो, वह करूँ?'

'मैं क्या कहूँ!'

'मैं तुम्हीं पर छोड़ता हूँ।'

'मैं तुम्हारे दोनों बैल खोल ले जाऊँगा!'

होरी ने उसकी ओर विस्मय-भरी आँखों से देखा, मानो अपने कानों पर विश्वास न आया हो। फिर हतबुद्धि-सा सिर झुकाकर रह गया। भोला क्या उसे भिखारी बनाकर छोड़ देना चाहता है? दोनों बैल चले गये, तब तो उसके दोनों हाथ ही कट जायँगे।

दीन स्वर में बोला—दोनों बैल ले लोगे, तो मेरा सर्वनाश हो जायगा। अगर तुम्हारा धरम यही कहता है, तो खोल ले जाओ।

'तुम्हारे बनने-बिगड़ने की मुझे परवा नहीं है। मुझे अपने रुपये चाहिए।'

'और जो मैं कह दूँ, मैंने रुपये दे दिये?'

भोला सन्नाटे में आ गया। उसे भी अपने कानों पर विश्वास न आया। होरी इतनी बड़ी बेईमानी कर सकता है, यह संभव नहीं!

उग्र होकर बोला—अगर तुम हाथ में गङ्गाजली लेकर कह दो कि मैंने रुपये दे दिये, तो सबर कर लूँगा।

'कहने का मन तो चाहता है, मरता क्या न करता; लेकिन कहूँगा नहीं।'

'तुम कह ही नहीं सकते।'

'हाँ भैया, मैं नहीं कह सकता। हँसी कर रहा था।'

एक क्षण तक वह दुविधे में पड़ा रहा। फिर बोला—तुम मुझसे इतना बैर क्यों पाल रहे हो भोला भाई! झुनिया मेरे घर में आ गई, तो मुझे कौन-सा सरग मिल गया? लड़का अलग हाथ से गया, दो सौ रुपया डाँड़ अलग भरना पड़ा। मैं तो कहीं का न रहा। और अब तुम भी मेरी जड़ खोद रहे हो। भगवान् जानते हैं, मुझे बिलकुल न मालूम था कि लौंडा क्या कर रहा है। मैं तो समझता था, गाना सुनने जाता होगा। मुझे तो उस दिन पता चला, जब आधी रात को झुनिया घर में आ गई। उस बखत मैं घर में न रखता, तो सोचो, कहाँ जाती? किसकी होकर रहती!

झुनिया बरौठे के द्वार पर छिपी खड़ी यह बातें सुन रही थी। बाप को अब वह बाप नहीं, शत्रु समझती थी। डरी, कहीं होरी बैलों को दे न दें। जाकर रूपा से बोली—अम्मा को जल्दी से बुला ला। कहना, बड़ा काम है, बिलम न करो।

धनिया खेत में गोबर फेंकने गई थी। बहू का सन्देश सुना, तो आकर बोली—काहे को बुलाया बहू, मैं तो घबड़ा गई।

'काका को तुमने देखा है न?'

'हाँ देखा, कसाई की तरह द्वार पर बैठा हुआ है। मैं तो बोली भी नहीं।'

'हमारे दोनों बैल माँग रहे हैं दादा से।'

धनिया के पेट की आँतें भीतर सिमट गईं।

'दोनों बैल माँग रहे हैं!'

'हाँ, कहते हैं या तो हमारे रुपये दो, या हम दोनों बैल खोल ले जायँगे।'

'तेरे दादा ने क्या कहा?'

'उन्होंने कहा, तुम्हारा धरम कहता हो, तो खोल ले जाओ।'

'तो खोल ले जाय; लेकिन इसी द्वार पर आकर भीख न माँगे, तो मेरे नाम पर थूक देना। हमारे लहू से उसकी छाती जुड़ाती हो, तो जुड़ा ले।'

वह इसी तैश में बाहर आकर होरी से बोली—महतो दोनों बैल माँग रहे हैं, तो दे क्यों नहीं देते। उनका पेट भरे, हमारे भगवान् मालिक हैं। हमारे हाथ तो नहीं काट लेंगे? अब तक अपनी मजूरी करते थे, अब दूसरों की मजूरी करेंगे। भगवान् की मरजी होगी, तो फिर बैल-बधिये हो जायँगे, और मजूरी ही करते रहें, तो कौन बुराई है। बूड़े-सूखे और पोत-लगान का बोझ तो न रहेगा! मैं न जानती थी, यह हमारे वैरी हैं। नहीं गाय लेकर अपने सिर पर विपत्ति क्यों लेती। उस निगोड़ी का पौरा जिस दिन से आया, घर तहस-नहस हो गया।

भोला ने अब तक जिस शस्त्र को छिपा रखा था, अब उसे निकालने का अवसर आ गया। उसे विश्वास हो गया, बैलों के सिवा इन सबों के पास कोई अवलम्ब नहीं है। बैलों को बचाने के लिए ये लोग सब कुछ करने को तैयार हो जायँगे। अच्छे निशानेबाज की तरह मन को साधकर बोला—अगर तुम चाहते हो कि हमारी बेइज़्ज़ती हो और तुम चैन से बैठो, तो यह न होगा। तुम अपने दो सौ को रोते हो। यहाँ लाख रुपये की आबरू बिगड़ गई। तुम्हारी कुसल इसी में है कि जैसे झुनिया को घर में रखा था, वैसे ही उसे घर से निकाल दो, फिर न हम बैल माँगेंगे, न गाय का दाम माँगेंगे। उसने हमारी नाक कटवाई है, तो मैं भी उसे ठोकरें खाते देखना चाहता हूँ। वह यहाँ रानी बनी बैठी रहे, और हम मुँह में कालिख लगाये उसके

नाम को रोते रहें, यह नहीं देख सकता। वह मेरी बेटी है, मैंने उसे गोद में खिलाया है, और भगवान् साखी है, मैंने उसे कभी बेटों से कम नहीं समझा; लेकिन आज उसे भीख माँगते और घूर पर दाने चुनते देखकर मेरी छाती सीतल हो जायगी। जब बाप होकर मैंने अपना हिरदा इतना कठोर बना लिया है, तब सोचो, मेरे दिल पर कितनी बड़ी चोट लगी होगी। इस मुँहजली ने सात पुस्त का नाम डुबा दिया। और तुम उसे घर में रखे हुए हो, यह मेरी छाती पर मूँग दलना नहीं तो और क्या है!

धनिया ने जैसे पत्थर की लकीर खींचते हुए कहा—तो महतो! मेरी भी सुन लो। जो बात तुम चाहते हो, वह न होगी, सौ जनम न होगी। झुनिया हमारी जान के साथ है। तुम बैल ही तो ले जाने कहते हो, ले जाओ; अगर इससे तुम्हारी कटी हुई नाक जुड़ती हो, तो जोड़ लो, पुरखों की आबरू बचती हो, तो बचा लो। झुनिया से बुराई जरूर हुई। जिस दिन उसने मेरे घर में पाँव रखा, मैं झाड़ू लेकर मारने उठी थी; लेकिन जब उसकी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे, तो मुझे उस पर दया आ गई। तुम अब बूढ़े हो गये महतो! पर आज भी तुम्हें सगाई की धुन सवार है। फिर वह तो अभी बच्चा है।

भोला ने अपील-भरी आँखों से होरी को देखा—सुनते हो होरी इसकी बातें! अब मेरा दोस नहीं। मैं बिना बैल लिये न जाऊँगा!

होरी ने दृढ़ता से कहा—ले जाओ।

'फिर रोना मत कि मेरे बैल ले गये!'

'नहीं रोऊँगा।'

भोला बैलों की पगहिया खोल ही रहा था कि झुनिया चकतियोंदार साड़ी पहने, बच्चे को गोद में लिये, निकलकर बाहर आई और कम्पित-स्वर में बोली—काका, लो मैं इस घर से निकल जाती हूँ और जैसी तुम्हारी मनोकामना है, उसी तरह भीख माँगकर अपना और बच्चे का पेट पालूँगी, और जब भीख न मिलेगी, तो कहीं डूब मरूँगी।

भोला खिसियाकर बोला—दूर हो मेरे सामने से। भगवान् न करें कि मुझे फिर तेरा मुँह देखना पड़े। कुलच्छनी, कुल-कलंकिनी कहीं की। अब तेरे लिए डूब मरना ही उचित है।

झुनिया ने उसकी ओर ताका भी नहीं। उसमें वह क्रोध था, जो अपने को खा जाना चाहता है, जिसमें हिंसा नहीं, आत्म-समर्पण है। धर्ती इस वक्त मुँह खोलकर उसे निगल लेती, तो वह कितना धन्य मानती! उसने आगे क़दम उठाया।

लेकिन वह दो क़दम भी न गई थी कि धनिया ने दौड़कर उसे पकड़ लिया और हिंसा-भरे स्नेह से बोली—तू कहाँ जाती है बहू, चल घर में। यह तेरा घर है, हमारे जीते भी और हमारे मरने के पीछे भी। डूब मरे यह, जिसे अपनी सन्तान से बैर हो। इस भले आदमी को मुँह से ऐसी बात कहते लाज भी नहीं आती। मुझ पर धौंस जमाता है नीच! ले जा, बैलों का रकत पी...

झुनिया रोती हुई बोली—अम्मा, जब अपना बाप होके मुझे धिक्कार रहा है, तो मुझे डूब ही मरने दो। मुझ अभागिनी के कारन तो तुम्हें दुख ही मिला। जबसे आई, तुम्हारा घर मिट्टी में मिल गया। तुमने इतने दिन मुझे जिस परेम से रखा, मा भी न रखती। भगवान् मुझे फिर जनम दें, तो तुम्हारी कोख से दें, यही मेरी अभिलाखा है।

धनिया उसको अपनी ओर खींचती हुई बोली—वह तेरा बाप नहीं है, तेरा बैरी है, हत्यारा। मा होती तो अलबत्ते उसे कलक होता। ला सगाई। मेहरिया जूतों से न पीटे, तो कहना!

झुनिया सास के पीछे-पीछे घर में चली गई। उधर भोला ने जाकर दोनों बैलों को खूँटों से खोला और हाँफता हुआ घर चला, जैसे किसी नेवते में आकर पूरियों के बदले जूते पड़े हों। अब करो खेती और बजाओ बंसी! मेरा अपमान करना चाहते हैं सब, न जाने कब का बैर निकाल रहे हैं, नहीं ऐसी लड़की को कौन भला आदमी अपने घर में रखेगा। सब-के-सब बेसरम हो गये हैं। लौंडे का कहीं ब्याह न होता था इसी से। और इस राँड़ झुनिया की ढिठाई देखो कि आकर मेरे सामने खड़ी हो गई। दूसरी लड़की होती, तो मुँह न दिखाती। आँख का पानी मर गया है। सब-के-सब दुष्ट और मूरख भी हैं। समझते हैं, झुनिया अब हमारी हो गई। यह नहीं समझते, जो अपने बाप के घर न रही, वह किसी के घर नहीं रहेगी। समय खराब है, नहीं बीच बजार में इस चुड़ैल धनिया के झोंटे पकड़कर घसीटता। मुझे कितनी गालियाँ देती थी।

फिर उसने दोनों बैलों को देखा, कितने तैयार हैं! अच्छी जोड़ी है। जहाँ चाहूँ, सौ रुपये में बेच सकता हूँ। मेरे अस्सी रुपये खरे हो जायँगे।

अभी वह गाँव के बाहर भी न निकला था कि पीछे से दातादीन, पटेश्वरी, शोभा और दस-बीस आदमी और दौड़े आते दिखाई दिये। भोला का लहू सर्द हो गया। अब फ़ौजदारी हुई, बैल भी छिन जायँगे, मार भी पड़ेगी। वह रुक गया कमर कसकर। मरना ही है तो लड़कर मरेगा।

दातादीन ने समीप आकर कहा—यह तुमने क्या अनर्थ किया भोला, ऐं! उसके बैल खोल लाये, वह कुछ बोला नहीं, इसी से शेर हो गये। सब लोग अपने-अपने काम में लगे थे, किसी को खबर भी न हुई। होरी ने जरा-सा इशारा कर दिया होता, तो तुम्हारा एक-एक बाल नुच जाता। भला चाहते हो, तो ले चलो बैल, जरा भी भलमंसी नहीं है तुममें।

पटेश्वरी बोले— यह उसके सीधेपन का फल है। तुम्हारे रुपये उस पर आते हैं, तो जाकर दिवानी में दावा करो, डिग्री कराओ। बैल खोल लाने का तुम्हें क्या अख़्तियार है। अभी फ़ौजदारी में दावा कर दे, तो बँधे-बँधे फिरो।

भोला ने दबकर कहा—तो लाला साहब, हम कुछ जबरदस्ती थोड़े ही खोल लाये। होरी ने खुद दिये।

पटेश्वरी ने शोभा से कहा—तुम बैलों को लौटा दो शोभा। किसान अपने बैल खुशी से देगा, तो इन्हें हल में जोतेगा!

भोला बैलों के सामने खड़ा हो गया—हमारे रुपये दिलवा दो, हमें बैलों को लेकर क्या करना है।

'हम बैल लिये जाते हैं, अपने रुपये के लिए दावा करो और नहीं तो मारकर गिरा दिये जाओगे। रुपये दिये थे नगद तुमने? एक कुलच्छनी गाय बेचारे के सिर मढ़ दी और अब उसके बैल खोल लिये जाते हैं।'

भोला बैलों के सामने से न हटा। खड़ा रहा गुमसुम, दृढ़, मानो मरकर ही हटेगा। पटवारी से दलील करके वह कैसे पेश पाता।

दातादीन ने एक क़दम आगे बढ़कर अपनी झुकी कमर को सीधी करके ललकारा—तुम सब खड़े ताकते क्या हो, मारके भगा दो इसको। हमारे गाँव से बैल खोल ले जायगा?

वंशी बलिष्ठ युवक था। उसने भोला को ज़ोर से धक्का दिया। भोला सँभल न सका, गिर पड़ा। उठना चाहता था कि वंशी ने फिर एक घूँसा दिया।

होरी दौड़ता हुआ आ रहा था। भोला ने उसकी ओर दस क़दम बढ़कर पूछा—ईमान से कहना होरी महतो, मैंने ज़बरदस्ती बैल खोल लिये ?

दातादीन ने इसका भावार्थ किया—यह कहते हैं कि होरी ने अपनी खुशी से बैल मुझे दे दिये। हमी को उल्लू बनाते हैं।

होरी ने सकुचाते हुए कहा—यह मुझसे कहने लगे कि या तो झुनियको घर से निकाल दो, या मेरे रुपये दो, नहीं तो मैं बैल खोल ले जाऊँगा। मैंने कहा, मैं बहू को तो न निकालूँगा, न मेरे पास रुपये हैं; अगर तुम्हारा धरम कहे, तो बैल खोल लो। बस मैंने इनके धरम पर छोड़ दिया और इन्होंने बैल खोल लिये।

पटेश्वरी ने मुँह लटकाकर कहा—जब तुमने धरम पर छोड़ दिया, तब काहे की जबरदस्ती। उसके धरम ने कहा, लिये जाता है। ले जाओ भैया, बैल तुम्हारे हैं।

दातादीन ने समर्थन किया—हाँ, जब धरम की बात आ गई, तो कोई क्या कहे। सब-के-सब होरी को तिरस्कार की आँखों से देखते, परास्त होकर लौट पड़े, और विजयी-भोला शान से गर्दन उठाये बैलों को ले चला।

१५

मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी। उसके जीवन में हँसी ही हँसी नहीं है, केवल गुड़ खाकर कौन जी सकता है। और जिये भी तो वह कोई सुखी जीवन न होगा। वह हँसती है, इसलिए कि उसे इसके भी दाम मिलते हैं। उसका चहकना और चमकना इसलिए नहीं है कि वह चहकने और चमकने को ही जीवन समझती है, या उसने निजत्व को अपनी आँखों में इतना बढ़ा लिया है कि जो कुछ करे, अपने ही लिए करे। नहीं, वह इसलिए चहकती है और विनोद करती है कि इससे उसके कर्तव्य का भार कुछ हलका हो जाता है। उसके बाप उन विचित्र जीवों में थे, जो केवल ज़बान की मदद से लाखों के वारे-न्यारे करते थे। बड़े-बड़े ज़मींदारों और रईसों की जायदादें बिकवाना, उन्हें कर्ज़ दिलाना या उनके मुआमलों को अफ़सरों से मिलकर तय करा देना, यही उनका व्यवसाय था। दूसरे शब्दों में, दलाल थे। इस वर्ग के लोग बड़े प्रतिभावान् होते हैं। जिस काम से कुछ मिलने

को आशा हो, वह उठा लेंगे, और किसी न किसी तरह उसे निभा भी देंगे। किसी राजा की शादी किसी राजकुमारी से ठीक करवा दी और दस-बीस हज़ार उसी में मार लिये। यही दलाल जब छोटे-छोटे सौदे करते हैं, तो टाउट कहे जाते हैं, और हम उनसे घृणा करते हैं। बड़े-बड़े काम करके वही टाउट राजाओं के साथ शिकार खेलता है और गवर्नरों की मेज़ पर चाय पीता है। मिस्टर कौल उन्हीं भाग्यवानों में से थे। उनके तीन लड़कियाँ थीं। उनका विचार था कि तीनों को इङ्गलैंड भेजकर शिक्षा के शिखर पर पहुँचा दें। अन्य बहुत से बड़े आदमियों की तरह उनका भी खयाल था कि इङ्गलैंड में शिक्षा पाकर आदमी कुछ और हो जाता है। शायद वहाँ के जल-वायु में बुद्धि को तेज़ कर देने की कोई शक्ति है; मगर उनकी यह कामना एक तिहाई से ज़्यादा पूरी न हुई। मालती इङ्गलैंड में ही थी कि उन पर फ़ालिज गिरा और बेकाम कर गया। अब बड़ी मुश्किल से दो आदमियों के सहारे उठते-बैठते थे। ज़बान तो बिल्कुल बन्द ही हो गई। और जब ज़बान ही बन्द हो गई, तो आमदनी भी बन्द हो गई। जो कुछ थी, ज़बान ही की कमाई थी। कुछ बचा रखने की उनकी आदत न थी। अनियमित आय थी और अनियमित खर्च था; इसलिए इधर कई साल से बहुत तंग हाल हो रहे थे। सारा दायित्व मालती पर आ पड़ा। मालती के चार-पाँच सौ रुपये में वह भोग-विलास और ठाट-बाट तो क्या निभता। हाँ, इतना था कि दोनों लड़कियों की शिक्षा होती जाती थी और भलेमानसों की तरह ज़िन्दगी बसर होती थी। मालती सुबह से पहर रात तक दौड़ती रहती थी। चाहती थी कि पिता सात्त्विकता के साथ रहें; लेकिन पिताजी को शराब-कबाब का ऐसा चस्का पड़ा था कि किसी तरह गला न छोड़ता था। कहीं से कुछ न मिलता, तो एक महाजन से अपने बँगले पर प्रोनोट लिखकर हज़ार दो हज़ार ले लेते थे। महाजन उनका पुराना मित्र था, जिसने उनकी बदौलत लेन-देन में लाखों कमाये थे, और मुरौवत के मारे कुछ बोलता न था। उसके पचीस हज़ार चढ़ चुके थे, और जब चाहता, कुर्की करा सकता था; मगर मित्रता की लाज निभाता जाता था। आत्मसेवियों में जो निर्लज्जता आ जाती है, वह कौल में भी थी। तक़ाज़े हुआ करें, उन्हें परवा न थी। मालती उनके अपव्यय पर झुँझलाती रहती थी; लेकिन उसकी माता जो साक्षात् देवी थीं और इस युग में भी पति की सेवा को नारी-जीवन का मुख्य हेतु समझती थीं, उसे समझाती रहती थीं; इसलिए गृह-युद्ध न होने पाता था।

सन्ध्या हो गई थी। हवा में अभी तक गर्मी थी। आकाश में धुन्ध छाया हुआ था। मालती और उसकी दोनों बहनें बँगले के सामने घास पर बैठी हुई थीं। जल न पाने के कारण वहाँ की दूब जल गई थी और भीतर की मिट्टी निकल आई थी।

मालती ने पूछा—माली क्या बिल्कुल पानी नहीं देता?

मझली बहन सरोज ने कहा—पड़ा-पड़ा सोया करता है सूअर। जब कहो, तो बीस बहाने निकालने लगता है।

सरोज बी० ए० में पढ़ती थी, दुबली-सी, लम्बी, पीली, रूखी, कटु। उसे किसी की कोई बात पसन्द न आती थी। हमेशा ऐब निकालती रहती थी। डाक्टरों की सलाह थी कि वह कोई परिश्रम न करे, और पहाड़ पर रहे; लेकिन घर की स्थिति ऐसी न थी कि उसे पहाड़ पर भेजा जा सकता।

सबसे छोटी वरदा को सरोज से इसलिए द्वेष था कि सारा घर सरोज को हाथों-हाथ लिये रहता था; वह चाहती थी, जिस बीमारी में इतना स्वाद है, वह उसे ही क्यों नहीं हो जाती। गोरी-सी, गर्वशील, स्वस्थ, चंचल आँखोंवाली बालिका थी, जिसके मुख पर प्रतिभा की झलक थी। सरोज के सिवा उसे सारे संसार से सहानुभूति थी। सरोज के कथन का विरोध करना उसका स्वभाव था। बोली—दिन भर दादाजी बाज़ार भेजते रहते हैं, फुरसत ही कहाँ पाता है। मरने की छुट्टी तो मिलती नहीं, पड़ा-पड़ा सोयेगा!

सरोज ने डाँटा—दादाजी उसे कब बाज़ार भेजते हैं री, झूठी कहीं की!

'रोज़ भेजते हैं, रोज़। अभी तो आज ही भेजा था। कहो तो बुलाकर पुछवा दूँ?'

'पुछवा येगी, बुलाऊँ?'

मालती डरी। दोनों गुथ जायँगी, तो बैठना मुश्किल कर देंगी। बात बदलकर बोली—अच्छा ख़ैर, होगा। आज डाक्टर मेहता का तुम्हारे यहाँ भाषण हुआ था, सरोज?

सरोज ने नाक सिकोड़कर कहा—हाँ, हुआ तो था; लेकिन किसी ने पसन्द नहीं किया। आप फरमाने लगे—संसार में स्त्रियों का क्षेत्र पुरुषों से बिल्कुल अलग है। स्त्रियों का पुरुषों के क्षेत्र में आना इस युग का कलंक है। सब लड़कियों ने तालियाँ और सीटियाँ बजानी शुरू कीं। बेचारे लज्जित होकर बैठ गये। कुछ अजीब-से

आदमी मालूम होते हैं। आपने यहाँ तक कह डाला कि प्रेम केवल कवियों की कल्पना है। वास्तविक जीवन में इसका कहीं निशान नहीं। लेडी हुक्कू ने उनका खूब मज़ाक उड़ाया।

मालती ने कटाक्ष किया—लेडी हुक्कू ने! इस विषय में वह भी कुछ बोलने का साहस रखती हैं! तुम्हें डाक्टर साहब का भाषण आदि से अन्त तक सुनना चाहिए था। उन्होंने दिल में लड़कियों को क्या समझा होगा।

'पूरा भाषण सुनने का सब्र किसे था। वह तो जैसे घाव पर नमक छिड़कते थे।'

'तो फिर उन्हें बुलाया ही क्यों! आखिर उन्हें औरतों से कोई बैर तो है नहीं। जिस बात को हम सत्य समझते हैं, उसी का तो प्रचार करते हैं। औरतों को खुश करने के लिए वह उनकी-सी कहनेवालों में नहीं हैं, और फिर अभी यह कौन जानता है कि स्त्रियाँ जिस रास्ते पर चलना चाहती हैं, वही सत्य है। बहुत संभव है, आगे चलकर हमें अपनी धारणा बदलनी पड़े।'

उसने फ्रांस, जर्मनी और इटली की महिलाओं के जीवन-आदर्श बतलाये और कहा—शीघ्र ही वीमेन्स लीग की ओर से मेहता का भाषण होनेवाला है।

सरोज को कुतूहल हुआ।

'मगर आप भी तो कहती हैं कि स्त्रियों और पुरुषों के अधिकार समान होने चाहिएँ!'

'अब भी कहती हूँ; लेकिन दूसरे पक्षवाले क्या कहते हैं, यह भी तो सुनना चाहिए। संभव है; हमीं गलती पर हों।'

यह लीग इस नगर की नई संस्था है और मालती के उद्योग से खुली है। नगर की सभी शिक्षित महिलाएँ उसमें शरीक हैं। मेहता के पहले भाषण ने महिलाओं में बड़ी हलचल मचा दी थी और लीग ने निश्चय किया था, कि उनका खूब दंदां-शिकन जवाब दिया जाय। मालती ही पर यह भार डाला गया था। मालती कई दिन तक अपने पक्ष के समर्थन में युक्तियाँ और प्रमाण खोजती रही। और भी कई देवियाँ अपने भाषण लिख रहीं थीं। उस दिन जब मेहता शाम को लीग के हाल में पहुँचे, तो जान पड़ता था, हाल फट जायगा। उन्हें गर्व हुआ। उनका भाषण सुनने के लिए इतना उत्साह! और वह उत्साह केवल मुख पर और आँखों में न था। आज सभी देवियाँ सोने और रेशम से लदी हुई थीं, मानो किसी बरात में आई हों।

मेहता को परास्त करने के लिए पूरी शक्ति से काम किया गया था, और यह कौन कह सकता है कि जगमगाहट शक्ति का अंग नहीं है। मालती ने तो आज के लिए नये फैशन की साड़ी निकाली थी, नये काट के जम्पर बनवाये थे और रंग-रोगन और फूलों से खूब सजी हुई थी, मानो उसका विवाह हो रहा हो। वीमेंस लीग में इतना समारोह और कभी न हुआ था। डाक्टर मेहता अकेले थे, फिर भी देवियों के दिल काँप रहे थे। सत्य की एक चिनगारी असत्य के एक पहाड़ को भस्म कर सकती है।

सबसे पीछे की सफ़ में मिर्ज़ा और खन्ना और सम्पादकजी भी विराज रहे थे। राय साहब भाषण शुरू होने के बाद आये और पीछे खड़े हो गये।

मिर्ज़ा ने कहा—आ जाइए आप भी, खड़े कब तक रहिएगा।

राय साहब बोले—नहीं भई, यहाँ मेरा दम घुटने लगेगा।

'तो मैं खड़ा होता हूँ। आप बैठिए।'

राय साहब ने उनके कंधे दबाये—तकल्लुफ नहीं, बैठे रहिए। मैं थक जाऊँगा, तो आपको उठा दूँगा और बैठ जाऊँगा। अच्छा मिस मालती सभा-नेत्री हुईं। खन्ना साहब, कुछ इनाम दिलवाइए।

खन्ना ने रोनी सूरत बनाकर कहा—अब मिस्टर मेहता पर ही निगाह है। मैं तो गिर गया।

मिस्टर मेहता का भाषण शुरू हुआ—

'देवियो, जब मैं इस तरह आपको संबोधित करता हूँ, तो आपको कोई बात खटकती नहीं। आप इस सम्मान को अपना अधिकार समझती हैं; लेकिन आपने किसी महिला को पुरुषों के प्रति 'देवता' का व्यवहार करते सुना है? उसे आप देवता कहें, तो वह समझेगा, आप उसे बना रही हैं। आपके पास दान देने के लिए दया है, श्रद्धा है, त्याग है। पुरुष के पास दान के लिए क्या है? वह देवता नहीं, लेवता है। वह अधिकार के लिए हिंसा करता है, संग्राम करता है, कलह करता है...'

तालियाँ बजीं। राय साहब ने कहा—औरतों को खुश करने का इसने कितना अच्छा ढंग निकाला।

'बिजली'-सम्पादक को बुरा लगा—कोई नई बात नहीं। मैं कितनी ही बार यह भाव व्यक्त कर चुका हूँ।

मेहता आगे बढ़े—इसलिए जब मैं देखता हूँ, हमारी उन्नत विचारोंवाली देवियाँ

उस दया और श्रद्धा और त्याग के जीवन से असन्तुष्ट होकर संग्राम और कलह और हिंसा के जीवन की ओर दौड़ रही हैं, और समझ रही हैं कि यही सुख का स्वर्ग है, तो मैं उन्हें बधाई नहीं दे सकता।

मिसेज़ खन्ना ने मालती की ओर सगर्व नेत्रों से देखा। मालती ने गर्दन झुका ली।

खुर्शेद बोले—अब कहिए। मेहता दिलेर आदमी है। सच्ची बात कहता है और मुँह पर।

'बिजली'-सम्पादक ने नाक सिकोड़ी—अब वह दिन लद गये, जब देवियाँ इन चकमों में आ जाती थीं। उनके अधिकार हड़पते जाओ और कहते जाओ, आप तो देवी हैं, लक्ष्मी हैं, माता हैं।

मेहता आगे बढ़े—स्त्री को पुरुष के रूप में, पुरुष के कर्म में रत देखकर मुझे उसी तरह वेदना होती है, जैसे पुरुष को स्त्री के रूप में, स्त्री के कर्म करते देखकर। मुझे विश्वास है, ऐसे पुरुषों को आप अपने विश्वास और प्रेम का पात्र नहीं समझतीं। और मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, ऐसी स्त्री भी पुरुष के प्रेम और श्रद्धा का पात्र नहीं बन सकती।

खन्ना के चेहरे पर दिल की खुशी चमक उठी।

राय साहब ने चुटकी ली—आप बहुत खुश हैं खन्नाजी ?

खन्ना बोले—मालती मिलें, तो पूछूँ, अब कहिए।

मेहता आगे बढ़े—मैं प्राणियों के विकास में स्त्री के पद को पुरुषों के पद से श्रेष्ठ समझता हूँ, उसी तरह जैसे प्रेम और त्याग और श्रद्धा को हिंसा और संग्राम और कलह से श्रेष्ठ समझता हूँ। अगर हमारी देवियाँ सृष्टि और पालन के देव-मन्दिर से हिंसा और कलह के दानव-क्षेत्र में आना चाहती हैं, तो उससे समाज का कल्याण न होगा। मैं इस विषय में दृढ़ हूँ। पुरुष ने अपने अभिमान में अपनी दानवी कीर्ति को अधिक महत्त्व दिया। वह अपने भाई का स्वत्व छीनकर और उसका रक्त बहाकर समझने लगा, उसने बहुत बड़ी विजय पाई। जिन शिशुओं को देवियों ने अपने रक्त से सिरजा और पाला उन्हें बम और मशीनगन और सहस्र टैंकों का शिकार बनाकर वह अपने को विजेता समझता है। और जब हमारी ही माताएँ उसके माथे पर केसर का तिलक लगाकर और उसे अपने असीसों का कवच पहनाकर

हिंसा-क्षेत्र में भेजती हैं, तो आश्चर्य है कि पुरुष ने विनाश को ही संसार के कल्याण की वस्तु समझा और उसकी हिंसा-प्रवृत्ति दिन-दिन बढ़ती गई और आज हम देख रहे हैं कि यह दानवता प्रचण्ड होकर समस्त संसार को रौंदती, प्राणियों को कुचलती, हरी-भरी खेतियों को जलाती और गुलज़ार बस्तियों को वीरान करती चली जाती है। देवियो, मैं आपसे पूछता हूँ, क्या आप इस दानव-लीला में सहयोग देकर, इस संग्राम-क्षेत्र में उतरकर संसार का कल्याण करेंगी ? मैं आपसे विनती करता हूँ, नाश करनेवालों को अपना काम करने दीजिए, आप अपने धर्म का पालन किये जाइए।

खन्ना बोले—मालती की तो गर्दन नहीं उठती।

राय साहबने इन विचारों का समर्थन किया—मेहता कहते तो यथार्थ ही हैं।

'बिजली'-सम्पादक बिगड़े - मगर कोई नई बात तो नहीं कही। नारी-आन्दोलन के विरोधी इन्हीं ऊट-पटाँग बातों की शरण लिया करते हैं। मैं इसे मानता ही नहीं कि त्याग और प्रेम से संसार ने उन्नति की। संसार ने उन्नति की पौरुष से, पराक्रम से, बुद्धि बल से, तेज से।

ख़ुर्शेद ने कहा—अच्छा, सुनने दीजिएगा या अपनी ही गाये जाइएगा ?

मेहता का भाषण जारी था—देवियो, मैं उन लोगों में नहीं हूँ, जो कहते हैं, स्त्री और पुरुष में समान शक्तियाँ हैं, समान प्रवृत्तियाँ हैं और उनमें कोई विभिन्नता नहीं है। इससे भयंकर असत्य की मैं कल्पना नहीं कर सकता। यह वह असत्य है, जो युग-युगान्तरों से संचित अनुभव को उसी तरह ढँक लेना चाहता है, जैसे बादल का एक टुकड़ा सूर्य को ढँक लेता है। मैं आपको सचेत किये देता हूँ कि आप इस जाल में न फँसें। स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अँधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म और अध्यात्म और ऋषियों का आश्रय लेकर उस लक्ष्य पर पहुँचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है; पर सफल नहीं हो सका। मैं कहता हूँ, उसका सारा अध्यात्म और योग एक तरफ़ और नारियों का त्याग एक तरफ़।

तालियाँ बजीं। हाल हिल उठा। राय साहब ने गद्गद् होकर कहा—मेहता वही कहते हैं, जो इनके दिल में है।

ओंकारनाथ ने टीका की—लेकिन बातें सभी पुरानी हैं, सड़ी हुई।

'पुरानी बात भी आत्मबल के साथ कही जाती है, तो नई हो जाती है।'

'जो एक हज़ार रुपये हर महीने फटकारकर विलास उड़ाता हो, उसमें आत्मबल-जैसी वस्तु रह ही नहीं सकती। यह केवल पुराने विचार की नारियों और पुरुषों को प्रसन्न करने के ढंग हैं।'

खन्ना ने मालती की ओर देखा—यह क्यों फूली जा रही हैं! इन्हें तो शरमाना चाहिए।

ख़ुर्शेद ने खन्ना को उकसाया—अब तुम भी एक तक़रीर कर डालो खन्ना, नहीं मेहता तुम्हें उखाड़ फेंकेगा। आधा मैदान तो उसने अभी मार लिया है।

खन्ना खिसियाकर बोले—मेरी न कहिए, मैंने ऐसी कितनी चिड़ियाँ फँसाकर छोड़ दी हैं।

राय साहब ने ख़ुर्शेद की तरफ़ आँख मारकर कहा—आजकल आप महिला-समाज की तरफ़ बहुत आते-जाते हैं। सच कहना, कितना चन्दा दिया!

खन्ना पर झेंप छा गई—मैं ऐसे समाजों को चन्दे नहीं दिया करता, कला का ढोंग रचकर दुराचार फैलाते हैं।

मेहता का भाषण जारी था—

'पुरुष कहता है, जितने दार्शनिक और वैज्ञानिक आविष्कारक हुए हैं, वह सब पुरुष थे। जितने बड़े-बड़े महात्मा हुए हैं, वह सब पुरुष थे। सभी योद्धा, सभी राजनीति के आचार्य, बड़े-बड़े नाविक, बड़े-बड़े सब कुछ पुरुष थे; लेकिन इन बड़ों बड़ों के समूह ने मिलकर किया क्या? महात्माओं और धर्म-प्रवर्तकों ने संसार में रक्त की नदियाँ बहाने और वैमनस्य की आग भड़काने के सिवा और क्या किया, योद्धाओं ने भाइयों की गरदनें काटने के सिवा और क्या यादगार छोड़ी, राज-नीतिज्ञों की निशानी अब केवल लुप्त साम्राज्यों के खंडहर रह गये हैं, और आविष्कारकों ने मनुष्य को मशीन का गुलाम बना देने के सिवा और क्या समस्या हल कर दी? पुरुषों की रची हुई इस संस्कृति में शान्ति कहाँ है? सहयोग कहाँ है?

ओंकारनाथ उठकर जाने को हुए—विलासियों के मुँह से बड़ी-बड़ी बातें सुनकर मेरी देह भस्म हो जाती है।

ख़ुर्शेद ने उनका हाथ पकड़कर बठाया—आप भी सम्पादकजी निरे चोंगा ही रहे। अजी यह दुनिया है, जिसके जी में जो आता है, बकता है। कुछ लोग सुनते

हैं और तालियाँ बजाते हैं। चलिए किस्सा ख़तम। ऐसे-ऐसे बेशुमार मेहते आयेंगे और चले जायेंगे और दुनिया अपनी रफ़्तार चलती रहेगी। यहाँ बिगड़ने की कौन-सी बात है।

'असत्य सुनकर मुझसे सहा नहीं जाता!'

राय साहब ने उन्हें और चढ़ाया—कुलटा के मुँह से सतियों की-सी बात सुनकर किसका जी न जलेगा!

ओंकारनाथ फिर बैठ गये। मेहता का भाषण जारी था—

'मैं आपसे पूछता हूँ, क्या बाज़ को चिड़ियों का शिकार करते देखकर हंस को यह शोभा देगा कि वह मानसरोवर की आनन्दमयी शांति को छोड़कर चिड़ियों का शिकार करने लगे। और अगर वह शिकारी बन जाय, तो आप उसे बधाई देंगी? हंस के पास उतनी तेज चोंच नहीं है, उतने तेज़ चंगुल नहीं हैं, उतनी तेज़ आँखें नहीं हैं, उतने तेज़ पंख नहीं हैं और उतनी तेज़ रक्त की प्यास नहीं है, उन अस्त्रों का संचय करने में उसे सदियाँ लग जायँगी, फिर भी वह बाज़ बन सकेगा या नहीं, इसमें सन्देह है; मगर बाज़ बने या न बने, वह हंस न रहेगा—वह हंस जो मोती चुगता है।

ख़ुर्शेद ने टीका की—यह तो शायरों की-सी दलीलें हैं। मादा बाज़ भी उसी तरह शिकार करती है, जैसे, नर बाज़।

ओंकारनाथ प्रसन्न हो गये—उस पर आप फ़िलासफ़र बनते हैं, इसी तर्क के बल पर!

खन्ना ने दिल का ग़ुबार निकाला—फ़िलासफ़र नहीं, फ़िलासफ़र की दुम हैं। फ़िलासफ़र वह है, जो...

ओंकारनाथ ने बात पूरी की—जो सत्य से जौ-भर भी न टले।

खन्ना को यह समस्यापूर्ति नहीं रुची—मैं सत्य-वत्य नहीं जानता। मैं तो फ़िलासफ़र उसे कहता हूँ, जो फ़िलासफ़र हो सच्चा!

ख़ुर्शेद ने दाद दी—फ़िलासफ़र की आपने कितनी सच्ची तारीफ़ की है। वाह! सुभानल्ला। फ़िलासफ़र वह है, जो फ़िलासफ़र हो। क्यों न हो।

मेहता आगे चले—मैं नहीं कहता, देवियों को विद्या की ज़रूरत नहीं है। है और पुरुषों से अधिक। मैं नहीं कहता, देवियों को शक्ति की ज़रूरत नहीं है।

है और पुरुषों से अधिक ; लेकिन वह विद्या और वह शक्ति नहीं, जिससे पुरुष ने संसार को हिंसाक्षेत्र बना डाला है। अगर वही विद्या और वही शक्ति आप भी ले लेंगी, तो संसार मरुस्थल हो जायगा। आपकी विद्या और आपका अधिकार हिंसा और विध्वंस में नहीं, सृष्टि और पालन में है। क्या आप समझती हैं, वोटों से मानव-जाति का उद्धार होगा, या दफ़्तरों में और अदालतों में ज़बान और क़लम चलाने से ? इन नक़ली, अप्राकृतिक, विनाशकारी अधिकारों के लिए आप वह अधिकार छोड़ देना चाहती हैं, जो आपको प्रकृति ने दिये हैं ?

सरोज अब तक बड़ी बहन के अदब से ज़ब्त किये बैठी थी। अब न रहा गया। पुकार उठी -- हमें वोट चाहिए, पुरुषों के बराबर !

और कई युवतियों ने हाँक लगाई—वोट ! वोट !

ओंकारनाथ ने खड़े होकर ऊँचे स्वर से कहा—नारीजाति के विरोधियों की पगड़ी नीची हो।

मालती ने मेज़ पर हाथ पटककर कहा--शान्त रहो, जो लोग पक्ष या विपक्ष में कुछ कहना चाहेंगे, उन्हें पूरा अवसर दिया जायगा।

मेहता बोले--वोट नये युग का मायाजाल है, मरीचिका है, कलंक है, धोखा है, उसके चक्कर में पड़कर आप न इधर की होंगी, न उधर की। कौन कहता है कि आप का क्षेत्र संकुचित है और उसमें आपकी अभिव्यक्ति का अवकाश नहीं मिलता। हम सभी पहले मनुष्य हैं, पीछे और कुछ। हमारा जीवन हमारा घर है। वहीं हमारी सृष्टि होती है, वहीं हमारा पालन होता है, वहीं जीवन के सारे व्यापार होते हैं ; अगर वह क्षेत्र परिमित है, तो अपरिमित कौन-सा क्षेत्र है ? क्या वह संघर्ष, जहाँ संगठित अपहरण है ? जिस कारख़ाने में मनुष्य और उसका भाग्य बनता है, उसे छोड़कर आप उन कारख़ानों में जाना चाहती हैं, जहाँ मनुष्य पीसा जाता है, जहाँ उसका रक्त निकाला जाता है !

मिर्ज़ा ने टोंका—पुरुषों के ज़ुल्म ने ही तो उनमें बग़ावत की यह स्पिरिट पैदा की है।

मेहता बोले—बेशक पुरुषों ने अन्याय किया है ; लेकिन उसका यह जवाब नहीं है। अन्याय को मिटाइए ; लेकिन अपने को मिटाकर नहीं।

मालती बोली—नारियाँ इसलिए अधिकार चाहती हैं, कि उनका सदुपयोग करें और पुरुषों को उनका दुरुपयोग करने से रोकें।

मेहता ने उत्तर दिया—संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं और वह आपको मिले हुए हैं। उन अधिकारों के सामने वोट कोई चीज़ नहीं। मुझे खेद है, हमारी बहनें पश्चिम का आदर्श ले रही हैं, जहाँ नारी ने अपना पद खो दिया है और स्वामिनी से गिरकर विलास की वस्तु बन गई है। पश्चिम की स्त्री स्वच्छन्द होना चाहती है; इसलिए कि वह अधिक से अधिक विलास कर सके। हमारी माताओं का आदर्श कभी विलास नहीं रहा। उन्होंने केवल सेवा के अधिकार से सदैव गृहस्थी का संचालन किया है। पश्चिम में जो चीज़ें अच्छी हैं, वह उनसे लीजिए। संस्कृति में सदैव आदान-प्रदान होता आया है; लेकिन अन्धी नकल तो मानसिक दुर्बलता का ही लक्षण है! पश्चिम की स्त्री आज गृह-स्वामिनी नहीं रहना चाहती। भोग की विदग्ध लालसा ने उसे उच्छृंखल बना दिया है। वह अपनी लज्जा और गरिमा को, जो उसकी सबसे बड़ी विभूति थी, चंचलता और आमोद-प्रमोद पर होम कर रही है। जब मैं वहाँ की सुशिक्षित बालिकाओं को अपने रूप का, या भरी हुई गोल बाहों का, या अपनी नग्नता का प्रदर्शन करते देखता हूँ, तो मुझे उन पर दया आती है। उनकी लालसाओं ने उन्हें इतना पराभूत कर दिया है कि वे अपनी लज्जा की भी रक्षा नहीं कर सकतीं। नारी की इससे अधिक और क्या अधोगति हो सकती है!

राय साहब ने तालियाँ बजाईं। हाल तालियों से गूँज उठा, जैसे पटाखों की टट्टियाँ छूट रही हों।

मिर्ज़ा साहब ने संपादकजी से कहा—इसका जवाब तो आपके पास भी न होगा?

सम्पादकजी ने विरक्त मन से कहा—सारे व्याख्यान में इन्होंने यही एक बात सत्य कही है।

'तब तो आप भी मेहता के मुरीद हुए।'

'जी नहीं, अपने लोग किसी के मुरीद नहीं होते। मैं इसका जवाब ढूँढ़ निकालूँगा, 'बिजली' में देखिएगा।'

'इसके मानी यह हैं कि आप हक़ की तलाश नहीं करते, सिर्फ़ अपने पक्ष के लिए लड़ना चाहते हैं।'

राय साहब ने आड़े हाथों लिया—इसी पर आपको अपने सत्य-प्रेम का अभिमान है।

सम्पादकजी अविचल रहे—वकील का काम अपने मुअक्किल का हित देखना है, सत्य या असत्य का निराकरण नहीं।

'तो यों कहिए कि आप औरतों के वकील हैं।'

'मैं उन सभी लोगों का वकील हूँ, जो निर्बल हैं, निस्सहाय हैं, पीड़ित हैं।'

'बड़ बेहया हो यार!'

मेहताजी कह रहे थे—और यह पुरुषों का षड्यन्त्र है। देवियों को ऊँचे शिखर से खींचकर अपने बराबर बनाने के लिए, उन पुरुषों को जो कायर हैं, जिनमें वैवाहिक जीवन का दायित्व सँभालने की क्षमता नहीं है, जो स्वच्छन्द काम-क्रीड़ा की तरंगों में साँड़ों की भाँति दूसरों की हरी-भरी खेती में मुँह डालकर अपनी कुत्सित लालसाओं को तृप्त करना चाहते हैं। पश्चिम में इनका षड्यन्त्र सफल हो गया, और देवियाँ तितलियाँ बन गईं। मुझे यह कहते हुए शर्म आती है कि इस त्याग और तपस्या की भूमि भारत में भी कुछ वही हवा चलने लगी है। विशेषकर हमारी शिक्षित बहनों पर वह जादू बड़ी तेज़ी से चढ़ रहा है। वह गृहिणी का आदर्श त्यागकर तितलियों का रंग पकड़ रही हैं।

सरोज उत्तेजित होकर बोली—हम पुरुषों से सलाह नहीं माँगते। अगर वह अपने बारे में स्वतन्त्र हैं, तो स्त्रियाँ भी अपने विषय में स्वतन्त्र हैं। युवतियाँ अब विवाह को पेशा नहीं बनाना चाहतीं। वह केवल प्रेम के आधार पर विवाह करेंगी।

ज़ोर से तालियाँ बजीं, विशेषकर अगली पंक्तियों में, जहाँ महिलाएँ थीं।

मेहता ने जवाब दिया—जिसे तुम प्रेम कहती हो, वह धोखा है, उद्दीप्त लालसा का विकृत रूप उसी तरह जैसे संन्यास केवल भीख माँगने का संस्कृत रूप है। वह प्रेम अगर वैवाहिक जीवन में कम है, तो मुक्त विलास में बिलकुल नहीं है। सच्चा आनन्द, सच्ची शान्ति केवल सेवा-व्रत में है। वही अधिकार का स्रोत है, वही शक्ति का उद्गम है। सेवा ही वह सीमेन्ट है, जो दम्पति को जीवनपर्यन्त

स्नेह और साहचर्य में जोड़े रख सकता है, जिस पर बड़े-बड़े आघातों का भी कोई असर नहीं होता। जहाँ सेवा का अभाव है, वहीं विवाह-विच्छेद है, परित्याग है, अविश्वास है। और आपके ऊपर पुरुष-जीवन की नौका का कर्णधार होने के कारण ज़िम्मेदारी ज़्यादा है। आप चाहें तो नौका को आँधी और तूफ़ान में पार लगा सकती हैं और आपने असावधानी की, तो नौका डूब जायगी, और उसके साथ आप भी डूब जायँगी।

भाषण समाप्त हो गया। विषय विवाद-ग्रस्त था और कई महिलाओं ने जवाब देने की अनुमति माँगी; मगर देर बहुत हो गई थी। इसलिए मालती ने मेहता को धन्यवाद देकर सभा भंग कर दी। हाँ, यह सूचना दे दी गई कि अगले रविवार को इसी विषय पर कई देवियाँ अपने विचार प्रकट करेंगी।

राय साहब ने मेहता को बधाई दी—आपने मन की बातें कहीं मिस्टर मेहता! मैं आपके एक-एक शब्द से सहमत हूँ।

मालती हँसी—आप क्यों न बधाई देंगे, चोर-चोर मौसेरे भाई जो होते हैं; मगर यह सारा उपदेश ग़रीब नारियों ही के सिर क्यों थोपा जाता है, उन्हीं के सिर क्यों आदर्श और मर्यादा और त्याग सब कुछ पालन करने का भार पटका जाता है?

मेहता बोले—इसी लिए कि वह बात समझती हैं।

खन्ना ने मालती की ओर अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से देखकर मानो उसके मन की बात समझने की चेष्टा करते हुए कहा—डाक्टर साहब के ये विचार मुझे तो कोई सौ साल पिछड़े मालूम होते हैं।

मालती ने कटु होकर पूछा—कौन से विचार?

'यही सेवा और कर्तव्य आदि।'

'तो आपको ये विचार सौ साल पिछड़े हुए मालूम होते हैं! तो कृपा करके अपने ताज़े विचार बतलाइए। दम्पति कैसे सुखी रह सकते हैं, इसका कोई ताज़ा नुसखा आपके पास है?'

खन्ना खिसिया गये। बात कही मालती को ख़ुश करने के लिए, वह और तिनक उठी। बोले—यह नुसखा तो मेहता साहब को मालूम होगा।

'डाक्टर साहब ने तो बतला दिया और आपके खयाल में वह सौ साल पुराना है, तो नया नुसखा आपको बतलाना चाहिए। आपको ज्ञात नहीं कि दुनिया में ऐसी

बहुत-सी बातें हैं, जो कभी पुरानी हो हो नहीं सकतीं। समाज में इस तरह की समस्याएँ हमेशा उठती रहती हैं और हमेशा उठती रहेंगी।'

मिसेज़ खन्ना बरामदे में चली गई थीं। मेहता ने उसके पास जाकर प्रणाम करते हुए पूछा—मेरे भाषण के विषय में आपकी क्या राय है?

मिसेज़ खन्ना ने आँखें झुकाकर कहा—अच्छा था, बहुत अच्छा; मगर अभी आप अविवाहित हैं, अभी नारियाँ देवियाँ हैं, श्रेष्ठ हैं, कर्णधार हैं। विवाह कर लीजिए, तो पूछूँगी, अब नारियाँ क्या हैं? और विवाह आपको करना पड़ेगा; क्योंकि आप विवाह से मुँह चुरानेवाले मर्दों को कायर कह चुके हैं।

मेहता हँसे उसी के लिए तो ज़मीन तैयार कर रहा हूँ।

'मिस मालती से जोड़ा भी अच्छा है।'

'शर्त यही है कि वह कुछ दिन आपके चरणों में बैठकर आपसे नारी-धर्म सीखें।'

'वही स्वार्थी पुरुषों की बात! आपने पुरुष-कर्तव्य सीख लिया है?'

'यही सोच रहा हूँ, कितना सीखूँ।'

'मिस्टर खन्ना आपको बहुत अच्छी तरह सिखा सकते हैं।'

मेहता ने क़हक़हा मारा—नहीं, मैं पुरुष-कर्तव्य आप ही से सीखूँगा।

'अच्छी बात है, मुझी से सीखिए। पहले बात यही है कि भूल जाइए कि नारी श्रेष्ठ है और सारी ज़िम्मेदारी उसी पर है, श्रेष्ठ पुरुष है और उसी पर गृहस्थी का सारा भार है नारी में सेवा और संयम और कर्तव्य सब कुछ वही पैदा कर सकता है; अगर उसमें इन बातों का अभाव है, नारी में भी अभाव रहेगा। नारियों में आज जो यह विद्रोह है, इसका कारण पुरुष का इन गुणों से शून्य हो जाना है।

मिर्ज़ा साहब ने आकर मेहता को गोद में उठा लिया और बोले—मुबारक!

मेहता ने प्रश्न की आँखों से देखा—आपको मेरी तक़रीर पसन्द आई?

'तक़रीर तो ख़ैर जैसी थी, वैसी थी; मगर कामयाब ख़ूब रही। आपने परी को शीशे में उतार लिया। अपनी तक़दीर सराहिए कि जिसने आज तक किसी को मुँह नहीं लगाया, वह आपका कलमा पढ़ रही है।'

मिसेज़ खन्ना दबी ज़बान से बोलीं—जब नशा ठहर जाय, तो कहिए।

मेहता ने विरक्त-भाव से कहा—मेरे-जैसे किताब के कीड़ों को कौन औरत पसन्द करेगी देवीजी! मैं तो पक्का आदर्शवादी हूँ।

मिसेज़ खन्ना ने अपने पति को कार की तरफ़ जाते देखा, तो उधर चली गईं। मिर्ज़ा भी बाहर निकल गये। मेहता ने मंच पर से अपनी छड़ी उठाई और बाहर जाना चाहते थे कि मालती ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया और आग्रह-भरी आँखों से बोली—आप अभी नहीं जा सकते। चलिए, पापा से आपकी मुलाक़ात कराऊँ और आज वहीं खाना खाइए।

मेहता ने कान पर हाथ रखकर कहा—नहीं, मुझे क्षमा कीजिए। वहाँ सरोज मेरी जान खा जायगी। मैं इन लड़कियों से बहुत घबराता हूँ।

'नहीं-नहीं, मैं ज़िम्मा लेती हूँ, जो वह मुँह भी खोले।'

'अच्छा आप चलिए, मैं थोड़ी देर में आऊँगा।'

'जी नहीं, यह न होगा। मेरी कार सरोज को लेकर चल दी। आप मुझे पहुँचाने तो चलेंगे ही।'

दोनों मेहता की कार में बैठे। कार चली।

एक क्षण के बाद मेहता ने पूछा—मैंने सुना है, खन्ना साहब अपनी बीबी को मारा करते हैं। तब से मुझे उनकी सूरत से नफ़रत हो गई। जो आदमी इतना निर्दयी हो, उसे मैं आदमी नहीं समझता। उस पर आप नारी-जाति के बड़े हितैषी बनते हैं। तुमने उन्हें कभी समझाया नहीं?

मालती उद्विग्न होकर बोली—ताली हमेशा दो हथेलियों से बजती है, यह आप भूले जाते हैं।

'मैं तो ऐसे किसी कारण की कल्पना ही नहीं कर सकता कि कोई पुरुष अपनी स्त्री को मारे।'

'चाहे स्त्री कितनी ही बदज़बान हो?'

'हाँ, कितनी ही।'

'तो आप एक नई क़िस्म के आदमी हैं।'

'अगर मर्द बदमिज़ाज हो, तो तुम्हारी राय में उस मर्द पर हंटरों की बौछार करनी चाहिए, क्यों?'

'स्त्री जितनी क्षमाशील हो सकती है, पुरुष नहीं हो सकता। आपने ख़ुद आज यह बात स्वीकार की है।'

'तो औरत की क्षमाशीलता का यही पुरस्कार है। मैं समझता हूँ, तुम खन्ना को मुँह लगाकर उसे और भी शह देती हो। तुम्हारा वह जितना आदर करता है, तुमसे उसे जितनी भक्ति है, उसके बल पर तुम बड़ी आसानी से उसे सीधा कर सकती हो; मगर तुम उसकी सफ़ाई देकर स्वयं उस अपराध में शरीक हो जाती हो।'

मालती उत्तेजित होकर बोली—तुमने इस समय यह प्रसंग व्यर्थ ही छेड़ दिया। मैं किसी की बुराई नहीं करना चाहती; मगर अभी आपने गोविन्दी देवी को पहचाना नहीं? आपने उनकी भोली-भाली, शांत मुद्रा देखकर समझ लिया, वह देवी हैं। मैं उन्हें इतना ऊँचा स्थान नहीं देना चाहती। उन्होंने मुझे बदनाम करने का जितना प्रयत्न किया है, मुझ पर जैसे-जैसे आघात किये हैं, वह बयान करूँ, तो आप दंग रह जायँगे और तब आपको मानना पड़ेगा कि ऐसी औरत के साथ यही व्यवहार होना चाहिए।

'आख़िर उन्हें आपसे जो इतना द्वेष है, इसका कोई कारण तो होगा?'

'कारण उनसे पूछिए। मुझे किसी के दिल का हाल क्या मालूम!'

'उनसे बिना पूछे भी अनुमान किया जा सकता है और वह यह है—अगर कोई पुरुष मेरे और मेरी स्त्री के बीच में आने का साहस करे, तो मैं उसे गोली मार दूँगा, और उसे न मार सकूँगा, तो अपनी छाती में मार लूँगा। इसी तरह अगर मैं किसी स्त्री को अपने और अपनी पत्नी के बीच में लाना चाहूँ, तो मेरी पत्नी को भी अधिकार है कि वह जो चाहे, करे। इस विषय में मैं कोई समझौता नहीं कर सकता। यह अवैज्ञानिक मनोवृत्ति है, जो हमने अपने बनैले पूर्वजों से पाई है, और आजकल कुछ लोग असभ्य और असामाजिक व्यवहार कहेंगे; लेकिन मैं अभी तक उस मनोवृत्ति पर विजय नहीं पा सका और न पाना चाहता हूँ। इस विषय में मैं क़ानून की परवा नहीं करता। मेरे घर में मेरा क़ानून है।'

मालती ने तीव्र स्वर में पूछा—लेकिन आपने यह अनुमान कैसे कर लिया कि मैं आपके शब्दों में खन्ना और गोविन्दी के बीच में आना चाहती हूँ। आप ऐसा अनुमान करके मेरा अपमान कर रहे हैं। मैं खन्ना को अपनी जूतियों की नोक के बराबर भी नहीं समझती।

मेहता ने अविश्वास-भरे स्वर में कहा—यह आप दिल से नहीं कह रही हैं मिस मालती ! क्या आप सारी दुनिया को बेवक़ूफ़ समझती हैं ? जो बात सभी समझ रहे हैं, अगर वही बात मिसेज़ खन्ना भी समझें ; तो मैं उन्हें दोष नहीं दे सकता।

मालती ने तिनककर कहा—दुनिया को दूसरों को बदनाम करने में मज़ा आता है। उसका स्वभाव है। मैं उसका स्वभाव कैसे बदल दूँ ; लेकिन यह व्यर्थ का कलंक है ! हाँ, मैं इतनी बेमुरौवत नहीं हूँ कि खन्ना को अपने पास आते देखकर दुत्कार देती। मेरा काम ही ऐसा है कि मुझे सभी का स्वागत और सत्कार करना पड़ता है ; अगर कोई इसका कुछ और अर्थ निकालता है, तो वह···वह···

मालती का गला भर्रा गया और उसने मुँह फेरकर रूमाल से आँसू पोंछे। फिर एक मिनट के बाद बोली—औरों के साथ तुम भी मुझे...मुझे इसका दुःख है··· मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी।

फिर कदाचित् उसे अपनी दुर्बलता पर खेद हुआ। वह प्रचण्ड होकर बोली—आपको मुझ पर आक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है ; अगर आप भी उन्हीं मर्दों में हैं, जो किसी स्त्री-पुरुष को साथ देखकर उँगली उठाये बिना नहीं रह सकते, तो शौक़ से उठाइए। मुझे रत्ती-भर परवा नहीं है ; अगर कोई स्त्री आपके पास बार-बार किसी न किसी बहाने से आये, आपको अपना देवता समझे, हरएक बात में आपसे सलाह ले, आपके चरणों के नीचे आँखें बिछाये, आपका इशारा पाते ही आग में कूदने को तैयार हो, तो मैं दावे से कह सकती हूँ, आप उसकी उपेक्षा न करेंगे ; अगर आप उसे ठुकरा सकते हैं, तो आप मनुष्य नहीं हैं। इसके विरुद्ध आप कितने ही तर्क और प्रमाण लाकर रख दें ; लेकिन मैं मानूँगी नहीं। मैं तो कहती हूँ, उपेक्षा तो दूर रही, ठुकराने की तो बात ही क्या, आप उस नारी के चरण धो-धोकर पियेंगे, और बहुत दिन गुजरने के पहले वह आपकी हृदयेश्वरी होगी। मैं आपसे हाथ जोड़कर कहती हूँ, मेरे सामने खन्ना का कभी नाम न लीजिएगा।

मेहता ने इस ज्वाला में मानो हाथ सेंकते हुए कहा—शर्त यही है कि मैं खन्ना को आपके साथ न देखूँ।

'मैं मानवता की हत्या नहीं कर सकती। वह आयेंगे, तो मैं उन्हें दुर-दुराऊँगी नहीं।'

'उनसे कहिए, अपनी स्त्री के साथ सज्जनता से पेश आयें।'

'मैं किसी के निजी मुआमले में दखल देना उचित नहीं समझती। न मुझे इसका अधिकार है।'

'तो आप किसी की ज़बान नहीं बन्द कर सकतीं।'

मालती का बँगला आ गया। कार रुक गई। मालती उतर पड़ी और बिना हाथ मिलाये चली गई। वह यह भी भूल गई कि उसने मेहता को भोजन की दावत दी है। वह एकान्त में जाकर ख़ूब रोना चाहती है। गोविन्दी ने पहले भी आघात किये हैं; पर आज उसने जो आघात किया है, वह बहुत गहरा, बड़ा चौड़ा और बड़ा मर्मभेदी है।

१६

राय साहब को जब खबर मिली कि इलाके में एक वारदात हो गई है, और होरी से गाँव के पंचों ने जुरमाना वसूल कर लिया है, तो फ़ौरन नोखेराम को बुलाकर जवाब तलब किया—क्यों उन्हें इसकी इत्तला नहीं दी गई। ऐसे नमकहराम और दग़ाबाज़ आदमी के लिए उनके दरबार में जगह नहीं है।

नोखेराम ने इतनी गालियाँ खाईं, तो ज़रा गर्म होकर बोले—मैं अकेला थोड़ा ही था। गाँव और पंच भी तो थे। मैं अकेला क्या कर लेता।

राय साहब ने उनकी तोंद की तरफ़ भाले-जैसी नुकीली दृष्टि से देखा—मत बको जी! तुम्हें उसी वक्त कहना चाहिए था, जब तक सरकार को इत्तला न हो जाय, मैं पंचों को जुरमाना न वसूल करने दूँगा। पंचों को मेरे और मेरी रिआया के बीच में दख़ल देने का हक़ क्या है। इस डाँड़-बाँध के सिवा इलाके में और कौन-सी आमदनी है। वसूली सरकार के घर गई। बक़ाया असामियों ने दबा लिया। तब मैं कहाँ जाऊँ? क्या खाऊँ तुम्हारा सिर! यह लाखों रुपये साल का ख़र्च कहाँ से आये। खेद है कि दो पुश्तों से कारिन्दगीरी करने पर भी मुझे आज तुम्हें यह बात बतलानी पड़ती है। कितने रुपये वसूल हुए थे होरी से?

नोखेराम ने सिटपिटाकर कहा—अस्सी रुपये!

'नक़द?'

'नक़द उसके पास कहाँ थे हुज़ूर? कुछ अनाज दिया, बाक़ी में अपना घर लिख दिया।'

राय साहब ने स्वार्थ का पक्ष छोड़कर होरी का लिया—अच्छा तो आपने और बगुलाभगत पंचों ने मिलकर मेरे एक मातबर असामी को तबाह कर दिया। मैं पूछता हूँ, तुम लोगों को क्या हक़ था कि मेरे इलाके में मुझे इत्तला दिये बग़ैर मेरे असामी से जुरमाना वसूल करते। इसी बात पर अगर मैं चाहूँ, तो आपको और उस जालिये पटवारी और उस धूर्त पण्डित को सात-सात साल के लिए जेल भिजवा सकता हूँ। आपने समझ लिया कि आप ही इलाक़े के बादशाह हैं। मैं कहे देता हूँ, आज शाम तक जुरमाने की पूरी रक़म मेरे पास पहुँच जाय; वरना बुरा होगा। मैं एक-एक से चक्की पिसवाकर छोड़ूँगा। जाइए, हाँ होरी को और उसके लड़के को मेरे पास भेज दीजिएगा।

नोखेराम ने दबी ज़बान से कहा—उसका लड़का तो गाँव छोड़कर भाग गया। जिस रात को यह वारदात हुई, उसी रात को भागा।

राय साहब ने रोष से कहा—झूठ मत बोलो। तुम्हें मालूम है, झूठ से मेरे बदन में आग लग जाती है। मैंने आज तक कभी नहीं सुना कि कोई युवक अपनी प्रेमिका को उसके घर से लाकर फिर ख़ुद भाग जाय। अगर उसे भागना ही होता, तो वह उस लड़की को लाता क्यों? तुम लोगों की इसमें भी ज़रूर कोई शरारत है। तुम गंगा में डूबकर भी अपनी सफ़ाई दो, तो मानने का नहीं। तुम लोगों ने अपने समाज की प्यारी मर्यादा की रक्षा के लिए उसे धमकाया होगा। बेचारा भाग न जाता, तो क्या करता!

नोखेराम इसका प्रतिवाद न कर सके। मालिक जो कुछ कहें वह ठीक है। वह यह भी न कह सके कि आप ख़ुद चलकर झूठ-सच की जाँच कर लें। बड़े आदमियों का क्रोध पूरा समर्पण चाहता है। अपने ख़िलाफ़ एक शब्द भी नहीं सुन सकता।

पंचों ने राय साहब का यह फ़ैसला सुना, तो नशा हिरन हो गया। अनाज तो अभी तक ज्यों-का-त्यों पड़ा था; पर रुपये तो कब के ग़ायब हो गये। होरी का मकान रेहन लिखा गया था; पर उस मकान को देहात में कौन पूछता था। जैसे हिन्दू-स्त्री पति के साथ घर की स्वामिनी है, और पति त्याग दे, तो कहीं की नहीं रहती, उसी तरह यह घर होरी के लिए तो लाख रुपये का है; पर उसकी असली क़ीमत कुछ भी नहीं। और इधर राय साहब बिना रुपये लिए मानने के नहीं। यही होरी जाकर रो आया होगा। पटेश्वरीलाल सबसे ज़्यादा भयभीत थे। उनकी तो

नौकरी ही चली जायगी। चारों सज्जन इस गहन समस्या पर विचार कर रहे थे; पर किसी की अक़ल काम न करती थी। एक दूसरे पर दोष रखता था। फिर खूब झगड़ा हुआ।

पटेश्वरी ने अपनी लम्बी शंकाशील गर्दन हिलाकर कहा—मैं मना करता था कि होरी के विषय में हमें चुप्पी साधकर रह जाना चाहिए। गाय के मामले में सबको तावान देना पड़ा। इस मामले में तावान ही से गला न छूटेगा, नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा; मगर तुम लोगों को रुपये की पड़ी थी। निकालो बीस-बीस रुपये। अब भी कुशल है। कहीं राय साहब ने रपट कर दी, तो सब जने बँध जाओगे।

दातादीन ने ब्रह्मतेज दिखाकर कहा—मेरे पास बीस रुपये की जगह बीस पैसे भी नहीं हैं। ब्राह्मणों को भोज दिया गया, होम हुआ। क्या इसमें कुछ खरच ही नहीं हुआ? राय साहब की हिम्मत है कि मुझे जेहल ले जायँ? ब्रह्म बनकर घर का घर मिटा दूँगा। अभी उन्हें किसी ब्राह्मण से पाला नहीं पड़ा।

झिंगुरीसिंह ने भी कुछ इसी आशय के शब्द कहे। वह राय साहब के नौकर नहीं हैं। उन्होंने होरी को मारा नहीं, पीटा नहीं, कोई दबाव नहीं डाला। होरी अगर प्रायश्चित्त करना चाहता था, तो उन्होंने इसका अवसर दिया, इसके लिए कोई उन पर अपराध नहीं लगा सकता; मगर नोखेराम की गर्दन इतनी आसानी से न छूट सकती थी। यहाँ मज़े से बैठे राज करते थे। वेतन तो दस रुपए से ज़्यादा न था; पर एक हज़ार साल की ऊपर की आमदनी थी, सैकड़ों आदमियों पर हुकूमत, चार-चार प्यादे हाज़िर, बेगार में सारा काम हो जाता था, थानेदार तक कुरसी देते थे। यह चैन उन्हें और कहाँ था। और पटेश्वरी तो नौकरी की बदौलत महाजन बने हुए थे। कहाँ जा सकते थे। दो-तीन दिन इसी चिन्ता में पड़े रहे कि कैसे इस विपत्ति से निकलें। आखिर उन्हें एक मार्ग सूझ ही गया। कभी-कभी कचहरी में उन्हें दैनिक बिजली देखने को मिल जाती थी। यदि एक गुमनाम पत्र उसके सम्पादक की सेवा में भेज दिया जाय कि राय साहब किस तरह असामियों से जुरमाना वसूल करते हैं, तो बचा को लेने के देने पड़ जायँ। नोखेराम भी सहमत हो गये। दोनों ने मिलकर किसी तरह एक पत्र लिखा और रजिस्ट्री कराके भेज दिया।

सम्पादक ओंकारनाथ तो ऐसे पत्रों की ताक में रहते थे। पत्र पाते ही तुरन्त

राय साहब को सूचना दी। उन्हें एक ऐसा समाचार मिला है, जिस पर विश्वास करने की उनकी इच्छा नहीं होती; पर संवाददाता ने ऐसे प्रमाण दिये हैं कि सहसा अविश्वास भी नहीं किया जा सकता। क्या यह सच है कि राय साहब ने अपने इलाक़े के एक असामी से अस्सी रुपये तावान इसलिए वसूल किये कि उसके पुत्र ने एक विधवा को घर में डाल लिया था? सम्पादक का कर्तव्य उन्हें मजबूर करता है कि वह इस मुआमले की जाँच करें और जनता के हितार्थ उसे प्रकाशित कर दें। राय साहब इस विषय में जो कुछ कहना चाहें, सम्पादकजी उसे भी प्रकाशित कर देंगे। सम्पादकजी दिल से चाहते हैं कि यह ख़बर ग़लत हो; लेकिन उसमें कुछ भी सत्य हुआ, तो वह उसे प्रकाश में लाने के लिए विवश हो जायँगे। मैत्री उन्हें कर्तव्य-पथ से नहीं हटा सकती।

राय साहब ने यह सूचना पाई, तो सिर पीट लिया। पहले तो उनको ऐसी उत्तेजना हुई कि जाकर ओंकारनाथ को गिनकर पचास हंटर जमायें और कह दें, जहाँ वह पत्र छापना वहाँ यह समाचार भी छाप देना; लेकिन इसका परिणाम सोचकर मन को शान्त किया। और तुरन्त उनसे मिलने चले। अगर देर की, और ओंकारनाथ ने वह संवाद छाप दिया, तो उनके सारे यश में कालिमा पुत जायगी।

ओंकारनाथ सैर करके लौटे थे और आज के पत्र के लिए सम्पादकीय लेख लिखने की चिन्ता में बैठे हुए थे; पर मन पक्षी की भाँति उड़ा-उड़ा फिरता था। उनकी धर्मपत्नी ने रात में उन्हें कुछ ऐसी बातें कह डाली थीं, जो अभी तक काँटों की तरह चुभ रही थीं। उन्हें कोई दरिद्र कह ले, अभागा कह ले, बुद्धू कह ले, वह ज़रा भी बुरा न मानते थे, लेकिन यह कहना कि उनमें पुरुषत्व नहीं है, यह उनके लिए असह्य था। और फिर अपनी पत्नी को यह कहने का क्या हक़ है! उससे तो यह आशा की जाती है कि कोई इस तरह का आक्षेप करे, तो उसका मुँह बन्द कर दे। बेशक वह ऐसी खबरें नहीं छापते, ऐसी टिप्पणियाँ नहीं करते कि सिर पर कोई आफ़त आ जाय। फूँक-फूँककर क़दम रखते हैं। इन काले क़ानूनों के युग में वह और कर ही क्या सकते हैं; मगर वह क्यों साँप के बिल में हाथ नहीं डालते? इसी लिए तो कि उनके घरवालों को कष्ट न उठाने पड़ें। और उनकी इस सहिष्णुता का उन्हें पुरस्कार मिल रहा है। क्या अन्धेर है?

उनके पास रुपए नहीं हैं, तो बनारसी साड़ी कैसे मँगा दें ? डॉक्टर सेठ और प्रोफेसर भाटिया और न जाने किस-किस की स्त्रियाँ बनारसी साड़ी पहनती हैं, तो वह क्या करें ? क्यों उनकी पत्नी इन साड़ीवालियों को अपनी खद्दर की साड़ी से लज्जित नहीं करतीं ? उनकी ख़ुद तो यह आदत है कि किसी बड़े आदमी से मिलने जाते हैं, तो मोटे-से-मोटे कपड़े पहन लेते हैं और कोई कुछ आलोचना करे तो उसका मुँहतोड़ जवाब देने को तैयार रहते हैं। उनकी पत्नी में क्यों वही आत्माभिमान नहीं है ? वह क्यों दूसरों का ठाट-बाट देखकर विचलित हो जाती है। उसे समझना चाहिए कि वह एक देश-भक्त पुरुष की पत्नी है। देश-भक्त के पास अपनी भक्ति के सिवा और क्या सम्पत्ति है। इसी विषय को आज के अग्रलेख का विषय बनाने की कल्पना करते-करते उनका ध्यान राय साहब के मुआमले की ओर जा पहुँचा। राय साहब सूचना का क्या उत्तर देते हैं, यह देखना है। अगर वह अपनी सफ़ाई देने में सफल हो जाते हैं, तब तो कोई बात नहीं, लेकिन अगर वह यह समझें कि ओंकारनाथ दबाव, भय, या मुलाहज़े में आकर अपने कर्तव्य से मुँह फेर लेंगे तो यह उनका भ्रम है। इस सारे तप और साधना का पुरस्कार उन्हें इसके सिवा और क्या मिलता है कि अवसर पड़ने पर वह इन क़ानूनी डकैतों का भंडाफोड़ करें। उन्हें खूब मालूम है कि राय साहब बड़े प्रभावशाली जीव हैं। कौंसिल के मेम्बर तो हैं ही, अधिकारियों में भी उनका काफ़ी रुसूख़ है। वह चाहें, तो उन पर झूठे मुक़दमे चलवा सकते हैं। अपने गुण्डों से राह चलते पिटवा सकते हैं; लेकिन ओंकार इन बातों से नहीं डरता। जब तक उसकी देह में प्राण है, वह आततायियों की ख़बर लेता रहेगा।

सहसा मोटकार की आवाज़ सुनकर वह चौंके। तुरत काग़ज़ लेकर अपना लेख आरम्भ कर दिया। और एक ही क्षण में राय साहब ने उनके कमरे में क़दम रखा।

ओंकारनाथ ने न उनका स्वागत किया, न कुशल-क्षेम पूछा, न कुरसी दी। उन्हें इस तरह देखा, मानो कोई मुलज़िम उनकी अदालत में आया हो और रोब से मिले हुए स्वर में पूछा —आपको मेरा पुरज़ा मिल गया था ? मैं वह पत्र लिखने के लिए बाध्य नहीं था, मेरा कर्तव्य यह था कि स्वयं उसकी तहक़ीक़ात करता; लेकिन मुरौवत में सिद्धान्तों की कुछ-न-कुछ हत्या करनी ही पड़ती है। क्या उस संवाद में कुछ सत्य है ?

राय साहब इसका सत्य होना अस्वीकार न कर सके। हालाँकि अभी तक उन्हें जुरमाने के रुपये नहीं मिले थे और वह उसके पाने से साफ़ इनकार कर सकते थे; लेकिन वह देखना चाहते थे कि यह महाशय किस पहलू पर चलते हैं।

ओंकारनाथ ने खेद प्रकट करते हुए कहा—तब तो मेरे लिए उस संवाद को प्रकाशित करने के सिवा और कोई मार्ग नहीं है। मुझे इसका दुःख है कि मुझे अपने एक परम हितैषी मित्र की आलोचना करनी पड़ रही है; लेकिन कर्तव्य के आगे व्यक्ति कोई चीज़ नहीं। सम्पादक अगर अपना कर्तव्य न पूरा कर सके तो उसे इस आसन पर बैठने का कोई हक़ नहीं है।

राय साहब कुरसी पर डट गये और पान की गिलौरियाँ मुँह में भरकर बोले—लेकिन यह आपके हक़ में अच्छा न होगा। मुझे जो कुछ होना है, पीछे होगा आपको तत्काल दण्ड मिल जायगा; अगर आप मित्रों की परवाह नहीं करते तो मैं भी उसी कैंडे का आदमी हूँ।

ओंकारनाथ ने शहीद का गौरव धारण करके कहा—इसका तो मुझे कभी भय नहीं हुआ। जिस दिन मैंने पत्र-सम्पादन का भार लिया, उसी दिन प्राणों का मोह छोड़ दिया, और मेरे समीप एक सम्पादक की सबसे शानदार मौत यही है कि वह न्याय और सत्य की रक्षा करता हुआ अपना बलिदान कर दे।

'अच्छी बात है। मैं आपकी चुनौती स्वीकार करता हूँ। मैं अब तक आपको मित्र समझता आया था; मगर अब आप लड़ने ही पर तैयार हैं, तो लड़ाई ही सही। आखिर मैं आपके पत्र का पँचगुना चन्दा क्यों देता हूँ? केवल इसीलिए की वह मेरा गुलाम बना रहे। मुझे परमात्मा ने रईस बनाया है। पचहत्तर रुपये देता हूँ; इसी लिए कि आपका मुँह बन्द रहे। जब आप घाटे का रोना रोते हैं; और सहायता की अपील करते हैं, और ऐसी शायद ही कोई तिमाही जाती हो, जब आपकी अपील न निकलती हो, तो मैं ऐसे मौके पर आपकी कुछ न कुछ मदद कर देता हूँ। किसलिए? दीपावली, दसहरा, होली में आपके यहाँ बैना भेजता हूँ, और साल में पच्चीस बार आपकी दावत करता हूँ, किसलिए? आप रिशवत और कर्तव्य दोनों साथ-साथ नहीं निभा सकते।'

ओंकारनाथ उत्तेजित होकर बोले—मैंने कभी रिशवत नहीं ली।

राय साहब ने फटकारा—अगर यह व्यवहार रिशवत नहीं है, तो रिशवत

क्या है ! ज़रा मुझे समझा दीजिये। क्या आप समझते हैं; आपको छोड़कर और सभी गधे हैं, जो निःस्वार्थ-भाव से आपका घाटा पूरा करते हैं। निकालिए अपनी बही और बतलाइए, अब तक आपको मेरी रियासत से कितना मिल चुका है। मुझे विश्वास है, हज़ारों की रक़म निकलेगी ; अगर आपको स्वदेशी-स्वदेशी चिल्लाकर विदेशी दवाओं और वस्तुओं का विज्ञापन छापने में शर्म नहीं आती, तो मैं क्यों अपने असामियों से डांड़ और तावान और जुर्माना लेते शरमाऊँ ? यह न समझिए कि आप ही किसानों के हित का बीड़ा उठाये हुए हैं। मुझे किसानों के साथ जलना-मरना है, मुझसे बढ़कर दूसरा उनका हितेच्छु नहीं हो सकता, लेकिन मेरी गुज़र कैसे हो ! अफ़सरों की दावतें कहाँ से दूँ, सरकारी चन्दे कहाँ से दूँ, खानदान के सैकड़ों आदमियों की ज़रूरतें कैसे पूरी करूँ। मेरे घर का क्या खर्च है, यह शायद आप जानते हैं। तो क्या मेरे घर में रुपए फलते हैं ? आयेगा तो असामियों ही के घर से। आप समझते होंगे, ज़मीन्दार और ताल्लुक़ेदार सारे संसार का सुख भोग रहे हैं। उनकी असली हालत का आपको ज्ञान नहीं; अगर वह धर्मात्मा बनकर रहें, तो उनका ज़िन्दा रहना मुश्किल हो जाय। अफ़सरों को डालियाँ न दें, तो जेलखाना घर हो जाय। हम बिच्छू नहीं हैं कि अनायास ही सबको डंक मारते फिरें। न गरीबों का गला दबाना कोई बड़े आनन्द का काम है; लेकिन मर्यादाओं का पालन तो करना ही पड़ता है। जिस तरह आप मेरी रईसी का फ़ायदा उठाना चाहते हैं, उसी तरह और सभी हमें सोने की मुर्गी समझते हैं। आइए मेरे बँगले पर तो दिखाऊँ कि सुबह से शाम तक कितने निशाने मुझ पर पड़ते हैं। कोई काश्मीर से शाल-दुशाले लिये चला आ रहा है, कोई इत्र और तम्बाकू का एजेंट है, कोई पुस्तकों और पत्रिकाओं का, कोई जीवन-बीमे का, कोई ग्रामोफोन लिये सिर पर सवार है, कोई कुछ। चन्देवाले तो अनगिनती। क्या सबके सामने अपना दुखड़ा लेकर बैठ जाऊँ ? ये लोग मेरे द्वार पर दुखड़ा सुनने आते हैं मुझे उल्लू बनाकर मुझसे कुछ ऐंठने के लिए। आज मर्यादा का विचार छोड़ दूँ, तो तालियाँ पिटने लगें। हुक्काम को डालियाँ न दूँ, तो बागी समझा जाऊँ। तब आप अपने लेखों से मेरी रक्षा न करेंगे। कांग्रेस में शरीक हुआ, उसका तावान अभी तक देता जाता हूँ। काली किताब में नाम दर्ज हो गया। मेरे सिर पर कितना क़र्ज है, यह भी कभी आपने पूछा है; अगर सभी महाजन डिग्रियाँ करा लें, तो मेरे हाथ की यह अँगूठी तक बिक जायगी आप कहेंगे, क्यों यह आडम्बर पालते

हो। कहिए; सात पुश्तों से जिस वातावरण में पला हूँ, उससे अब निकल नहीं सकता। घास छीलना मेरे लिए असंभव है। आपके पास ज़मीन नहीं, जायदाद नहीं, मर्यादा का झमेला नहीं, आप निर्भीक हो सकते हैं; लेकिन आप भी दुम दबाये बैठे रहते हैं। आपको कुछ ख़बर है, अदालतों में कितनी रिशवतें चल रही हैं, कितने ग़रीबों का ख़ून हो रहा है, कितनी देवियाँ भ्रष्ट हो रही हैं। है बूता लिखने का? सामग्री मैं देता हूँ, प्रमाण-सहित।

ओंकारनाथ कुछ नर्म होकर बोले—जब कभी अवसर आया है, मैंने क़दम पीछे नहीं हटाया।

राय साहब भी कुछ नर्म हुए—हाँ, मैं स्वीकार करता हूँ कि दो-एक मौकों पर आपने जवाँमरदी दिखाई है; लेकिन आपकी निगाह हमेशा अपने लाभ की ओर रही है। प्रजा-हित की ओर नहीं। आँखें न निकालिए और न मुँह लाल कीजिए। जब कभी आप मैदान में आये हैं, उसका शुभ परिणाम यही हुआ है कि आपके सम्मान और प्रभाव और आमदनी में इज़ाफ़ा हुआ है; अगर मेरे साथ भी आप वही चाल चल रहे हों, तो मैं आपकी ख़ातिर करने को तैयार हूँ। रुपये न दूँगा; क्योंकि वह रिशवत है। आपकी पत्नीजी के लिए कोई आभूषण बनवा दूँगा। है मंज़ूर? अब मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि आपको जो संवाद मिला वह ग़लत है; मगर यह भी कह देना चाहता हूँ कि और अपने सभी भाइयों की तरह मैं भी असामियों से जुर्माना लेता हूँ और साल में दस-पाँच हज़ार रुपये मेरे हाथ लग जाते हैं, और अगर आप मेरे मुँह से यह कौर छीनना चाहेंगे तो आप घाटे में रहेंगे, आप भी संसार में सुख से रहना चाहते हैं, मैं भी चाहता हूँ। इससे क्या फ़ायदा कि आप न्याय और कर्तव्य का ढोंग रचकर मुझे भी ज़ेरबार करें, ख़ुद भी ज़ेरबार हों। दिल की बात कहिए। मैं आपका वैरी नहीं हूँ। आपके साथ कितनी ही बार एक चौके में, एक मेज़ पर खा चुका हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि आप तकलीफ़ में हैं। आपकी हालत शायद मेरी हालत से भी ख़राब है। हाँ, अगर आपने हरिश्चन्द्र बनने की क़सम खा ली है, तो आपकी ख़ुशी। मैं चलता हूँ।

राय साहब कुरसी से उठ खड़े हुए। ओंकारनाथ ने उनका हाथ पकड़कर संधि-भाव से कहा—नहीं-नहीं, अभी आपको बैठना पड़ेगा। मैं अपनी पोजीशन साफ़ कर देना चाहता हूँ। आप मेरे साथ जो सलूक किये हैं, उनके लिए मैं आपका आभारी

हूँ; लेकिन यहाँ सिद्धान्त की बात आ गई है और आप जानते हैं, सिद्धान्त प्राणों से भी प्यारे होते हैं।

राय साहब कुर्सी पर बैठकर ज़रा मीठे स्वर में बोले—अच्छा भाई, जो चाहे लिखो। मैं तुम्हारे सिद्धान्त को तोड़ना नहीं चाहता। और तो क्या होगा, बदनामी होगी। हाँ, कहाँ तक नाम के पीछे मरूँ। कौन ऐसा ताल्लुकेदार है, जो असामियों को थोड़ा-बहुत नहीं सताता। कुत्ता हड्डी की रखवाली करे, तो खाय क्या? मैं इतना ही कर सकता हूँ कि आगे आपको इस तरह की कोई शिकायत न मिलेगी; अगर आपको मुझ पर कुछ विश्वास है, तो इस बार क्षमा कीजिए। किसी दूसरे सम्पादक से मैं इस तरह की खुशामद न करता। उसे सरे बाज़ार में पिटवाता; लेकिन मुझसे आपकी दोस्ती है; इसलिए मुझे दबना ही पड़ेगा। यह समाचार-पत्रों का युग है। सरकार तक उनसे डरती है, मेरी हस्ती क्या। आप जिसे चाहें बना दें। ख़ैर यह झगड़ा ख़तम कीजिए। कहिए, आजकल पत्र की क्या दशा है। कुछ ग्राहक बढ़े?

ओंकारनाथ ने अनिच्छा के भाव से कहा—किसी न किसी तरह काम चल जाता है और वर्तमान परिस्थिति में मैं इससे अधिक आशा नहीं रखता। मैं इस तरफ़ धन और भोग की लालसा लेकर नहीं आया था; इसलिए मुझे शिकायत नहीं है। मैं जनता की सेवा करने आया था और वह यथाशक्ति किये जाता हूँ। राष्ट्र का कल्याण हो, यही मेरी कामना है। एक व्यक्ति के सुख-दुःख का कोई मूल्य नहीं।

राय साहब ने ज़रा और सहृदय होकर कहा—यह सब ठीक है भाई साहब; लेकिन सेवा करने के लिए भी जीना ज़रूरी है। आर्थिक चिन्ताओं में आप एकाग्र-चित्त होकर सेवा भी तो नहीं कर सकते। क्या ग्राहक-संख्या बिलकुल नहीं बढ़ रही है?

'बात यह है कि मैं अपने पत्र का आदर्श गिराना नहीं चाहता; अगर मैं आज सिनेमा-स्टारों के चित्र और चरित्र छापने लगूँ, तो मेरे ग्राहक बढ़ सकते हैं; लेकिन अपनी तो वह नीति नहीं! और भी कितने ही ऐसे हथकण्डे हैं, जिनसे पत्रों-द्वारा धन कमाया जा सकता है; लेकिन मैं उन्हें गर्हित समझता हूँ।'

'इसी का यह फल है कि आज आपका इतना सम्मान है। मैं एक प्रस्ताव

करना चाहता हूँ। मालूम नहीं आप उसे स्वीकार करेंगे या नहीं। आप मेरी ओर से सौ आदमियों के नाम भी पत्र जारी कर दीजिए। चन्दा मैं दे दूँगा।'

ओंकारनाथ ने कृतज्ञता से सिर झुकाकर कहा—मैं धन्यवाद के साथ आपका दान स्वीकार करता हूँ। खेद यही है कि पत्रों की ओर से जनता कितनी उदासीन है। स्कूलों और कालिजों और मन्दिरों के लिए धन की कमी नहीं है; पर आज तक एक भी ऐसा दानी न निकला जो पत्रों के प्रचार के लिए दान देता, हालांकि जन-शिक्षा का उद्देश्य जितने कम खर्च में पत्रों से पूरा हो सकता है, और किसी तरह नहीं हो सकता। जैसे शिक्षालयों को संस्थाओं-द्वारा सहायता मिला करती है, ऐसे ही अगर पत्रकारों को मिलने लगे, तो इन बेचारों को अपना जितना समय और स्थान विज्ञापनों को भेंट करना पड़ता है वह क्यों करना पड़े। मैं आपका बड़ा अनुगृहीत हूँ।

राय साहब विदा हो गये; ओंकारनाथ के मुख पर प्रसन्नता की झलक न थी। राय साहब ने किसी तरह की शर्त न की थी, कोई बन्धन न लगाया था; पर ओंकारनाथ आज इतनी करारी फटकार पाकर भी इस दान को अस्वीकार न कर सके। परिस्थिति ऐसी आ पड़ी थी कि उन्हें उबारने का कोई उपाय ही न सूझ रहा था। प्रेस के कर्मचारियों का तीन महीने का वेतन बाक़ी पड़ा हुआ था। कागज़वाले के एक हज़ार से ऊपर आ रहे थे; यही क्या कम था कि उन्हें हाथ नहीं फैलाना पड़ा।

उनकी स्त्री गोमती ने आकर विद्रोह के स्वर में कहा—क्या अभी भोजन का समय नहीं आया, या यह भी कोई नियम है कि जब तक एक न बज जाय, जगह से न उठो। कब तक कोई चूल्हा अगोरता रहे!

ओंकारनाथ ने दुःखी आँखों से पत्नी की ओर देखा। गोमती का विद्रोह उड़ गया। वह उनकी कठिनाइयों को समझती थी। दूसरी महिलाओं का वस्त्राभूषण देखकर कभी-कभी उसके मन में विद्रोह के भाव जाग उठते थे और वह पति को दो-चार जली-कटी सुना जाती थी; पर वास्तव में वह क्रोध उनके प्रति नहीं, अपने दुर्भाग्य के प्रति था, और इसकी थोड़ी-सी आँच अनायास ही ओंकारनाथ तक पहुँच जाती थी वह उनका तपस्वी जीवन देखकर मन में कुढ़ती भी थी और उनसे

सहानुभूति भी रखती थी। बस, उन्हें थोड़ा-सा सनकी समझती थी। उनका उदास मुँह देखकर पूछा—क्यों उदास हो, पेट में कुछ गड़बड़ है क्या ?

ओंकारनाथ को मुस्कराना पड़ा—कौन उदास है, मैं ? मुझे तो आज जितनी ख़ुशी है, उतनी अपने विवाह के दिन भी न हुई थी। आज सबेरे पन्द्रह सौ की बोहनी हुई। किसी भाग्यवान् का मुँह देखा था।

गोमती को विश्वास न आया, बोली—झूठे हो। तुम्हें पन्द्रह सौ कहाँ मिले जाते हैं। हाँ, पन्द्रह रुपए कहो, मान लेती हूँ।

'नहीं-नहीं, तुम्हारे सिर की क़सम, पन्द्रह सौ मारे। अभी राय साहब आये थे। सौ ग्राहकों का चन्दा अपनी तरफ़ से देने का वचन दे गये हैं।'

गोमती का चेहरा उतर गया—तो मिल चुके !

'नहीं, राय साहब वादे के पक्के हैं।'

'मैंने किसी ताल्लुक़ेदार को वादे का पक्का होते देखा ही नहीं। दादा एक ताल्लुक़ेदार के नौकर थे। साल-साल भर तलब नहीं मिलती थी। उसे छोड़कर दूसरे की नौकरी की। उसने दो साल तक एक पाई न दी। एक बार दादा गरम पड़े, तो मारकर भगा दिया। इनके वादों का कोई क़रार नहीं।'

'मैं आज ही बिल भेजता हूँ।'

'भेजा करो। कह देंगे, कल आना। कल अपने इलाक़े पर चले जायँगे। तीन महीने में लौटेंगे।'

ओंकारनाथ संशय में पड़ गये। ठीक तो है, कहीं राय साहब पीछे से मुकर गये, तो वह क्या कर लेंगे। फिर भी दिल मजबूत करके कहा—ऐसा नहीं हो सकता। कम से कम राय साहब को मैं इतना धोखेबाज़ नहीं समझता। मेरा उनके यहाँ कुछ बाक़ी नहीं है।

गोमती ने उसी सन्देह के भाव से कहा—इसी से तो मैं तुम्हें बुद्धू कहती हूँ। ज़रा किसी ने सहानुभूति दिखाई और तुम फूल उठे। ये मोटे रईस हैं। इनके पेट में ऐसे कितने वादे हज़म हो सकते हैं। जितने वादे करते हैं, अगर सब पूरा करने लगें, तो भीख माँगने की नौबत आ जाय। मेरे गाँव के ठाकुर साहब तो दो-दो, तीन-तीन साल तक बुनियों का हिसाब न करते थे। नौकरों का हिसाब तो नाम के लिए देते थे। साल-भर काम लिया, जब नौकर ने वेतन माँगा, मारकर निकाल दिया।

कई बार इसी नादिहेन्दी में स्कूल से उनके लड़कों के नाम कट गये आख़िर उन्होंने लड़कों को घर बुला लिया। एक बार रेल का टिकिट उधार माँगा था। यह राय साहब भी तो उन्हीं के भाई-बन्द हैं। चलो भोजन करो और चक्की पीसो, जो तुम्हारे भाग्य में लिखा है। यह समझ लो कि ये बड़े आदमी तुम्हें फटकारते रहें, वही अच्छा है। यह तुम्हें एक पैसा देंगे, तो उसका चौगुना अपने असामियों से वसूल कर लेंगे। अभी उनके विषय में जो कुछ चाहते हो, लिखते हो। तब तो ठकुरसुहाती ही कहनी पड़ेगी।

पण्डितजी भोजन कर रहे थे; पर कौर मुँह में फँसा हुआ जान पड़ता था। आख़िर बिना दिल का बोझ हलका किये भोजन करना कठिन हो गया। बोले—अगर रुपये न दिये, तो ऐसी ख़बर लूँगा कि याद करेंगे। उनकी चोटी मेरे हाथ में है। गाँव के लोग झूठी ख़बर नहीं दे सकते। सच्ची ख़बर देते तो उनकी जान निकलती है, झूठी ख़बर क्या देंगे। राय साहब के ख़िलाफ़ एक रिपोर्ट मेरे पास आई है। छाप दूँ, तो बचा को घर से निकलना मुश्किल हो जाय। मुझे वह ख़ैरात नहीं दे रहे हैं, बड़े दबसट में पड़कर इस राह पर आये हैं। पहले धमकियाँ दिखा रहे थे. जब देखा इससे काम न चलेगा, तो यह चारा फेंका। मैंने भी सोचा, एक इनके ठीक हो जाने से तो देश से अन्याय मिटा जाता नहीं, फिर क्यों न इस दान को स्वीकार कर लूँ। मैं अपने आदर्श से गिर गया हूँ ज़रूर; लेकिन इतने पर भी राय साहब ने दगा की, तो मैं भी शठता पर उतर आऊँगा। जो ग़रीबों को लूटता है, उसको लूटने के लिए अपनी आत्मा को बहुत समझाना न पड़ेगा।

१७

गाँव में ख़बर फैल गई कि राय साहब ने पंचों को बुलाकर ख़ूब डाँटा और इन लोगों ने जितने रुपये वसूल किये थे, वह सब इनके पेट से निकाल लिये। वह तो इन लोगों को जेहल भेजवा रहे थे; लेकिन इन लोगों ने हाथ-पाँव जोड़े थूककर चाटा, तब जाके उन्होंने छोड़ा। धनिया का कलेजा शीतल हो गया, गाँव में घूम घूमकर पंचों को लज्जित करती फिरती थी—आदमी न सुने ग़रीबों की पुकार भगवान् तो सुनते हैं। लोगों ने सोचा था, इनसे डाँड़ लेकर मजे से फुलौड़ियाँ खायँगे। भगवान ने ऐसा तमाचा लगाया कि फुलौड़ियाँ मुँह से निकल पड़ीं। एक एक के दो-दो भरने पड़े। अब चाटो मेरा मकान लेकर।

मगर बैलों के बिना खेती कैसे हो? गाँव में बोआई शुरू हो गई। कातिक के महीने में किसान के बैल मर जायँ, तो उसके दोनों हाथ कट जाते हैं। होरी के दोनों हाथ कट गये थे। और सब लोगों के खेतों में हल चल रहे थे। बीज डाले जा रहे थे। कहीं-कहीं गीत की तानें सुनाई देती थीं। होरी के खेत किसी अनाथ अबला के घर की भाँति सूने पड़े थे। पुनिया के पास भी गोईं थी शोभा के पास भी गोईं थी; मगर उन्हें अपने खेतों की बुआई से कहाँ फुरसत कि होरी की बुआई करें। होरी दिन-भर इधर-उधर मारा-मारा फिरता था। कहीं इसके खेत में जा बैठता, कहीं उसकी बोआई करा देता। इस तरह कुछ अनाज मिल जाता। धनिया, रूपा, सोना सभी दूसरों की बोआई में लगी रहती थीं। जब तक बोआई रही, पेट की रोटियाँ मिलती गईं, विशेष कष्ट न हुआ। मानसिक वेदना तो अवश्य होती थी; पर खाने भर को मिल जाता था। रात को नित्य स्त्री-पुरुष में थोड़ी सी लड़ाई हो जाती थी।

यहाँ तक कि कातिक का महीना बीत गया और गाँव में मजूरी मिलनी भी कठिन हो गई अब सारा दारमदार ऊख पर था, जो खेतों में खड़ी थी।

रात का समय था। सर्दी ख़ूब पड़ रही थी। होरी के घर में आज कुछ खाने को न था। दिन को तो थोड़ा-सा भुना हुआ मटर मिल गया था; पर इस वक्त चूल्हा जलने का कोई डौल न था और रूपा भूख के मारे व्याकुल थी और द्वार पर कौड़े के सामने बैठा रो रही थी। घर में जब अनाज का एक दाना भी नहीं है, तो क्या माँगे, क्या कहे।

जब भूख न सही गई तो वह आग माँगने के बहाने पुनिया के घर गई। पुनिया बाजरे की रोटियाँ और बथुए का साग पका रही थी। सुगन्ध से रूपा के मुँह में पानी भर आया।

पुनिया ने पूछा—क्या अभी तेरे घर आग नहीं जली क्या री!

रूपा ने दीनता से कहा—आज तो घर में कुछ था ही नहीं, कहाँ से जलती।

'तो फिर आग काहे को माँगने आई है?'

'दादा तमाखू पियेंगे।'

पुनिया ने उपले की आग उसकी ओर फेंक दी; मगर रूपा ने आग उठाई नहीं और समीप जाकर बोली—तुम्हारी रोटियाँ महक रही हैं काकी! मुझे बाजरे की रोटियाँ बड़ी अच्छी लगती हैं।

पुनिया ने मुस्कराकर पूछा—खायगी ?

'अम्मा डाटेंगी।'

'अम्मा से कौन कहने जायगा।'

रूपा ने पेट-भर रोटियाँ खाईं और जूठे मुँह भागी हुई घर चली गई।

होरी मन-मारे बैठा था, कि पण्डित दातादीन ने आकर पुकारा। होरी की छाती धधकने लगी। क्या कोई नई विपत्ति आनेवाली है! आकर उनके चरण छुये और कौड़े के सामने उनके लिए माँची रख दी।

दातादीन ने बैठते हुए अनुग्रह के भाव से कहा—अबकी तो तुम्हारे खेत परती पड़ गये होरी! तुमने गाँव में किसी से कुछ कहा नहीं, नहीं भोला की मजाल थी कि तुम्हारे द्वार से बैल खोल ले जाता! यहीं लहास गिर जाती। मैं तुमसे जनेऊ हाथ में लेकर कहता हूँ होरी, मैंने तुम्हारे ऊपर डाँड़ न लगाया था। धनिया मुझे हकनाहक बदनाम करती फिरती है। यह लाला पटेश्वरी और झिंगुरीसिंह की कारस्तानी है। मैं तो लोगों के कहने से पंचायत में बैठ भर गया था। वह लोग तो और कड़ा दण्ड लगा रहे थे। मैंने कह-सुनके कम कराया; मगर अब सब जने सिर पर हाथ धरे रो रहे हैं। समझे थे, यहाँ उन्हीं का राज है। यह न जानते थे, कि गाँव का राजा कोई और है। तो अब अपने खेतों की बोआई का क्या इन्तज़ाम कर रहे हो?

होरी ने करुण-कंठ से कहा—क्या बताऊँ महाराज, परती रहेंगे।

'परती रहेंगे! यह तो बड़ा अनर्थ होगा!'

'भगवान् की यही इच्छा है, तो अपना क्या बस।'

'मेरे देखते तुम्हारे खेत कैसे परती रहेंगे। कल मैं तुम्हारी बोआई करा दूँगा। अभी खेत में कुछ तरी है। उपज दस दिन पीछे होगी, इसके सिवा और कोई बात नहीं। हमारा तुम्हारा आधा-साझा रहेगा। इसमें न तुम्हें कोई टोटा है, न मुझे। मैंने आज बैठे बैठे सोचा, तो चित्त बड़ा दुखी हुआ कि जुते-जुताये खेत परती रहे जाते हैं!

होरी सोच में पड़ गया। चौमासे-भर इन खेतों में खाद डाली, जोता और आज केवल बोआई के लिए आधी फसल देनी पड़ रही है। उसपर एहसान कैसा जता रहे हैं; लेकिन इससे तो अच्छा ही है, कि खेत परती पड़ जायँ। और कुछ

न मिलेगा, लगान तो निकल ही आयेगा। नहीं, अबकी बेबाकी न हुई, तो बेदखली आई धरी है।

उसने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

दातादीन प्रसन्न होकर बोले—तो चलो, मैं अभी बीज तौल दूँ, जिसमें सबेरे का झंझट न रहे। रोटी तो खा ली है न ?

होरी ने लजाते हुए आज घर में चूल्हा न जलने की कथा कही।

दातादीन ने मीठे उलाहने के भाव से कहा—अरे! तुम्हारे घर में चूल्हा नहीं जला और तुमने मुझसे कहा भी नहीं! हम तुम्हारे वैरी तो नहीं थे। इसी बात पर तुमसे मेरा जी कुढ़ता है। अरे भले आदमी, इसमें लाज-सरम की कौन बात है। हम सब एक ही तो हैं। तुम सूद्र हुए तो क्या, हम बाम्हन हुए तो क्या, हैं तो सब एक ही घर के। दिन सबके बराबर नहीं जाते। कौन जाने, कल मेरे ही ऊपर कोई संकट आ पड़े, तो मैं तुमसे अपना दुख न कहूँगा, तो किससे कहूँगा। अच्छा, जो हुआ, चलो बेंग ही के साथ तुम्हें मन-दो-मन अनाज खाने को भी तौल दूँगा।

आध घण्टे में होरी मन-भर जौ का टोकरा सिर पर रखे आया और घर की चक्की चलने लगी। धनिया रोती थी और साथ के साथ जौ पीसती थी। भगवान् उसे किस कुकर्म का यह दण्ड दे रहे हैं।

दूसरे दिन से बोआई शुरू हुई। होरी का सारा परिवार इस तरह काम में जुटा हुआ था, मानो सब कुछ अपना ही है। कई दिन के बाद सिंचाई भी इसी तरह हुई। दातादीन को सेंत-मेंत के मजूर मिल गये। अब कभी-कभी उनका लड़का मातादीन भी घर में आने लगा। जवान आदमी था, बड़ा रसिक और बातचीत का मीठा; दातादीन जो कुछ छीन-झपटकर लाते थे, वह उसे भंग-बूटी में उड़ाता था। एक चमारिन से उसकी आशनाई हो गई थी इसलिए अभी तक ब्याह न हुआ था। वह रहती थी; पर सारा गाँव यह रहस्य जानते हुए भी कुछ बोल न सकता था। हमारा धर्म है हमारा भोजन। भोजन पवित्र रहे फिर हमारे धर्म पर कोई आँच नहीं आ सकती। रोटियाँ ढाल बनकर अधर्म से हमारी रक्षा करती हैं।

अब साझे की खेती होने से मातादीन को झुनिया से बातचीत करने का अवसर मिलने लगा। वह ऐसे दाँव से आता, जब घर में झुनिया के सिवा और कोई न

होता, कभी किसी बहाने से, कभी किसी बहाने से। झुनिया रूपवती न थी ; लेकिन जवान थी और उसकी चमारिन प्रेमिका से अच्छी थी। कुछ दिन शहर में रह चुकी थी, पहनना-ओढ़ना, बोलना-चालना जानती थी और लज्जाशील भी थी, जो स्त्री का सबसे बड़ा आकर्षण है। मातादीन कभी-कभी उसके बच्चे को गोद में उठा लेता और प्यार करता। झुनिया निहाल हो जाती थी।

एक दिन उसने झुनिया से कहा—तुम क्या देखकर गोबर के साथ आईं झूना?

झुनिया ने लजाते हुए कहा—भाग खींच लाया महराज, और क्या कहूँ।

मातादीन दुःखी मन से बोला—बड़ा बेवफा आदमी है। तुम जैसी लच्छमी को छोड़कर न जाने कहाँ मारा-मारा फिर रहा है। चचल सुभाव का आदमी है, इसी से मुझे शंका होती है कि कहीं और न फँस गया हो। ऐसे आदमियों को तो गोली मार देनी चाहिए। आदमी का धरम है, जिसकी बाँह पकड़े, उसे निभाये। यह क्या कि एक आदमी की जिन्दगानी खराब कर दी और आप दूसरा घर ताकने लगे।

युवती रोने लगी। मातादीन ने इधर-उधर ताककर उसका हाथ पकड़ लिया और समझाने लगा—तुम उसकी क्यों परवा करती हो झूना, चला गया चला जाने दो। तुम्हारे लिए किस बात की कमी है? रुपया-पैसा, गहना-कपड़ा जो चाहो मुझसे लो।

झुनिया ने धीरे से हाथ छुड़ा लिया और पीछे हटकर बोली—सब तुम्हारी दया है महराज! मैं तो कहीं की न रही। घर से भी गई, यहाँ से भी गई, न माया मिली, न राम ही हाथ आये। दुनिया का रंग-ढंग न जानती थी। जिसकी मीठी-मीठी बातें सुनकर जाल में फँस गई।

मातादीन ने गोबर की बुराई करनी शुरू की—वह तो निरा लफंगा है, घर का न घाट का। जब देखो, माँ-बाप से लड़ाई। कहीं पैसा पा जाय, चट जुआ खेल डालेगा, चरस और गाँजे में उसकी जान बसती थी, सोहदों के साथ घूमना, बहू-बेटियों को छेड़ना, यही उसका काम था। थानेदार साहब बदमासी में उसका चालान करनेवाले थे, हम लोगों ने बहुत खुशामद की तब जाके छोड़ा। दूसरों के खेत-खलिहान से अनज उड़ा लिया करता था। कई बार तो खुद उसी ने पकड़ा था ; पर गाँव-घर समझकर छोड़ दिया।

सोना ने बाहर आकर कहा— भाभी, अम्मा ने कहा है, अनाज निकालकर धूप

में डाल दो, नहीं तो चोकर बहुत निकलेगा। पण्डित ने जैसे बखार में पानी डाल दिया हो।

मातादीन ने अपनी सफ़ाई दी—मालूम होता है, तेरे घर बरसात नहीं हुई। चौमासे में लकड़ी तक गली हो जाती है, अनाज तो अनाज ही है।

यह कहता हुआ वह बाहर चला। सोना ने आकर उसका खेल बिगाड़ दिया।

सोना ने झुनिया से पूछा—मातादीन क्या करने आये थे?

झुनिया ने माथा सिकोड़कर कहा—पगहिया माँग रहे थे। मैंने कह दिया, यहाँ पगहिया नहीं है।

'यह सब बहाना है। बड़ा ख़राब आदमी है।'

'मुझे तो बड़ा भला आदमी लगता है। क्या ख़राबी है उसमें?'

'तुम नहीं जानतीं? सिलिया चमारिन को रखे हुए हैं।'

'तो इसी से ख़राब आदमी हो गया?'

'और काहे से आदमी ख़राब कहा जाता है?'

'तुम्हारे भैया भी तो मुझे लाये हैं। वह भी ख़राब आदमी हैं?'

सोना ने इसका जवाब न देकर कहा—मेरे घर में फिर कभी आयेगा, तो दुत्कार दूँगी।

'और जो उससे तुम्हारा ब्याह हो जाय?'

सोना लजा गई—तुम तो भाभी गाली देती हो।

'क्यों, इसमें गाली की क्या बात है?'

'मुझसे बोले, तो मुँह झुलस दूँ।'

'तो क्या तुम्हारा ब्याह किसी देवता से होगा। गाँव में ऐसा सुन्दर सजीला जवान दूसरा कौन है?'

'तो तुम चली जाओ उसके साथ, सिलिया से लाख दर्जे अच्छी हो।'

'मैं क्यों चली जाऊँ? मैं तो एक के साथ चली आई। अच्छा है या बुरा।'

'तो मैं भी जिसके साथ ब्याह होगा, उसके साथ चली जाऊँगी, अच्छा या बुरा।'

'और जो किसी बूढ़े के साथ ब्याह हो गया?'

सोना हँसी—मैं उसके लिए नरम-नरम रोटियाँ पकाऊँगी, उसकी दवाइयाँ कूटूँ-छानूँगी उसे हाथ पकड़कर उठाऊँगी, जब मर जायगा, तो मुँह ढाँपकर रोऊँगी।

'और जो किसी जवान के साथ हुआ!'

'तब तुम्हारा सिर, हाँ नहीं तो!'

'अच्छा बताओ, तुम्हें बूढ़ा अच्छा लगता है, कि जवान?'

'जो अपने को चाहे वही जवान है, जो न चाहे वही बूढ़ा है।'

'दैव करे, तुम्हारा ब्याह किसी बूढ़े से हो जाय तो देखूँ तुम उसे कैसे चाहती हो। तब मनाओगी, किसी तरह यह निगोड़ा मर जाय, तो किसी जवान को लेकर बैठ जाऊँ!'

'मुझे तो उस बूढ़े पर दया आवे।'

इस साल इधर शक्कर का एक मिल खुल गया था। उसके कारिन्दे और दलाल गाँव-गाँव घूमकर किसानों की खड़ी ऊख मोल ले लेते थे। वही मिल था, जो मिस्टर खन्ना ने खोला था। एक दिन उसका कारिन्दा इस गाँव में भी आया। किसानों ने जो उससे भाव-ताव किया, तो मालूम हुआ, गुड़ बनाने में भी कोई बचत नहीं है; जब घर में ऊख पेरकर भी वही दाम मिलता है, तो पेरने की मेहनत क्यों उठाई जाय? सारा गाँव खड़ी ऊख बेचने को तैयार हो गया; अगर कुछ कम भी मिले, परवाह नहीं। तत्काल तो मिलेगा! किसी को बैल लेना था, किसी को बाक़ी चुकाना था, कोई महाजन से गला छुड़ाना चाहता था। होरी को बैलों की गोइँ लेनी थी। अबकी ऊख की पैदावार अच्छी न थी; इसलिए यह डर भी था कि माल न पड़ेगा। और जब गुड़ के भाव मिल की चीनी मिलेगी, तो गुड़ लेगा ही कौन? सभी ने बयाने ले लिये। होरी को कम से कम सौ रुपए की आशा थी। इसमें एक मामूली गोइँ आ जायगी; लेकिन महाजनों को क्या करे; दातादीन, मँगरू, दुलारी, झिंगुरीसिंह सभी तो प्राण खा रहे थे। अगर महाजनों को देने लगेगा तो सौ रुपए सूद-भर को भी न होंगे! कोई ऐसी जुगुत न सूझती थी कि ऊख के रुपए हाथ आ जायँ और किसी को ख़बर न हो। जब बैल घर आ जायँगे, तब कोई क्या कर लेगा। गाड़ी लदेगी तो सारा गाँव देखेगा ही, तो तौल पर जो रुपए मिलेंगे, वह सबको मालूम हो जायँगे। संभव है मँगरू और दातादीन हमारे साथ-साथ रहें। इधर रुपए मिले, उधर उन्होंने गर्दन पकड़ी।

शाम को गिरधर ने पूछा—तुम्हारी ऊख कब तक जायगी होरी काका?

होरी ने झाँसा दिया—अभी तो कुछ ठीक नहीं है भाई, तुम कब तक ले जाओगे?

गिरधर ने भी झाँसा दिया—अभी तो मेरा भी कुछ ठीक नहीं है काका!

और लोग भी इसी तरह की उड़नघाइयाँ बताते थे, किसी को किसी पर विश्वास न था। झिंगुरीसिंह के सभी रिनियाँ थे, और सबकी यही इच्छा थी कि झिंगुरीसिंह के हाथ रुपए न पड़ने पायें, नहीं वह सबका सब हजम कर जायगा। और जब दूसरे दिन असामी फिर रुपए माँगने जायगा तो नया कागज़, नया नज़राना, नई तहरीर। दूसरे दिन शोभा आकर बोला—दादा, कोई ऐसा उपाय करो कि झिंगुरी को हैज़ा हो जाय। ऐसा गिरे कि फ़िर न उठे।

होरी ने मुस्कराकर कहा—क्यों, उसके बाल-बच्चे नहीं हैं।

'उसके बाल-बच्चों को देखें कि अपने बाल-बच्चों को देखें? वह तो दो-दो मेहरियों को आराम से रखता है, यहाँ तो एक को रूखी रोटी भी मयस्सर नहीं, सारी जमा ले लेगा। एक पैसा भी घर न लाने देगा।'

'मेरी तो हालत और भी ख़राब है भाई, अगर रुपए हाथ से निकल गये, तो तबाह हो जाऊँगा। गोईं के बिना तो काम न चलेगा।'

'अभी तो दो-तीन दिन ऊख ढोते लगेंगे। ज्यों ही सारी ऊख पहुँच जाय, जमादार से कहें कि भैया कुछ ले ले; मगर ऊख चट-पट तौल ले, दाम पीछे देना। इधर झिंगुरी से कह देंगे, अभी रुपए नहीं मिले।

होरी ने विचार करके कहा—झिंगुरीसिंह हमसे-तुमसे कई गुना चतुर है सोभा! जाकर मुनीम से मिलेगा और उसी से रुपए ले लेगा। हम-तुम ताकते रह जायँगे। जिस खन्ना बाबू का मिल है, उन्हीं खन्ना बाबू की महाजनी कोठी भी है। दोनों एक हैं।

शोभा निराश होकर बोला—न जाने इन महाजनों से कभी गला छूटेगा कि नहीं।

होरी बोला—इस जनम में तो कोई आसा नहीं है भाई! हम राज नहीं चाहते, भोग-विलास नहीं चाहते, खाली मोटा-झोटा पहनना, और मोटा-झोटा खाना और मरजाद के साथ रहना चाहते हैं। वह भी नहीं सधता।

शोभा ने धूर्तता के साथ कहा—मैं तो दादा, इन सबों को अबको चकमा दूँगा। जमादार को कुछ दे-दिलाकर इस बात पर राज़ी कर लूँगा कि रुपए के लिए हमें ख़ूब दौड़ायें। झिंगुरी कहाँ तक दौड़ेंगे।

होरी ने हँसकर कहा—यह सब कुछ न होगा भैया! कुसल इसी में है कि झिंगुरीसिंह के हाथ-पाँव जोड़ो। हम जाल में फँसे हुए हैं, जितना ही फड़फड़ाओगे, उतना ही और जकड़ते जाओगे।

'तुम तो दादा, बूढ़ों की-सी बातें कर रहे हो। कठघरे में फँसे बैठे रहना तो कायरता है। फन्दा और जकड़ जाय बला से; पर गला छुड़ाने के लिए ज़ोर तो लगाना ही पड़ेगा। यही तो होगा झिंगुरी घर-द्वार नीलाम करा लेंगे; करा लें नीलाम! मैं तो चाहता हूँ कि हमें कोई रुपए न दे हमें भूखों मरने दे, लातें खाने दे, एक पैसा भी उधार न दे; लेकिन पैसावाले उधार न दें तो सूद कहाँ से पायें! एक हमारे ऊपर दावा करता है, तो दूसरा हमें कुछ कम सूद पर रुपए उधार देकर अपने जाल में फँसा लेता है। मैं तो उसी दिन रुपए लेने जाऊँगा, जिस दिन झिंगुरी कहीं चला गया होगा।

होरी का मन भी विचलित हुआ—हाँ, यह ठीक है।

'ऊख तुलवा देंगे। रुपए दाँव-घात देखकर ले आयँगे।'

'बस-बस, यही चाल चलो।'

दूसरे दिन प्रातःकाल गाँव के कई आदमियों ने ऊख काटना शुरू की। होरी भी अपने खेत में गँड़ासा लेकर पहुँचा। उधर से शोभा भी उसकी मदद को आ गया। पुनिया, झुनिया, धनिया, सोना सभी खेत में जा पहुँचीं। कोई ऊख काटता था, कोई छीलता था, कोई पूले बाँधता था। महाजनों ने जो ऊख कटते देखी, तो पेट में चूहे दौड़े; एक तरफ़ से दुलारी दौड़ी दूसरी तरफ़ से मँगरू साह, तीसरी ओर से मातादीन और पटेश्वरी और झिंगुरी के पियादे। दुलारी हाथ-पाँव में मोटे-मोटे चाँदी के कड़े पहने, कानों में सोने का झूमक, आँखों में काजल लगाये, बूढ़े यौवन को रँगे रँगाये आकर बोली—पहले मेरे रुपए दे दो तब ऊख काटने दूँगी। मैं जितना ही गम खाती हूँ, उतना ही तुम सेर होते हो। दो साल से एक धेला सूद नहीं दिया, पचास रुपए तो मेरे सूद के होते हैं।

होरी ने घिघियाकर कहा—भाभी, ऊख काट लेने दो, इनके रुपए मिलते हैं,

तो जितना हो सकेगा तुमको भी दूँगा। न गाँव छोड़कर भागा जाता हूँ, न इतनी जल्दी मौत ही आई जाती है। खेत में खड़ी-खड़ी तो ऊख रुपए न देगी।

दुलारी ने उसके हाथ से गँड़ासा छीनकर कहा—नीयत इतनी खराब हो गई है तुम लोगों की, तभी तो बरक्कत नहीं होती।

आज पाँच साल हुए, होरी ने दुलारी से तीस रुपए लिये थे। तीन साल में उसके सौ रुपए हो गये, तब स्टाम्प लिखा गया। दो साल में उसपर पचास रुपया सूद चढ़ गया था।

होरी बोला—सहुआइन, नीयत तो कभी खराब नहीं की, और भगवान् चाहेंगे, तो पाई-पाई चुका दूँगा—हाँ आजकल तंग हो गया हूँ, जो चाहे कह लो।

सहुआइन के जाते देर नहीं हुई कि मँगरू साह पहुँचे। काला रंग, तोंद कमर के नीचे लटकती हुई, दो बड़े-बड़े दाँत सामने जैसे काट खाने को निकले हुए, सिर पर टोपी, गले में चादर; उम्र अभी पचास से ज़्यादा नहीं; पर लाठी के सहारे चलते थे। गठिया का मरज़ हो गया था। खाँसी भी आती थी। लाठी टेककर खड़े हो गए और होरी को डाँट बताई—पहले हमारे रुपये दे दो होरी, तब ऊख काटो। हमने रुपए उधार दिये थे, खैरात नहीं थे। तीन-तीन साल हो गये, न सूद न ब्याज; मगर यह न समझना कि तुम मेरे रुपए हज़म कर जाओगे। मैं तुम्हारे मुर्दे से भी वसूल कर लूँगा।

शोभा मसखरा था। बोला—तब काहे को घबड़ाते हो साहजी, इनके मुर्दे ही से वसूल कर लेना। नहीं, एक-दो साल के आगे-पीछे दोनों ही सरग में पहुँचोगे। वहीं भगवान् के सामने अपना हिसाब चुका लेना।

मँगरू ने शोभा को बहुत बुरा-भला कहा—जमामार, बेईमान आदि। लेने की बेर तो दुम हिलाते हो, जब देने की बारी आती है, तो गुर्राते हो। घर बिकवा लूँगा; बैल-बधिये नीलाम करा लूँगा।

शोभा ने फिर छेड़ा—अच्छा, ईमान से बताओ साह, कितने रुपए दिये थे, जिसके अब तीन सौ रुपए हो गये हैं?

'जब तुम साल के साल सूद न दोगे, तो आप ही बढ़ेंगे।'

'पहले-पहल कितने रुपए दिये थे तुमने? पचास ही तो!'

'कितने दिन हुए, यह भी तो देख!'

'पाँच-छः साल हुए होंगे ?'

'दस साल हो गये पूरे, ग्यारहवाँ जा रहा है।'

'पचास रुपए के तीन सौ रुपए लेते तुम्हें ज़रा भी सरम नहीं आती !'

'सरम कैसी, रुपये दिये हैं कि खैरात माँगते हैं !'

होरी ने इन्हें भी चिरौरी-मिनती करके बिदा किया। दातादीन ने होरी के साझे में खेती की थी। बीज देकर आधी फसल ले लेंगे। इस वक्त कुछ छेड़-छाड़ करना नीति-विरुद्ध था। झिंगुरीसिंह ने मिल के मैनेजर से पहले ही सब कुछ कह-सुन रखा था। उनके प्यादे गाड़ियों पर ऊख लदवाकर नाव पर पहुँचा रहे थे। नदी गाँव से आध मील पर थी। एक गाड़ी दिन-भर में सात-आठ चक्कर कर लेती थी। और नाव एक खेवे में पचास गाड़ियों का बोझ लाद लेती थी। इस तरह बहुत किफ़ायत पड़ती थी। इस सुविधा का इन्तज़ाम करके झिंगुरीसिंह ने सारे इलाके को एहसान से दबा दिया था।

तौल शुरू होते ही झिंगुरीसिंह ने मिल के फाटक पर आसन जमा लिये। हरएक की ऊख तौलाते थे, दाम का पुरजा लेते थे, खज़ाँची से रुपये वसूल करते थे और अपना पावना काटकर असामी को दे देते थे। असामी कितना ही रोये, चीखे, किसी की न सुनते थे। मालिक का यही हुक्म था। उनका क्या बस।

होरी को एक सौ बीस रुपए मिले। उसमें से झिंगुरीसिंह ने अपने पूरे रुपए सूद समेत काटकर कोई पचीस रुपए होरी के हवाले किये।

होरी ने रुपए की ओर उदासीन भाव से देखकर कहा—यह लेकर मैं क्या करूँगा ठाकुर, यह भी तुम्हीं ले लो। मेरे लिए मजूरी बहुत मिलेगी।

झिंगुरी ने पचीसों रुपए जमीन पर फेंककर कहा—लो या फेंक दो, तुम्हारी खुशी। तुम्हारे कारन मालिक की घुड़कियाँ खाईं और अभी राय साहब सिर पर सवार हैं कि डाँड़ के रुपए अदा करो। तुम्हारी गरीबी पर दया करके इतने रुपए दिये देता हूँ, नहीं एक धेला भी न देता। अगर राय साहब ने सख्ती की तो उलटे और घर से देने पड़ेंगे

होरी ने धीरे से रुपए उठा लिये और बाहर निकला कि नोखेराम ने ललकारा। होरी ने जाकर पचीसों रुपए हाथ पर रख दिये, और बिना कुछ कहे जल्दी से

भाग गया। उसका सिर चक्कर खा रहा था। शोभा को इतने ही रुपए मिले थे। वह बाहर निकला, तो पटेश्वरी ने घेरा।

शोभा बदल पड़ा। बोला मेरे पास रुपए नहीं हैं; तुम्हें जो कुछ करना हो, कर लो।

पटेश्वरी ने गर्म होकर कहा—ऊख बेची है कि नहीं?

'हाँ, बेची है।'

'तुम्हारा यही वादा तो था कि ऊख बेचकर रुपया दूँगा?'

'हाँ, था तो।'

'फिर क्यों नहीं देते। और सब लोगों को दिये हैं कि नहीं?'

'हाँ, दिये हैं।'

'तो मुझे क्यों नहीं देते?'

'मेरे पास अब जो कुछ बचा है, वह बाल-बच्चों के लिए है।'

पटेश्वरी ने धिरै कर कहा—तुम रुपए दोगे सोभा, और हाथ जोड़कर और आज दो। हाँ, अभी जितना चाहो, बहक लो। एक रपट में जाओगे छः महीने को, पूरे छः महीने को, न एक दिन बेस न एक दिन कम। यह जो नित्य जुआ खेलते हो, वह एक रपट में निकल जायगा। मैं ज़मींदार या महाजन का नौकर नहीं हूँ, सरकार बहादुर का नौकर हूँ, जिसका दुनिया भर में राज है और तुम्हारे महाजन और ज़मींदार दोनों का मालिक है।

पटेश्वरीलाल आगे बढ़ गये। शोभा और होरी कुछ दूर चुपचाप चले। मानो इस धिक्कार ने उन्हें संज्ञाहीन कर दिया हो। तब होरी ने कहा—सोभा, इसके रुपए दे दो। समझ लो, ऊख में आग लग गई थी। मैंने भी यही सोचकर, मन को समझाया है।

शोभा ने आहत कंठ से कहा—हाँ, दे दूँगा दादा! न दूँगा तो जाऊँगा कहाँ।

सामने से गिरधर ताड़ी पिये, झूमता चला आ रहा था। दोनों को देखकर बोला—झिंगुरिया ने सारे का सारा ले लिया होरी काका! चबेना को भी एक पैसा न छोड़ा। हत्यारा कहीं का। रोया गिड़गिड़ाया; पर इस पापी को दया न आई।

शोभा ने कहा—ताड़ी तो पिये हुए हो, उस पर कहते हो, एक पैसा भी न छोड़ा!

गिरधर ने पेट दिखाकर कहा—साँझ हो गई, जो पानी की बूँद भी कंठ तले गई हो, तो गो-मांस बराबर। एक इकन्नी मुँह में दबा ली थी। उसकी ताड़ी पी ली। सोचा, साल-भर पसीना गारा है, तो एक दिन ताड़ी तो पी लूँ; मगर सच कहता हूँ, नसा नहीं है। एक आने में क्या नसा होगा। हाँ झूम रहा हूँ, जिसमें लोग समझें खूब पिये हुए है। बड़ा अच्छा हुआ काका, बेबाकी हो गई। बीस लिये, उसके एक सौ साठ भरे, कुछ हद है!

होरी घर पहुँचा, तो रूपा पानी लेकर दौड़ी, सोना चिलम भर लाई, धनिया ने चबेना और नमक लाकर रख दिया और सभी आशा भरी आँखों से उसकी ओर ताकने लगीं झुनिया भी चौखट पर आ खड़ी हुई थी। होरी उदास बैठा था। कैसे मुँह-हाथ धोये, कैसे चबेना खाये। ऐसा लज्जित और ग्लानित था, मानो हत्या करके आया हो।

धनिया ने पूछा—कितने को तौल हुई?

'एक सौ बीस मिले: पर सब वहीं लुट गये! धेला भी न बचा।'

धनिया सिर से पाँव तक भस्म हो उठी। मन में ऐसा उद्वेग उठा कि अपना मुँह नोच ले। बोली—तुम जैसा घामड़ आदमी भगवान् ने क्यों रचा, कहीं मिलते तो उनसे पूछती। तुम्हारे साथ सारी जिन्दगी तलख हो गई, भगवान् मौत भी नहीं दे देते कि जंजाल से जान छूटे। उठाकर सारे रुपये बहनोइयों को दे दिये। अब और कौन आमदनी है, जिससे गोईं आयेगी। हल में क्या मुझे जोतोगे, या आप जुतोगे? मैं कहती हूँ, तुम बूढ़े हुए, तुम्हें इतनी अक्कल भी नहीं आई कि गोईं-भर को रुपये तो निकाल लेते! कोई तुम्हारे हाथ से छीन थोड़े ही लेता। पूस की यह ठंढ और किसी की देह पर लत्ता नहीं। ले जाओ सबको नदी में डुबा दो। सिसक-सिसककर मरने से तो एक दिन मर जाना फिर भी अच्छा है। कब तक पुआल में घुसकर रात काटेंगे और पुआल में घुस भी लें, तो पुआल खाकर रहा तो न जायगा! तुम्हारी इच्छा हो घास ही खाओ, हमसे तो घास न खाई जायगी।

यह कहते-कहते वह मुस्करा पड़ी। इतनी देर में उसकी समझ में यह बात आने लगी थी कि महाजन जब सिर पर सवार हो जाय, और अपने हाथ में रुपये हों और महाजन जानता हो कि इसके पास रुपये हैं, तो असामी कैसे अपनी जान बचा सकता है!

होरी सिर नीचा किये अपने भाग्य को रो रहा था। धनिया का मुस्कराना उसे न दिखाई दिया। बोली—मजूरी तो मिलेगी। मजूरी करके खायँगे।

धनिया ने पूछा—कहाँ है इस गाँव में मजूरी? और कौन मुँह लेकर मजूरी करोगे? महतो नहीं कहलाते!

होरी ने चिलम के कई कश लगाकर कहा—मजूरी करना कोई पाप नहीं है। मजूर बन जाय, तो किसान हो जाता है। मजूरी करना भाग्य में न होता तो यह सब बिपत क्यों आती? क्यों गाय मरती? क्यों लड़का नालायक निकल जाता?

धनिया ने बहू और बेटियों की ओर देखकर कहा—तुम सब की सब क्यों घेरे खड़ी हो, जाकर अपना-अपना काम देखो। वह और हैं जो हाट-बाजार से आते हैं, तो बाल-बच्चों के लिए दो-चार पैसे की कोई चीज़ लिये आते हैं। यहाँ तो यह लोभ लग रहा होगा कि रुपए तुड़ायें कैसे? एक कम न हो जायगा। इसी से इनकी कमाई में बरकत नहीं होती। जो खर्च करते हैं उन्हें मिलता है। जो न खा सकें, न पहन सकें, उन्हें रुपए मिले ही क्यों? ज़मीन में गाड़ने के लिए?

होरी ने खिलखिलाकर पूछा कहाँ है वह गाड़ी हुई थाती?

'जहाँ रखी है, वहीं होगी। रोना तो यही है कि यह जानते हुए भी पैसों के लिए मरते हो! चार पैसे की कोई चीज़ लाकर बच्चों के हाथ पर रख देते तो पानी में न पड़ जाते। झिंगुरी से तुम कह देते कि एक रुपया मुफ्त दे दो, नहीं मैं तुम्हें एक पैसा न दूँगा, जाकर अदालत में लेना, तो वह ज़रूर दे देता।'

होरी लज्जित हो गया। अगर वह झल्लाकर पच्चीसों रुपए नोखेराम को न दे देता, तो नोखे क्या कर लेते। बहुत होता बकाया पर दो-चार आना सूद ले लेते; मगर अब तो चूक हो गई!

झुनिया ने भीतर जाकर सोना से कहा—मुझे तो दादा पर बड़ी दया आती है। बेचारे दिन-भर के थके-माँदे घर आये, तो अम्माँ कोसने लगीं। महाजन गला दबाये था, तो क्या करते बेचारे!

'तो बैल कहाँ से आयेंगे?'

'महाजन अपने रुपए चाहता है। उसे तुम्हारे घर के दुखड़ों से क्या मतलब?'

'अम्माँ वहाँ होतीं, तो महाजन को मज़ा चखा देतीं। अभागा रोकर रह जाता।'

झुनिया ने दिल्लगी की—तो यहाँ रुपयों की कौन कमी है। तुम महाजन से ज़रा हँसकर बोल दो, देखो सारे रुपए छोड़ देता है कि नहीं। सच कहती हूँ, दादा का सारा दुख-दलिदर दूर हो जाय।

सोना ने दोनों हाथों से उसका मुँह दबाकर कहा—बस चुप ही रहना, नहीं कहे देती हूँ। अभी जाकर अम्माँ से मातादीन की सारी कलई खोल दूँ तो रोने लगो।

झुनिया ने पूछा—क्या कह दोगी अम्माँ से? कहने को कोई बात भी हो। जब वह किसी बहाने से घर में आ जाते हैं, तो क्या कह दूँ कि निकल जाओ, फिर मुझसे कुछ ले तो नहीं जाते। कुछ अपना ही दे जाते हैं। सिवाय मीठी-मीठी बातों के वह झुनिया से कुछ नहीं पा सकते। और अपनी मीठी बातों को महँगे दामों बेचना भी मुझे आता है। मैं ऐसी अनीली नहीं हूँ कि किसी के झाँसे में आ जाऊँ। हाँ जब जान जाऊँगी कि तुम्हारे भैया ने वहाँ किसी को रख लिया है, तब की नहीं चलाती तब मेरे ऊपर किसी का कोई बन्धन न रहेगा। अभी तो मुझे विश्वास है कि वह मेरे हैं और मेरे ही कारन उन्हें गली-गली ठोकर खाना पड़ रहा है। हँसने-बोलने की बात न्यारी है, पर मैं उनसे विश्वासघात न करूँगी जो एक से दो का हुआ वह किसी का नहीं रहता।

शोभा ने आकर होरी को पुकारा और पटेश्वरी के रुपये उसके हाथ में रखकर बोला—भैया, तुम जाकर ये रुपए लाला को दे दो। मुझे उस घड़ी न जाने क्या हो गया था

होरी रुपए लेकर उठा ही था कि शंख की ध्वनि कानों में आई। गाँव के उस सिरे पर ध्यानसिंह नाम के एक ठाकुर रहते थे। पल्टन में नौकर थे और कई दिन हुए, दस साल के बाद रजा लेकर आये थे। बगदाद, अदन, सिंगापुर, बर्मा, चारों तरफ़ घूम चुके थे। अब ब्याह करने की धुन में थे। इसी लिए पूजा-पाठ करके ब्राह्मणों को प्रसन्न रखना चाहते थे।

होरी ने कहा—जान पड़ता है, सातों अध्याय पूरे हो गये। आरती हो रही है।

शोभा बोला हाँ, जान तो पड़ता है, चलो आरती ले लो।

होरी ने चिन्तित-भाव से कहा—तुम जाओ, मैं थोड़ी देर में आता हूँ।

ध्यानसिंह जिस दिन आये थे, सबके घर सेर-सेर भर मिठाई बैना भेजी थी।

होरी से जब कभी रास्ते में मिल जाते, कुशल पूछते। उनकी कथा में जाकर आरती में कुछ न देना अपमान की बात थी।

आरती का थाल उन्हीं के हाथ में होगा। उनके सामने होरी कैसे खाली हाथ आरती ले लेगा! इससे तो कहीं अच्छा है कि वह कथा में जाये ही नहीं। इतने आदमियों में उन्हें क्या याद आयेगी कि होरी नहीं आया। कोई रजिस्टर लिये तो बैठा नहीं है कि कौन आया, कौन नहीं आया। वह जाकर खाट पर लेट रहा।

मगर उसका हृदय मसोस-मसोस कर रह जाता था। उसके पास एक पैसा भी नहीं है। ताँबे का एक पैसा! आरती के पुण्य और माहात्म्य का उसे बिलकुल ध्यान न था। बात थी केवल व्यवहार की। ठाकुरजी की आरती तो वह केवल श्रद्धा की भेंट देकर ले सकता था; लेकिन मर्यादा कैसे तोड़े, सबकी आँखों में हेठा कैसे बने।

सहसा वह उठ बैठा। क्यों मर्यादा की गुलामी करे। मर्यादा के पीछे आरती का पुण्य क्यों छोड़े। लोग हँसेंगे। हँस लें। उसे परवा नहीं है। भगवान् उसे कुकर्म से बचाये रखें और वह कुछ नहीं चाहता।

वह ठाकुर के घर की ओर चल पड़ा।

१८

खन्ना और गोविन्दी में नहीं पटती। क्यों नहीं पटती, यह बताना कठिन है। ज्योतिष के हिसाब से उनके ग्रहों में कोई विरोध है, हालाँकि विवाह के समय ग्रह और नक्षत्र खूब मिला लिये गये थे। काम-शास्त्र के हिसाब से इस अनबन का और कोई रहस्य हो सकता है, और मनोविज्ञानवाले कुछ और ही कारण खोज सकते हैं। हम तो इतना ही जानते हैं कि उनमें नहीं पटती। खन्ना धनवान् हैं, रसिक हैं, मिलनसार हैं, रूपवान् हैं, अच्छे खासे पढ़े-लिखे हैं और नगर के विशिष्ट पुरुषों में हैं। गोविन्दी अप्सरा न हो; पर रूपवती अवश्य है, गेहुआँ रंग, लज्जाशील आँखें जो एक बार सामने उठकर फिर झुक जाती हैं; कपोलों पर लाली न हो पर चिकनापन है, गात कोमल, अंग-विन्यास सुडौल, गोल बाहें, मुख पर एक प्रकार की अरुचि, जिसमें कुछ गर्व की झलक भी है, मानो संसार के व्यवहार और व्यापार को हेय समझती है। खन्ना के पास बिलास के ऊपरी साधनों की कमी नहीं, अव्वल दरजे का बँगला है, अव्वल दरजे का फर्निचर, अव्वल दरजे की कार, और अपार धन;

पर गोविन्दी की दृष्टि में जैसे इन चीज़ों का कोई मूल्य नहीं, इस खारे सागर में वह प्यासी पड़ी रहती है। बच्चों का लालन-पालन और गृहस्थी के छोटे-मोटे काम ही उसके लिए सब कुछ हैं। वह इतनी व्यस्त रहती है कि भोग की ओर उसका ध्यान ही नहीं आता। आकर्षण क्या वस्तु है और कैसे उत्पन्न हो सकता है, इसकी ओर उसने कभी विचार नहीं किया। वह पुरुष का खिलौना नहीं है न उसके भोग की वस्तु, फिर क्यों आकर्षण बनने की चेष्टा करे; अगर पुरुष उसका असली सौन्दर्य देखने के लिए आँखें नहीं रखता, कामिनियों के पीछे मारा-मारा फिरता है, तो यह उसका दुर्भाग्य है। वह उसी प्रेम और निष्ठा से पति की सेवा किये जाती है। जैसे द्वेष और मोह-जैसी भावनाओं को उसने जीत लिया है। और यह अपार सम्पत्ति तो जैसे उसकी आत्मा को कुचलती रहती है। इन आडम्बरों और पाखण्डों से मुक्त होने के लिए उसका मन सदैव ललचाया करता है। अपने सरल और स्वाभाविक जीवन में वह कितनी सुखी रह सकती थी, इसका वह नित्य स्वप्न देखती रहती है। तब क्यों मालती उसके मार्ग में आकर बाधक हो जाती, क्यों वेश्याओं के मुजरे होते, क्यों यह सन्देह और बनावट और अशान्ति उसके जीवन-पथ में काँटा बनती। बहुत पहले जब तक वह बालिका-विद्यालय में पढ़ती थी; उसे कविता का रोग लग गया था, जहाँ दुःख और वेदना ही जीवन का तत्त्व है, सम्पत्ति और विलास तो केवल इसलिए है कि उसकी होली जलाई जाय, जो मनुष्य को असत्य और अशान्ति की ओर ले जाता है। वह अब भी कभी-कभी कविता रचती थी; लेकिन सुनाये किसे? उसकी कविता केवल मन की तरंग या भावना की उड़ान न थी, उसके एक-एक शब्द में उसके जीवन की व्यथा और उसके आँसुओं की ठंढी जलन भरी होती थी—किसी ऐसे प्रदेश में जा बसने की लालसा जहाँ वह पाखण्ड और वासनाओं से दूर अपनी शान्त कुटिया में सरल आनन्द का उपभोग करे। खन्ना उसकी कविताएँ देखते, तो उनका मज़ाक उड़ाते और कभी-कभी फाड़कर फेंक देते। और सम्पत्ति की यह दीवार दिन-दिन ऊँची होती जाती थी और दम्पति को एक दूसरे से दूर और पृथक् करती जाती थी। खन्ना अपने गाहकों के साथ जितना ही मीठा और नम्र था, घर में उतना ही कटु और उद्दण्ड। अक्सर क्रोध में गोविन्दी को अपशब्द कह बैठता, शिष्टता उसके लिए केवल दुनिया को ठगने का एक साधन थी, मन का संस्कार नहीं। ऐसे अवसरों पर गोविन्दी अपने एकान्त कमरे में जा

बैठती और रात की रात रोया करती और खन्ना दिवानखाने में मुजरे सुनता या क्लब में जाकर शराबें उड़ाता। लेकिन यह सब कुछ होने पर भी खन्ना उसके सर्वस्व थे। वह दलित और अपमानित होकर भी खन्ना की लौंडी थी। उनसे लड़ेगी, जलेगी, रोयेगी; पर रहेगी उन्हीं की। उनसे पृथक् जीवन की वह कोई कल्पना ही न कर सकती थी।

आज मिस्टर खन्ना किसी बुरे आदमी का मुँह देखकर उठे थे। सवेरे ही पत्र खोला, तो उनके कई स्टाकों का दर गिर गया था, जिसमें उन्हें कई हज़ार की हानि होती थी। शक्कर मिल के मजूरों ने हड़ताल कर दी थी और दंगा-फ़साद करने पर आमादा थे। नफ़ा की आशा से चाँदी ख़रीदी थी; मगर उसका दर आज और भी ज़्यादा गिर गया था। राय साहब से जो सौदा हो रहा था और जिसमें उन्हें ख़ासे नफ़े की आशा थी, वह कुछ दिनों के लिए टलता हुआ जान पड़ता था। फिर रात को बहुत पी जाने के कारण इस वक्त सिर भारी था और देह टूट रही थी। उधर शोफ़र ने कार के इंजन में कुछ ख़राबी पैदा हो जाने की बात कही थी और लाहौर में उनके बैंक पर एक दिवानी मुकदमा दायर हो जाने का समाचार भी मिला था। बैठे मन में झुंझला रहे थ कि उसी वक्त गोविन्दी ने आकर कहा—भीष्म का ज्वर आज भी नहीं उतरा, किसी डाक्टर को बुला लो।

भीष्म उनका सबसे छोटा पुत्र था, और जन्म से ही दुर्बल होने के कारण उसे रोज़ एक-न-एक शिकायत बनी रहती थी। आज खाँसी है, तो कल बुख़ार, कभी पसली चल रही है, कभी हरे-पीले दस्त आ रहे हैं। दस महीने का हो गया था; पर लगता था पाँच-छः महीने का। खन्ना की धारणा हो गई थी कि यह लड़का बचेगा नहीं; इसलिए उसकी ओर से उदासीन रहते थे, पर गोविन्दी इसी कारण उसे और सब बच्चों से ज़्यादा चाहती थी।

खन्ना ने पिता के स्नेह का भाव दिखाते हुए कहा—बच्चों को दवाओं का आदि बना देना ठीक नहीं, और तुम्हें दवा पिलाने का मरज़ है। ज़रा कुछ हुआ और डाक्टर बुलाओ। एक रोज़ और देखो, आज तीसरा ही दिन तो है! शायद आज आप ही आप उतर जाय।

गोविन्दी ने आग्रह किया—तीन दिन से नहीं उतरा। घरेलू दवाएँ करके हार गई।

खन्ना ने कहा—अच्छी बात है, बुला देता हूँ, किसे बुलाऊँ ?

'बुला लो डाक्टर नाग को।'

'अच्छी बात है, उन्हीं को बुलाता हूँ, मगर यह समझ लो नाम हो जाने से कोई अच्छा डाक्टर नहीं हो जाता। नाग फ़ीस चाहे जितनी ले लें, उनकी दवा से किसी को अच्छा होते नहीं देखा। वह तो मरीज़ों को स्वर्ग भेजने के लिए मशहूर हैं।'

'तो जिसे चाहो बुला लो, मैंने तो नाग को इसलिए कहा था कि वह कई बार आ चुके हैं।'

'मिस मालती को क्यों न बुला लूँ। फ़ीस भी कम और बच्चों का हाल लेडी डाक्टर जैसा समझेगी, कोई मर्द डाक्टर नहीं समझ सकता।'

गोविन्दी ने जलकर कहा—मैं मिस मालती को डाक्टर नहीं समझती।

खन्ना ने भी तेज़ आँखों से देखकर कहा—तो वह इंग्लैंड घास खोदने गई थीं, और हज़ारों आदमियों को आज जीवन-दान दे रही हैं यह सब कुछ नहीं है ?

'होगा, मुझे उस पर भरोसा नहीं है। वह मर्दों के दिल का इलाज कर लें। और किसी की दवा उनके पास नहीं है।'

बस ठन गई। खन्ना गरजने लगे। गोविन्दी बरसने लगी। उनके बीच में मालती का नाम आ जाना मानो लड़ाई का अल्टिमेटम था।

खन्ना ने सारे काग़ज़ों को ज़मीन पर फेंककर कहा—तुम्हारे साथ ज़िन्दगी तलख़ हो गई।

गोविन्दी ने नुकीले स्वर में कहा—तो मालती से ब्याह कर लो न! अभी क्या बिगड़ा है, अगर वहाँ दाल गले।

'तुम मुझे क्या समझती हो ?'

'यही कि मालती तुम जैसों को अपना गुलाम बनाकर रखना चाहती है, पति बनाकर नहीं।'

'तुम्हारी निगाह में मैं इतना ज़लील हूँ!'

और उन्होंने इसके विरुद्ध प्रमाण देना शुरू किया। मालती जितना उनका आदर करती है, उतना शायद ही किसी का करती हो। राय साहब और राजा

साहब को मुँह तक नहीं लगाती; लेकिन उनसे एक दिन भी मुलाक़ात न हो, तो शिकायत करती है...

गोविन्दी ने इन प्रमाणों को एक फूँक में उड़ा दिया—इसी लिए कि वह तुम्हें सबसे बड़ा आँखों का अन्धा समझती है, दूसरों को इतनी आसानी से बेवकूफ़ नहीं बना सकती।

खन्ना ने डींग मारी वह चाहें तो आज मालती से विवाह कर सकते हैं। आज, अभी...

मगर गोविन्दी को बिलकुल विश्वास नहीं है—तुम सात जन्म नाक रगड़ो, तो भी वह तुमसे विवाह न करेगी। तुम उसके टट्टू हो, तुम्हें घास खिलायेगी, कभी-कभी तुम्हारा मुँह सहलायेगी, तुम्हारे पुठ्ठों पर हाथ फेरेगी; लेकिन इसी लिए कि तुम्हारे ऊपर सवारी गाँठे। तुम्हारे जैसे एक हज़ार बुद्धू उसकी जेब में हैं।

गोविन्दी आज बहुत बढ़ जाती थी। मालूम होता है, आज वह उनसे लड़ने पर तैयार होकर आई है डाक्टर के बुलाने का तो केवल बहाना था। खन्ना अपनी योग्यता और दक्षता और पुरुषत्व पर इतना बड़ा आक्षेप कैसे सह सकते थे!

'तुम्हारे ख़याल में मैं बुद्धू और मूर्ख हूँ तो ये हज़ारों क्यों मेरे द्वार पर नाक रगड़ते हैं? कौन राजा या ताल्लुक़दार है, जो मुझे दण्डवत् नहीं करता। सैकड़ों को उल्लू बनाकर छोड़ दिया!'

'यही तो मालती की विशेषता है कि जो औरों को सीधे अस्तुरे से मूँड़ता है, उसे वह उल्टे छुरे से मूँड़ती है।'

'तुम मालती की चाहे जितनी बुराई करो, तुम उसके पाँव की धूल भी नहीं हो।'

'मेरी दृष्टि में वह वेश्याओं से भी गई बीती है; क्योंकि वह परदे के आड़ से शिकार खेलती है।'

दोनों ने अपने-अपने अग्नि-बाण छोड़ दिये। खन्ना ने गोविन्दी को चाहे दूसरी कठोर से कठोर बात कही होती, उसे इतनी बुरी न लगती; पर मालती से उसकी यह घृणित तुलना उसकी सहिष्णुता के लिए भी असह्य थी। गोविन्दी ने भी खन्ना को चाहे जो कुछ कहा होता, वह इतने गर्म न होते; लेकिन मालती का यह अपमान वह नहीं सह सकते। दोनों एक दूसरे के कोमल स्थलों से परिचित थे। दोनों के

निशाने ठीक बैठे और दोनों तिलमिला उठे। खन्ना की आँखें लाल हो गईं। गोविन्दी का मुँह लाल हो गया। खन्ना आवेश में उठे और उसके दोनों कान पकड़कर ज़ोर से ऐंठा और तीन-चार तमाचे लगा दिये। गोविन्दी रोती हुई अन्दर चली गई।

ज़रा देर में डाक्टर नाग आये और सिविल सर्जन मि० टाड आये और भिषगाचार्य नीलकण्ठ शास्त्री आये; पर गोविन्दी बच्चे को लिये अपने कमरे में बैठी रही। किसने क्या कहा, क्या तशख़ीस की, उसे कुछ मालूम नहीं। जिस विपत्ति की कल्पना वह कर रही थी, वह आज उसके सिर पर आ गई। खन्ना ने आज जैसे उससे नाता तोड़ लिया, जैसे उसे घर से खदेड़कर द्वार बन्द कर लिया। जो रूप का बाज़ार लगाकर बैठती है, जिसकी परछाईं भी वह अपने ऊपर नहीं पड़ने देना चाहती...वह उस पर परोक्ष रूप से शासन करे। यह न होगा। खन्ना उसके पति हैं, उन्हें उसको समझाने-बुझाने का अधिकार है, उनकी मार को भी वह शिरोधार्य कर सकती है; पर मालती का शासन! असंभव! मगर बच्चे का ज्वर जब तक शान्त न हो जाय, वह हिल नहीं सकती। आत्माभिमान को भी कर्तव्य के सामने सिर झुकाना पड़ेगा।

दूसरे दिन बच्चे का ज्वर उतर गया था। गोविन्दी ने एक ताँगा मँगवाया और घर से निकली। जहाँ उसका इतना अनादर है, वहाँ अब वह नहीं रह सकती। आघात इतना कठोर था। कि बच्चों का मोह भी टूट गया था उनके प्रति उसका जो धर्म था, उसे वह पूरा कर चुकी है। शेष जो कुछ है. वह खन्ना का धर्म है। हाँ, गोद के बालक को वह किसी तरह नहीं छोड़ सकती। वह उसकी जान के साथ है। और इस घर से वह केवल अपने प्राण लेकर निकलेगी। और कोई चीज़ उसकी नहीं है। इन्हें यह दावा है कि वह उसका पालन करते हैं। गोविन्दी दिखा देगी कि वह उनके आश्रय से निकलकर भी ज़िन्दा रह सकती है। तीन बच्चे उस समय खेलने गये थे। गोविन्दी का मन हुआ, एक बार उन्हें प्यार कर ले; मगर वह कहीं भागी तो नहीं जाती! बच्चों को उससे प्रेम होगा, तो उसके पास आयेंगे, उसके घर में खेलेंगे। वह जब ज़रूरत समझेगी, ख़ुद बच्चों को देख आया करेगी। केवल खन्ना का आश्रय नहीं लेना चाहती।

साँझ हो गई थी। पार्क में रौनक़ थी। लोग हरी घास पर लेटे हवा का

आनन्द लूट रहे थे। गोविन्दी हज़रतगंज होती हुई चिड़ियाघर की तरफ़ मुड़ी हुई थी कि कार पर मालती और खन्ना सामने से आते हुए दिखाई दिये। उसे मालूम हुआ, खन्ना ने उसकी तरफ़ इशारा करके कुछ कहा और मालती मुसकराई। नहीं, शायद यह उसका भ्रम हो खन्ना मालती से उसकी निन्दा न करेंगे; मगर कितनी बेशर्म है। सुना इसकी अच्छी प्रैक्टिस है, घर की भी संपन्न है, फिर भी यों अपने को बेचती फिरती है। न जाने क्यों ब्याह नहीं कर लेती, लेकिन उससे ब्याह करेगा ही कौन! नहीं, यह बात नहीं। पुरुषों में भी ऐसे बहुत हो गये हैं; जो उसे पाकर अपने को धन्य मानेंगे; लेकिन मालती खुद तो किसी को पसन्द करे? और ब्याह में कौन-सा सुख रखा हुआ है। बहुत अच्छा करती है, जो ब्याह नहीं करती। अभी सब उसके गुलाम हैं। तब वह एक की लौंडी होकर रह जायगी। बहुत अच्छा कर रही है। अभी तो यह महाशय भी उसके तलवे चाटते हैं। कहीं इनसे ब्याह कर ले, तो उस पर शासन करने लगें; मगर इनसे वह क्या ब्याह करेगी! और समाज में दो-चार ऐसी स्त्रीयाँ बनी रहें, तो अच्छा। पुरुषों के कान तो गर्म करती रहें।

आज गोविन्दी के मन में मालती के प्रति बड़ी सहानुभूति उत्पन्न हुई वह मालती पर आक्षेप करके उसके साथ अन्याय कर रही है। क्या मेरी दशा देखकर उसकी आँखें न खुलती होंगी। विवाहित जीवन की दुर्दशा आँखों देखकर अगर वह इस जाल में नहीं फँसती, तो क्या बुरा करती है।

चिड़ियाघर में चारों तरफ़ सन्नाटा छाया हुआ था। गोविन्दी ने ताँगा रोक दिया और बच्चे को लिये हरी दूब की तरफ़ चली; मगर दो ही तीन क़दम चली थी कि चप्पल पानी में डूब गये। अभी थोड़ी देर पहले लान सींचा गया था और घास के नीचे पानी बह रहा था। उस उतावली में उसने पीछे न फिरकर एक क़दम और आगे रखा, तो पाँव कीचड़ में सन गये। उसने पाँव की ओर देखा। अब यहाँ पाँव धोने को पानी कहाँ से मिलेगा! उसकी सारी मनोव्यथा लुप्त हो गई। पाँव धोकर साफ़ करने की नई चिन्ता हुई। उसकी विचार-धारा रुक गई। जब तक पाँव न साफ़ हो जायँ, वह कुछ नहीं सोच सकती।

सहसा उसे एक लम्बा पाइप घास में छिपा नज़र आया, जिसमें से पानी बह रहा था। उसने जाकर पाँव धोये, चप्पल धोये, हाथ मुँह धोया, थोड़ा-सा पानी चुल्लू में

लेकर पिया और पाइप के उस पार सूखी ज़मीन पर जा बैठी। उदासी में मौत की याद तुरन्त आ जाती है। कहीं वह वहीं बैठे-बैठे मर जाय, तो क्या हो? ताँगेवाला तुरन्त जाकर खन्ना को ख़बर देगा खन्ना सुनते ही खिल उठेंगे; लेकिन दुनिया को दिखाने के लिए आँखों पर रूमाल रख लेंगे। बच्चों के लिए खिलौने और तमाशे मा से प्यारे हैं। यह है उनका जीवन, जिसके लिए कोई चार बूँद आँसू बहानेवाला भी नहीं। तब उसे वह दिन याद आया, जब उसकी सास जीती थी और खन्ना उड़ाकू न हुए थे। तब उसे सास का बात-बात पर बिगड़ना बुरा लगता था; आज उसे सास के उस क्रोध में स्नेह का रस घुला जान पड़ रहा था। तब वह सास से रूठ जाती थी और सास उसे दुलारकर मनाती थी। आज वह महीनों से रूठी पड़ी रहे, किसे परवा है। एकाएक उसका मन उड़कर माता के चरणों में जा पहुँचा। हाय! आज अम्मा होती, तो क्यों उसकी यह दुर्दशा होती! उसके पास और कुछ न था, स्नेह-भरी गोद तो थी, प्रेम भरा अञ्चल तो था, जिसमें मुँह डालकर वह रो लेती; लेकिन नहीं, वह रोयेगी नहीं। उस देवी को स्वर्ग में दुख न पहुँचायेगी. मेरे लिए वह जो कुछ ज़्यादा से ज़्यादा कर सकती थी, वह कर गई। मेरे कर्मों की साथिन होना तो उसके वश की बात न थी। और वह क्यों रोये? वह अब किसी के अधीन नहीं है, वह अपने गुजर-भर को कमा सकती है। वह कल ही गान्धी-आश्रम से चीज़ें लेकर बेचना शुरू कर देगी। शर्म किस बात की? यही तो होगा, लोग उँगली दिखाकर कहेंगे—वह जा रही है खन्ना की बीबी; लेकिन इस शहर में रहूँ क्यों। किसी दूसरे शहर में क्यों न चली जाऊँ, जहाँ मुझे कोई जानता हो न हो। दस-बीस रुपए कमा लेना ऐसा क्या मुश्किल है। अपने पसीने की कमाई तो खाऊँगी, फिर तो कोई मुझपर रोब न जमायेगा! यह महाशय इसी लिए तो इतना मिज़ाज करते हैं कि वह मेरा पालन करते हैं। मैं अब खुद अपना पालन करूँगी।

सहसा उसने मेहता को अपनी तरफ़ आते देखा। उसे उलझन हुई। इस वक्त वह संपूर्ण एकान्त चाहती थी। किसी से बोलने की इच्छा न थी; मगर यहाँ भी एक महाशय आ ही गये। उस पर बच्चा भी रोने लगा था।

मेहता ने समीप आकर विस्मय के साथ पूछा—आप इस वक्त यहाँ कैसे आ गईं?

गोविन्दी ने बालक को चुप करते हुए कहा—उसी तरह जैसे आप आ गये।

मेहता ने मुस्कराकर कहा मेरी बात न चलाइए। धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का। लाइए, मैं बच्चे को चुप कर दूँ।

'आपने यह कला कब सीखी?'

'अभ्यास करना चाहता हूँ इसकी परीक्षा जो होगी!'

'अच्छा! परीक्षा के दिन क़रीब आ गये?'

'यह तो मेरी तैयारी पर है। जब तैयार हो जाऊँगा बैठ जाऊँगा। छोटी-छोटी उपाधियों के लिए हम पढ़-पढ़कर आँखें फोड़ लिया करते हैं। यह तो जीवन-व्यापार की परीक्षा है।'

'अच्छी बात है, मैं भी देखूँगी, आप किस ग्रेड में पास होते हैं।'

यह कहते हुए उसने बच्चे को उनकी गोद में दे दिया उन्होंने बच्चे को कई बार उछाला, तो वह चुप हो गया। बालकों की तरह डींग मारकर बोले—देखा आपने, कैसा मन्तर के ज़ोर से चुप कर दिया। अब मैं भी कहीं से एक बच्चा लाऊँगा।

गोविन्दी ने विनोद किया· बच्चा ही लाइएगा या उसकी माँ भी?

मेहता ने विनोद-भरी निराशा से सिर हिलाकर कहा ऐसी औरत तो कहीं मिलती ही नहीं।

'क्यों, मिस मालती नहीं है? सुन्दरी, शिक्षित, गुणवती, मनोहारिणी? और आप क्या चाहते हैं!'

'मिस मालती में वह एक बात भी नहीं है, जो मैं अपनी स्त्री में देखना चाहता हूँ।'

गोविन्दी ने इस कुत्सा का आनन्द लेते हुए कहा—उनमें क्या बुराई है, सुनूँ? भौंरे तो हमेशा घेरे रहते हैं। मैंने सुना है, आजकल पुरुषों को ऐसी ही औरतें पसन्द आती हैं।

मेहता ने बच्चे के हाथों से अपनी मूँछों की रक्षा करते हुए कहा—मेरी स्त्री कुछ और ही ढंग की होगी। वह ऐसी होगी, जिसकी मैं पूजा कर सकूँगा।

गोविन्दी अपनी हँसी न रोक सकी—तो आप स्त्री नहीं, कोई प्रतिमा चाहते हैं। स्त्री तो ऐसी आपको शायद ही कहीं मि ।

'जी नहीं, ऐसी एक देवी तो इसी शहर में है।'

'सच! मैं भी उसके दर्शन करती, और उसी तरह बनने की चेष्टा करती।'

'आप उसे खूब जानती हैं। वह एक लखपती की पत्नी है, पर विलास को तुच्छ समझती है, जो उपेक्षा और अनादर सहकर भी अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होती, जो मातृत्व की वेदी पर अपने को बलिदान करती है, जिसके लिए त्याग ही सबसे बड़ा अधिकार है, और जो इस योग्य है कि उसकी प्रतिमा बनाकर पूजी जाय?'

गोविन्दी के हृदय में आनन्द का कम्पन हुआ। समझकर भी न समझने का अभिनय करती हुई बोली—ऐसी स्त्री की आप तारीफ़ करते हैं!

'वह आदर्श-नारी है और जो आदर्श-नारी हो सकती है, वही आदर्श-पत्नी भी हो सकती है।'

'लेकिन वह आदर्श इस युग के लिए नहीं है।'

'वह आदर्श सनातन है और अमर है। मनुष्य उसे विकृत करके अपना सर्वनाश कर रहा है।'

गोविन्दी का अन्तःकरण खिला जा रहा था। ऐसी फुरेरियाँ वहाँ कभी न उठी थीं। जितने आदमियों से उसका परिचय था, उनमें मेहता का स्थान सबसे ऊँचा था। उनके मुख से यह प्रोत्साहन पाकर वह मतवाली हुई जा रही थी।

उसी नशे में बोली—तो चलिए मुझे उनके दर्शन करा दीजिए।

मेहता ने बालक के कपोलों में मुँह छिपाकर कहा—वह तो यहीं बैठी हुई हैं।

'कहाँ, मैं तो नहीं देख रही हूँ।'

'उसी देवी से बोल रहा हूँ।'

गोविन्दी ने ज़ोर से क़हक़हा मारा—आपने आज मुझे बनाने की ठान ली, क्यों?

मेहता ने श्रद्धानत होकर कहा—देवीजी, आप मेरे साथ अन्याय कर रही हैं, और मुझसे ज़्यादा अपने साथ। संसार में ऐसे बहुत कम प्राणी हैं जिनके प्रति मेरे मन में श्रद्धा हो। उन्हीं में एक आप हैं। आपका धैर्य और त्याग और शील और प्रेम अनुपम है। मैं अपने जीवन में सबसे बड़े सुख की जो कल्पना कर सकता हूँ, वह आप-जैसी किसी देवी के चरणों की सेवा है। जिस नारीत्व को मैं आदर्श मानता हूँ, आप उसकी सजीव प्रतिमा हैं।

गोविन्दी की आँखों से आनन्द के आँसू निकल पड़े ; इस श्रद्धा-कवच को धारण करके वह किस विपत्ति का सामना न करेगी। उसके रोम-रोम से जैसे मृदु-संगीत की ध्वनि निकल पड़ी।

उसने अपने रमणीत्व का उल्लास मन में दबाकर कहा—आप दार्शनिक क्यों हुए मेहताजी? आपको तो कवि होना चाहिए था।

मेहता सरलता से हँसकर बोले क्या आप समझती हैं, बिना दार्शनिक हुए ही कोई कवि हो सकता है? दर्शन तो केवल बीच की मंज़िल है।

'तो अभी आप कवित्व के रास्ते में हैं ; लेकिन आप यह भी जानते हैं, कवि को संसार में कभी सुख नहीं मिलता?'

'जिसे संसार दुःख कहता है, वही कवि के लिए सुख है। धन और ऐश्वर्य, रूप और बल, विद्या और बुद्धि ये विभूतियाँ संसार को चाहे कितनी ही मोहित कर लें, कवि के लिए यहाँ ज़रा भी आकर्षण नहीं है, उसके मोद और आकर्षण की वस्तु तो बुझी हुई आशाएँ और मिटी हुई स्मृतियाँ और टूटे हुए हृदय के आँसू हैं। जिस दिन इन विभूतियों में उसका प्रेम न रहेगा, उस दिन वह कवि न रहेगा। दर्शन जीवन के इन रहस्यों से केवल विनोद करता है, कवि उनमें लय हो जाता है। मैंने आपकी दो-चार कविताएँ पढ़ी हैं और उनमें जितना पुलक, जितना कंपन, जितनी मधुर व्यथा, जितना रुलानेवाला उन्माद पाया है, वह मैं ही जानता हूँ। प्रकृति ने हमारे साथ कितना बड़ा अन्याय किया है कि आप-जैसी कोई दूसरी देवी नहीं बनाई।'

गोविन्दी ने हसरत भरे स्वर में कहा—नहीं मेहताजी, यह आपका भ्रम है। ऐसी नारियाँ यहाँ आपको गली-गली में मिलेंगी और मैं तो उन सबसे गई-बीती हूँ। जो स्त्री अपने पुरुष को प्रसन्न न रख सके, अपने को उनके मन की न बना सके, वह भी कोई स्त्री है! मैं तो कभी-कभी सोचती हूँ कि मालती से यह कला सीखूँ। जहाँ मैं असफल हूँ, वहाँ वह सफल है। मैं अपनों को भी अपना नहीं बना सकती। वह दूसरों को भी अपना बना लेती है। क्या यह उसके लिए श्रेय की बात नहीं?

मेहता ने मुँह बनाकर कहा—शराब अगर लोगों को पागल कर देती है, तो इसी लिए उसे क्या पानी से अच्छा समझा जाय, जो प्यास बुझाता है, जिलाता है और शान्त करता है?

गोविन्दी ने विनोद की शरण लेकर कहा—कुछ भी हो, मैं तो यह देखती हूँ,

कि पानी मारा-मारा फिरता है और शराब के लिए घर-द्वार बिक जाते हैं, और शराब जितनी ही तेज़ और नशीली हो, उतनी ही अच्छी। मैं तो सुनती हूँ, आप भी शराब के उपासक हैं?

गोविन्दी निराशा की उस दशा को पहुँच गई थी, जब आदमी को सत्य और धर्म में भी सन्देह होने लगता है; लेकिन मेहता का ध्यान उधर न गया। उनका ध्यान तो वाक्य के अन्तिम भाग पर ही जाकर चिमटकर रह गया। अपने मद सेवन पर उन्हें जितनी लज्जा और क्षोभ आज हुआ, उतना बड़े-बड़े उपदेश सुनकर भी न हुआ था। तर्कों का उनके पास जवाब था, और मुँह-तोड़; लेकिन इस मीठी चुटकी का उन्हें कोई जवाब न सूझा। वह पछताये कि कहाँ से कहाँ उन्हें शराब की युक्ति सूझी। उन्होंने ख़ुद मालती की शराब से उपमा दी थी। उनका वार अपने ही सिर पर पड़ा।

लज्जित होकर बोले—हाँ देवीजी, मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझमें यह आसक्ति है। मैं अपने लिए इसकी ज़रूरत बतलाकर और उसके विचारोत्तेजक गुणों के प्रमाण देकर गुनाह का उज्र न करूँगा, जो गुनाह से भी बदतर है। आज आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि शराब की एक बूँद भी कण्ठ के नीचे न जाने दूँगा।

गोविन्दी ने सन्नाटे में आकर कहा—यह आपने क्या किया मेहताजी! मैं ईश्वर से कहती हूँ, मेरा यह आशय न था। मुझे इसका दुःख है।

'नहीं, आपको प्रसन्न होना चाहिए कि आपने एक व्यक्ति का उद्धार कर दिया।'

'मैंने आपका उद्धार कर दिया! मैं तो ख़ुद आपसे अपने उद्धार की याचना करने आ रही हूँ।'

'मुझसे! धन्य भाग्य।'

गोविन्दी ने करुण स्वर में कहा—हाँ, आपके सिवा मुझे कोई ऐसा नहीं नज़र आता जिससे मैं अपनी कथा सुनाऊँ। देखिए, बात अपने ही तक रखिएगा, हालाँकि आपको यह याद दिलाने की ज़रूरत नहीं। मुझे अब अपना जीवन असह्य हो गया है। मुझसे अब तक जितनी तपस्या हो सकी, मैंने की; लेकिन अब नहीं सहा जाता। मालती मेरा सर्वनाश किये डालती है। मैं अपने किसी शस्त्र से उस पर विजय नहीं पा सकती। आपका उस पर प्रभाव है। वह जितना आपका आदर करती है, शायद और किसी मर्द का नहीं करती। अगर आप किसी तरह मुझे उसके पंजे

से छुड़ा दें, तो मैं जन्मभर आपकी ऋणी रहूँगी। उसके हाथों मेरा सौभाग्य लुटा जा रहा है। आप अगर मेरी रक्षा कर सकते हैं, तो कीजिए। मैं आज घर से यह इरादा करके चली थी कि फिर लौटकर न जाऊँगी। मैंने बड़ा जोर मारा कि मौत के सारे बन्धनों को तोड़कर फेंक दूँ, लेकिन औरत का हृदय बड़ा दुर्बल है मेहताजी! मोह उसका प्राण है। जीवन रहते मोह को तोड़ना उसके लिए असंभव है। मैंने आज तक अपनी व्यथा अपने मन में रखी; लेकिन आज मैं आपसे आँचल फैलाकर भिक्षा माँगती हूँ। मालती से मेरा उद्धार कीजिए। मैं इस मायाविनी के हाथों मिटी जा रही हूँ।..

उसका स्वर आँसुओं में डूब गया। वह फूट-फूटकर रोने लगी!

मेहता अपनी नज़रों में कभी इतने ऊँचे न उठे थे, उस वक्त भी नहीं, जब उनकी रचना को फ्रांस की एकाडेमी ने इस शताब्दी की सबसे उत्तम कृति कहकर उन्हें बधाई दी थी। जिस प्रतिमा की वह सच्चे दिल से पूजा करते थे, जिसे मन में वह अपनी इष्टदेवी समझते थे और जीवन के सूक्ष्म प्रसंगों में जिससे आदेश पाने की आशा रखते थे, वह आज उनसे भिक्षा माँग रही थी। उन्हें अपने अन्दर ऐसी शक्ति का अनुभव हुआ कि वह पर्वत को भी फाड़ सकते हैं, समुद्र को तैरकर पार कर सकते हैं। उनपर नशा-सा छा गया जैसे बालक काठ के घोड़े पर सवार होकर समझ रहा हो, वह हवा में उड़ रहा है। काम कितना असाध्य है, इसकी सुधि न रही। अपने सिद्धान्तों की कितनी हत्या करनी पड़ेगी, बिलकुल खयाल न रहा। आश्वासन के स्वर में बोले—मुझे न मालूम था कि आप उससे इतनी दुःखी हैं। मेरी बुद्धि का दोष, आँखों का दोष, कल्पना का दोष। और क्या कहूँ, वरना आपको इतनी वेदना क्यों सहनी पड़ती।

गोविन्दी को शंका हुई। बोली—लेकिन सिंहनी से उसका शिकार छीनना आसान नहीं है, यह समझ लीजिए।

मेहता ने दृढ़ता से कहा—नारी-हृदय धरती के समान है, जिससे मिठास भी मिल सकती है कड़वापन भी। उसके अन्दर पड़नेवाले बीज में जैसी शक्ति हो।

'आप पछता रहे होंगे, कहाँ से आज इससे मुलाकात हो गई।'

'मैं अगर कहूँ कि मुझे आज ही जीवन का वास्तविक आनन्द मिला है, तो शायद आपको विश्वास न आये!'

मैंने आपके शिर पर इतना बड़ा भार रख दिया।'

मेहता ने श्रद्धा-मधुर स्वर में कहा—आप मुझे लज्जित कर रही हैं देवीजी! मैं कह चुका, मैं आपका सेवक हूँ। आपके हित में मेरे प्राण भी निकल जायँ, तो मैं अपना सौभाग्य समझूँगा। इसे कवियों का भावावेश न समझिए, यह मेरे जीवन का सत्य है। मेरे जीवन का क्या आदर्श है, आपको यह बतला देने का मोह मुझसे नहीं रुकता। मैं प्रकृति का पुजारी हूँ और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूँ। जो प्रसन्न होकर हँसता है, दुःखी होकर रोता है और क्रोध में आकर मार डालता है। जो दुःख और सुख दोनों का दमन करते हैं, जो रोने को कमज़ोरी और हँसने को हलकापन समझते हैं, उनसे मेरा कोई मेल नहीं। जीवन मेरे लिए आनन्दमय क्रीड़ा है, सरल, स्वच्छन्द, जहाँ कुत्सा, ईर्ष्या और जलन के लिए कोई स्थान नहीं। मैं भूत की चिन्ता नहीं करता, भविष्य की परवा नहीं करता। मेरे लिए वर्तमान ही सब कुछ है। भविष्य की चिन्ता हमें कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हममें जीवन की शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य में फैला देने से वह और भी क्षीण हो जाती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर, रूढ़ियों और विश्वासों और इतिहासों के मलबे के नीचे दबे पड़े हैं। उठने का नाम नहीं लेते, वह सामर्थ्य ही नहीं रही। जो शक्ति, जो स्फूर्ति मानव-धर्म को पूरा करने में लगनी चाहिए थी, सहयोग में, भाईचारे में, वह पुरानी अदावतों का बदला लेने और बाप-दादों का ऋण चुकाने की भेंट हो जाती है। और जो यह ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है, इस पर तो मुझे हँसी आती है। वह मोक्ष और उपासना अहङ्कार की पराकाष्ठा है, जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालती है। जहाँ जीवन है, क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम है, वहीं ईश्वर है, और जीवन को सुखी बनाना ही उपासना है और मोक्ष है। ज्ञानी कहता है, ओठों पर मुस्कराहट न आये, आँखों में आँसू न आयें। मैं कहता हूँ, अगर तुम हँस नहीं सकते और रो नहीं सकते, तो तुम मनुष्य नहीं हो, पत्थर हो। वह ज्ञान जो मानवता को पीस डाले, ज्ञान नहीं है, कोल्हू है; मगर क्षमा कीजिए, मैं तो एक पूरी स्पीच ही दे गया। अब देर हो रही है, चलिए मैं आपको पहुँचा दूँ। बच्चा भी मेरी गोद में सो गया।

गोविन्दी ने कहा—मैं तो ताँगा लाई हूँ।

'तांगे को यहीं से विदा कर देता हूँ।'

मेहता तांगे के पैसे चुकाकर लौटे, तो गोविन्दी ने कहा—लेकिन आप मुझे कहाँ ले जायँगे?

मेहता ने चौंककर पूछा—क्यों, आपके घर पहुँचा दूँगा।

'वह मेरा घर नहीं है मेहताजी!'

'और क्या मिस्टर खन्ना का घर है?'

'यह भी क्या पूछने की बात है। अब वह घर मेरा नहीं रहा। जहाँ अपमान और धिक्कार मिले, उसे मैं अपना घर नहीं कह सकती, न समझ सकती हूँ।'

मेहता ने दर्द-भरे स्वर में, जिसका एक-एक अक्षर उनके अन्तःकरण से निकल रहा था, कहा—नहीं देवीजी; वह घर आपका है, और सदैव रहेगा। उस घर की आपने सृष्टि की है, उसके प्राणियों की सृष्टि की है, और प्राण जैसे देह का संचालन किया है। प्राण निकल जाय, तो देह की क्या गति होगी। मातृत्व महान् गौरव का पद है देवीजी! और गौरव के पद में कहाँ अपमान और धिक्कार और तिरस्कार नहीं मिला? माता का काम जीवन-दान देना है। जिसके हाथों में इतनी अतुल शक्ति है, उसे इसकी क्या परवाह कि कौन उससे रूठता है, कौन बिगड़ता है। प्राण के बिना जैसे देह नहीं रह सकती, उसी तरह प्राण को भी देह ही सबसे उपयुक्त स्थान है। मैं आपको धर्म और त्याग का क्या उपदेश दूँ। आप तो उसकी सजीव प्रतिमा हैं। मैं तो यही कहूँगा...

गोविन्दी ने अधीर होकर कहा—लेकिन मैं केवल माता ही तो नहीं हूँ, नारी भी तो हूँ?

मेहता ने एक मिनट तक मौन रहने के बाद कहा—हाँ, हैं, लेकिन मैं समझता हूँ कि नारी केवल माता है, और इसके उपरान्त वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विजय है। एक शब्द में उसे लय कहूँगा—जीवन का, व्यक्तित्व का और नारीत्व का भी। आप मिस्टर खन्ना के विषय में इतना ही समझ लें कि वह अपने होश में नहीं हैं। वह जो कुछ कहते या करते हैं, वह उन्माद की दशा में करते हैं; मगर यह उन्माद शान्त होने में बहुत दिन न लगेंगे, और वह समय बहुत जल्द आयेगा, जब वह आपको अपनी इष्टदेवी समझेंगे।

गोविन्दी ने इसका कुछ जवाब न दिया। धीरे-धीरे कार की ओर चली। मेहता ने बढ़कर कार का द्वार खोल दिया। गोविन्दी अन्दर जा बैठी। कार चली; मगर दोनों मौन थे।

गोविन्दी जब अपने द्वार पर पहुँचकर कार से उतरी; तो बिजली के प्रकाश में मेहता ने देखा, उसकी आँखें सजल हैं।

बच्चे घर में से निकल आये और 'अम्मा-अम्मा!' कहते हुए माता से लिपट गये। गोविन्दी के मुख पर मातृत्व की उज्ज्वल, गौरवमयी ज्योति चमक उठी।

उसने मेहता से कहा—इस कष्ट के लिए आपको बहुत धन्यवाद। और सिर नीचा कर लिया। आँसू की एक बूँद उसके कपोल पर आ गिरी थी।

मेहता की आँखें भी सजल हो गईं—इस ऐश्वर्य और विलास के बीच में भी यह नारी-हृदय कितना दुखी है!

१६

मिर्ज़ा खुर्शेद का हाता क्लब भी है, कचहरी भी, अखाड़ा भी। दिन भर जमघट लगा रहता है। मुहल्ले में अखाड़े के लिए कहीं जगह न मिलती थी। मिर्ज़ा ने एक छप्पर डलवाकर अखाड़ा बनवा दिया है। वहाँ नित्य सौ-पचास लड़न्तिये आ जुटते हैं। मिर्ज़ाजी भी उनके साथ जोर करते हैं। मुहल्ले की पंचायतें भी यहीं होती हैं। मियाँ-बीबी और सास-बहू और भाई-भाई के झगड़े-टण्टे यहीं चुकाये जाते हैं। मुहल्ले के सामाजिक जीवन का यही केन्द्र है और राजनीतिक आन्दोलन का भी। आये दिन सभाएँ होती रहती हैं। यहीं स्वयंसेवक टिकते हैं, यहीं उनके प्रोग्राम बनते हैं, यहीं से नगर का राजनीतिक संचालन होता है। पिछले जलसे में मालती नगर-कांग्रेस-कमेटी की सभानेत्री चुन ली गई हैं। तबसे इस स्थान की रौनक और बढ़ गई है।

गोबर को यहाँ रहते साल भर हो गया। अब वह सीधा-सादा ग्रामीण युवक नहीं है। उसने बहुत कुछ दुनिया देख ली और संसार का रङ्ग-ढङ्ग भी कुछ-कुछ समझने लगा है। मूल में वह अब भी देहाती है, पैसे को दाँत से पकड़ता है, स्वार्थ को कभी नहीं छोड़ता, और परिश्रम से जी नहीं चुराता, न कभी हिम्मत हारता है; लेकिन शहर की हवा भी उसे लग गई है। उसने पहले महीने तो केवल

मजूरी की और आधा पेट खाकर थोड़े-से रुपये बचा लिये। फिर वह कचालू और मटर और दही-बड़े के खोंचे लगाने लगा। इधर ज़्यादा लाभ देखा, तो नौकरी छोड़ दी। गर्मियों में शर्बत और बरफ़ की दूकान भी खोल दी। लेन-देन में खरा था। इसलिए उसकी साख जम गई। जाड़े आये, तो उसने शर्बत की दूकान उठा दी और गर्म चाय पिलाने लगा। अब उसकी रोज़ाना आमदनी ढाई-तीन रुपये से कम नहीं। उसने अंग्रेज़ी फैशन के बाल कटवा लिये हैं, महीन धोती और पम्प-शू पहनता है, एक लाल ऊनी चादर खरीद ली है, और पान-सिगरेट का शौक़ीन हो गया है। सभाओं में आने-जाने से उसे कुछ-कुछ राजनीतिक ज्ञान भी हो चला है। राष्ट्र और वर्ग का अर्थ समझने लगा है। सामाजिक रूढ़ियों की प्रतिष्ठा और लोक-निन्दा का भय अब उसमें बहुत कम रह गया है। आये दिन की पंचायतों ने उसे निस्संकोच बना दिया है। जिस बात के पीछे वह यहाँ घर से दूर, मुँह छिपाये पड़ा हुआ है, उसी तरह की, बल्कि उससे भी कहीं निन्दास्पद बातें यहाँ नित्य हुआ करती हैं, और कोई भागता नहीं। फिर वही क्यों इतना डरे और मुँह चुराये?

इतने दिनों में उसने एक पैसा भी घर नहीं भेजा। वह माता-पिता को रुपये-पैसे के मामले में इतना चतुर नहीं समझता। वे लोग तो रुपये पाते ही आकाश में उड़ने लगेंगे। दादा को तुरन्त गया करने की और अम्मा को गहने बनवाने की धुन सवार हो जायगी। ऐसे व्यर्थ के कामों के लिए उसके पास रुपये नहीं हैं। अब वह छोटा-मोटा महाजन है। पड़ोस के एक्केवालों, गाड़ीवानों और धोबियों को सूद पर रुपये उधार देता है। इस दस-ग्यारह महीने में ही उसने अपनी मेहनत और किफ़ायत और पुरुषार्थ से अपना स्थान बना लिया है और अब झुनिया को यहीं लाकर रखने की बात सोच रहा है।

तीसरे पहर का समय है। वह सड़क के नल पर नहाकर आया है और शाम के लिए आलू उबाल रहा है कि मिर्ज़ा खुर्शेद आकर द्वार पर खड़े हो गये। गोबर अब उनका नौकर नहीं है; पर अदब उसी तरह करता है और उनके लिए जान देने को तैयार रहता है। द्वार पर आकर पूछा—क्या हुक्म है सरकार?

मिर्ज़ा ने खड़े-खड़े कहा—तुम्हारे पास कुछ रुपये हों, तो दे दो। आज तीन दिन से बोतल खाली पड़ी हुई है, जी बहुत बेचैन हो रहा है।

गोबर ने इसके पहले भी दो-तीन बार मिर्ज़ाजी को रुपये दिये थे; पर अब

तक वसूल न कर सका था। तक़ाज़ा करते डरता था और मिर्ज़ाजी रुपये लेकर देना न जानते थे। उनके हाथ में रुपये टिकते ही न थे। इधर आये उधर ग़ायब। यह तो न कह सका, मैं रुपये न दूँगा, या मेरे पास रुपये नहीं हैं, शराब की निन्दा करने लगा—आप इसे छोड़ क्यों नहीं देते सरकार, क्या इसके पीने से कुछ फ़ायदा होता है ?

मिर्ज़ाजी ने कोठरी के अन्दर खाट पर बैठते हुए कहा—तुम समझते हो, मैं छोड़ना नहीं चाहता और शौक़ से पीता हूँ। मैं इसके बग़ैर ज़िन्दा नहीं रह सकता। तुम अपने रुपयों के लिए न डरो, मैं एक-एक कौड़ी अदा कर दूँगा।

गोबर अविचलित रहा—मैं सच कहता हूँ मालिक ! मेरे पास इस समय रुपये नहीं हैं। रुपये होते तो आपसे इनकार करता ?

'दो रुपये भी नहीं दे सकते ?'

'इस समय तो नहीं हैं।'

'मेरी अँगूठी गिरो रख लो।'

गोबर का मन ललच उठा ; मगर बात कैसे बदले।

बोला—यह आप क्या कहते हैं मालिक, रुपये होते तो आपको दे देता, अँगूठी की कौन बात थी।

मिर्ज़ाने अपने स्वर में बड़ा दीन आग्रह भरकर कहा—मैं फिर तुमसे कभी न माँगूँगा गोबर ! मुझसे खड़ा नहीं हुआ जा रहा है। इस शराब की बदौलत मैंने लाखों की हैसियत बिगाड़ दी और भिखारी हो गया। अब मुझे भी ज़िद पड़ गई है कि चाहे भीख ही माँगनी पड़े, इसे छोड़ूँगा नहीं।

जब गोबर ने अबकी भी इनकार किया, तो मिर्ज़ा साहब निराश होकर चले गये। शहर में उनके हज़ारों मिलनेवाले थे। कितने ही उनकी बदौलत बन गये थे। कितनों ही को गाढ़े समय पर मदद की थी ; पर ऐसों से वह मिलना भी न पसन्द करते थे। उन्हें ऐसे हज़ारों लटके मालूम थे, जिससे वह समय-समय पर रुपयों के ढेर लगा लेते थे, पर पैसे की उनकी निगाह में कोई क़द्र न थी। उनके हाथ में रुपये जैसे काटते थे। किसी न किसी बहाने उड़ाकर ही उनका चित्त शान्त होता था।

गोबर आलू छीलने लगा। साल-भर के अन्दर ही वह इतना काइयाँ हो गया

था और पैसे जोड़ने में इतना कुशल कि अचरज होता था। जिस कोठरी में वह रहता है; वह मिर्ज़ा साहब ने दी है। इस कोठरी और बरामदे का किराया बड़ी आसानी से पाँच रुपया मिल सकता है। गोबर लगभग साल-भर से इसमें रहता है; लेकिन मिर्ज़ा ने न कभी किराया माँगा न उसने दिया। उन्हें शायद यह ख़याल भी न था कि इस कोठरी का कुछ किराया भी मिल सकता है।

थोड़ी देर में एक इक्केवाला रुपये माँगने आया। अलादीन नाम था, सिर घुटा हुआ, खिचड़ी डाढ़ी, और काना। उसकी लड़की बिदा हो रही थी। पाँच रुपये की उसे बड़ी ज़रूरत थी। गोबर ने एक आना रुपया सूद पर रुपये दे दिये।

अलादीन ने धन्यवाद देते हुए कहा—भैया, अब बाल-बच्चों को बुला लो। कब तक हाथ से ठोकते रहोगे।

गोबर ने शहर के ख़र्च का रोना रोया—थोड़ी आमदनी में गृहस्थी कैसे चलेगी।

अलादीन बीड़ी जलाता हुआ बोला—रच अल्लाह देगा भैया! सोचो, कितना आराम मिलेगा! मैं तो कहता हूँ, जितना तुम अकेले ख़रच करते हो, उसी में गृहस्ती चल जायगी। औरत के हाथ में बड़ी बरक्कत होती है। खुदा क़सम, जब मैं अकेला यहाँ रहता था, तो चाहे कितना ही कमाऊँ, खा-पी सब बराबर। बीड़ी-तमाखू को भी पैसा न रहता। उस पर हैरानी। थके-माँदे आओ, तो घोड़े को खिलाओ और टहलाओ। फिर नानबाई की दूकान पर दौड़ो। नाक में दम आ गया। जबसे घरवाली आ गई है, उसी कमाई में उसकी रोटियाँ भी निकल आती हैं और आराम भी मिलता है। आख़िर आदमी आराम के लिए ही तो कमाता है। जब जान खपाकर भी आराम न मिला, तो ज़िन्दगी ही ग़ारत हो गई। मैं तो कहता हूँ, तुम्हारी कमाई बढ़ जायगी भैया! जितनी देर में आलू और मटर उबालते हो, उतनी देर में दो-चार प्याले चाय बेच लोगे। अब चाय बारहो मास चलती है। रात को लेटोगे, तो घरवाली पाँव दबायेगी। सारी थकन मिट जायगी।

यह बात गोबर के मन में बैठ गई। जी उचाट हो गया। अब तो वह झुनिया को लाकर ही रहेगा। आलू चूल्हे पर चढ़े रह गये, और उसने घर चलने की तैयारी कर दी; मगर याद आया कि होली आ रही है; इसलिए होली का सामान भी लेता चले। कृपण लोगों में उत्सवों पर दिल खोलकर ख़र्च करने की जो एक प्रवृत्ति

होती है, वह उसमें भी सजग हो गई। आखिर इसी दिन के लिए तो कौड़ी-कौड़ी जोड़ रहा था। वह मा, बहनों और झुनिया सबके लिए एक-एक जोड़ी साड़ी ले जायगा। होरी के लिए एक धोती और एक चादर। सोना के लिए तेल की शीशी ले जायगा, और एक जोड़ा चप्पल। रूपा के लिए जापानी गुड़ियाँ और झुनिया के लिए एक पेटार जिसमें तेल, सिन्दूर और आईना होगा। बच्चे के लिए टोप और फ्राक जो बाज़ार में बना-बनाया मिलता है। उसने रुपये निकाले और बाज़ार चला। दोपहर तक सारी चीज़ें आ गईं। बिस्तर भी बँध गया। मुहल्लेवालों को ख़बर हो गई, गोबर घर जा रहा है। कई मर्द-औरतें उसे बिदा करने आईं। गोबर ने उन्हें अपना घर सौंपते हुए कहा—तुम्हीं लोगों पर घर छोड़े जाता हूँ। भगवान् ने चाहा तो होली के दूसरे दिन लौटूँगा।

एक युवती ने मुस्कराकर कहा—मेहरिया को बिना लिये न आना, नहीं घर में न घुसने पाओगे।

दूसरी प्रौढ़ा ने शिक्षा दी—हाँ, और क्या, बहुत दिनों तक चूल्हा फूँक चुके। ठिकाने से रोटी तो मिलेगी!

गोबर ने सबको राम-राम किया। हिन्दू भी थे, मुसलमान भी थे, सभी में मित्र-भाव था, सब एक-दूसरे के दुःख-दर्द के साथी। रोज़ा रखनेवाले रोज़ा रखते थे। एकादशी रखनेवाले एकादशी। कभी-कभी विनोद-भाव से एक-दूसरे पर छींटे भी उड़ा लेते थे। गोबर अलादीन की नमाज़ को उठा-बैठी कहता, अलादीन पीपल के नीचे स्थापित सैकड़ों छोटे-बड़े शिव-लिंगों को बटखरे बनाता; लेकिन साम्प्रदायिक द्वेष का नाम भी न था। गोबर घर जा रहा है। सब उसे हँसी-खुशी बिदा करना चाहते हैं।

इतने में भूरे एक्का लेकर आ गया। अभी दिन-भर का धावा मारकर आया था। ख़बर मिली, गोबर घर जा रहा है। वैसे ही इक्का इधर फेर दिया। घोड़े ने आपत्ति की। उसे कई चाबुक लगाये। गोबर ने एक्के पर सामान रखा, एक्का बढ़ा, पहुँचाने-वाले गली के मोड़ तक पहुँचाने आये, तब गोबर ने सबको राम-राम किया और एक्के पर बैठ गया।

सड़क पर एक्का सरपट दौड़ा जा रहा था। गोबर घर जाने की ख़ुशी में मस्त

था। भूरे उसे घर पहुँचाने की ख़ुशी में मस्त था। और घोड़ा था पानीदार, उड़ा चला जा रहा था। बात की बात में स्टेशन आ गया।

गोबर ने प्रसन्न होकर एक रुपया कमर से निकालकर भूरे की तरफ़ बढ़ाकर कहा – लो, घरवाली के लिए मिठाई लेते जाना।

भूरे ने कृतज्ञता-भरे तिरस्कार से उसकी ओर देखा—तुम मुझे गैर समझते हो भैया! एक दिन ज़रा एक्के पर बैठ गये, तो मैं तुमसे इनाम लूँगा। जहाँ तुम्हारा पसीना गिरे, वहाँ ख़ून गिराने को तैयार हूँ। इतना छोटा दिल नहीं पाया है। और ले भी लूँ, तो घरवाली मुझे जीता छोड़ेगी!

गोबर ने फिर कुछ न कहा। लज्जित होकर अपना असबाब उतारा और टिकट लेने चल दिया।

२०

फागुन अपनी झोली में नव-जीवन की विभूति लेकर आ पहुँचा था। आम के पेड़ दोनों हाथों से बौर की सुगन्ध बाँट रहे थे, और कोयल आम की डालियों में छिपी हुई संगीत का गुप्त-दान कर रही थी।

गाँवों में ऊख की बोआई लग गई थी। अभी धूप नहीं निकली; पर होरी खेत में पहुँच गया है। धनिया, सोना, रूपा तीनों तलैया से ऊख के भीगे हुए गट्ठे निकाल-निकालकर खेत में ला रही हैं, और होरी गँड़ासे से ऊख के टुकड़े कर रहा है। अब वह दातादीन की मजूरी करने लगा है। किसान नहीं, मजूर है। दातादीन से अब उसका पुरोहित-जजमान का नाता नहीं, मालिक-मजूर का नाता है।

दातादीन ने आकर डाँटा—हाथ और फुरती से चलाओ होरी! इस तरह तो तुम दिन-भर में न काट सकोगे।

होरी ने आहत अभिमान के साथ कहा – चला ही तो रहा हूँ महाराज, बैठा तो नहीं हूँ।

दातादीन मजूरों से रगड़कर काम लेते थे; इसी लिए उनके यहाँ कोई मजूर टिकता न था। होरी उनका स्वभाव जानता था; पर जाता कहाँ।

पण्डित उसके सामने खड़े होकर बोले—चलाने चलाने में भेद है। एक

चलाना वह है कि घड़ी-भर में काम तमाम, दूसरा चलाना वह है कि दिन-भर में भी एक बोझ ऊख न कटे।

होरी ने विष का घूँट पीकर और ज़ोर से हाथ चलाना शुरू किया, इधर महीनों से उसे भर-पेट भोजन न मिलता था। प्रायः एक जून तो चबैने पर ही कटता था, दूसरे जून भी कभी आधा पेट भोजन मिला, कभी कड़ाका हो गया; कितना चाहता था कि हाथ और जल्दी उठे; मगर हाथ जवाब दे रहा था। उस पर दातादीन सिर पर सवार थे। क्षण-भर दम ले लेने पाता, तो ताज़ा हो जाता; लेकिन दम कैसे ले! घुड़कियाँ पड़ने का भय था।

धनिया और तीनों लड़कियाँ ऊख के गट्ठे लिये गीली झाड़ियों से लथपथ, कीचड़ में सनी हुई आईं, और गट्ठे पटककर दम मारने लगीं कि दातादीन ने डाँट बताई—यहाँ तमाशा क्या देखती है धनिया! जा अपना काम कर। पैसे सेंत में नहीं आते। पहर-भर में तू एक खेप लाई है। इस हिसाब से तो दिन-भर में भी ऊख न ढुल पायगी।

धनिया ने त्योरी बदलकर कहा—क्या ज़रा दम भी न लेने दोगे महाराज! हम भी तो आदमी हैं। तुम्हारी मजूरी करने से बैल नहीं हो गये। ज़रा मूड़ पर एक गट्ठा लादकर लाओ, तो हाल मालूम हो।

दातादीन बिगड़ उठे—पैसे देते हैं काम करने के लिए, दम मारने के लिए नहीं। दम लेना है, तो घर जाकर दम लो।

धनिया कुछ कहने ही जा रही थी कि होरी ने फटकार बताई—तू जाती क्यों नहीं धनिया। क्यों हुज्जत कर रही है?

धनिया ने बोझा उठाते हुए कहा—जा तो रही हूँ; लेकिन चलते हुए बैल को औंगी न देना चाहिए।

दातादीन ने लाल आँखें निकाल लीं—जान पड़ता है, अभी मिजाज ठण्डा नहीं हुआ। जभी दाने-दाने को मौताज हो।

धनिया भला क्यों चुप रहने लगी थी—तुम्हारे द्वार पर भीख माँगने तो नहीं जाती।

दातादीन ने पैने स्वर में कहा—अगर यही हाल है तो भीख भी माँगेगी।

धनिया के पास जवाब तैयार था; पर सोना उसे खींचकर तलैया की ओर

ले गई, नहीं बात बढ़ जाती; लेकिन आवाज़ की पहुँच के बाहर जाकर दिल की जलन निकाली—भीख माँगो तुम जो भिखमंगे की जात हो। हम तो मजूर ठहरे, जहाँ काम करेंगे, वहीं चार पैसे पायेंगे।

सोना ने उसका तिरस्कार किया—अम्माँ, जाने भी दो। तुम तो समय नहीं देखतीं, बात-बात पर लड़ने बैठ जाती हो।

होरी उन्मत्तों की भाँति सिर से ऊपर गँड़ासा उठा-उठाकर ऊख के टुकड़ों के ढेर करता जाता था। उसके भीतर जैसे आग लगी हुई थी। उसमें अलौकिक शक्ति आ गई थी। उसमें जो पीढ़ियों का संचित पानी था, वह इस समय जैसे भाप बनकर उसे यन्त्र की-सी अन्ध-शक्ति प्रदान कर रहा था। उसकी आँखों में अँधेरा छाने लगा। सिर में फिरकी-सी चल रही थी। फिर भी उसके हाथ यन्त्र की गति से, बिना थके, बिना रुके उठ रहे थे। उसकी देह से पसीने की धार निकल रही थी, मुँह से फिचकुर छूट रहा था, सिर में धम-धम शब्द हो रहा था, पर उस पर जैसे कोई भूत सवार हो गया हो।

सहसा उसकी आँखों में निबिड़ अन्धकार छा गया। मालूम हुआ वह ज़मीन में धँसा जा रहा है। उसने सँभलने की चेष्टा से शून्य हाथ फैला दिये, और अचेत हो गया। गँड़ासा हाथ से छूट गया और वह औंधे मुँह ज़मीन पर पड़ गया।

उसी वक्त धनिया ऊख का गट्ठा लिये आई। देखा तो कई आदमी होरी को घेरे खड़े हैं। एक हलवाहा दातादीन से कह रहा था, मालिक, तुम्हें ऐसी बात न कहनी चाहिए, जो आदमी को लग जाय। पानी मरते ही मरते तो मरेगा।

धनिया ऊख का गट्ठा पटककर पागलों की तरह दौड़ी हुई होरी के पास गई, और उसका सिर अपनी जाँघ पर रखकर विलाप करने लगी—तुम मुझे छोड़कर कहाँ जाते हो। अरी सोना, दौड़कर पानी ला और जाकर सोभा से कह दे, दादा बेहाल हैं। हाय भगवान्! अब मैं कहाँ जाऊँ। अब किसकी होकर रहूँगी, कौन मुझे धनिया कहकर पुकारेगा।...

लाला पटेश्वरी भागे हुए आये और स्नेह-भरी कठोरता से बोले—क्या करती है धनिया, होश सँभाल। होरी को कुछ नहीं हुआ है। गर्मी से अचेत हो गये हैं। अभी होश आया जाता है। दिल इतना कच्चा कर लेगी, तो कैसे काम चलेगा।

धनिया ने पटेश्वरी के पाँव पकड़ लिए और रोती हुई बोली—क्या करूँ लाला, जी नहीं मानता। भगवान् ने सब कुछ हर लिया। मैं सबर कर गई। अब सबर नहीं होता। हाय रे मेरा हीरा!

सोना पानी लाई। पटेश्वर ने होरी के मुँह पर पानी के छींटे दिये। कई आदमी अपनी-अपनी अँगोछियों से हवा कर रहे थे। होरी की देह ठण्डी पड़ गई थी। पटेश्वरी को भी चिंता हुई; पर धनिया को वह बराबर साहस देते जाते थे।

धनिया अधीर होकर बोली—ऐसा कभी नहीं हुआ था लाला, कभी नहीं!

पटेश्वरी ने पूछा—रात कुछ खाया था?

धनिया बोली—हाँ, रोटीयाँ पकाई थीं; लेकिन आजकल हमारे ऊपर जो बीत रही है, वह क्या तुमसे छिपा है? महीनों से भरपेट रोटी नसीब नहीं हुई। कितना समझाती हूँ, जान रखकर काम करो; लेकिन आराम तो हमारे भाग्य में लिखा ही नहीं।

सहसा होरी ने आँखें खोल दीं और उड़ती हुई नजरों से इधर-उधर ताका।

धनिया जैसे जी उठी। विह्वल होकर उसके गले से लिपटकर बोली—अब कैसा जी है तुम्हारा? मेरे तो परान नहों में समा गये थे।

होरी ने कातर स्वर में कहा—अच्छा हूँ। न जाने कैसा जी हो गया था।

धनिया ने स्नेह में डूबी भर्त्सना से कहा - देह में दम तो है नहीं, काम करते हो जान देकर। लड़कों का भाग था, नहीं तुम तो ले ही डूबे थे।

पटेश्वरी ने हँसकर कहा—धनिया तो रो-पीट रही थी।

होरी ने आतुरता से पूछा—सचमुच तू रोती थी धनिया?

धनिया ने पटेश्वरी को पीछे ढकेलकर कहा—इन्हें बकने दो तुम। पूछो, यह क्यों कागद छोड़कर घर से दौड़े आये थे!

पटेश्वरी ने चिढ़ाया—तुम्हें हीरा-हीरा कहकर रोती थी। अब लाज के मारे मुकरती है। छाती पीट रही थी।

होरी ने धनिया को सजल नेत्रों से देखा—पगली है और क्या। अब न जाने कौन-सा सुख देने के लिए मुझे जिलाये रखना चाहती है।

दो आदमी होरी को टिकाकर घर लाये और चारपाई पर लिटा दिया। दाता-दीन तो कुढ़ रहे थे कि बोआई में देर हुई जाती है ; पर मातादीन इतना निर्दई न था। दौड़कर घर से गर्म दूध लाया ; और एक शीशी में गुलाबजल भी लेता आया। और दूध पीकर होरी में जैसे जान आ गई।

उसी वक्त गोबर एक मजूर के सिर पर अपना सामान लादे आता दिखाई दिया।

गाँव के कुत्ते पहले तो भूँकते हुए उसकी तरफ़ दौड़े। फिर दुम हिलाने लगे। रूपा ने कहा—भैया आये, और तालियाँ बजाती हुई दौड़ी। सोना भी दो-तीन क़दम आगे बढ़ी ; पर अपने उछाह को भीतर ही दबा गई। एक साल में उसका यौवन कुछ और संकोचशील हो गया था। झुनिया भी घूँघट निकाले द्वार पर खड़ी हो गई।

गोबर ने मा-बाप के चरण छुए और रूपा को गोद में उठाकर प्यार किया। धनिया ने उसे आशिर्वाद दिया और उसका सिर अपनी छाती से लगाकर मानो अपने मातृत्व का पुरस्कार पा गई। उसका हृदय गर्व से उमड़ा पड़ता था। आज तो वह रानी है। इस फटे-हाल में भी रानी है। कोई उसकी आँखें देखे, उसका मुख देखे, उसका हृदय देखे, उसकी चाल देखे। रानी भी लजा जायगी। गोबर कितना बड़ा हो गया है और पहन-ओढ़कर कैसा भलामानस लगता है। धनिया के मन में कभी अमंगल की शंका न हुई थी। उसका मन कहता था, गोबर कुशल से है और प्रसन्न है। आज उसे आँखों देखकर मानो उसके जीवन के धूल-धक्कड़ में गुम हुआ रत्न मिल गया है ; मगर होरी ने मुँह फेर लिया था।

गोबर ने पूछा—दादा को क्या हुआ है, अम्मा ?

धनिया घर का हाल कहकर उसे दुखी न करना चाहती थी। बोली—कुछ नहीं बेटा, ज़रा सिर में दर्द है। चलो, कपड़े उतारो, हाथ-मुँह धोओ। कहाँ थे तुम इतने दिन ! भला इस तरह कोई घर से भागता है ? और कभी एक चिट्ठी तक न भेजी। आज साल-भर के बाद जाके सुधि ली है। तुम्हारी राह देखते-देखते आँखें फूट गईं। यही आस बँधी रहती थी कि कब वह दिन आयेगा और कब तुम्हें देखूँगी। कोई कहता था, मिरच भाग गया, कोई डमरा टापू बताता था। सुन-सुनकर जान सूखी जाती थी। कहाँ रहे इतने दिन ?

गोबर ने शर्माते हुए कहा—कहीं दूर नहीं गया था अम्मा, यहीं लखनऊ में तो था।

'और इतने नियरे रहकर भी कभी एक चिट्ठी न लिखी!'

उधर सोना और रूपा भीतर गोबर का सामान खोलकर चीज़ का बाँट-बखरा करने में लगी हुई थीं; लेकिन झुनिया दूर खड़ी थी; उसके मुख पर आज मान का शोख रङ्ग झलक रहा है। गोबर ने उसके साथ जो व्यवहार किया है, आज वह उसका बदला लेगी। असामी को देखकर महाजन उससे वह रुपये वसूल करने को भी व्याकुल हो रहा है, जो उसने बट्टे खाते में डाल दिये थे। बच्चा उन चीज़ों की ओर लपक रहा था और चाहता था, सब-का-सब एक साथ मुँह में डाल ले; पर झुनिया उसे गोद से उतरने न देती थी।

सोना बोली—भैया तुम्हारे लिए आईना-कंघी लाये हैं भाभी!

झुनिया ने उपेक्षा-भाव से कहा—मुझे ऐना-कंघी न चाहिए। अपने पास रखे रहें।

रूपा ने बच्चे की चमकीली टोपी निकाली—ओ हो! यह तो चुन्नू की टोपी है। और उसे बच्चे के सिर पर रख दिया।

झुनिया ने टोपी उतारकर फेंक दी। और सहसा गोबर को अन्दर आते देखकर वह बालक को लिये अपनी कोठरी में चली गई। गोबर ने देखा, सारा सामान खुला पड़ा है। उसका जी तो चाहता है, पहले झुनिया से मिलकर अपना अपराध क्षमा कराये; लेकिन अन्दर जाने का साहस नहीं होता। वहीं बैठ गया और चीजें निकाल-निकाल हर-एक को देने लगा, मगर रूपा इसलिए फूल गई कि उसके लिए चप्पल क्यों नहीं आये और सोना उसे चिढ़ाने लगी, तू क्या करेगी चप्पल लेकर, अपनी गुड़िया से खेल। हम तो तेरी गुड़िया देखकर नहीं रोते, तू मेरा चप्पल देखकर क्यों रोती है? मिठाई बाँटने की ज़िम्मेदारी धनिया ने अपने ऊपर ली। इतने दिनों के बाद लड़का कुशल से घर आया है। वह गाँव-भर में बैना बँटवायेगी। एक गुलाब-जामुन रूपा के लिए ऊँट के मुँह में जीरे के समान था। वह चाहती थी, हाँडी उसके सामने रख दी जाय, वह कूद-कूद खाय।

अब सन्दूक खुला और उसमें से साड़ियाँ निकलने लगीं। सभी किनारदार थीं, जैसी पटेश्वरी लाला के घर में पहनी जाती हैं, मगर हैं बड़ी हलकी। ऐसी महीन

साड़ियाँ भला कै दिन चलेंगी। बड़े आदमी जितनी महीन साड़ियाँ चाहें पहनें। उनकी मेहरियों को बैठने और सोने के सिवा और कौन काम है। यहाँ तो खेत-खलिहान सभी कुछ है। अच्छा! होरी के लिए धोती के अतिरिक्त एक दुपट्टा भी है।

धनिया प्रसन्न होकर बोली—यह तुमने बड़ा अच्छा किया बेटा! इनका दुपट्टा बिलकुल तार-तार हो गया था।

गोबर को इतनी देर में घर की परिस्थिति का अन्दाज़ हो गया था। धनिया की साड़ी में कई पैवंदे लगे हुए थे। सोना की साड़ी सिर पर फटी हुई थी और उसमें से उसके बाल दिखाई दे रहे थे। रूपा की धोती में चारों तरफ़ झालरें-सी लटक रही थीं। सभी के चेहरे रूखे, किसी की देह पर चिकनाहट नहीं। जिधर देखो, विपन्नता का साम्राज्य था।

लड़कियाँ तो साड़ियों में मगन थीं, धनिया को लड़के के लिए भोजन की चिन्ता हुई। घर में थोड़ा-सा जौ का आटा साँझ के लिए संचकर रखा हुआ था। इस वक्त तो चबैने पर कटती थी; मगर गोबर अब वह गोबर थोड़े ही है। उससे जौ का आटा खाया भी जायगा! परदेश में न जाने क्या-क्या खाता-पीता रहा होगा। जाकर दुलारी की दुकान से गेहूँ का आटा, चावल, घी उधार लाई। इधर महीनों से सहुआइन एक पैसे की चीज़ भी उधार न देती थी; पर आज उसने एक बार भी न पूछा कि पैसे कब दोगी।

उसने पूछा—गोबर तो खूब कमाके आया है न?

धनिया बोली—अभी तो कुछ नहीं खुला दीदी! अभी मैंने भी कुछ कहना उचित न समझा। हाँ, सबके लिए किनारदार साड़ियाँ लाया है। तुम्हारे आसिरबाद से कुशल से लौट आया, मेरे लिए तो यही बहुत है।

दुलारी ने असीस दिया—भगवान् करे, जहाँ रहे कुशल से रहे। मा-बाप को और क्या चाहिए। लड़का समझदार है। और छोकरों की तरह उड़ाऊ नहीं है। हमारे रुपये अभी न मिलें, तो ब्याज तो दे दो। दिन-दिन बोझ बढ़ ही तो रहा है।

इधर सोना चुन्नू को उसका फ्राक और टोप और जूता पहनाकर राजा बना रही थी। बालक इन चीज़ों को पहनने से ज़्यादा हाथ में लेकर खेलना पसन्द करता था। अन्दर गोबर और झुनिया में मान-मनौवल का अभिनय हो रहा था।

झुनिया ने तिरस्कार-भरी आँखों से देखकर कहा—मुझे लाकर यहाँ बैठा दिया। आप परदेश की राह ली। फिर न खोज, न खबर कि मरती है या जीती है। साल-भर के बाद अब जाकर तुम्हारी नींद टूटी है। कितने बड़े कपटी हो तुम। मैं तो सोचती हूँ कि मेरे पीछे-पीछे आ रहे हो और आप उड़े तो साल-भर के बाद लौटे। मरदों का विश्वास ही क्या, कहीं कोई और ताक ली होगी। सोचा होगा, एक घर के लिए है ही, एक बाहर के लिए भी हो जाय।

गोबर ने सफाई दी—झुनिया, मैं भगवान् को साच्छी देकर कहता हूँ जो मैंने कभी किसी की ओर ताका भी हो। लाज और डर के मारे घर से भागा ज़रूर; मगर तेरी याद एक छन के लिए भी मन से न उतरती थी। अब तो मैंने तय कर लिया है कि तुझे भी लेता जाऊँगा; इसी लिए आया हूँ। तेरे घरवाले तो बहुत बिगड़े होंगे?

'दादा तो मेरी जान लेने ही पर उतारू थे!'

'सच!'

'तीनों जने यहाँ चढ़ आये थे। अम्मा ने ऐसा डाँटा कि मुँह लेकर रह गये। हाँ, हमारे दोनों बैल खोल ले गये।'

'इतनी बड़ी जबरदस्ती! और दादा कुछ बोले नहीं?'

'दादा अकेले किस-किस से लड़ते। गाँववाले तो नहीं ले जाने देते थे; लेकिन दादा ही भलमनसी में आ गये, तो और लोग क्या करते।'

'तो आज कल खेती-बारी कैसे हो रही है?'

खेती-बारी सब टूट गई। थोड़ी-सी पंडित महाराज के साझे में है। ऊख बोई ही नहीं गई।'

गोबर की कमर में इस समय दो सौ रुपए थे। उसकी गर्मी यों भी कम न थी। यह हाल सुनकर तो उसके बदन में आग ही लग गई।

बोला—तो फिर पहले मैं उन्हीं से जाकर समझता हूँ। उनकी यह मजाल कि मेरे द्वार पर से बैल खोल ले जायँ! यह डाका है, खुला हुआ डाका। तीन-तीन साल को चले जायँगे तीनों। यों न देंगे, तो अदालत से लूँगा। सारा घमंड तोड़ दूँगा।

वह उसी आवेश में चला था कि झुनिया ने पकड़ लिया और बोली—तो चले जाना, अभी ऐसी क्या जल्दी है। कुछ आराम कर लो, कुछ खा-पी लो। सारा दिन तो पड़ा है। यहाँ बड़ी-बड़ी पंचायत हुई। पंचायत ने अस्सी रुपए डाँड लगाये। तीस मन अनाज ऊपर। उसी में तो और तबाही आ गई।

सोना बालक को कपड़े-जूते पहनाकर लाई। कपड़े पहनकर वह जैसे सचमुच, राजा हो गया था। गोबर ने उसे गोद में ले लिया; पर इस समय बालक के प्यार में उसे आनन्द न आया। उसका रक्त खौल रहा था और कमर के रुपए आँच और तेज़ कर रहे थे। वह एक-एक से समझेगा, पंचों को उस पर डाँड लगाने का अधिकार क्या है? कौन होता है कोई उसके बीच में बोलनेवाला? उसने एक औरत रख ली, तो पंचों के बाप का क्या बिगड़ा; अगर इसी बात पर वह फ़ौजदारी में दावा कर दे, तो लोगों के हाथों में हथकड़ियाँ पड़ जायँ। सारी गृहस्थी तहस-नहस हो गई। क्या समझ लिया है उसे इन लोगों ने!

बच्चा उसकी गोद में ज़रा-सा मुस्कराया, फिर ज़ोर से चीख़ उठा जैसे कोई डरावनी चीज़ देख ली हो।

झुनिया ने बच्चे को उसकी गोद से ले लिया और बोली—अब जाकर नहा-धो लो। किस सोच में पड़ गये। यहाँ सबसे लड़ने लगो, तो एक दिन निबाह न हो। जिसके पास पैसे हैं, वही बड़ा आदमी है, वही भला आदमी है। पैसे न हों, तो उस पर सभी रोब जमाते हैं।

'मेरा गधापन था कि घर से भागा। नहीं देखता, कैसे कोई एक धेला डाँड लेता है।'

'सहर की हवा खा आये हो, तब ये बातें सूझने लगी हैं। नहीं, घर से भागते ही क्यों!'

'यही जी चाहता है कि लाठी उठाऊँ और पटेश्वरी, दातादीन, झिंगुरी, सब सालों को पीटकर गिरा दूँ, और उनके पेट से रुपये निकाल लूँ।'

'रुपये की बहुत गर्मी चढ़ी हुई है साइत। लाओ निकालो, देखूँ इतने दिन में क्या कमा लाये हो।'

उसने गोबर की कमर में हाथ लगाया। गोबर खड़ा हो बोला—अभी क्या

कमाया, हाँ, अब तुम चलोगी, तो कमाऊँगा। साल भर तो सहर का रंग-ढंग पहचानने ही में लग गया।

'अम्माँ जाने देंगी, तब तो ?'

'अम्माँ क्यों न जाने देंगी। उनसे मतलब !'

'वाह ! मैं उनकी राजी बिना न जाऊँगी। तुम तो छोड़कर चलते बने। और मेरा कौन था यहाँ। वह अगर घर में न घुसने देतीं, तो मैं कहाँ जाती। जब तक जीऊँगी, उनका जस गाऊँगी और तुम भी क्या परदेश ही करते रहोगे ?'

'और यहाँ बैठकर क्या करूँगा। कमाओ और मरो, इसके सिवा यहाँ और क्या रखा है। थोड़ी-सी अकल हो और आदमी काम करने से न डरे, तो वहाँ भूखों नहीं मर सकता। यहाँ तो अकल कुछ काम ही नहीं करती। दादा क्यों मुझसे मुँह फुलाये हुए हैं ?'

'अपने भाग बखानो, कि मुँह फुलाकर छोड़ देते हैं। तुमने उपद्रव तो इतना बड़ा किया था कि उस क्रोध में पा जाते, तो मुँह लाल कर देते।'

'तो तुम्हें भी खूब गालियाँ देते होंगे ?'

'कभी नहीं, भूलकर भी नहीं। अम्माँ तो पहले बिगड़ी थीं ; लेकिन दादा ने तो कभी कुछ नहीं कहा, जब बुलाते हैं बड़े प्यार से। मेरा सिर भी दुखता है, तो बेचैन हो जाते हैं। अपने बाप को देखते तो मैं इन्हें देवता समझती हूँ। अम्माँ को समझाया करते हैं, बहू को कुछ न कहना। तुम्हारे ऊपर सैकड़ों बार बिगड़ चुके हैं, इसे घर में बैठाकर आप न जाने कहाँ निकल गया। आजकल पैसे-पैसे की तंगी है। ऊख के रुपये बाहर ही बाहर उड़ गये। अब तो मजूरी करनी पड़ती है। आज बेचारे खेत में बेहोश हो गये। रोना-पीटना मच गया। तब से पड़े हैं।'

मुँह-हाथ धोकर और खूब बाल बनाकर गोबर गाँव का दिग्विजय करने निकला। दोनों चचाओं के घर जाकर राम-राम कर आया। फिर और मित्रों से मिला। गाँव में कोई विशेष परिवर्तन न था। हाँ, पटेश्वरी की नई बैठक बन गई थी और झिंगुरीसिंह ने दरवाजे पर नया कुआँ खुदवा लिया था। गोबर के मन में विद्रोह और भी ताल ठोंकने लगा। जिससे मिला उसने उसका आदर किया,

और युवकों ने तो उसे अपना हीरो बना लिया और उसके साथ लखनऊ जाने को तैयार हो गये। साल ही भर में वह क्या से क्या हो गया था।

सहसा झिंगुरीसिंह अपने कुएँ पर नहाते हुए मिल गये। गोबर निकला; मगर न सलाम किया, न बोला। वह ठाकुर को दिखा देना चाहता था, मैं तुम्हें कुछ नहीं समझता।

झिंगुरीसिंह ने ख़ुद ही पूछा—कब आये गोबर, मजे में तो रहे? कहीं नौकर थे लखनऊ में?

गोबर ने हेकड़ी के साथ कहा—लखनऊ गुलामी करने नहीं गया था। नौकरी है तो गुलामी। मैं व्यापार करता था।

ठाकुर ने कुतूहल-भरी आँखों से उसे सिर से पाँव तक देखा—कितना रोज पैदा करते थे?

गोबर ने झूठ को भाला बनाकर उनके ऊपर चलाया—यही कोई ढाई तीन रुपये मिल जाते थे। कभी चटक गई तो चार भी मिल गये। इससे बेसी नहीं।

झिंगुरी बहुत नोच-खसोट करके भी पचीस-तीस से ज़्यादा न कमा पाते थे। और यह गँवार लौंडा सौ रुपये कमाने लगा। उनका मस्तक नीचा हो गया। अब वह किस दावे से उस पर रोब जमा सकते हैं। वर्ण में वह ज़रूर ऊँचे हैं; लेकिन वर्ण कौन देखता है। उससे स्पर्द्धा करने का यह अवसर नहीं, अब तो उसकी चरौरी करके उससे कुछ काम निकाला जा सकता है। बोले—इतनी कमाई कम नहीं है बेटा, जो खरच करते बने। गाँव में तो तीन आने भी नहीं मिलते। भवनिया (उनके जेठे पुत्र का नाम था) को भी कहीं कोई काम दिला दो, तो भेज दूँ। न पढ़े न लिखे, एक-न-एक उपद्रव करता रहता है। कहीं मुनीमी खाली हो तो कहना। नहीं साथ ही लेते जाना। तुम्हारा तो मित्र है। तलब थोड़ी हो, कुछ गम नहीं। हाँ, चार पैसे की ऊपर की गुंजाइश हो।

गोबर ने अभिमान भरी हँसी के साथ कहा—यह ऊपरी आमदनी की चाट आदमी को ख़राब कर देती है ठाकुर; लेकिन हम लोगों की आदत कुछ ऐसी बिगड़ गई है कि जब तक बेईमानी न करें, पेट ही नहीं भरता। लखनऊ में मुनीमी मिल सकती है; लेकिन हरएक महाजन ईमानदार चौकस आदमी चाहता

है। मैं भवानी को किसी के गले बाँध तो दूँ; लेकिन पीछे इन्होंने कहीं हाथ लपकाया, तो वह तो मेरी गर्दन पकड़ेगा। संसार में इल्म की कदर नहीं है, ईमान की कदर है।

यह तमाचा लगाकर गोबर आगे निकल गया। झिंगुरी मन में ऐंठकर रह गये। लौंडा कितने घमण्ड की बातें करता है, मानो धर्म का अवतार ही तो है।

इसी तरह गोबर ने दातादीन को भी रगड़ा। भोजन करने जा रहे थे। गोबर को देखकर प्रसन्न होकर बोले—मजे में तो रहे गोबर? सुना वहाँ कोई अच्छी जगह पा गये हो। मातादीन को भी किसी हीले से लगा दो न? भंग पीकर पड़े रहने के सिवा यहाँ और कौन काम है।

गोबर ने बनाया—तुम्हारे घर में किस बात की कमी है महाराज, जिस जज-मान के द्वार पर जाकर खड़े हो जाओ, कुछ न कुछ मार ही लाओगे। जनम में लो, मरन में लो, सादी में लो, गमी में लो; खेती करते हो, लेन-देन करते हो, दलाली करते हो, किसी से कुछ भूल-चूक हो जाय तो डाँड़ लगाकर उसका घर लूट लेते हो; इतनी कमाई से पेट नहीं भरता? क्या करोगे बहुत-सा धन बटोरकर, कि साथ ले जाने की कोई जुगुत निकाल ली है!

दातादीन ने देखा, गोबर कितना ढिठाई से बोल रहा है; अदब और लिहाज़ जैसे भूल गया। अभी शायद नहीं जानता कि बाप मेरी गुलामी कर रहा है। सच है, छोटी नदी को उमड़ते देर नहीं लगती; मगर चेहरे पर मैल नहीं आने दिया। जैसे बड़े लोग बालकों से मूँछें उखड़वाकर भी हँसते हैं, उन्होंने भी इस फटकार को हँसी में लिया और विनोद-भाव से बोले—लखनऊ की हवा खाके तू बड़ा चंट हो गया है गोबर! ला, क्या कमा के लाया है, कुछ निकाल। सच कहता हूँ गोबर, तुम्हारी बहुत याद आती थी। अब तो रहोगे कुछ दिन?

'हाँ, अभी तो रहूँगा कुछ दिन। उन पञ्चों पर दावा करना है, जिन्होंने डाँड़ के बहाने मेरे डेढ़ सौ रुपए हजम किये हैं। देखूँ, कौन मेरा हुक्का-पानी बन्द करता है और कौन बिरादरी मुझे जात-बाहर करती है।'

यह धमकी देकर वह आगे बढ़ा। उसकी हेकड़ी ने उसके युवक भक्तों को रोब में डाल दिया था।

एक ने कहा—कर दो नालिस गोबर भैया! बुड्ढा काला साँप है—जिसके

काटे का अन्तर नहीं। तुमने अच्छी डाँट बताई। पटवारी के कान भी जरा गरमा दो। बड़ा मुतफन्नी है दादा। बाप-बेटे में आग लगा दे, भाई-भाई में आग लगा दे। कारिन्दे से मिलकर असामियों का गला काटता है। अपने खेत पीछे जोतो, पहले उसके खेत जोत दो। अपनी सिंचाई पीछे करो, पहले उसके खेत सींच दो।

गोबर ने मूँछों पर ताव देकर कहा—मुझसे क्या कहते हो भाई, सालभर में भूल थोड़े ही गया। यहाँ मुझे रहना ही नहीं है, नहीं एक एक को नचाकर छोड़ता। अबकी होली धूम-धाम से मनाओ और होली का स्वाँग बनाकर इन सबों को खूब भिगो-भिगोकर लगाओ।

होली का प्रोग्राम बनने लगा। खूब भंग घुटे, दूधिया भी नमकीन भी, और रंगों के साथ कालिख भी बने और मुखियों के मुँह पर कालिख ही पोती जाय। होली में कोई बोल भी क्या सकता है। फिर स्वाँग निकले और पञ्चों की भद्द उड़ाई जाय। रुपए-पैसे की कोई चिन्ता नहीं। गोबर भाई कमाकर आये हैं।

भोजन करके गोबर भोला से मिलने चला। जब तक अपनी जोड़ी लाकर अपने द्वार पर बाँध न दे, उसे चैन नहीं। वह लड़ने-मरने को तैयार था।

होरी ने कातर स्वर में कहा—राढ़ मत बढ़ाओ बेटा, भोला गोईं ले गये, भगवान् उनका भला करे; लेकिन उनके रुपए तो आते ही थे।

गोबर ने उत्तेजित होकर कहा—दादा, तुम बीच में न बोलो। उनकी गाय पचास की थी। हमारी गोईं डेढ़ सौ में आई थी। तीन साल हमने जोती। फिर भी सौ की थी ही। वह अपने रुपए के लिए दावा करते, डिग्री कराते, या जो चाहते करते, हमारे द्वार से जोड़ी क्यों खोल ले गये! और तुम्हें क्या कहूँ। इधर गोईं खो बैठे, उधर डेढ़ सौ रुपए डाँड़ के भरे। यह है गऊ होने का फल। मेरे सामने जोड़ी खोल ले जाते, तो देखता। तीनों को यहीं ज़मीन पर सुला देता। और पञ्चों से तो बात तक न करता। देखता, कौन मुझे बिरादरी से अलग करता है; लेकिन तुम बैठे ताकते रहे।

होरी ने अपराधी की भाँति सिर झुका लिया; लेकिन धनिया यह अनीति कैसे देख सकती थी। बोली—बेटा, तुम भी तो अन्धेर करते हो। हुक्का-पानी बन्द हो जाता, तो गाँव में निबाह होता? जवान लड़की बैठी है, उसका भी कहीं ठिकाना लगाना है कि नहीं। मरने-जीने में आदमी बिरादरी...

गोबर ने बात काटी—हुक्का-पानी सब तो था, बिरादरी में आदर भी था, फिर मेरा ब्याह क्यों नहीं हुआ? बोलो। इसलिए कि घर में रोटी न थी। रुपए हों तो न हुक्का-पानी का काम है, न जात-बिरादरी का। दुनिया पैसे की है। हुक्का-पानी कोई नहीं पूछता।

धनिया तो बच्चे का रोना सुनकर भीतर चली गई और गोबर भी घर से निकला। होरी बैठा सोच रहा था, लड़के की अकल जैसे खुल गई है। कैसी बेलाग बात कहता है। उसकी वक्र बुद्धि ने होरी के धर्म और नीति को परास्त कर दिया था।

सहसा होरी ने उससे पूछा—मैं भी चला चलूँ?

'मैं लड़ाई करने नहीं जा रहा हूँ दादा, डरो मत। मेरी ओर तो कानून है, मैं क्यों लड़ाई करने लगा।'

'मैं भी चलूँ तो कोई हरज है?'

'हाँ, बड़ा हरज है। तुम बनी बात बिगाड़ दोगे।'

होरी चुप हो गया और गोबर चल दिया।

पाँच मिनट भी न हुए होंगे कि धनिया बच्चे को लिये बाहर निकली और बोली—क्या गोबर चला गया, अकेले? मैं कहती हूँ, तुम्हें भगवान् कभी बुद्धि देंगे या नहीं। भोला क्या सहज में गोइँ देगा? तीनों उस पर टूट पड़ेंगे, बाज की तरह। भगवान् ही कुशल करें। अब किससे कहूँ, दौड़कर गोबर को पकड़ ले। तुमसे तो मैं हार गई।

होरी ने कोने से डण्डा उठाया और गोबर के पीछे दौड़ा। गाँव के बाहर आकर उसने निगाह दौड़ाई। एक क्षीण-सी रेखा क्षितिज से मिली हुई दिखाई दी। इतनी ही देर में गोबर इतनी दूर कैसे निकल गया। होरी की आत्मा उसे धिक्कारने लगी। उसने क्यों गोबर को रोका नहीं। अगर वह डाँटकर कह देता, भोला के घर मत जाओ, तो गोबर कभी न जाता। और अब उससे दौड़ा भी तो नहीं जाता। वह हारकर वहीं बैठ गया और बोला—उसकी रच्छा करो महाबीर स्वामी!

गोबर उस गाँव में पहुँचा, तो देखा, कुछ लोग बरगद के नीचे बैठे जुआ खेल रहे हैं। उसे देखकर लोगों ने समझा, पुलिस का सिपाही है। कौड़ियाँ समेटकर भागे कि सहसा जंगी ने उसे पहचानकर कहा—अरे, यह तो गोबरधन है।

गोबर ने देखा, जंगी पेड़ की आड़ में खड़ा झाँक रहा है। बोला—डरो मत जंगी भैया, मैं हूँ। राम राम! आज ही आया हूँ। सोचा 'चलूँ सबसे मिलता आऊँ, फिर न जाने कब आना हो। मैं तो भैया, तुम्हारे आसिरबाद से बड़े मजे में निकल गया। जिस राजा की नौकरी में हूँ, उसने मुझसे कहा है कि एक-दो आदमी मिल जायँ, तो लेते आना। चौकीदारी के लिए चाहिए। मैंने कहा, सरकार, ऐसे आदमी दूँगा कि चाहे जान चली जाय, मैदान से हटनेवाले नहीं, इच्छा हो तो मेरे साथ चलो। अच्छी जगह है।'

जंगी उसका ठाट-बाट देखकर रोब में आ गया। उसे कभी चमरौधे जूते भी मयस्सर न हुए थे। और गोबर चमाचम बूट पहने हुए था। साफ-सुथरी, धारीदार कमीज, सँवारे हुए बाल, पूरा बाबू साहब बना हुआ। फटेहाल गोबर और इस परिष्कृत गोबर में बड़ा अन्तर था। हिंसा-भाव कुछ तो यों ही समय के प्रभाव से शान्त हो गया था और बचा-खुचा अब शान्त हो गया। जुआड़ी था ही, उस पर गांजे की लत। और घर में बड़ी मुश्किल से पैसे मिलते थे। मुँह में पानी भर आया। बोला—चलूँगा क्यों नहीं, यहाँ पड़ा-पड़ा मक्खी ही तो मार रहा हूँ। के रुपये मिलेंगे?

गोबर ने बड़े आत्मविश्वास से कहा—इसकी कुछ चिन्ता न करो। सब कुछ अपने ही हाथ में है। जो चाहोगे, वह हो जायगा। हमने सोचा, जब घर में ही आदमी है, तो बाहर क्यों जायँ।

जंगी ने उत्सुकता से पूछा—काम क्या करना पड़ेगा?

'काम चाहे चौकीदारी करो, चाहे तगादे पर जाओ। तगादे का काम सबसे अच्छा। असामी से गठ गये। आकर मालिक से कह दिया, घर पर मिला ही नहीं, चाहो तो रुपये-आठ आने रोज़ बना सकते हो।'

'रहने की जगह भी मिलती है?'

'जगह की कौन-सी कमी। पूरा महल पड़ा है। पानी का नल, बिजली। किसी बात की कमी नहीं है। कामता हैं कि कहीं गये हैं?'

'दूध लेकर गये हैं। मुझे कोई बाजार नहीं जाने देता। कहते हैं, तुम तो गाँजा पी जाते हो। मैं अब बहुत कम पीता हूँ भैया, लेकिन दो पैसे रोज तो चाहिए ही। तुम कामता से कुछ न कहना। मैं तुम्हारे साथ चलूँगा।'

'हाँ-हाँ, बेखटके चलो। होली के बाद।'

'तो पक्की रही।'

दोनों आदमी बातें करते भोला के द्वार पर आ पहुँचे। भोला बैठे सुतली कात रहे थे। गोबर ने लपककर उनके चरण छुये और इस वक्त उसका गला सचमुच भर आया। बोला—काका, मुझसे जो कुछ भूल-चूक हुई, उसे क्षमा करो।

भोला ने सुतली कातना बन्द कर दिया और पथरीले स्वर में बोला—काम तो तुमने ऐसा ही किया था गोबर, कि तुम्हारा सिर काट लूँ तो भी पाप न लगे; लेकिन अपने द्वार पर आये हो, अब क्या कहूँ। जाओ, जैसा मेरे साथ किया उसकी सजा भगवान् देंगे। कब आये?

गोबर ने ख़ूब नमक-मिर्च लगाकर अपने भाग्योदय का वृत्तान्त कहा, और जंगी को अपने साथ ले जाने की अनुमति माँगी। भोला को जैसे बेमाँगे बरदान मिल गया। जंगी घर पर एक न एक उपद्रव करता रहता था। बाहर चला जायगा, तो चार पैसे पैदा तो करेगा। न किसी को कुछ दे, अपना बोझ तो उठा लेगा।

गोबर ने कहा—नहीं काका, भगवान् ने चाहा और इनसे रहते बना तो साल-दो साल में आदमी हो जायँगे।

'हाँ, जब इनसे रहते बने।'

'सिर पर आ पड़ती है, तो आदमी आप सँभल जाता है।'

'तो कब तक जाने का बिचार है?'

'होली करके चला जाऊँगा। यहाँ खेती-बारी का सिल-सिला फिर जमा दूँ, तो निश्चिन्त हो जाऊँ।'

'होरी से कहो, अब बैठके राम-राम करें।'

'कहता तो हूँ, लेकिन जब उनसे बैठा जाय।'

'वहाँ किसी बैद से तो तुम्हारी जान-पहचान होगी। खाँसी बहुत दिक कर रही है। हो सके तो कोई दवाई भेज देना।'

'एक नामी बैद तो मेरे पड़ोस ही में रहते हैं। उनसे हाल कहके दवा बनवा-कर भेज दूँगा। खाँसी रात को जोर करती है कि दिन को?'

'नहीं, बेटा, रात को। आँख नहीं लगती। नहीं वहाँ कोई डौल हो, तो मैं भी वहीं चलकर रहूँ। यहाँ तो कुछ परता नहीं पड़ता।'

'रोजगार का जो मजा वहाँ है काका, यहाँ क्या होगा। यहाँ रुपये का दस सेर दूध भी कोई नहीं पूछता। हलवाइयों के गले लगाना पड़ता है। वहाँ पाँच-छः सेर के भाव से चाहो तो एक घड़ी में मनों दूध बेच लो।'

जंगी गोबर के लिए दूधिया शर्बत बनाने चला गया था। भोला ने एकान्त देखकर कहा—और भैया, अब इस जंगल से जी ऊब गया है। जंगी का हाल देखते ही हो। कामता दूध लेकर जाता है। सानी-पानी, खोलना-बाँधना, सब मुझे करना पड़ता है। अब तो यही जी चाहता है कि सुख से कहीं एक रोटी खाऊँ और पड़ा रहूँ। कहाँ तक हाय-हाय करूँ। रोज लड़ाई-झगड़ा। किस-किस के पाँव सहलाऊँ। खाँसी आती है, रात को उठा नहीं जाता; पर कोई एक लोटे पानी को भी नहीं पूछता। पगहिया टूट गई है, मुदा किसी को इसकी सुधि नहीं है। जब मैं बनाऊँगा तभी बनेगी।

गोबर ने आत्मीयता के साथ कहा—तुम चलो लखनऊ काका। पाँच सेर का दूध बेचो, नगद। कितने ही बड़े-बड़े अमीरों से मेरी जान पहचान है। मन-भर दूध की निकासी का जिम्मा तो मैं लेता हूँ। मेरी चाय की दूकान भी है। दस सेर दूध तो मैं ही नित लेता हूँ। तुम्हें किसी तरह का कष्ट न होगा।

जंगी दूधिया शर्बत ले आया। गोबर ने एक गिलास शर्बत पीकर कहा—तुम तो खाली साँझ-सबेरे चाय की दूकान पर बैठ जाओ काका, तो एक रुपया कहीं नहीं गया है।

भोला ने एक मिनट के बाद संकोच-भरे भाव से कहा—क्रोध में बेटा, आदमी अन्धा हो जाता है। मैं तुम्हारी गोईं खोल लाया था। उसे लेते जाना। यहाँ कौन खेती-बारी होती है।

'मैंने तो एक नई गोईं ठीक कर ली है काका!'

'नहीं-नहीं, नई गोईं लेकर क्या करोगे। इसे लेते जाओ।'

'तो मैं तुम्हारे रुपये भिजवा दूँगा।'

'रुपये कहीं बाहर थोड़े ही हैं बेटा, घर में ही तो हैं। बिरादरी का ढकोसला है, नहीं तुममें और हममें कौन भेद है। सच पूछो तो मुझे ख़ुश होना चाहिए था कि झुनिया भले घर में है, आराम से है। और मैं उसके ख़ून का प्यासा बन गया था।'

संध्या समय गोबर यहाँ से चला, तो गोईं उसके साथ थी और दही की दो हाँड़ियाँ लिये जंगी पीछे-पीछे आ रहा था।

२१

देहातों में साल के छः महीने किसी न किसी उत्सव में ढोल-मजीरा बजता रहता है। होली के एक महीना पहले से एक महीना बाद तक फाग उड़ती है; आषाढ़ लगते ही आल्हा शुरू हो जाता है और सावन-भादों में कजलियाँ होती हैं। कजलियों के बाद रामायण-गान होने लगता है। सेमरी भी अपवाद नहीं है। महाजन की धमकियाँ और कारिन्दे की बोलियाँ इस समारोह में बाधा नहीं डाल सकतीं। घर में अनाज नहीं है, देह पर कपड़े नहीं हैं, गाँठ में पैसे नहीं हैं, कोई परवा नहीं। जीवन की आनन्द-वृत्ति तो दबाई नहीं जा सकती, हँसे बिना तो जिया नहीं जा सकता।

यों होली में गाने-बजाने का मुख्य स्थान नोखेराम की चौपाल थी। वहीं भंग बनती थी, वहीं रंग उड़ता था, वहीं नाच होता था। इस उत्सव में कारिन्दा साहब के दस-पाँच रुपये ख़र्च हो जाते थे। और किसमें यह सामर्थ्य थी कि अपने द्वार पर जलसा कराता।

लेकिन अबकी गोबर ने गाँव के सारे नवयुवकों को अपने द्वार पर खींच लिया है और नोखेराम की चौपाल ख़ाली पड़ी हुई है। गोबर के द्वार पर भंग घुट रही है, पान के बीड़े लग रहे हैं, रङ्ग घोला जा रहा है, फ़र्श बिछा हुआ है, गाना हो रहा है, और चौपाल में सन्नाटा छाया हुआ है। भंग रखी हुई है, पीसे कौन? ढोल-मजीरा सब मौजूद हैं; पर गाये कौन! जिसे देखो, गोबर के द्वार की ओर दौड़ा चला जा रहा है। यहाँ भंग में गुलाब-जल और केसर और बादाम की बहार है। हाँ-हाँ, सेर-भर बदाम गोबर ख़ुद लाया। पीते ही चोला तर हो जाता है, आँखें खुल जाती हैं। ख़मीरा तमाखू लाया है, ख़ास बिसवाँ की? रंग में भी केवड़ा छोड़ा है। रुपये कमाना भी जानता है; और ख़रच करना भी जानता है। गाड़कर रख लो, तो कौन देखता है। धन की यही शोभा है। और केवल भंग ही नहीं है। जितने गानेवाले हैं सबका नेवता भी है। और गाँव में न नाचनेवालों की कमी है, न गानेवालों की, न अभिनय करनेवालों की। शोभा ही लँगड़ों की

ऐसी नक़ल करता है कि क्या कोई करेगा और बोली की नकल करने में तो उसका सानी नहीं है। जिसकी बोली कहो, उसकी बोले—आदमी की भी, जानवर की भी। गिरधर नक़ल करने में बेजोड़ है। वकील की नक़ल वह करे, पटवारी की नक़ल वह करे; थानेदार की, चपरासी की, सेठ की, सभी की नक़ल कर सकता है। हाँ, बेचारे के पास वैसा सामान नहीं है; मगर अबकी गोबर ने उसके लिए सभी सामान मँगा दिया है, और उसकी नक़लें देखने जोग होंगी।

यह चर्चा इतनी फैली कि साँझ से ही तमाशा देखनेवाले जमा होने लगे। आस-पास के गाँवों से दर्शकों की टोलियाँ आने लगीं। दस बजते-बजते तीन-चार हज़ार आदमी जमा हो गये। और जब गिरधर झिंगुरीसिंह का रूप भरे अपनी मण्डली के साथ खड़ा हुआ, तो लोगों को खड़े होने की भी जगह न मिलती थी। वही खल्वाट सिर, वही बड़ी मूछें, और वही तोंद! बैठे भोजन कर रहे हैं और पहली ठकुराइन बैठी पखा झल रही हैं।

ठाकुर ठकुराइन को रसिक नेत्रों से देखकर कहते हैं—अब भी तुम्हारे ऊपर वह जोबन है कि कोई जवान भी देख ले, तो तड़प जाय। और ठकुराइन फूलकर कहती हैं, जभी तो नई नवेली लाये।

'उसे तो लाया हूँ तुम्हारी सेवा करने के लिए। वह तुम्हारी क्या बराबरी करेगी?'

छोटी बीवी, यह वाक्य सुन लेती है और मुँह फुलाकर चली जाती है।

दूसरे दृश्य में ठाकुर खाट पर लेटे हैं और छोटी बहू मुँह फेरे हुए ज़मीन पर बैठी है। ठाकुर बार-बार उसका मुँह अपनी ओर फेरने की विफल चेष्टा करके कहते हैं—मुझसे क्यों रूठी हो मेरी लाड़ली!

'तुम्हारी लाड़ली जहाँ हो, वहाँ जाओ। मैं तो लौंडी हूँ, दूसरों की सेवा-टहल करने के लिए आई हूँ।'

'तुम मेरी रानी हो! तुम्हारी सेवा-टहल करने के लिए वह बुढ़िया है।'

पहली ठकुराइन सुन लेती हैं और झाड़ू लेकर घर में घुसती हैं और कई झाड़ू उन पर जमाती हैं। ठाकुर साहब जान बचाकर भागते हैं।

फिर दूसरी नक़ल हुई, जिसमें ठाकुर ने दस रुपये का दस्तावेज़ लिखाकर पाँच रुपये दिये, शेष नज़राने और तहरीर और दस्तूरी और ब्याज में काट लिये।

किसान आकर ठाकुर के चरण पकड़कर रोने लगता है। बड़ी मुश्किल से ठाकुर रुपये देने पर राज़ी होते हैं। जब कागज़ लिख जाता है और असामी के हाथ में पाँच रुपये रख दिये जाते हैं, तो वह चकराकर पूछता है—

'यह तो पाँच ही हैं मालिक!'

'पाँच नहीं दस हैं। घर जाकर गिनना!'

'नहीं सरकार, पाँच हैं।'

'एक रुपया नज़राने का हुआ कि नहीं?'

'हाँ, सरकार!'

'एक तहरीर का?'

'हाँ, सरकार!'

'एक कागद का?'

'हाँ, सरकार!'

'एक दस्तूरी का?'

'हाँ, सरकार!'

'एक सूद का?'

'हाँ, सरकार!'

'पाँच नगद, दस हुए कि नहीं?'

'हाँ, सरकार! अब यह पाँचो भी मेरी ओर से रख लीजिए।'

'कैसा पागल है!'

'नहीं सरकार, एक रुपया छोटी ठकुराइन का नज़राना है, एक रुपया बड़ी ठकुराइन का। एक रुपया छोटी ठकुराइन के पान खाने को, एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने को। बाकी बचा एक, वह आपकी क्रिया-करम के लिए!'

इसी तरह नोखेराम और पटेश्वरी और दातादीन की—बारी-बारी से सबकी ख़बर ली गई। और फबतियों में चाहे कोई नयापन न हो और नक़लें पुरानी हों; लेकिन गिरधर का ढंग ऐसा हास्यजनक था, दर्शक इतने सरल हृदय थे कि बेबात की बात में भी हँसते थे। रात-भर भँडैती होती रही और सताये हुए दिल, कल्पना में प्रतिशोध पाकर प्रसन्न होते रहे। आख़िरी नक़ल समाप्त हुई, तो कौवे बोल रहे थे।

सबेरा होते ही जिसे देखो, उसी की ज़बान पर वह रात के गाने, वही फ़िकरे। मुखिये तमाशा बन गये। जिधर निकलते हैं, उधर ही दो-चार लड़के पीछे लग जाते हैं और वही फ़िकरे कसते हैं। झिंगुरीसिंह तो दिल्लगीबाज़ आदमी थे, इसे दिल्लगी में लिया; मगर पटेश्वरी में चिढ़ने की बुरी आदत थी और पण्डित दातादीन तो इतने तुनुकमिज़ाज थे कि लड़ने पर तैयार हो जाते थे। वह सबसे सम्मान पाने के आदी थे। कारिन्दा की तो बात ही क्या, राय साहब तक उन्हें देखते ही सिर झुका देते थे। उनकी ऐसी हँसी उड़ाई जाय और अपने ही गाँव में—यह उनके लिए असह्य था। अगर उनमें ब्रह्म-तेज होता तो इन दुष्टों को भस्म कर देते, ऐसा शाप देते कि सब-के-सब भस्म हो जाते; लेकिन इस कलियुग में शाप का असर ही जाता रहा। इसलिए उन्होंने कलियुगवाला हथियार निकाला। होरी के द्वार पर आये और आँखें निकालकर बोले—क्या आज भी तुम काम करने न चलोगे होरी? अब तो तुम अच्छे हो गये। मेरा कितना हरज हो गया, यह तुम नहीं सोचते।

गोबर देर में सोया था। अभी-अभी उठा था और आँखें मलता हुआ बाहर आ रहा था कि दातादीन की आवाज़ कान में पड़ी। पालागन करना तो दूर रहा, उलटे और हेकड़ी दिखाकर बोला—अब वह तुम्हारी मजूरी न करेंगे। हमें अपनी ऊख भी तो बोनी है।

दातादीन ने सुरती फाँकते हुए कहा—काम कैसे नहीं करेंगे। साल के बीच में काम नहीं छोड़ सकते। जेठ में छोड़ना हो छोड़ दें, करना हो करें। उसके पहले नहीं छोड़ सकते।

गोबर ने जम्हाई लेकर कहा—उन्होंने तुम्हारी ग़ुलामी नहीं लिखी है। जब तक इच्छा थी, काम किया। अब नहीं इच्छा है, नहीं करेंगे। इसमें कोई ज़बरदस्ती नहीं कर सकता।

'तो होरी काम नहीं करेंगे?'

'ना!'

'तो हमारे रुपये सूद समेत दे दो। तीन साल का सूद होता है सौ रुपया। असल मिलाकर दो सौ होते हैं। हमने समझा था, तीन रुपये महीने सूद में कटते जायँगे; लेकिन तुम्हारी इच्छा नहीं है, तो मत करो। मेरे रुपये दे दो। धन्ना सेठ बनते हो, तो धन्ना सेठ का काम करो।'

होरी ने दातादीन से कहा—तुम्हारी चाकरी से मैं कब इनकार करता हूँ महाराज ? लेकिन हमारी ऊख भी तो बोने को पड़ी है।

गोबर ने बाप को डाँटा—कैसी चाकरी और किसकी चाकरी ? यहाँ कोई किसी का चाकर नहीं। सभी बराबर हैं। अच्छी दिल्लगी है। किसी को सौ रुपये उधार दे दिये और उससे सूद में ज़िन्दगी-भर काम लेते रहे ! मूल ज्यों का त्यों ! यह महाजनी नहीं है, खून चूसना है।

'तो रुपए दे दो भैया, लड़ाई काहे को। मैं आने रुपये ब्याज लेता हूँ। तुम्हें गाँव-घर का समझकर आध आने रुपये पर दिया था।

'हम तो एक रुपया सैकड़ा देंगे। एक कौड़ी बेसी नहीं। तुम्हें लेना हो तो लो, नहीं अदालत से लेना। एक रुपया सैकड़े ब्याज कम नहीं होता।'

'मालूम होता है, रुपये की गर्मी हो गई है।'

'गर्मी उन्हें होती है, जो एक के दस लेते हैं। हम तो मजूर हैं। हमारी गर्मी पसीने के रास्ते बह जाती है। मुझे ख़ूब याद है, तुमने बैल के लिए तीस रुपये दिये थे। उसके सौ हुए। और अब सौ के दो सौ हो गये। इसी तरह तुम लोगों ने किसानों को लूट-लूटकर मजूर बना डाला और आप उनकी ज़मीन के मालिक बन बैठे। तीस के दो सौ ! कुछ हद है ! कितने दिन हुए होंगे दादा !

होरी ने कातर कंठ से कहा—यही आठ-नौ साल हुए होंगे।

गोबर ने छाती पर हाथ रखकर कहा—नौ साल में तीस रुपये के दो सौ ! एक रुपये के हिसाब से कितना होता है ?

उसने ज़मीन पर एक ठीकरे से हिसाब लगाकर कहा—दस साल में छत्तीस रुपये होते हैं। असल मिलाकर छाछठ। उसके सत्तर रुपये ले लो। इससे बेसी मैं एक कौड़ी न दूँगा।

दातादीन ने होरी को बीच में डालकर कहा—सुनते हो होरी, गोबर का फैसला। मैं अपने दो सौ छोड़के सत्तर रुपये ले लूँ, नहीं अदालत करूँ। इस तरह का व्यवहार हुआ तो के दिन संसार चलेगा। और तुम बैठे सुन रहे हो; मगर यह समझ लो, मैं ब्राह्मण हूँ, मेरे रुपये हजम करके तुम चैन न पाओगे। मैंने ये सत्तर रुपये भी छोड़े, अदालत भी न जाऊँगा, जाओ। अगर मैं ब्राह्मण हूँ, तो

अपने पूरे दो सौ रुपये लेकर दिखा दूँगा। और तुम मेरे द्वार पर आओगे और हाथ बाँधकर दोगे।

दातादीन झल्लाये हुए लौट पड़े। गोबर अपनी जगह बैठा रहा। मगर होरी के पेट में धर्म की क्रान्ति मची हुई थी। अगर ठाकुर या बनिये के रुपये होते, तो उसे ज़्यादा चिन्ता न होती; लेकिन ब्राह्मण के रुपये! उसकी एक पाई भी दब गई, तो हड्डी तोड़कर निकलेगी। भगवान् न करें कि ब्राह्मण का कोप किसी पर गिरे। बंस में कोई चिल्लू-भर पानी देनेवाला, घर में दिया जलानेवाला भी नहीं रहता। उसका धर्म-भीरु मन त्रस्त हो उठा। उसने दौड़कर पण्डितजी के चरण पकड़ लिये और आर्त्त स्वर में बोला—महाराज, जब तक मैं जीता हूँ, तुम्हारी एक-एक पाई चुकाऊँगा। लड़कों की बातों पर मत जाओ। मामला तो हमारे तुम्हारे बीच में हुआ है। वह कौन होता है।

दातादीन ज़रा नर्म पड़े—ज़रा इसकी ज़बरदस्ती देखो, कहता है दो सौ रुपये के सत्तर लो या अदालत जाओ। अभी अदालत की हवा नहीं खाई है, जभी। एक बार किसी के पाले पड़ जायँगे, तो फिर यह ताव न रहेगा। चार दिन सहर में क्या रहे, तानासाह हो गये।

'मैं तो कहता हूँ महाराज, मैं तुम्हारी एक-एक पाई चुकाऊँगा।'

'तो कल से हमारे यहाँ काम करने आना पड़ेगा।

'अपनी ऊख बोना है महाराज, नहीं तुम्हारा ही काम करता।'

दातादीन चले गये तो गोबर ने तिरस्कार की आँखों से देखकर कहा—गये थे देवता को मनाने! तुम्हीं लोगों ने तो इन सबों का मिज़ाज बिगाड़ दिया है। तीस रुपये दिये, अब दो सौ रुपये लेगा, और डाँट ऊपर से बतायेगा और तुमसे मजूरी करायेगा और काम कराते-कराते मार डालेगा!

होरी ने अपने विचार में सत्य का पक्ष लेकर कहा—नीति हाथ से न छोड़ना चाहिए बेटा, अपनी-अपनी करनी अपने-अपने साथ है। हमने जिस ब्याज पर रुपये लिये, वह तो देने ही पड़ेंगे। फिर बाम्हन ठहरे। इनका पैसा हमें पचेगा? ऐसा माल तो इन्हीं लोगों को पचता है।

गोबर ने त्योरियाँ चढ़ाईं—नीति छोड़ने को कौन कह रहा है। और कौन कह रहा है कि बाम्हन के पैसे दबा लो! मैं तो यही कहता हूँ कि इतना सूद नहीं

देंगे। बंकवाले बारह आने सूद लेते हैं। तुम एक रुपया ले लो। और क्या किसी को लूट लोगे!

'उसका रोयाँ जो दुखी होगा?'

'हुआ करे। उसके दुखी होने के डर से हम बिल क्यों खोदें?'

'बेटा, जब तक मैं जीता हूँ, मुझे अपने रस्ते चलने दो। जब मैं मर जाऊँ तो तुम्हारी जो इच्छा हो वह करना।'

'तो फिर तुम्हीं देना। मैं तो अपने हाथों अपने पाँव में कुल्हाड़ी न मारूँगा। मेरा गधापन था कि तुम्हारे बीच में बोला—तुमने खाया है, तुम भरो। मैं क्यों अपनी जान दूँ?'

यह कहता हुआ गोबर भीतर चला गया। झुनिया ने पूछा—आज सबेरे-सबेरे दादा से क्यों उलझ पड़े?

गोबर ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया और अन्त में बोला—इनके ऊपर रिन का बोझ इसी तरह बढ़ता जायगा। मैं कहाँ तक भरूँगा। उन्होंने कमा-कमाकर दूसरों का घर भरा है। मैं क्यों उनकी खोदी हुई खंदक में गिरूँ। इन्होंने मुझसे पूछकर करज नहीं लिया। न मेरे लिए लिया। मैं उसका देनदार नहीं हूँ।

उधर मुखियों में गोबर को नीचा दिखाने के लिए षड्यन्त्र रचा जा रहा था। यह लौंडा शिकंजे में न कसा गया, तो गाँव में ऊधम मचा देगा। प्यादे से फर्जी हो गया है न, टेढ़े तो चलेगा ही। जाने कहाँ से इतना कानून सीख आया है। कहता है, रुपये सैकड़े सूद से बेसी न दूँगा। लेना हो तो लो, नहीं अदालत जाओ। रात इसने सारे गाँव के लौंडों को बटोरकर कितना अनर्थ किया। लेकिन मुखियों में भी ईर्ष्या की कमी न थी। सभी अपने बराबरवालों के परिहास पर प्रसन्न थे। पटेश्वरी और नोखेराम में बातें हो रही थीं। पटेश्वरी ने कहा—मगर सबों को घर-घर का रत्ती-रत्ती का हाल मालूम है। झिंगुरीसिंह को तो सबों ने ऐसा रगेदा कि कुछ न पूछो। दोनों ठकुराइनों की बातें सुन-सुनकर लोग हँसी के मारे लोट गये।'

नोखेराम ने ठट्ठा मारकर कहा—मगर नक़ल सच्ची थी। मैंने कई बार उनकी छोटी बेगम को द्वार पर खड़े लौंडों से हँसी करते देखा।

'और बड़ी रानी काजल और सेंदुर और महावर लगाकर जवान बनी रहती हैं।'

'दोनों में रात-दिन छिड़ी रहती है। झिंगुरी पक्का बेहया है। कोई दूसरा होता तो पागल हो जाता।'

'सुना, तुम्हारी बड़ी भद्दी नक़ल की। चमरिया के घर में बन्द कराके पिटवाया।'

'मैं तो बचा पर बक़ाया लगान का दावा करके ठीक कर दूँगा। वह भी क्या याद करेंगे कि किसी से पाला पड़ा था।'

'लगान तो उसने चुका दिया है न?'

'लेकिन रसीद तो मैंने नहीं दी। सबूत क्या है कि लगान चुका दिया! और यहाँ कौन हिसाब-किताब देखता है। आज ही प्यादा भेजकर बुलाता हूँ।'

होरी और गोबर दोनों ऊख बोने के लिए खेत सींच रहे थे। अबकी ऊख की खेती होने की आशा तो थी नहीं, इसलिए खेत परती पड़ा हुआ था। अब बैल आ गये हैं, तो ऊख क्यों न बोई जाय।

मगर दोनों जैसे छत्तीस बने हुए थे। न बोलते थे, न ताकते थे। होरी बैलों को हाँक रहा था और गोबर मोट ले रहा था। सोना और रूपा दोनों खेत में पानी दौड़ा रही थीं कि उनमें झगड़ा हो गया। विवाद का विषय यह था कि झिंगुरीसिंह की छोटी ठकुराइन पहले ख़ुद खाकर पति को खिलाती है या पति को खिलाकर तब ख़ुद खाती है। सोना कहती थी, पहले वह ख़ुद खाती है। रूपा का मत इसके प्रतिकूल था।

रूपा ने जिरह की—अगर वह पहले खाती हैं, तो क्यों मोटी नहीं हैं? ठाकुर क्यों मोटे हैं? अगर ठाकुर उन पर गिर पड़ें, तो ठकुराइन पिस जायँ।

सोना ने प्रतिवाद किया—तू समझती है, अच्छा खाने से लोग मोटे हो जाते हैं। अच्छा खाने से लोग बलवान् होते हैं, मोटे नहीं होते। मोटे होते हैं घास-पात खाने से।

'तो ठकुराइन ठाकुर से बलवान हैं?'

'और क्या। अभी उस दिन दोनों में लड़ाई हुई, तो ठकुराइन ने ठाकुर को ऐसा ढकेला कि उनके घुटने फूट गये।'

'तो तू भी पहले आप खाकर तब जीजा को खिलायेगी?'

'और क्या।'

'अम्मा तो पहले दादा को खिलाती हैं।'

'तभी तो जब देखो तब दादा डाँट देते हैं। मैं बलवान होकर अपने मरद को काबू में रखूँगी। तेरा मरद तुझे पीटेगा। तेरी हड्डी तोड़कर रख देगा।'

रूपा रुआँसी होकर बोली—क्यों पीटेगा, मैं मार खाने का काम ही न करूँगी।

'वह कुछ न सुनेगा। तूने जरा भी कुछ कहा और वह मार चलेगा। मारते-मारते तेरी खाल उधेड़ लेगा।'

रूपा ने बिगड़कर सोना की साड़ी दाँतों से फाड़ने की चेष्टा की। और असफल होने पर चुटकियाँ काटने लगी।

सोना ने और चिढ़ाया—वह तेरी नाक भी काट लेगा।

इस पर रूपा ने बहन को दाँत से काट खाया। सोना की बाँह लहुआ गई। उसने रूपा को ज़ोर से ढकेल दिया। वह गिर पड़ी और उठकर रोने लगी। सोना भी दाँतों के निशान देखकर रो पड़ी।

उन दोनों का चिल्लाना सुनकर गोबर गुस्से में भरा हुआ आया और दोनों को दो-दो घूँसे जड़ दिये। दोनों रोती हुई खेत से निकलकर घर चल दीं। सिंचाई का काम रुक गया। इस पर पिता-पुत्र में एक झड़प हो गई।

होरी ने पूछा—पानी कौन चलायेगा? दौड़े-दौड़े गये, दोनों को भगा आये। अब जाकर मना क्यों नहीं लाते?

'तुम्हीं ने इन सबों को बिगाड़ रखा है।'

'इस तरह मारने से और भी निर्लज्ज हो जायँगी।'

'दो जून खाना बन्द कर दो, आप ठीक हो जायँ।'

'मैं उनका बाप हूँ, कसाई नहीं हूँ।'

पाँव में एक बार ठोकर लग जाने के बाद किसी कारण से बार-बार ठोकर लगती है और कभी-कभी अँगूठा पक जाता है और महीनों कष्ट देता है। पिता और पुत्र के सद्भाव को आज उसी तरह की चोट लग गई थी और उस पर यह तीसरी चोट पड़ी।

गोबर ने घर आकर झुनिया को खेत में पानी देने के लिए साथ लिया। झुनिया बच्चे को लेकर खेत में गई। धनिया और उसकी दोनों बेटियाँ ताकती रहीं। मा को

भी गोबर की यह उद्दण्डता बुरी लगती थी। रूपा को मारता तो वह बुरा न मानती; मगर जवान लड़की को मारना, यह उसके लिए असह्य था।

आज ही रात को गोबर ने लखनऊ लौट जाने का निश्चय कर लिया। यहाँ अब वह नहीं रह सकता। जब घर में उसकी कोई पूछ नहीं है, तो वह क्यों रहे। वह लेन-देन के मामले में बोल नहीं सकता। लड़कियों को ज़रा मार दिया तो लोग ऐसे जामे के बाहर हो गये, मानो वह बाहर का आदमी है। तो इस सराय में वह न रहेगा।

दोनों भोजन करके बाहर आये थे कि नोखेराम के प्यादे ने आकर कहा—चलो; कारिन्दा साहब ने बुलाया है।

होरी ने गर्व से कहा—रात को क्यों बुलाते हैं, मैं तो बाकी दे चुका हूँ।

प्यादा बोला—मुझे तो तुम्हें बुलाने का हुक्म मिला है। जो कुछ अरज करना हो, वहीं चलकर करना।

होरी की इच्छा न थी, मगर जाना पड़ा। गोबर विरक्त-सा बैठा रहा। आध घण्टे में होरी लौटा और चिलम भरकर पीने लगा। अब गोबर से न रहा गया। पूछा—किस मतलब से बुलाया था?

होरी ने भर्राई हुई आवाज़ में कहा—मैंने पाई-पाई लगान चुका दिया। वह कहते हैं, तुम्हारे ऊपर दो साल की बाकी है। अभी उस दिन मैंने ऊख बेची पचीस रुपये वहीं उनको दे दिये, और आज वह दो साल की बाकी निकालते हैं, मैंने कह दिया, मैं एक धेला न दूँगा।

गोबर ने पूछा—तुम्हारे पास रसीद तो होगी।

'रसीद कहाँ देते हैं।'

'तो तुम बिना रसीद लिये रुपये देते ही क्यों हो?'

'मैं क्या जानता था, वह लोग बेईमानी करेंगे। यह सब तुम्हारी करनी का फल है। तुमने रात को उनकी हँसी उड़ाई, यह उसी का दंड है। पानी में रहकर मगर से बैर नहीं किया जाता। सूद लगाकर सत्तर रुपये बाकी निकाल दिये ये किसके घर से आयेंगे?'

गोबर ने अपनी सफ़ाई देते हुए कहा—तुमने रसीद ले ली होती, तो मैं लाख उनकी हँसी उड़ाता, तुम्हारा बाल भी बाँका न कर सकते। मेरी समझ में नहीं आता

कि लेन-देन में तुम सावधानी से क्यों काम नहीं लेते। यों रसीद नहीं देते, तो डाक से रुपया भेजो। यही तो होगा, एकाध रुपया महसूल पड़ जायगा। इस तरह की धाँधली तो न होगी।

'तुमने यह आग न लगाई होती, तो कुछ न होता। अब तो सभी मुखिया बिगड़े हुए हैं। बेदखली की धमकी दे रहे हैं। दैव जाने कैसे बेड़ा पार लगेगा।'

'मैं जाकर उनसे पूछता हूँ।'

'तुम जाकर और आग लगा दोगे।'

'अगर आग लगानी पड़ेगी, तो आग भी लगा दूँगा। वह बेदखली करते हैं, करें। मैं उनके हाथ में गंगाजल रखकर अदालत में कसम खिलाऊँगा। तुम दुम दबाकर बैठे रहो। मैं इसके पीछे जान लड़ा दूँगा। मैं किसी का एक पैसा दबाना नहीं चाहता, न अपना एक पैसा खोना चाहता हूँ।'

वह उसी वक्त उठा और नोखेराम की चौपाल में जा पहुँचा। देखा तो सभी मुखिया लोगों का कैबिनेट बैठा हुआ है। गोबर को देखकर सब-के-सब सतर्क हो गये। वातावरण में षड्यन्त्र की-सी कुंठा भरी हुई थी।

गोबर ने उत्तेजित कण्ठ से पूछा—यह क्या बात है कारिन्दा साहब, कि आपको दादा ने हाल तक का लगान चुकता कर दिया और आप अभी दो साल की बाकी निकाल रहे हैं। यह कैसा गोलमाल है?

नोखेराम ने मसनद पर लेटकर रोब दिखाते हुए कहा—जब तक होरी है, मैं तुमसे लेन-देन की कोई बात-चीत नहीं करना चाहता।

गोबर ने आहत स्वर में कहा—तो मैं घर में कुछ नहीं हूँ?

'तुम अपने घर में सब कुछ होगे। यहाँ तुम कुछ नहीं हो।'

'अच्छी बात है, आप बेदखली दायर कीजिए। मैं अदालत में तुमसे गंगाजली उठवाकर रुपये दूँगा; इसी गाँव से एक सौ सहादतें दिलाकर साबित कर दूँगा कि तुम रसीद नहीं देते। सीधे सादे किसान हैं, कुछ बोलते नहीं, तो तुमने समझ लिया कि सब काठ के उल्लू हैं। राय साहब वहीं रहते हैं, जहाँ मैं रहता हूँ। गाँव के सब लोग उन्हें हौवा समझते होंगे, मैं नहीं समझता। रत्ती-रत्ती हाल कहूँगा, और देखूँगा तुम कैसे मुझसे दोबारा रुपये वसूल कर लेते हो।'

उसकी वाणी में सत्य का बल था। डरपोक प्राणियों में सत्य भी गूँगा हो

जाता है। वही सीमेंट जो ईंट पर चढ़कर पत्थर हो जाता है, मिट्टी पर चढ़ा दिया जाय, तो मिट्टी हो जायगा। गोबर की निर्भीक स्पष्टवादिता ने उस अनीति के बख्तर को बेध डाला, जिससे सज्जित होकर नोखेराम की दुर्बल आत्मा अपने को शक्तिमान् समझ रही थी।

नोखेराम ने जैसे कुछ याद करने का प्रयास करके कहा—तुम इतना गर्म क्यों हो रहे हो, इसमें गर्म होने की कौन बात है। अगर होरी ने रुपये दिये हैं, तो कहीं न कहीं तो टाँके गये होंगे। मैं कल काग़ज़ निकालकर देखूँगा। अब मुझे कुछ-कुछ याद आ रहा है कि शायद होरी ने रुपये दिये थे। तुम निसाख़ातिर रहो; अगर रुपये यहाँ आ गये हैं, तो कहीं जा नहीं सकते। तुम थोड़े-से रुपयों के लिए झूठ थोड़े ही बोलोगे और न मैं ही इन रुपयों से धनी हो जाऊँगा।

गोबर ने चौपाल से आकर होरी को ऐसा लथाड़ा कि बेचारा स्वार्थभीरु बूढ़ा रुआँसा हो गया—तुम तो बच्चों से भी गये-बीते हो, जो बिल्ली की म्याऊँ सुनकर चिल्ला उठते हैं। मैं कहाँ-कहाँ तुम्हारी रक्षा करता फिरूँगा; मैं तुम्हें सत्तर रुपये दिये जाता हूँ। दातादीन लें तो देकर भरपाई लिखा लेना। इसके ऊपर तुमने एक पैसा भी दिया, तो फिर मुझसे एक पैसा भी न पाओगे। मैं परदेश में इसलिए नहीं पड़ा हूँ कि तुम अपने को लुटवाते रहो और मैं कमाकर भरता रहूँ, मैं कल चला जाऊँगा; लेकिन इतना कहे देता हूँ कि किसी से एक पैसा उधार मत लेना और किसी को कुछ मत देना। मँगरू, दुलारी दातादीन सभी से एक रुपया सैकड़े सूद कराना होगा।

धनिया भी खाना खाकर बाहर निकल आई। बोली—अभी क्यों जाते हो बेटा, दो चार दिन और रहकर ऊख की बोनी करा लो और कुछ लेन-देन का हिसाब भी ठीक कर लो, तो जाना।

गोबर ने शान जमाते हुए कहा—मेरा दो-तीन रुपये रोज का घाटा हो रहा है, यह भी समझती हो। यहाँ मैं बहुत-बहुत तो चार आने की मजूरी ही तो करता हूँ। और अबको मैं झुनिया को भी लेता जाऊँगा। वहाँ मुझे खाने-पीने की बड़ी तकलीफ़ होती है।

धनिया ने डरते-डरते कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा; लेकिन वहाँ वह कैसे अकेले घर सँभालेगी, कैसे बच्चे को देख-भाल करेगी?

'अब बच्चे को देखूँ कि अपना सुभीता देखूँ, मुझसे चूल्हा नहीं फूँका जाता।'

'ले जाने को मैं नहीं रोकती ; लेकिन परदेस में बाल-बच्चों के साथ रहना, न कोई आगे न पीछे, सोचो कितना झंझट है।'

'परदेस में भी संगी-साथी निकल ही आते हैं, अम्मा। और यह तो स्वारथ का संसार है। जिसके साथ चार पैसे गम खाओ वही अपना। खाली हाथ तो मा-बाप भी नहीं पूछते।'

धनिया कटाक्ष समझ गई। उसके सिर से पाँव तक आग लग गई। बोली—मा-बाप को भी तुमने उन्हीं पैसे के यारों में समझ लिया ?

'आँखों देख रहा हूँ।'

'नहीं देख रहे हो ; मा-बाप का मन इतना निठुर नहीं होता ; हाँ लड़के अलबत्ता जहाँ चार पैसे कमाने लगे कि माँ-बाप से आँखें फेर लीं। इसी गाँव में एक-दो नहीं, दस-बीस परतोख दे दूँ। मा-बाप करज कवाम लेते हैं, किसके लिए ? लड़कों-लड़कियों ही के लिए कि अपने भोग-विलास के लिए।'

'क्या जाने तुमने किसके लिए करज लिया। मैंने तो एक पैसा भी नहीं जाना।'

'बिना पाले ही इतने बड़े हो गये ?'

'पालने में तुम्हारा लगा क्या। जब तक बच्चा था, दूध पिला दिया। फिर लावारिस की तरह छोड़ दिया। जो सबने खाया, वही मैंने खाया। मेरे लिए दूध नहीं आता था, मक्खन नहीं बँधा था। और अब तुम भी चाहती हो, और दादा भी चाहते हैं कि मैं सारा करजा चुकाऊँ, लगान दूँ, लड़कियों का ब्याह करूँ। जैसे मेरी जिन्दगी तुम्हारा देना भरने ही के लिए है। मेरे भी तो बाल-बच्चे हैं ?'

धनिया सन्नाटे में आ गई। एक ही क्षण में उसके जीवन का मृदु स्वप्न जैसे टूट गया। अब तक वह मन में प्रसन्न थी कि अब उसका दुख-दरिद्र सब दूर हो गया। जब से गोबर घर आया उसके मुख पर हास की एक छटा खिली रहती थी। उसकी वाणी में मृदुता और व्यवहारों मे उदारता आ गई। भगवान ने उस पर दया की है, तो उसे सिर झुकाकर चलना चाहिए। भीतर की शान्ति बाहर सौजन्य बन गई थी। ये चार शब्द तपते हुए बालू की तरह हृदय पर पड़े और चने की

भाँति सारे अरमान झुलस गये। उसका सारा घमण्ड चूर-चूर हो गया। इतना सुन लेने के बाद अब जीवन में क्या रस रह गया। जिस नौका पर बैठकर इस जीवन-सागर को पार करना चाहती थी, वही टूट गई, तो किस सुख के लिए जिये!

लेकिन नहीं। उसका गोबर इतना स्वार्थी नहीं है। उसने कभी मा की बात का जवाब नहीं दिया, कभी किसी बात के लिए ज़िद नहीं की। जो कुछ रूखा-सूखा मिल गया, वही खा लेता था। वही भोला-भाला शील-स्नेह का पुतला आज क्यों ऐसी दिल तोड़नेवाली बातें कर रहा है। उसकी इच्छा के विरुद्ध तो किसी ने कुछ नहीं कहा। मा बाप दोनों ही उसका मुँह जोहते रहते हैं। उसने ख़ुद ही लेन-देन की बात चलाई, नहीं उससे कौन कहता है कि तू मा-बाप का देना चुका। मा-बाप के लिए यही क्या कम सुख है कि वह इज़्ज़त-आबरू के साथ भलेमानसों की तरह कमाता-खाता है। उससे कुछ हो सके, तो मा-बाप की मदद कर दे। नहीं हो सकता तो मा-बाप उसका गला न दबायेंगे। झुनिया को ले जाना चाहता है, खुसी से ले जाय। धनिया ने तो केवल उसकी भलाई के खयाल से कहा था कि झुनिया को वहाँ ले जाने में उसे जितना आराम मिलेगा, उससे कहीं ज़्यादा झंझट बढ़ जायगा। उसमें ऐसी कौन-सी लगनेवाली बात थी कि वह इतना बिगड़ उठा। हो न हो, यह आग झुनिया ने लगाई है। वही बैठे-बैठे उसे यह मन्तर पढ़ा रही है। यहाँ सौक-सिंगार करने को नहीं मिलता; घर का कुछ न कुछ काम भी करना ही पड़ता है। वहाँ रुपए-पैसे हाथ में आयेंगे, मजे से चिकना खायगी, चिकना पहनेगी और टाँग फैलाकर सोयेगी। दो आदमियों की रोटी पकाने में क्या लगता है, वहाँ तो पैसा चाहिए। सुना, बाज़ार में पकी-पकाई रोटियाँ मिल जाती हैं। यह सारा उपद्रव उसी ने खड़ा किया है। सहर में कुछ दिन रह भी चुकी है। वहाँ का दाना-पानी मुँह लगा हुआ है। यहाँ कोई पूछता न था। यह भोंदू मिल गया। इसे फाँस लिया। जब यहाँ पाँच महीने का पेट लेकर आई थी, तब कैसी म्याँव-म्याँव करती थी। तब यहाँ सरन न मिली होती, तो आज कहीं भीख माँगती होती। यह उसी नेकी का बदला है! इसी चुड़ैल के पीछे डाँड़ देना पड़ा, बिरादरी में बदनामी हुई, खेती टूट गई, सारी दुर्गत हो गई। और आज यह चुड़ैल जिस पत्तल में खाती है, उसी में छेद कर रही है। पैसे देखे, तो आँख हो गई। तभी ऐंठी-ऐंठी फिरती है,

मिजाज नहीं मिलता। आज लड़का चार पैसे कमाने लगा है न। इतने दिनों बात नहीं पूछी, तो सास का पाँव दबाने के लिए तेल लिये दौड़ती थी। डाइन उसके जीवन की निधि को उसके हाथ से छीन लेना चाहती है।

दुखित स्वर में बोली—यह मन्तर तुम्हें कौन दे रहा है बेटा, तुम तो ऐसे न थे। मा-बाप तुम्हारे ही हैं, बहनें तुम्हारी ही हैं, घर तुम्हारा ही है। यहाँ बाहर का कौन है। और हम क्या बहुत दिन बैठे रहेंगे? घर की मरजाद बनाये रहोगे, तो तुम्हीं को सुख होगा। आदमी घरवालों ही के लिए धन कमाता है कि और किसी के लिए। अपना पेट तो सुअर भी पाल लेता है! मैं न जानती थी, झुनिया नागिन बनकर हमी को डसेगी।

गोबर ने तिनककर कहा—अम्मा, मैं नादान नहीं हूँ कि झुनिया मुझे मन्तर पढ़ायेगी। तुम उसे नाहक कोस रही हो। तुम्हारी गिरस्ती का सारा बोझ मैं नहीं उठा सकता। मुझसे जो कुछ हो सकेगा, मदद कर दूँगा; लेकिन अपने पाँवों में बेड़ियाँ नहीं डाल सकता।

झुनिया भी कोठरी से निकलकर बोली—अम्माँ, जुलाहे का गुस्सा डाढ़ी पर न उतारो। कोई बच्चा नहीं हैं कि उन्हें फोड़ लूँगी। अपना-अपना भला-बुरा सब समझते हैं। आदमी इसी लिए नहीं जनम लेता कि सारी उम्र तपस्या करता रहे, और एक दिन खाली हाथ मर जाय। सब जिन्दगी का कुछ सुख चाहते हैं, सबकी लालसा होती है कि हाथ में चार पैसे हों।

धनिया ने दाँत पीसकर कहा—अच्छा झुनिया, बहुत ज्ञान न बघार। अब तू भी अपना भला-बुरा सोचने जोग हो गई है। जब यहाँ आकर मेरे पैरों पर सिर रखे रो रही थी, तब अपना भला-बुरा नहीं सूझा था! उस घड़ी हम भी अपना भला-बुरा सोचने लगते, तो आज तेरा कहीं पता न होता।

इसके बाद संग्राम छिड़ गया। ताने-मेहने, गाली-गलौज, थुक्काफ़जीहत, कोई बात न बची। गोबर भी बीच-बीच में डंक मारता जाता था। होरी बरौठे में बैठा सब कुछ सुन रहा था। सोना और रूपा आँगन में सिर झुकाये खड़ी थीं, दुलारी, पुनिया और कई स्त्रियाँ बीच-बचाव करने आ पहुँची थीं। गरजन के बीच में कभी-कभी बूँद भी गिर जाती थी। दोनों ही अपने-अपने भाग्य को रो रही थीं। दोनों ही ईश्वर को कोस रही थीं, और दोनों अपनी-अपनी निर्दोषता सिद्ध कर रही थीं।

झुनिया गड़े मुर्दे उखाड़ रही थी। आज उसे हीरा और शोभा से विशेष सहानुभूति हो गई थी, जिन्हें धनिया ने कहीं का न रखा था। धनिया की आज तक किसी से न पटी, तो झुनिया से कैसे पट सकती है। धनिया अपनी सफ़ाई देने की चेष्टा कर रही थी; लेकिन न जाने क्या बात थी कि जनमत झुनिया की ओर था। शायद इसलिए कि झुनिया संयम हाथ से न जाने देती थी और धनिया आपे से बाहर थी; शायद इसलिए भी कि झुनिया अब कमाऊ पुरुष की स्त्री थी और उसे प्रसन्न रखने में ज्यादा मसलहत थी।

तब होरी ने आँगन में आकर कहा—मैं तेरे पैरों पड़ता हूँ धनिया, चुप रह। मेरे मुँह में कालिख मत लगा। हाँ, अभी मन न भरा हो, तो और सुन।

धनिया फुँकार मारकर उधर दौड़ी—तुम भी मोटी डाल पकड़ने चले। मैं ही दोसी हूँ। वह तो मेरे ऊपर फूल बरसा रही है!

संग्राम का क्षेत्र बदल गया।

'जो छोटों के मुँह लगे, वह छोटा।'

धनिया किस तर्क से झुनिया को छोटा मान ले!

होरी ने व्यथित कंठ से कहा—अच्छा वह छोटी नहीं, बड़ी सही। जो आदमी नहीं रहना चाहता, क्या उसे बाँधकर रखेगी। मा-बाप का धरम है, लड़के को पाल-पोसकर बड़ा कर देना। वह हम कर चुके। उनके हाथ-पाँव हो गये। अब तू क्या चाहती है, वे दाना-चारा लाकर खिलायें। मा-बाप का धरम सोलहो आना लड़कों के साथ है। लड़कों का मा-बाप के साथ एक आना भी धरम नहीं है। जो जाता है उसे असीस देकर बिदा कर दे। हमारा भगवान् मालिक है। जो कुछ भोगना बदा है, भोगेंगे। चालीस सात सैंतालीस साल इसी तरह रोते-धोते कट गये। दस-पाँच साल हैं, वह भी यों ही कट जायँगे।

उधर गोबर जाने की तैयारी कर रहा था। इस घर का पानी भी उसके लिए हराम है। माता होकर जब उसे ऐसी-ऐसी बातें कहे तो अब वह उसका मुँह भी न देखेगा।

देखते ही देखते उसका बिस्तर बँध गया। झुनिया ने भी चुँदरी पहन ली। मुन्नू भी टोप और फ्राक पहनकर राजा बन गया।

होरी ने आर्द्र कंठ से कहा—बेटा, तुमसे कुछ कहने का मुँह तो नहीं है;

लेकिन कलेजा नहीं मानता। क्या ज़रा जाकर अपनी अभागिनी माता के पाँव छू लोगे, तो कुछ बुरा होगा? जिस माता की कोख से जनम लिया और जिसका रक्त पीकर पले हो, उसके साथ इतना भी नहीं कर सकते!

गोबर ने मुँह फेरकर कहा—मैं उसे अपनी माता नहीं समझता।

होरी ने आँखों में आँसू लाकर कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा। जहाँ रहो, सुखी रहो।

झुनिया ने सास के पास जाकर उसके चरणों को अंचल से छुआ। धनिया के मुँह से असीस का एक शब्द भी न निकला। उसने आँख उठाकर देखा भी नहीं। गोबर बालक को गोद में लिये आगे-आगे था। झुनिया बिस्तर बगल में दबाये पीछे। एक चमार का लड़का सन्दूक लिये था। गाँव के कई स्त्री-पुरुष गोबर को पहुँचाने गाँव के बाहर तक आये।

और धनिया बैठी रो रही थी, जैसे कोई उसके हृदय को आरे से चीर रहा हो। उसका मातृत्व उस घर के समान हो रहा था, जिसमें आग लग गई हो और सब कुछ भस्म हो गया हो। बैठकर रोने के लिए भी स्थान न बचा हो।

२२

इधर कुछ दिनों से राय साहब की कन्या के विवाह की बातचीत हो रही थी। उसके साथ ही एलेक्शन भी सिर पर सवार आ पहुँचा था; मगर इन सबों से आवश्यक उन्हें दीवानी में एक मुक़दमा दायर करना था, जिसकी कोर्ट-फ़ीस ही पचास हज़ार होती थी, ऊपर के खर्च अलग। राय साहब के साले जो अपनी रियासत के एकमात्र स्वामी थे, ऐन जवानी में मोटर लड़ जाने के कारण गत हो गये थे, और राय साहब अपने कुमार पुत्र की ओर से उस रियासत पर अधिकार पाने के लिए क़ानून की शरण लेना चाहते थे। उनके चचेरे सालों ने रियासत पर कब्ज़ा जमा लिया था और राय साहब को उसमें से कोई हिस्सा देने पर तैयार न थे। राय साहब ने बहुत चाहा कि आपस में समझौता हो जाय और उनके चचेरे साले माकूल गुज़ारा लेकर हट जायँ, यहाँ तक कि वह उस रियासत की आधी आमदनी छोड़ने पर तैयार थे; मगर सालों ने किसी तरह का समझौता स्वीकार न किया, और केवल लाठी के ज़ोर से रियासत में तहसील-वसूल शुरू कर दी। राय साहब को अदालत

की शरण जाने के सिवा कोई मार्ग न रहा। मुकदमे में लाखों का ख़र्च था; मगर रियासत भी बीस लाख से कम की जायदाद न थी। वकीलों ने निश्चय रूप से कह दिया था कि आपकी शर्तिया डिग्री होगी। ऐसा मौक़ा कौन छोड़ सकता था! मुश्किल यही थी कि यह तीनों काम एक साथ आ पड़े थे और उन्हें किसी तरह टाला न जा सकता था। कन्या की अवस्था १८ वर्ष की हो गई थी और केवल हाथ में रुपए न रहने के कारण अब तक उसका विवाह टल जाता था। ख़र्च का अनुमान एक लाख का था। जिसके पास जाते, वही बड़ा-सा मुँह खोलता; मगर हाल में एक बड़ा अच्छा अवसर हाथ आ गया था। कुँवर दिग्विजयसिंह की पत्नी यक्ष्मा की भेंट हो चुकी थीं और कुँवर साहब अपने उजड़े घर को जल्द से जल्द बसा लेना चाहते थे। सौदा भी बारे में तय हो गया और कहीं शिकार हाथ से निकल न जाय, इसलिए इसी लग्न में विवाह होना परमावश्यक था। कुँवर साहब दुर्वासनाओं के भण्डार थे। शराब, गाँजा, अफ़ीम, मदक, चरस ऐसा कोई नशा न था, जो वह न करते हों। और ऐयाशी तो रईस की शोभा ही है। वह रईस ही क्या, जो ऐयाश न हो। धन का उपभोग और किया ही कैसे जाय। मगर इन सब दुर्गुणों के होते हुए भी वह ऐसे प्रतिभावान् थे कि अच्छे-अच्छे विद्वान् उनका लोहा मानते थे। संगीत, नाट्य-कला, हस्तरेखा, ज्योतिष, योग, लाठी, कुश्ती, निशानेबाज़ी आदि कलाओं में अपना जोड़ न रखते थे। इसके साथ ही बड़े दबंग और निर्भीक। राष्ट्रीय आन्दोलन में दिल खोलकर सहयोग देते थे, हाँ, गुप्त रूप से। अधिकारियों से यह बात छिपी न थी, फिर भी उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और साल में एक-दो बार गवर्नर साहब भी उनके मेहमान हो जाते थे। और अभी अवस्था तीस-बत्तीस से अधिक न थी और स्वास्थ्य तो ऐसा था कि अकेले एक बकरा खाकर हज़म कर डालते थे। राय साहब ने समझा, बिल्ली के भागों छींका टूटा। अभी कुँवर साहब षोड़शी से निवृत्त भी न हुए थे कि राय साहब ने बात-चीत शुरू कर दी। कुँअर साहब के लिए विवाह केवल अपना प्रभाव और शक्ति बढ़ाने का साधन था। राय साहब कौंसिल के मेम्बर थे ही, यों भी प्रभावशाली थे। राष्ट्र-संग्राम में अपने त्याग का परिचय देकर श्रद्धा के पात्र भी बन चुके थे। शादी तय होने में कोई बाधा न हो सकती थी। और वह तय हो गई।

रहा एलेक्शन। यह सोने की हँसिया थी, जिसे न उगलते बनता था, न

निगलते। अब तक वह दो बार निर्वाचित हो चुके थे और दोनों ही बार उन पर एक-एक लाख की चपत पड़ी थी; मगर अबकी एक राजा साहब उसी इलाक़े से खड़े हो गये थे और डंके की चोट से एलान कर दिया था कि चाहे हरएक वोटर को एक-एक हज़ार ही क्यों न देना पड़े, चाहे पचास लाख की रियासत मिट्टी में मिल जाय; मगर राय अमरपालसिंह को कौंसिल में न जाने दूँगा। और उन्हें अधिकारियों ने अपनी सहायता का आश्वासन भी दे दिया था। राय साहब विचार-शील थे, चतुर थे, अपना नफ़ा-नुक़सान समझते थे; मगर राजपूत थे और पौतड़ों के रईस थे। यह चुनौती पाकर मैदान से कैसे हट जायँ? यों उन राजा सूर्यप्रताप-सिंह ने आकर कहा होता, भाई साहब, आप तो दो बार कौंसिल में जा चुके, अबकी मुझे जाने दीजिए, तो शायद राय साहब ने उनका स्वागत किया होता। कौंसिल का मोह अब उन्हें न था; लेकिन इस चुनौती के सामने ताल ठोंकने के सिवा और कोई राह ही न थी। एक मसलहत और भी थी। मिस्टर तंखा ने उन्हें विश्वास दिलाया था कि आप खड़े हो जायँ, पीछे राजा साहब से एक लाख की थैली लेकर बैठ जाइएगा। उन्होंने यहाँ तक कहा था कि राजा साहब बड़ी खुशी से एक लाख दे देंगे, मेरी उनसे बात-चीत हो चुकी है; पर अब मालूम हुआ, राजा साहब राय साहब को परास्त करने का गौरव नहीं छोड़ना चाहते और इसका मुख्य कारण था, राय साहब की लड़की की शादी कुँअर साहब से ठीक होना। दो प्रभावशाली घरानों का संयोग वह अपनी प्रतिष्ठा के लिए हानिकर समझते थे। उधर राय साहब को ससुराली जायदाद मिलने की भी आशा थी। राजा साहब के पहलू में यह काँटा भी बुरी तरह खटक रहा था। कहीं यह जायदाद इन्हें मिल गई—और कानून राय साहब के पक्ष में था ही—तब तो राजा साहब का एक प्रतिद्वन्द्वी खड़ा हो जायगा; इसलिए उनका यह धर्म था कि राय साहब को कुचल डालें और उनकी प्रतिष्ठा धूल में मिला दें।

बेचारे राय साहब बड़े संकट में पड़ गये थे। उन्हें यह सन्देह होने लगा था कि केवल अपना मतलब निकालने के लिए मिस्टर तंखा ने उन्हें धोखा दिया। यह ख़बर मिली थी कि अब वह राजा साहब के पैरोकार हो गये हैं। यह राय साहब के घाव पर नमक था। उन्होंने कई बार तंखा को बुलाया था; मगर वह या तो घर पर मिलते ही न थे, या आने का वादा करके भूल जाते थे। आखिर आज ख़ुद

उनसे मिलने का इरादा करके वह उनके पास जा पहुँचे। संयोग से मिस्टर तंखा घर पर मिल गये; मगर राय साहब को पूरे घंटे-भर उनकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। यह वही मिस्टर तंखा हैं, जो राय साहब के द्वार पर एक बार रोज़ हाजिरी दिया करते थे। आज इतना मिजाज़ हो गया है। जले बैठे थे। ज्योंही मिस्टर तंखा सजे-सजाये, मुँह में सिगार दबाये, कमरे में आये और हाथ बढ़ाया कि राय साहब ने बमगोला छोड़ दिया—मैं घण्टे-भर से यहाँ बैठा हुआ हूँ और आप निकलते-निकलते अब निकलते हैं। मैं इसे अपनी तौहीनी समझता हूँ।

मिस्टर तंखा ने एक सोफे पर बैठकर निश्चिंत भाव से धुआँ उड़ाते हुए कहा—मुझे इसका खेद है। मैं एक ज़रूरी काम में लगा था। आपको फोन करके मुझसे समय ठीक कर लेना चाहिए था।

आग में घी पड़ गया; मगर राय साहब ने क्रोध को दबाया। वह लड़ने न आये थे। इस अपमान को पी जाने का ही अवसर था। बोले—हाँ, यह ग़लती हुई। आजकल आपको बहुत कम फुरसत रहती है शायद।

'जी हाँ, बहुत कम, वरना मैं अवश्य आता।'

'मैं उसी मुआमले के बारे में आप से पूछने आया था। समझौते की तो कोई आशा नहीं मालूम होती। उधर तो जङ्ग की तैयारियाँ बड़े ज़ोरों से हो रही हैं।'

'राजा साहब को तो आप जानते ही हैं, फक्कड़ आदमी हैं, पूरे सनकी। कोई न कोई धुन उन पर सवार रहती है। आजकल यही धुन है कि राय साहब को नीचा दिखाकर रहेंगे। और उन्हें जब एक धुन सवार हो जाती है, तो फिर किसी की नहीं सुनते, चाहे कितना ही नुक़सान उठाना पड़े। कोई चालीस लाख का बोझ सिर पर है, फिर भी वही दम-खम है, वही अलल्ले-तलल्ले ख़र्च हैं। पैसे को तो कुछ समझते ही नहीं। नौकरों का वेतन छः-छः महीने से बाक़ी पड़ा हुआ है; मगर हीरा-महल बन रहा है। संगमरमर का तो फ़र्श है। पच्चीकारी ऐसी हो रही है कि आँखें नहीं ठहरतीं। अफसरों के पास रोज डालियाँ जाती रहती हैं। सुना है, कोई अंग्रेज मैनेजर रखनेवाले हैं।'

'फिर आपने कैसे कह दिया था कि आप कोई समझौता करा देंगे।'

'मुझसे जो कुछ हो सकता था वह मैंने किया। इसके सिवा मैं और क्या

कर सकता था। अगर कोई व्यक्ति अपने दो-चार लाख रुपए फूँकने ही पर तुला हुआ हो, तो मेरा क्या बस!'

राय साहब अब क्रोध न सँभाल सके—खासकर जब उस दो-चार लाख रुपए में से दस बीस हज़ार आपके हत्थे चढ़ने की भी आशा हो।

मिस्टर तंखा अब क्यों दबते। बोले—राय साहब, अब साफ़-साफ़ न कहलवाइए। यहाँ न मैं संन्यासी हूँ, न आप। हम सभी कुछ न कुछ कमाने ही निकले हैं। आँख के अन्धों और गाँठ के पूरों की तलाश आपको भी उतनी ही है, जितनी मुझको। आपसे मैंने खड़े होने का प्रस्ताव किया। आप एक लाख के लोभ से खड़े हो गये; अगर गोटी लाल हो जाती, तो आज आप एक लाख के स्वामी होते और बिना एक पाई कर्ज़ लिये कुँअर साहब से संबन्ध भी हो जाता और मुक़दमा भी दायर हो जाता; मगर आपके दुर्भाग्य से वह चाल पट पड़ गई। जब आप ही ठंठ पर रह गये, तो मुझे क्या मिलता। आखिर मैंने झक मारकर उनकी पूँछ पकड़ी। किसी न किसी तरह यह वैतरिणी तो पार करनी है।

राय साहब को ऐसा आवेश आ रहा था कि इस दुष्ट को गोली मार दें। इसी बदमाश ने सब्ज़ बाग दिखाकर उन्हें खड़ा किया और अब अपनी सफ़ाई दे रहा है, पीठ में धूल भी नहीं लगने देता. लेकिन परिस्थिति ज़बान बन्द किये हुए थी।

'तो अब आपके किये कुछ नहीं हो सकता!'

'ऐसा ही समझिए।'

'मैं पचास हज़ार पर भी समझौता करने को तयार हूँ।'

'राजा साहब किसी तरह न मानेंगे।

'पचीस हज़ार पर तो मान जायँगे?'

'कोई आशा नहीं। वह साफ़ कह चुके हैं।'

'वह कह चुके हैं या आप कह रहे हैं।'

'आप मुझे झूठा समझते हैं!'

राय साहब ने विनम्र स्वर में कहा—मैं आपको झूठा नहीं समझता; लेकिन इतना ज़रूर समझता हूँ कि आप चाहते, तो मुआमला हो जाता।

'तो आपका ख़याल है, मैंने समझौता नहीं होने दिया!'

'नहीं, मेरा यह मतलब नहीं है। मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि आप न होते तो काम हो जाता और मैं इस झमेले में न पड़ता।'

मिस्टर तंखा ने घड़ी की तरफ देखकर कहा—तो राय साहब, अगर आप साफ़ कहलाना चाहते हैं, तो सुनिए—अगर आपने दस हज़ार का चेक मेरे हाथ में रख दिया होता, तो आज निश्चय एक लाख के स्वामी होते। आप शायद चाहते होंगे, जब आपको राजा साहब से रुपए मिल जाते, तो आप मुझे हज़ार-दो हज़ार दे देते। तो मैं ऐसी कच्ची गोली नहीं खेलता। आप राजा साहब से रुपए लेकर तिजोरी में रखते और मुझे अँगूठा दिखा देते। फिर मैं आपका क्या बना लेता बतलाइए? कहीं नालिश-फ़रियाद भी तो नहीं कर सकता था।

राय साहब ने आहत नेत्रों से देखा—आप मुझे इतना बेईमान समझते हैं?

तंखा ने कुरसी से उठते हुए कहा—इसे बेईमानी कौन समझता है। आजकल यही चतुराई है। कैसे दूसरों को उल्लू बनाया जा सके, यही सफल नीति है; और आप इसके आचार्य हैं।

राय साहब ने मुट्ठी बाँधकर कहा—मैं?

'जी हाँ, आप! पहले चुनाव में मैंने जी-जान से आपकी पैरवी की। आपने बड़ी मुश्किल से रो-धोकर पाँच सौ रुपए दिये, दूसरे चुनाव में आपने एक सड़ी-सी, टूटी-फूटी कार देकर अपना गला छुड़ाया। दूध का जला छाँछ भी फूँक-फूँक पीता है।

वह कमरे से निकल गये और कार लाने का हुक्म दिया।

राय साहब का खून खौल रहा था। इस अशिष्टता की भी कोई हद है। एक तो घंटे-भर इन्तज़ार कराया और अब इतनी बेमुरौवती से पेश आकर उन्हें ज़बर-दस्ती घर से निकाल रहा है; अगर उन्हें विश्वास होता कि वह मिस्टर तंखा को पटकनी दे सकते हैं, तो कभी न चूकते; मगर तंखा डील-डौल में उनसे सवाये थे। जब मिस्टर तंखा ने हार्न बजाया, तो वह भी आकर अपनी कार पर बैठे और सीधे मिस्टर खन्ना के पास पहुँचे।

नौ बज रहे थे; मगर खन्ना साहब अभी तक मीठी नींद का आनन्द ले रहे थे। वह दो बजे रात के पहले कभी न सोते थे और नौ बजे तक सोना स्वाभाविक ही था। यहाँ भी राय साहब को आधा घंटा बैठना पड़ा; इसलिए जब कोई साढ़े नौ

बजे मिस्टर खन्ना मुस्कराते हुए निकले तो राय साहब ने डाँट बताई—अच्छा! अब सरकार की नींद खुली है, साढ़े नौ बजे! रुपया जमा कर लिये हैं न, जभी यह बेफ़िक्री है। मेरी तरह ताल्लुक़ेदार होते, तो अब तक आप भी किसी द्वार पर खड़े होते। बैठे-बैठे सिर में चक्कर आ जाता।

मिस्टर खन्ना ने सिगरेट-केस उनकी तरफ़ बढ़ाते हुए प्रसन्न-मुख से कहा—रात सोने में बड़ी देर हो गई। इस वक्त किधर से आ रहे हैं?

राय साहब ने थोड़े-से शब्दों में अपनी सारी कठिनाइयाँ बयान कर दीं। दिल में खन्ना को गालियाँ देते थे, जो उनका सहपाठी होकर भी सदैव उन्हें ठगने की फ़िक्र किया करता था; मगर मुँहपर उनकी ख़ुशामद करते थे।

खन्ना ने ऐसा भाव बनाया, मानो उन्हें बड़ी चिन्ता हो गई है, बोले—मेरी तो सलाह है, आप एलेक्शन को गोली मारें, और अपने सालों पर मुकदमा दायर कर दें। रही शादी, वह तो तीन दिन का तमाशा है। उसके पीछे ज़ेरबार होना मुनासिब नहीं। कुँवर साहब मेरे दोस्त हैं, लेन-देन का कोई सवाल न उठने पायेगा।

राय साहब ने व्यंग करके कहा—आप यह भूल जाते हैं कि मैं मिस्टर खन्ना, बैंकर नहीं, ताल्लुक़ेदार हूँ। कुँअर साहब दहेज नहीं माँगते, उन्हें ईश्वर ने सब कुछ दिया है, लेकिन आप जानते हैं, यह मेरी अकेली लड़की है और उसकी मा मर चुकी है। वह आज ज़िन्दा होती, तो शायद सारा घर लुटाकर भी उसे सन्तोष न होता। तब शायद मैं उसे हाथ रोककर खर्च करने का आदेश देता; लेकिन अब तो मैं उसकी मा भी हूँ, बाप भी हूँ। अगर मुझे अपने हृदय का रक्त निकालकर भी देना पड़े, तो मैं ख़ुशी से दूँगा! इस विधुर-जीवन में मैंने सन्तान प्रेम में ही अपनी आत्मा की प्यास बुझाई है। दोनों बच्चों के प्यार में ही अपने पत्नी-व्रत का पालन किया है। मेरे लिए यह असम्भव है कि इस शुभ अवसर पर अपने दिल के अरमान न निकालूँ। मैं अपने मन को तो समझा सकता हूँ पर जिसे मैं पत्नी का आदेश समझता हूँ, उसे नहीं समझाया जा सकता। और एलेक्शन के मैदान से भागना भी मेरे लिए सम्भव नहीं है। मैं जानता हूँ, हारूँगा। राजा साहब से मेरा कोई मुक़ाबला नहीं, लेकिन राजा साहब को इतना ज़रूर दिखा देना चाहता हूँ कि अमरपाल-सिंह नर्म चारा नहीं है।

'और मुक़दमा दायर करना तो आवश्यक है?'

'इसी पर तो सारा दारोमदार है। अब आप बतलाइये, आप मेरी क्या मदद कर सकते हैं?'

'मेरे डाइरेक्टरों का इस विषय में जो हुक्म है, वह आप जानते ही हैं। और राजा साहब भी हमारे डाइरेक्टर हैं, यह भी आपको मालूम है। पिछला वसूल करने के लिए बार-बार ताक़ीद हो रही है। कोई नया मुआमला तो शायद ही हो सके।'

राय साहब ने मुँह लटकाकर कहा—आप तो मेरा डोंगा ही डुबाये देते हैं मिस्टर खन्ना!

'मेरे पास जो कुछ निज का है, वह आपका है; लेकिन बैंक के मुआमले में तो मुझे अपने स्वामियों के आदेशों को मानना ही पड़ेगा।'

'अगर यह जायदाद हाथ आ गई; और मुझे इसकी पूरी आशा है; तो पाई-पाई अदा कर दूँगा।'

'आप बतला सकते हैं इस वक्त आप कितने पानी में हैं?'

राय साहब ने हिचकते हुए कहा—पाँच-छः लाख समझिए। कुछ कम ही होंगे।

खन्ना ने अविश्वास के भाव से कहा—या तो आपको याद नहीं है, या तो आप छिपा रहे हैं।

राय साहब ने जोर देकर कहा—जी नहीं, मैं न भूला हूँ, और न छिपा रहा हूँ। मेरी जायदाद इस वक्त कम से कम पचास लाख की है और ससुराल की जायदाद भी इससे कम नहीं है। इतनी जायदाद पर दस-पाँच लाख का बोझ कुछ नहीं के बराबर है।

'लेकिन यह आप कैसे कह सकते हैं, कि ससुरालवाली जायदाद पर भी क़र्ज नहीं है!'

'जहाँ तक मुझे मालूम है, वह जायदाद बे-दाग है।

'और मुझे यह सूचना मिली है कि उस जायदाद पर दस लाख से कम का बार नहीं है। उस जायदाद पर तो अब कुछ मिलने से रहा, और आपकी जायदाद पर भी मेरे खयाल में दस लाख से कम देना नहीं है। और वह जायदाद अब पचास लाख की नहीं, मुश्किल से पचीस लाख की है। इस दशा में कोई बैंक आपको क़र्ज़ नहीं दे सकता यों समझ लीजिए कि आप ज्वालामुखी के मुख पर खड़े हैं। एक

हल्की-सी ठोकर आपको पाताल में पहुँचा सकती है। आपको इस मौके पर बहुत सँभलकर चलना चाहिए।

राय साहब ने उनका हाथ अपनी तरफ़ खींचकर कहा—यह सब मैं ख़ूब समझता हूँ, मित्रवर! लेकिन जीवन की ट्रेजेडी और इसके सिवा क्या है कि आपकी आत्मा जो काम करना नहीं चाहती, वही आपको करना पड़ेगा। आपको इस मौक़ेपर मेरे लिए कम से कम दो लाख का इन्तज़ाम करना पड़ेगा।

खन्ना ने लम्बी साँस लेकर कहा—माई गाड! दो लाख! असम्भव बिलकुल असम्भव!

'मैं तुम्हारे द्वार पर सिर पटककर प्राण दे दूँगा, खन्ना इतना समझ लो। मैंने तुम्हारे ही भरोसे यह सारे प्रोग्राम बाँधे हैं। अगर तुमने निराश कर दिया, तो शायद मुझे ज़हर खा लेना पड़े। मैं सूर्यप्रतापसिंह के सामने घुटने नहीं टेक सकता। कन्या का विवाह अभी दो-चार महीने टल सकता है। मुकदमा दायर करने के लिए अभी काफ़ी वक्त है; लेकिन यह एलेक्शन सिर पर आ गया है, और मुझे सबसे बड़ी फ़िक्र यही है।'

खन्ना ने चकित होकर कहा—तो आप एलेक्शन में दो लाख लगा देंगे?

'एलेक्शन का सवाल नहीं है भाई, यह इज्ज़त का सवाल है। क्या आपकी राय में मेरी इज्ज़त दो लाख की भी नहीं? मेरी सारी रियासत बिक जाय गम नहीं; मगर सूर्यप्रतापसिंह को मैं आसानी से विजय न पाने दूँगा।'

खन्ना ने एक मिनट तक धुआँ निकालने के बाद कहा—बैंक की जो स्थिति है वह मैंने आपके सामने रख दी। बैंक ने एक तरह से लेन-देन का काम बन्द कर दिया है। मैं कोशिश करूँगा कि आपके साथ खास रियायत की जाय; लेकिन Business is business यह आप जानते हैं। पर मेरा कमीशन क्या रहेगा? मुझे आपके लिए ख़ास तौर पर सिफ़ारिश करनी पड़ेगी; राजा साहब का अन्य डाइरेक्टरों पर कितना प्रभाव है, यह भी आप जानते हैं। मुझे उनके खिलाफ़ गुट-बन्दी करनी पड़ेगी। यों समझ लीजिए कि मेरी ज़िम्मेदारी पर ही यह मुआमला होगा।

राय साहब का मुँह गिर गया। खन्ना उनके अन्तरंग मित्रों में थे। साथ के पढ़े हुए, साथ के बैठनेवाले। और यह उनके कमीशन की आशा रखते हैं, इतनी

बेमुरौवती ? आखिर वह जो इतने दिनों से खन्ना कि खुशामद करते हैं, वह किस दिन के लिए ? बाग में फल निकले, शाक-भाजी पैदा हो, सबसे पहले खन्ना के पास डाली भेजते हैं। कोई उत्सव हो, कोई जलसा हो, सबसे पहले खन्ना को निमन्त्रण देते हैं। उसका यह जवाब है। उदास मन से बोले—आपकी जो इच्छा हो ; लेकिन मैं आपको अपना भाई समझता था।

खन्ना ने कृतज्ञता के भाव से कहा—यह आपकी कृपा है। मैंने भी सदैव आपको अपना बड़ा भाई समझा है, और अब भी समझता हूँ। कभी आपसे कोई पर्दा नहीं रखा, लेकिन व्यापार एक दूसरा ही क्षेत्र है। यहाँ कोई किसी का दोस्त नहीं, कोई किसी का भाई नहीं। जिस तरह मैं भाई के नाते आपसे यह नहीं कह सकता कि मुझे दूसरों से ज्यादा कमीशन दीजिए, उसी तरह आपको भी मेरे कमीशन में रिआयत के लिए आग्रह न करना चाहिए। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, कि मैं जितनी रिआयत आपके साथ कर सकता हूँ, उतनी करूँगा। कल आप दफ़्तर के वक्त आयें और लिखा-पढ़ी कर लें। बस, बिज़नेस खत्म। आपने कुछ और सुना! मेहता साहब, आज-कल मालती पर बे-तरह रीझे हुए हैं। सारी फ़िलासफ़ी निकल गई। दिन में एक-दो बार ज़रूर हाज़िरी दे आते हैं, और शाम को अक्सर दोनों साथ-साथ सैर करने निकलते हैं। यह तो मेरी ही शान थी कि कभी मालती के द्वार पर सलामी करने न गया। शायद अब उसी की कसर निकाल रही है। कहाँ तो यह हाल था कि जो कुछ हैं, मिस्टर खन्ना हैं। कोई काम होता, तो खन्ना के पास दौड़ी आतीं। जब रुपयों की ज़रूरत पड़ती, तो खन्ना के नाम पुरजा आता। और कहाँ अब मुझे देखकर मुँह फेर लेती हैं। मैंने ख़ास उन्हीं के लिए फ्रांस से एक घड़ी मँगवाई थी। बड़े शौक से लेकर गया ; मगर नहीं ली। अभी कल मेवों की डाली भेजी थी—काश्मीर से मँगवाये थे। वापस कर दी। मुझे तो आश्चर्य होता है कि आदमी इतनी जल्द कैसे इतना बदल जाता है।

राय साहब मन में तो उनकी बेक़द्री पर खुश हुए ; पर सहानुभूति दिखाकर बोले—आप यह भी मान लें कि मेहता से उसका प्रेम हो गया है, तो भी व्यवहार तोड़ने का कोई कारण नहीं है।

खन्ना व्यथित स्वर में बोले—यही तो रंज है भाई साहब! यह तो मैं शुरू

से जानता था, वह मेरे हाथ नहीं आ सकतीं ! मैं आपसे सत्य कहता हूँ, मैं कभी इस धोखे में नहीं पड़ा कि मालती को मुझसे प्रेम है। प्रेम-जैसी चीज़ उनसे मिल सकती है, इसकी मैंने कभी आशा ही नहीं की। मैं तो केवल उनके रूप का पुजारी था। साँप में विष है, यह जानते हुए भी हम उसे दूध पिलाते हैं। तोते से ज़्यादा निठुर जीव और कौन होगा ; लेकिन केवल उसके रूप और वाणी पर मुग्ध होकर लोग उसे पालते हैं और सोने के पिंजरे में रखते हैं। मेरे लिए भी मालती उसी तोते के समान थी। अफ़सोस यही है कि मैं पहले क्यों न चेत गया। इसके पीछे मैंने अपने हज़ारों रुपए बरबाद कर दिये भाई साहब ! जब उसका रुक्का पहुँचा, मैंने तुरन्त रुपए भेजे। मेरी कार आज भी उनकी सवारी में है। उसके पीछे मैंने अपना घर चौपट कर दिया भाई साहब ! हृदय में जितना रस था, वह ऊसर की ओर इतने वेग से दौड़ा कि दूसरी तरफ़ का उद्यान बिलकुल सूखा रह गया। बरसों हो गये, मैंने गोविन्दी से दिल खोलकर बात भी नहीं की। उसकी सेवा और स्नेह और त्याग से मुझे उसी तरह अरुचि हो गई थी, जैसी अजीर्ण के रोगी को मोहनभोग से हो जाती है। मालती मुझे उसी तरह नचाती थी, जैसे मदारी बन्दर को नचाता है। और मैं ख़ुशी से नाचता था। वह मेरा अपमान करती थी और मैं ख़ुशी से हँसता था। वह मुझ पर शासन करती थी और मैं सिर झुकाता था। उसने मुझे कभी मुँह नहीं लगाया, यह मैं स्वीकार करता हूँ। उसने मुझे कभी प्रोत्साहन नहीं दिया, यह भी सत्य है, फिर भी मैं पतंग की भाँति उसके मुख-दीप पर प्राण देता था। और अब वह मुझसे शिष्टाचार का व्यवहार भी नहीं कर सकती ! लेकिन भाई साहब ! मैं कहे देता हूँ कि खन्ना चुप बैठनेवाला आदमी नहीं है। उसके पुरजे मेरे पास सुरक्षित हैं ; मैं उससे एक-एक पाई वसूल कर लूँगा, और डाक्टर मेहता को तो मैं लखनऊ से निकालकर दम लूँगा। उनका रहना यहाँ असम्भव कर दूँगा ..

उसी वक्त हार्न की आवाज़ आई और एक क्षण में मिस्टर मेहता आकर खड़े हो गये। गोरा चिट्टा रंग, स्वास्थ्य की लालिमा गालों पर चमकती हुई, नीची अचकन, चूड़ीदार पाजामा, सुनहली ऐनक। सौम्यता के देवता से लगते थे।

खन्ना ने उठकर हाथ मिलाया—आइये मिस्टर मेहता, आप ही का ज़िक्र हो रहा था।

मेहता ने दोनों सज्जनों से हाथ मिलाकर कहा—बड़ी अच्छी साइत में घर से चला था कि आप दोनों साहबों से एक ही जगह भेंट हो गई। आपने शायद पत्रों में देखा होगा, यहाँ महिलाओं के लिए एक व्यायामशाला का आयोजन हो रहा है। मिस मालती उस कमेटी की सभानेत्री हैं। अनुमान किया गया है कि शाला में दो लाख रुपए लगेंगे। नगर में उसकी कितनी ज़रूरत है, यह आप लोग मुझसे ज्यादा जानते हैं मैं चाहता हूँ डोनरों में आप दोनों साहबों का नाम सबसे ऊपर हो। मिस मालती ख़ुद आनेवाली थीं; पर आज उनके फ़ादर की तबियत अच्छी नहीं है; इसलिए न आ सकीं।

उन्होंने चन्दे की सूची राय साहब के हाथ में रख दी। पहला नाम राजा सूर्यप्रतापसिंह का था, जिसके सामने पाँच हज़ार रुपये की रकम थी। उसके बाद कुँवर दिग्विजयसिंह के तीन हज़ार रुपए थे। इसके बाद और कई रकमें इतनी या इससे कुछ कम थीं। मालती ने पाँच सौ रुपए दिये थे और डाक्टर मेहता ने एक हज़ार रुपये।

राय साहब ने अप्रतिभ होकर कहा—कोई चालीस हज़ार तो आप लोगों ने फटकार लिये।

मेहता ने गर्व से कहा—यह सब आप लोगों की दया है और वह केवल तीन घंटों का परिश्रम है। राजा सूर्यप्रतापसिंह ने शायद ही किसी सार्वजनिक कार्य में भाग लिया हो; पर आज तो उन्होंने बे-कहे सुने चेक लिख दिया। देश में जागृति है। जनता किसी भी शुभ काम में सहयोग देने को तैयार है। केवल उसे विश्वास होना चाहिए कि उसके दान का सद्व्यय होगा। आपसे तो मुझे बड़ी आशा है, मिस्टर खन्ना।

खन्ना ने उपेक्षा-भाव से कहा—मैं ऐसे फ़ज़ूल के कामों में नहीं पड़ता। न जाने आप लोग पश्चिम की गुलामी में कहाँ तक जायँगे। यों ही महिलाओं को घर से अरुचि हो रही है। व्यायाम की धुन सवार हो गई, तो वह कहीं की न रहेंगी। जो औरत घर का काम करती है, उसके लिए किसी व्यायाम की ज़रूरत नहीं। और जो घर का कोई काम नहीं करती और केवल भोग-विलास में रत है, उसके व्यायाम के लिए चन्दा देना मैं अधर्म समझता हूँ।

मेहता ज़रा भी निरुत्साह न हुए—ऐसी दशा में मैं आपसे कुछ माँगूँगा भी

नहीं। जिस आयोजन में हमें विश्वास न हो उसमें किसी तरह की मदद देना वास्तव में अधर्म है। आप तो मिस्टर खन्ना से सहमत नहीं हैं राय साहब!

राय साहब गहरी चिन्ता में डूबे हुए थे। सूर्यप्रताप के पाँच हज़ार उन्हें हतोत्साह किये डालते थे। चौंककर बोले—आपने मुझसे कुछ कहा?

'मैंने कहा, आप तो इस आयोजन में सहयोग देना अधर्म नहीं समझते?'

'जिस काम में आप शरीक हैं, वह धर्म है या अधर्म, इसकी मैं परवा नहीं करता।'

'मैं चाहता हूँ, आप ख़ुद विचार करें। और अगर आप इस आयोजन को समाज के लिए उपयोगी समझें, तो उसमें सहयोग दें। मिस्टर खन्ना की नीति मुझे बहुत पसन्द आई।'

खन्ना बोले—मैं तो साफ़ कहता हूँ और इसी लिए बदनाम हूँ।

राय साहब ने दुर्बल मुस्कान के साथ कहा—मुझमें तो विचार करने की शक्ति ही नहीं। सज्जनों के पीछे चलना ही मैं अपना धर्म समझता हूँ।

'तो लिखिए कोई अच्छी रक़म।'

'जो कहिए, वह लिख दूँ।'

'जो आपकी इच्छा।'

'आप जो कहिए, वह लिख दूँ।'

'तो दो हज़ार से कम क्या लिखिएगा।'

राय साहब ने आहत स्वर में कहा—आपकी निगाह में मेरी यही हैसियत है?

उन्होंने क़लम उठाया और अपना नाम लिखकर उसके सामने पाँच हज़ार लिख दिये। मेहता ने सूची उनके हाथ से ले ली; मगर उन्हें इतनी ग्लानि हुई कि राय साहब को धन्यवाद देना भी भूल गये। राय साहब को चन्दे की सूची दिखाकर उन्होंने बड़ा अनर्थ किया, यह शूल उन्हें व्यथित करने लगा।

मिस्टर खन्ना ने राय साहब को दया और उपहास की दृष्टि से देखा, मानो कह रहे हों, कितने बड़े गधे हो तुम!

सहसा मेहता राय साहब के गले लिपट गये और उन्मुक्त कंठ से बोले—
Three cheers for Rai Sahib, Hip Hip Hurrah!

खन्ना ने खिसियाकर कहा—यह लोग राजे-महराजे ठहरे, यह इन कामों में दान न दें, तो कौन दे।

मेहता बोले—मैं तो आपको राजाओं का राजा समझता हूँ। आप उन पर शासन करते हैं। उनकी चोटी आपके हाथ में है।

राय साहब प्रसन्न हो गये—यह आपने बड़े मार्के की बात कही मेहताजी! हम नाम के राजा हैं। असली राजा तो हमारे बैंकर हैं।

मेहता ने खन्ना की खुशामद का पहलू अख़्तियार किया—मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है खन्नाजी! आप अभी इस काम में नहीं शरीक होना चाहते, न सही, लेकिन कभी न कभी आप ज़रूर आयेंगे। लक्ष्मीपतियों की बदौलत ही हमारी बड़ी-बड़ी संस्थाएँ चलती हैं! राष्ट्रीय आन्दोलन को दो-तीन साल तक किसने इतनी धूम-धाम से चलाया? इतने धर्मशाले और पाठशाले कौन बनवा रहा है? आज संसार का शासन-सूत्र बैंकरों के हाथ में है। सरकार उनके हाथ का खिलौना है। मैं भी आपसे निराश नहीं हूँ। जो व्यक्ति राष्ट्र के लिए जेल जा सकता है, उसके लिए दो-चार हज़ार खर्च कर देना कोई बड़ी बात नहीं। हमने तय किया है, इस शाला का बुनीयादी पत्थर गोविन्दी देवी के हाथों रखा जाय। हम दोनों शीघ्र ही गवर्नर साहब से भी मिलेंगे और मुझे विश्वास है, हमें उनकी सहायता मिल जायगी। लेडी विलसन को महिला-आन्दोलन से कितना प्रेम है, आप जानते ही हैं। राजा साहब को और अन्य सज्जनों को भी राय थी कि लेडी विलसन से ही बुनियाद रखवाई जाय; लेकिन अन्त में यही निश्चय हुआ कि यह शुभ कार्य किसी अपनी बहन के हाथों होना चाहिए। आप कम से कम उस अवसर पर आयेंगे तो ज़रूर!

खन्ना ने उपहास किया—हाँ, जब लार्ड विलसन आयेंगे तो मेरा पहुँचना ज़रूरी है ही। इस तरह आप बहुत से रईसों को फाँस लेंगे। आप लोगों को लटके भी खूब सूझते हैं। और हमारे रईस हैं भी इसी लायक़। उन्हें उल्लू बनाकर ही मूँड़ा जा सकता है।

'जब धन ज़रूरत से ज़्यादा हो जाता है, तो अपने लिए निकास का मार्ग खोजता है। यों न निकल पायगा, तो जुए में जायगा, घुड़दौड़ में जायगा, ईंट-पत्थर में जायगा, या ऐयाशी में जायगा।'

ग्यारह का अमल था। खन्ना साहब के दफ़्तर का समय आ गया। मेहता चले

गये। राय साहब भी उठे, कि खन्ना ने उनका हाथ पकड़कर बैठा लिया—नहीं, आप ज़रा बैठिए। आप देख रहे हैं, मेहता ने मुझे इस बुरी तरह फाँसा है कि निकलने का कोई रास्ता ही नहीं रहा। गोविन्दी से बुनियाद का पत्थर रखवायेंगे। ऐसी दशा में मेरा अलग रहना हास्यास्पद है या नहीं। गोविन्दी कैसे राज़ी हो गई, यह मेरी समझ में नहीं आता और मालती ने कैसे उसे सहन कर लिया. यह समझना और भी कठिन है। आपका क्या ख़याल है, इसमें कोई रहस्य है या नहीं?'

राय साहब ने आत्मीयता जताई—ऐसे मुआमलों में स्त्री को हमेशा पुरुष से सलाह ले लेनी चाहिए!

खन्ना ने राय साहब को धन्यवाद की आँखों से देखा—इन्हीं बातों पर गोविन्दी से मेरा जी जलता है, और उस पर मुझी को लोग बुरा कहते हैं। आप ही सोचिए, मुझे इन झगड़ों से क्या मतलब। इनमें तो वह पड़े, जिसके पास फालतू रुपए हों, फालतू समय हो, और नाम की हवस हो। होना यही है कि दो-चार महाशय सेक्रटरी और अन्डर सेक्रेटरी और प्रधान और उपप्रधान बनकर अफसरों को दावतें देंगे, उनके कृपापात्र बनेंगे और यूनिवर्सिटी की छोकरियों को जमा करके विहार करेंगे। व्यायाम तो केवल दिखाने के दाँत हैं। ऐसी संस्थाओं में हमेशा यही होता है और यही होगा और उल्लू बनेंगे हम, और हमारे भाई, जो धनी कहलाते हैं और यह सब गोविन्दी के कारण।

वह एक बार कुरसी से उठे, फिर बैठ गये। गोविन्दी के प्रति उनका क्रोध प्रचण्ड होता जाता था। उन्होंने दोनो हाथों से सिर को सँभालकर कहा—मैं नहीं समझता; मुझे क्या करना चाहिए।

राय साहब ने ठकुर-सोहाती की—कुछ नहीं, आप गोविन्दी देवी से साफ़ कह दें, तुम मेहता को इनकारी ख़त लिख दो, छुट्टी हुई। मैं तो लाग-डाँट में फँस गया। आप क्यों फँसें।

खन्ना ने एक क्षण इस प्रस्ताव पर विचार करके कहा—लेकिन सोचिए, कितना मुश्किल काम है। लेडी विलसन से इसका ज़िक्र आ चुका होगा, सारे शहर में ख़बर फैल गई होगी और शायद आज पत्रों में भी निकल जाय। यह सब मालती की शरारत है। उसी ने मुझसे ज़िच का यह ढंग निकाला है।

'हाँ, मालूम तो यही होता है!'

'वह मुझे ज़लील करना चाहती है।'

'आप शिलान्यास के एक दिन पहले बाहर चले जाइएगा।'

'मुश्किल है राय साहब! कहीं मुँह दिखाने की जगह न रहेगी। उस दिन तो मुझे हैज़ा भी हो जाय, तो वहाँ जाना पड़ेगा।'

राय साहब आशा बाँधे हुए कल आने का वादा करके ज्यों ही निकले कि खन्ना ने अन्दर जाकर गोविन्दी को आड़े हाथों लिया—तुमने इस व्यायाम शाला की नींव रखना क्यों स्वीकार किया?

गोविन्दी कैसे कहे कि यह सम्मान पाकर वह मन में कितना प्रसन्न हो रही थी, उस अवसर के लिए कितने मनोनियोग से अपना भाषण लिख रही थी और कितनी ओज भरी कविता रची थी। उसने दिल में समझा था, यह प्रस्ताव स्वीकार करके वह खन्ना को प्रसन्न कर देगी। उसका सम्मान तो उसके पति ही का सम्मान है। खन्ना को इसमें कोई आपत्ति हो सकती है, इसकी उसने कल्पना भी न की थी। इधर कई दिन से पति को कुछ सदय देखकर उसका मन बढ़ने लगा था। वह अपने भाषण से, और अपनी कविता से लोगों को मुग्ध कर देने का स्वप्न देख रही थी।

यह प्रश्न सुना और खन्ना की मुद्रा देखी, तो उसकी छाती धक्-धक् करने लगी। अपराधी की भाँति बोली—डाक्टर मेहता ने आग्रह किया, तो मैंने स्वीकार कर लिया।

'डाक्टर मेहता तुम्हें कुएँ में गिरने को कहें, तो शायद इतनी खुशी से न तैयार होगी।'

गोविन्दी की ज़बान बन्द।

'तुम्हें जब ईश्वर ने बुद्धि नहीं दी, तो क्यों मुझसे नहीं पूछ लिया? मेहता और मालती, दोनों यह चाल चलकर मुझसे दो-चार हज़ार ऐंठने की फ़िक्र में हैं। और मैंने ठान लिया है कि एक कौड़ी भी न दूँगा। तुम आज ही मेहता को इनकारी ख़त लिख दो।'

गोविन्दी ने एक क्षण सोचकर कहा—तो तुम्हीं लिख दो न।

'मैं क्यों लिखूँ? बात की तुमने, लिखूँ मैं!'

'डाक्टर साहब कारण पूछेंगे, तो क्या बताऊँगी?'

'बताना अपना सिर और क्या। मैं इस व्यभिचारशाला को एक धेला भी नहीं देना चाहता।'

'तो तुम्हें कुछ देने को कौन कहता है?'

खन्ना ने होंठ चबाकर कहा—कैसी बेसमझी की-सी बातें करती हो! तुम वहाँ नीव रखोगी और कुछ दोगी नहीं, तो संसार क्या कहेगा?

गोविन्दी ने जैसे संगीन की नोक पर कहा—अच्छी बात है, लिख दूँगी।

'आज ही लिखना होगा।'

'कह तो दिया, लिखूँगी।

खन्ना बाहर आये और डाक देखने लगे। उन्हें दफ़्तर जाने में देर हो जाती थी, तो चपरासी घर पर ही डाक दे जाता था। शक्कर तेज़ हो गई है। खन्ना का चेहरा खिल उठा। दूसरी चिट्ठी खोली। ऊख का दर नियत करने के लिए जो कमेटी बैठी थी, उसने तय कर दिया कि ऐसा नियन्त्रण नहीं किया जा सकता। धत् तेरी की! वह पहले यही बात कह रहे थे; पर इस अग्निहोत्री ने गुल मचाकर ज़बरदस्ती कमेटी बैठाई। आख़िर बचा के मुँह पर थप्पड़ लगा। यह मिलवालों और किसानों के बीच का मुआमला है। सरकार इसमें दख़ल देनेवाली कौन?

सहसा मिस मालती कार से उतरी। कमल की भाँति खिली दीपक की भाँति दमकती, स्फूर्ति और उल्लास की प्रतिमा-सी—निश्शंक, निर्द्वन्द्व मानो उसे विश्वास है कि संसार में उसके लिए आदर और सुख का द्वार खुला हुआ है। खन्ना ने बरामदे में आकर अभिवादन किया।

मालती ने पूछा—क्या यहाँ मेहता आये थे?

'हाँ, आये तो थे।'

'कुछ कहा, कहाँ जा रहे हैं?'

'यह तो कुछ नहीं कहा।'

'जाने कहाँ डुबकी लगा गये। मैं चारों तरफ़ घूम आई। आपने व्यायामशाला के लिए कितना दिया?'

खन्ना ने अपराधी-स्वर में कहा—मैंने अभी इस मुआमले को समझा ही नहीं।

मालती ने बड़ी-बड़ी आँखों से उन्हें तरेरा, मानो सोच रही हो कि उन पर दया करे या रोष।

'इसमें समझने की क्या बात थी, और समझ देते आगे पीछे, इस वक्त तो कुछ देने की बात थी। मैंने मेहता को ठेलकर यहाँ भेजा था। बेचारे डर रहे थे कि आप न जाने क्या जवाब दें। आपकी इस कंजूसी का क्या फल होगा, आप जानते हैं? यहाँ के व्यापारी समाज से कुछ न मिलेगा। आपने शायद मुझे अपमानित करने का निश्चय कर लिया है। सबकी सलाह थी, कि लेडी विलसन बुनियाद रखें। मैंने गोविन्दी देवी का पक्ष लिया और लड़कर सबको राज़ी किया और अब आप फ़रमाते हैं, आपने इस मुआमले को समझा ही नहीं। आप बैंकिंग की गुत्थियाँ समझते हैं; पर इतनी मोटी बात आपकी समझ में न आई। इसका अर्थ इसके सिवा और कुछ नहीं है, कि तुम मुझे लज्जित करना चाहते हो। अच्छी बात है, यही सही।'

मालती का मुख लाल हो गया था। खन्ना घबराये, हेकड़ी जाती रही; पर इसके साथ ही उन्हें यह भी मालूम हुआ कि अगर वह काँटों में फँस गये हैं, तो मालती दलदल में फँस गई है; अगर उनकी थैलियों पर संकट आ पड़ा है, तो मालती की प्रतिष्ठा पर संकट आ पड़ा है, जो थैलियों से ज़्यादा मूल्यवान है। तब उनका मन मालती की दुरवस्था का आनन्द क्यों न उठाये? उन्होंने मालती को अड़दब में डाल दिया था। और यद्यपि वह उसे रुष्ट कर देने का साहस खो चुके थे; पर दो चार खरी-खरी बातें कह सुनाने का अवसर पाकर छोड़ना न चाहते थे। यह भी दिखा देना चाहते थे कि मैं निरा भोंदू नहीं हूँ। उसका रास्ता रोककर बोले—तुम मुझ पर इतनी कृपालु हो गई हो, इस पर मुझे आश्चर्य हो रहा है मालती!

मालती ने भवें सिकोड़कर कहा मैं इसका आशय नहीं समझी।

'क्या अब मेरे साथ तुम्हारा वही वर्ताव है, जो कुछ दिन पहले था?'

'मैं तो उसमें कोई अन्तर नहीं देखती।'

'लेकिन मैं तो आकाश-पाताल का अन्तर देखता हूँ।'

'अच्छा मान लो, तुम्हारा अनुमान ठीक है, तो फिर? मैं तुमसे एक शुभ-कार्य में सहायता माँगने आई हूँ, अपने व्यवहार की परीक्षा देने नहीं आई हूँ। और अगर तुम समझते हो, कुछ चन्दा देकर तुम यश और धन्यवाद के सिवा कुछ और पा सकते हो, तो तुम भ्रम में हो।'

खन्ना परास्त हो गये। वह ऐसे सकरे कोने में फँस गये थे, जहाँ इधर-उधर

हिलने का भी स्थान न था। क्या वह उससे यह कहने का साहस रखते हैं कि मैंने अब तक तुम्हारे ऊपर हज़ारों रुपये लुटा दिये, क्या उसका यही पुरस्कार है ? लज्जा से उनका मुँह छोटा-सा निकल आया, जैसे सिकुड़ गया हो ! झेंपते हुए बोले—मेरा आशय यह न था मालती, तुम बिलकुल ग़लत समझीं।

मालती ने परिहास के स्वर में कहा—खुदा करे, मैंने ग़लत समझा हो, क्योंकि अगर मैं उसे सच समझ लूँगी, तो तुम्हारे साये से भी भागूँगी। मैं रूपवती हूँ। तुम भी मेरे अनेक चाहनेवालों में से एक हो। यह मेरी कृपा थी कि जहाँ मैं औरों के उपहार लौटा देती थी, तुम्हारी सामान्य से सामान्य चीज़ें भी धन्यवाद के साथ स्वीकार कर लेती थी, और ज़रूरत पड़ने पर तुमसे रुपये भी माँग लेती थी, अगर तुमने अपने धनोन्माद में इसका कोई दूसरा अर्थ निकाल लिया, तो मैं तुम्हें क्षमा करूँगी। यह पुरुष-प्रकृति है, अपवाद नहीं; मगर समझ लो कि धन ने आज तक किसी नारी के हृदय पर विजय नहीं पाई, और न कभी पायेगा।

खन्ना एक-एक शब्द पर मानो गज़-गज़ भर नीचे धँसते जाते थे। अब और ज़्यादा चोट सहने का उनमें जीवट न था। लज्जित होकर बोले—मालती, तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ, अब और ज़लील न करो। और न सही तो मित्र-भाव तो बना रहने दो।

यह कहते हुए उन्होंने दराज़ से चेकबुक निकाला और एक हज़ार लिख-कर डरते-डरते मालती की तरफ़ बढ़ाया।

मालती ने चेक लेकर निर्दय व्यंग्य किया—यह मेरे व्यवहार का मूल्य है या व्यायाम-शाला का चन्दा ?

खन्ना सजल आँखों से बोले—अब मेरी जान बख्शो मालती, क्यों मेरे मुँह में कालिख पोत रही हो।

मालती ने ज़ोर से क़हक़हा मारा—देखो, डाँट भी बताई और एक हज़ार रुपये भी वसूल किये। अब तो तुम कभी ऐसी शरारत न करोगे ?

'कभी नहीं, जीते जी कभी नहीं।'

'कान पकड़ो।'

'कान पकड़ता हूँ ; मगर अब तुम दया करके जाओ और मुझे एकान्त में बैठकर सोचने और रोने दो। तुमने आज मेरे जीवन का सारा आनन्द...।'

मालती और ज़ोर से हँसी—देखो खन्ना, तुम मेरा बहुत अपमान कर रहे हो और तुम जानते हो, रूप अपमान नहीं सह सकता। मैंने तो तुम्हारे साथ भलाई की और तुम उसे बुराई समझ रहे हो।

खन्ना विद्रोह-भरी आँखों से देखकर बोले—तुमने मेरे साथ भलाई की है या उलटी छुरी से मेरा गला रेता है।

'क्यों, मैं तुम्हें लूट लूटकर अपना घर भर रही थी। तुम उस लूट से बच गये।'

'क्यों घाव पर नमक छिड़क रही हो मालती! मैं भी आदमी हूँ।'

मालती ने इस तरह खन्ना की ओर देखा, मानो निश्चय करना चाहती है कि वह आदमी है या नहीं।

'अभी तो मुझे इसका कोई लक्षण नहीं दिखाई देता।'

'तुम बिलकुल पहेली हो, आज यह साबित हो गया।'

'हाँ, तुम्हारे लिए पहेली हूँ और पहेली रहूँगी।'

यह कहती हुई वह पक्षी की भाँति फुर्र से उड़ गई और खन्ना सिर पर हाथ रखकर सोचने लगे, यह लीला है, या इसका सच्चा रूप।

२३

गोबर और झुनिया के जाने के बाद घर सुनसान रहने लगा। धनिया को बार-बार मुन्नू की याद आती रहती है। बच्चे की मा तो झुनिया थी; पर उसका पालन धनिया ही करती थी। वही उसे उबटन मलती, काजल लगाती, सुलाती और जब काम-काज से अवकाश मिलता, उसे प्यार करती। वात्सल्य का यह नशा ही उसकी विपत्ति को भुलाता रहता था। उसका भोला-भाला, मक्खन-सा मुँह देखकर वह अपनी सारी चिन्ता भूल जाती, और स्नेहमय गर्व से उसका हृदय फूल उठता। वह जीवन का आधार अब न था। उसका सूना खटोला देखकर वह रो उठती। वह कवच जो सारी चिन्ताओं और दुराशाओं से उसकी रक्षा करता था, उससे छिन गया था। वह बार-बार सोचती, उसने झुनिया के साथ ऐसी कौन-सी बुराई

की थी, जिसका उसने यह दण्ड दिया। डाइन ने आकर उसका सोना-सा घर मिट्टी में मिला दिया। गोबर ने तो कभी उसकी बात का जवाब भी न दिया था। इसी राँड़ ने उसे फोड़ा और वहाँ ले जाकर न जाने कौन-कौन-सा नाच नचायेगी। यहाँ ही वह बच्चे की कौन बहुत परवाह करती थी। उसे तो अपनी मिस्सी-काजल, माँग-चोटी ही से छुट्टी नहीं मिलती। बच्चे की देख-भाल क्या करेगी। बेचारा अकेला ज़मीन पर पड़ा रोता होगा। बेचारा एक दिन भी तो सुख से नहीं रहने पाता। कभी खाँसी, कभी दस्त, कभी कुछ, कभी कुछ। यह सोच-सोचकर उसे झुनिया पर क्रोध आता गोबर के लिए अब भी उसके मन में वही ममता थी। इसी चुड़ैल ने उसे कुछ खिला-पिलाकर अपने वश में कर लिया। ऐसी मायाविनी न होती, तो यह टोना ही कैसे करती। कोई बात न पूछता था, भौजाइयों की लातें खाती थी। यह भुग्गा मिल गया, तो आज रानी हो गई।

होरी ने चिढ़कर कहा—जब देखो तब तू झुनिया ही को दोष देती है। यह नहीं समझती कि अपना सोना खोटा तो सोनार का क्या दोस। गोबर उसे न ले जाता, तो क्या आप से आप चली जाती! सहर का दाना-पानी लगने से लौंडे की आँखें बदल गईं। ऐसा क्यों नहीं समझ लेती।

धनिया गरज उठी—अच्छा चुप रहो। तुम्हीं ने राँड़ को मूड़ पर चढ़ा रखा था, नहीं मैंने पहले ही दिन झाड़ू मारकर निकाल दिया होता।

खलिहान में डाँठें जमा हो गई थीं। होरी बैलों को जुखरकर अनाज माँड़ने जा रहा था। पीछे मुँह फेरकर बोला मान ले, बहू ने गोबर को फोड़ ही लिया, तो तू इतना कुढ़ती क्यों है? जो सारा जमाना करता है, वही गोबर ने भी किया। अब उसके बाल-बच्चे हुए। मेरे बाल-बच्चों के लिए क्यों अपनी साँसत कराये, क्यों हमारे सिर का बोझ अपने सिर पर रखे!

'तुम्हीं उपद्रव की जड़ हो।'

'तो मुझे भी निकाल दे। ले जा बैलों को, अनाज माँड़। मैं हुक्का पीता हूँ।'

'तुम चलकर चक्की पीसो, मैं अनाज माँड़ूँगी।'

विनोद में दुःख उड़ गया। यही उसकी दवा है। धनिया प्रसन्न होकर रूपा के बाल गूँथने बैठ गई जो बिलकुल उलझकर रह गये थे, और होरी खलिहान चला। रसिक वसन्त सुगन्ध और प्रमोद और जीवन की विभूति लुटा रहा था, दोनों हाथों

से, दिल खोलकर। कोयल आम की डालियों में छिपी अपनी रसीली, मधुर, आत्म-स्पर्शी कूक से आशाओं को जगाती फिरती थी। महुए की डालियों पर मैनों की बरात-सी लगी बैठी थी। नीम और सिरस और करौंदे अपनी महक में नशा-सा घोले देते थे। होरी आमों के बाग में पहुँचा, तो वृक्षों के नीचे तारों-से खिले थे। उसका व्यथित, निराश मन भी इस व्यापक शोभा और स्फूर्ति में आकर गाने लगा—

'हिया जरत रहत दिन-रैन।

आम की डरिया कोयल बोले तनिक न आवत चैन।'

सामने से दुलारी सहुआइन, गुलाबी साड़ी पहने चली आ रही थी। पाँव में मोटे चाँदी के कड़े थे, गले में मोटी सोने की हँसली, चेहरा सूखा हुआ; पर दिल हरा। एक समय था, जब होरी खेत-खलिहान में उसे छेड़ा करता था। वह भाभी थी, होरी देवर था, इस नाते से दोनों में विनोद होता रहता था। जब से साहजी मर गये, दुलारी ने घर से निकलना छोड़ दिया। सारे दिन दुकान पर बैठी रहती थी और वहीं से सारे गाँव की ख़बर लगाती रहती थी। कहीं आपस में झगड़ा हो जाय, सहुआइन वहाँ बीच-बचाव करने के लिए अवश्य पहुँचेगी आने रुपये सूद से कम पर रुपए उधार न देती थी। और यद्यपि सूद के लोभ में मूल भी हाथ न आता था—जो रुपए लेता खाकर बैठ रहता—मगर उसके व्याज का दर ज्यों का त्यों बना रहता था। बेचारी कैसे वसूल करे, नालिश-फरियाद करने से रही, थाना-पुलिस करने से रही, केवल जीभ का बल था; पर ज्यों-ज्यों उम्र के साथ जीभ की तेज़ी बढ़ती जाती थी, उसकी काट घटती जाती थी। अब उसकी गालियों पर लोग हँस देते थे और मज़ाक़ में कहते—क्या करेगी रुपए लेकर काकी, साथ तो एक कौड़ी भी न ले जा सकेगी। गरीबों को खिला-पिलाकर जितनी असीस मिल सके, ले ले। यही परलोक में काम आयेगा। और दुलारी परलोक के नाम से जलती थी।

होरी ने छेड़ा—आज तो भाभी, तुम सचमुच जवान लगती हो।

सहुआइन मगन होकर बोली आज मंगल का दिन है, नजर न लगा देना! इसी मारे मैं कुछ पहनती-ओढ़ती नहीं। घर से निकलो तो सभी घूरने लगते हैं, जैसे कभी कोई मेहरिया देखी न हो। पटेसरी लाला की पुरानी बान अभी तक नहीं छूटी।

होरी ठिठक गया, बड़ा मनोरंजक प्रसंग छिड़ गया था। बैल आगे निकल गये।

'वह तो आजकल बड़े भगत हो गये हैं। देखती नहीं हो हर पुरनमासी को सत्यनारायण की कथा सुनते हैं और दोनों जून मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं।'

'ऐसे लम्पट जितने होते हैं, सभी बूढ़े होकर भगत बन जाते हैं। कुकर्म का परासचित तो करना ही पड़ता है। पूछो, मैं अब बुढ़िया हुई, मुझसे क्या हँसी।'

'तुम अभी बुढ़िया कैसे हो गईं भाभी? मुझे तो अब भी...'

'अच्छा चुप ही रहना, नहीं डेढ़ सौ गाली दूँगी। लड़का परदेस कमाने लगा, एक दिन नेवता भी न खिलाया, सेंत-मेंत में भाभी बनाने को तैयार।'

'मुझसे कसम ले लो भाभी, जो मैंने उसकी कमाई का एक पैसा भी छुआ हो। न जाने क्या लाया, कहाँ खरच किया, मुझे कुछ भी पता नहीं। बस, एक जोड़ा धोती और एक पगड़ी मेरे हाथ लगी।'

'अच्छा कमाने तो लगा, आज नहीं कल घर सँभालेगा ही। भगवान् उसे सुखी रखे। हमारे रुपए भी थोड़ा-थोड़ा देते चलो। सूद ही तो बढ़ रहा है।'

'तुम्हारी एक-एक पाई दूँगा भाभी, हाथ में पैसे आने दो। और खा ही जायँगे, तो कोई बाहर के तो नहीं हैं, हैं तो तुम्हारे ही।'

सहुआइन ऐसी विनोद-भरी चापलूसियों से निरस्त्र हो जाती थी। मुस्कराती हुई अपनी राह चली गई। होरी लपककर बैलों के पास पहुँच गया और उन्हें पौर में डालकर चक्कर देने लगा। सारे गाँव का यही एक खलिहान था। कहीं मँड़ाई हो रही थी, कोई अनाज ओसा रहा था, कोई गल्ला तौल रहा था। नाई, बारी, बढ़ई, लोहार पुरोहित, भाँट, भिखारी सभी अपने-अपने जेवरें लेने के लिए जमा हो गये थ। एक पेड़ के नीचे झिंगुरीसिंह खाट पर बैठे अपनी सवाई उगाह रहे थे। कई बनिये खड़े गल्ले का भाव-ताव कर रहे थे। सारे खलिहान में मंडी की-सी रौनक थी। एक खटकिन बेर और मकोय बेच रही थी और एक खोंचेवाला तेल के सेव और जिलेबियाँ लिये फिर रहा था। पंडित दातादीन भी होरी से अनाज बँटवाने के लिए आ पहुँचे थे और झिंगुरीसिंह के साथ खाट पर बैठे थे।

दातादीन ने सुरती मलते हुए कहा—कुछ सुना, सरकार भी महाजनों से कह रही है कि सूद का दर घटा दो, नहीं डिग्री न मिलेगी।

झिंगुरी तमाखू फाँककर बोले—पंडित, मैं तो एक बात जानता हूँ। तुम्हें गरज पड़ेगी तो सौ बार हमसे रुपए उधार लेने आओगे, और हम जो ब्याज चाहेंगे, लेंगे। सरकार अगर असामियों को रुपए उधार देने का कोई बन्दोबस्त न करेगी, तो हमें इस क़ानून से कुछ न होगा। हम दर कम लिखायेंगे; लेकिन एक सौ में पचीस पहले ही काट लेंगे। इसमें सरकार क्या कर सकती है।

'यह तो ठीक है; लेकिन सरकार भी इन बातों को खूब समझती है। इसको भी कोई रोक निकालेगी, देख लेना।'

'इसकी कोई रोक हो ही नहीं सकती।'

'अच्छा, अगर वह सर्त कर दे, जब तक स्टाम्प पर गाँव के मुखिया या कारिन्दा के दसख़त न होंगे, वह पक्का न होगा। तब क्या करोगे?

'असामी को सौ बार गरज होगी, मुखिया को हाथ-पाँव जोड़ के लायेगा और दसखत करायेगा। हम तो एक चौथाई काट ही लेंगे।'

'और जो फँस जाओ! जाली हिसाब लिखा और गये चौदह साल को।'

झिंगुरीसिंह ज़ोर से हँसे—तुम क्या कहते हो पंडित, क्या तब संसार बदल जायेगा? कानून और न्याय उसका है, जिसके पास पैसा है। क़ानून तो है कि महाजन किसी असामी के साथ कड़ाई न करे, कोई ज़मींदार किसी काश्तकार के साथ सख़्ती न करे, मगर होता क्या है। रोज़ ही देखते हो। ज़मींदार मुसक बँधवा के पिटवाता है और महाजन लात और जूते से बात करता है। जो किसान पोढ़ा है, उससे न ज़मींदार बोलता है, न महाजन। ऐसे आदमियों से हम मिल जाते हैं और उनकी मदद से दूसरे आदमियों को गर्दन दबाते हैं। तुम्हारे ही ऊपर राय साहब के पाँच सौ रुपए निकलते हैं; लेकिन नोखेराम में है इतनी हिम्मत कि तुमसे कुछ बोले? वह जानते हैं, तुमसे मेल करने ही में उनका हित है। असामी में इतना बूता है कि रोज़ अदालत दौड़े। सारा कारबार इसी तरह चला जायगा, जैसे चल रहा है। कचहरी-अदालत उसी के साथ है, जिसके पास पैसा है। हम लोगों को घबराने की कोई बात नहीं है।

यह कहकर उन्होंने खलिहान का एक चक्कर लगाया और फिर आकर खाट

पर बैठते हुए बोले—हाँ, मतई के व्याह का क्या हुआ ? हमारी सलाह तो है कि उसका व्याह कर डालो। अब तो बड़ी बदनामी हो रही है।

दातादीन को जैसे ततैया ने काट खाया। इस आलोचना का क्या आशय था, वह खूब समझते थे। गर्म होकर बोले—पीठ पीछे आदमी जो चाहे बके, हमारे मुँह पर कोई कुछ कहे, तो उसकी मूँछें उखाड़ लूँ। कोई हमारी तरह नेमी बन तो ले। कितनों को जानता हूँ, जो कभी सन्ध्या-वन्दन नहीं करते, न उन्हें धरम से मतलब, न करम से ; न कथा से मतलब, न पुरान से। वह भी अपने को ब्राह्मन कहते हैं। हमारे ऊपर हँसेगा वही, जिसने अपने जीवन में एक एकादसी भी नागा नहीं की, कभी बिना स्नान-पूजन किये मुँह में पानी डाला। नेम का निभाना कठिन है। कोई बता दे कि हमने कभी बाजार की कोई चीज खाई हो, या किसी दूसरे के हाथ का पानी पिया हो, तो उसकी टाँग की राह निकल जाऊँ। सिलिया हमारी चौखट नहीं लाँघने पाती, चौखट ; बरतन-भाँडे छूना तो दूसरी बात है। मैं यह नहीं कहता कि मतई यह बहुत अच्छा काम कर रहा है ; लेकिन जब एक बार एक बात हो गई तो यह पाजी का काम है कि औरत को छोड़ दे। मैं तो खुल्लमखुल्ला कहता हूँ इसमें छिपाने की कोई बात नहीं। स्त्री-जाति पवित्र है।

दातादीन अपनी जवानी में स्वयं बड़े रसिया रह चुके थे ; लेकिन अपने नेम-धर्म से कभी नहीं चूके। मातादीन भी सुयोग्य पुत्र की भाँति उन्हीं के पद-चिह्नों पर चल रहा था। धर्म का मूल तत्त्व है पूजा-पाठ, कथा-व्रत और चौका-चूल्हा। जब पिता-पुत्र दोनों ही मूल तत्त्व को पकड़े हुए हैं, तो किसकी मजाल है कि उन्हें पथ-भ्रष्ट कह सके।

झिंगुरीसिंह ने कायल होकर कहा—मैंने तो भाई ! जो सुना था, वह तुमसे कह दिया।

दातादीन ने महाभारत और पुराणों से ब्राह्मणों-द्वारा अन्य जातियों की कन्याओं के ग्रहण किये जाने की एक लम्बी सूची पेश की और यह सिद्ध कर दिया कि उनसे जो सन्तान हुई, वह ब्राह्मण कहलाई और आजकल के जो ब्राह्मण हैं, वह उन्हीं सन्तानों की सन्तान हैं। यह प्रथा आदिकाल से चली आई है और इसमें कोई लज्जा की बात नहीं।

झिंगुरीसिंह उनके पांडित्य पर मुग्ध होकर बोले—तब क्यों आज-कल लोग वाजपेयी और सुकुल बने फिरते हैं ?

'समय-समय की परथा है और क्या। किसी में इतना तेज तो हो। बिस खाकर उसे पचाना तो चाहिए। वह सतजुग की बात थी, सतजुग के साथ गई। अब तो अपना निबाह बिरादरी के साथ मिलकर रहने में है; मगर करूँ क्या कोई लड़कीवाला आता ही नहीं। तुमसे भी कहा, औरों से भी कहा, कोई नहीं सुनता, तो मैं क्या लड़की बनाऊँ ?'

झिंगुरीसिंह ने डाँटा—झूठ मत बोलो पंडित, मैं दो आदमियों को फाँस-फूँसकर लाया; मगर तुम मुँह फैलाने लगे, तो दोनों कान खड़े करके निकल भागे। आख़िर किस बिरते पर हज़ार-पाँच सौ माँगते हो तुम ? दस बीघे खेत और भीख के सिवा तुम्हारे पास और क्या है ?

दातादीन के अभिमान को चोट लगी। डाढ़ी पर हाथ फेरकर बोले—मेरे पास कुछ न सही, मैं भीख ही माँगता हूँ; लेकिन मैंने अपनी लड़कियों के ब्याह में पाँच-पाँच सौ दिये हैं; फिर लड़के के लिए पाँच सौ क्यों न माँगूँ ? किसी ने सेंत-मेंत में मेरी लड़की ब्याह ली होती, तो मैं भी सेंत में लड़का ब्याह लेता। रही हैसियत की बात। तुम जजमानी को भीख समझो, मैं तो उसे ज़मींदारी समझता हूँ, बंकघर। ज़मींदारी मिट जाय; बंक-घर टूट जाय; लेकिन जजमानी अन्त तक बनी रहेगी। जब तक हिन्दू-जाति रहेगी, तब तक बाम्हन भी रहेंगे और जजमानी भी रहेगी। सहालग में मजे से घर बैठे सौ-दो सौ फटकार लेते हैं। कभी भाग लड़ गया, तो चार-पाँच सौ मार लिया। कपड़े, बरतन, भोजन अलग। कहीं-न-कहीं नित ही कार-परोजन पड़ा ही रहता है। कुछ न मिले तब भी एक-दो थाल और दो-चार आने दच्छिना के मिल ही जाते हैं। ऐसा चैन न जमींदारी में है, न साहूकारी में। और फिर मेरा तो सिलिया से जितना उबार होता है, उतना ब्राह्मण की कन्या से क्या होगा। वह तो बहुरिया बनी बैठी रहेगी। बहुत होगा रोटियाँ पका देगी। यहाँ सिलिया अकेली तीन आदमियों का काम करती है। और मैं उसे रोटी के सिवा और क्या देता हूँ। बहुत हुआ, तो साल में एक धोती दे दी।

दूसरे पेड़ के नीचे दातादीन का निजी पैरा था। चार बैलों से मँड़ाई हो रही थी। धन्ना चमार बैलों को हाँक रहा था, सिलिया पैरे से अनाज निकाल-निकाल-

कर ओसा रही थी और मातादीन दूसरी ओर बैठा अपनी लाठी में तेल मल रहा था।

सिलिया साँवली, सलोनी, छरहरी बालिका थी, जो रूपवती न होकर भी आकर्षक थी। उसके हास में चितवन में, अङ्गों के विलास में हर्ष का उन्माद था, जिससे उसकी बोटी-बोटी नाचती रहती थी। सिर से पाँव तक भूसे के अणुओं में सनी, पसीने से तर सिर के बाल आधे खुले, वह दौड़-दौड़कर अनाज ओसा रही थी, मानो तन-मन से कोई खेल खेल रही हो।

मातादीन ने कहा—आज साँझ तक अनाज बाकी न रहे सिलिया! तू थक गई हो तो मैं आऊँ? सिलिया प्रसन्न-मुख बोली—तुम काहे को आओगे पण्डित! मैं संझा तक सब ओसा दूँगी।

'अच्छा, तो मैं अनाज ढो-ढोकर रख आऊँ। तू अकेली क्या-क्या कर लेगी?'

तुम घबड़ाते क्यों हो, मैं ओसा भी दूँगी, ढोकर रख भी आऊँगी। पहर रात तक यहाँ एक दाना भी न रहेगा।'

दुलारी सहुआइन आज अपना लेहना वसूल करती फिरती थी। सिलिया उसकी दूकान से होली के दिन दो पैसे का गुलाबी रङ्ग लाई थी। अभी तक पैसे न दिये थे। सिलिया के पास आकर बोली—क्यों री सिलिया, महीना भर रङ्ग लाये हो गया, अभी तक पैसे नहीं दिये। माँगती हूँ तो मटककर चली जाती है। आज मैं बिना पैसा लिये न जाऊँगी।

मातादीन चुपके-से सरक गया था। सिलिया का तन और मन दोनों लेकर भी बदले में कुछ न देना चाहता था। सिलिया अब उसकी निगाह में केवल काम करने की मशीन थी, और कुछ नहीं। उसकी ममता को वह बड़े कौशल से नचाता रहता था।

सिलिया ने आँख उठाकर देखा तो मातादीन वहाँ न था। बोली—चिल्लाओ मत सहुआइन, यह ले लो, दो की जगह चार पैसे का अनाज। अब क्या जान लेगी! मैं मरी थोड़े ही जाती थी!

उसने अन्दाज़ से कोई सेर भर अनाज ढेर में से निकालकर सहुआइन के फैले हुए अञ्चल में डाल दिया। उसी वक्त मातादीन पेड़ की आड़ से झल्लाया हुआ निकला और सहुआइन का अञ्चल पकड़कर बोला—अनाज सीधे से रख दो सहुआइन, लूट नहीं है।

फिर उसने लाल-लाल आँखों से सिलिया को देखकर डाँटा—तूने अनाज क्यों दे दिया ? किससे पूछकर दिया ? तू कौन होती है मेरा अनाज देनेवाली ?

सहुआइन ने अनाज ढेर में डाल दिया और सिलिया हक्का-बक्का होकर मातादीन का मुँह देखने लगी। ऐसा जान पड़ा, जिस डाल पर वह निश्चिन्त बैठी हुई थी, वह टूट गई है और अब वह निराधार नीचे गिरी जा रही है। खिसियाये हुए मुँह से, आँखों में आँसू भरकर, सहुआइन से बोली—तुम्हारे पैसे मैं फिर दे दूँगी सहुआइन, आज मुझ पर दया करो।

सहुआइन ने उसे दयार्द्र नेत्रों से देखा और मातादीन को धिक्कार-भरी आँखों से देखती हुई चली गई।

तब सिलिया ने अनाज ओसाते हुए आहत गर्व से पूछा—तुम्हारी चीज़ में मेरा कुछ अख़्तियार नहीं है ?

मातादीन आँखें निकालकर बोला—नहीं, तुझे कोई अख़्तियार नहीं है। काम करती है, खाती है। जो तू चाहे कि खा भी और लुटा भी, तो यह यहाँ न होगा। अगर तुझे यहाँ न परता पड़ता हो, तो कहीं और जाकर काम कर। मजूरों की कमी नहीं है। सेंत में नहीं लेते, खाना-कपड़ा देते हैं।

सिलिया ने उस पक्षी की भाँति जिसे मालिक ने पर काटकर पिंजरे से निकाल दिया हो, मातादीन की ओर देखा। उस चितवन में वेदना अधिक थी या भर्त्सना, यह कहना कठिन है। पर उसी पक्षी की भाँति उसका मन फड़फड़ा रहा था और ऊँची डाल पर, उस उन्मुक्त वायु-मण्डल में उड़ने की शक्ति न पाकर उसी पिंजरे में जा बैठना चाहता था, चाहे उसे बेदाना, बेपानी, पिंजरे की तीलियों से सिर टकराकर मर ही क्यों न जाना पड़े। सिलिया सोच रही थी, अब उसके लिए दूसरा कौन-सा ठौर है। वह ब्याहता न होकर भी संस्कार में और व्यवहार में और मनोभाव में ब्याहता थी, और अब मातादीन चाहे उसे मारे या काटे, उसे दूसरा आश्रय नहीं है, दूसरा अवलम्ब नहीं है। उसे वह दिन याद आये—और अभी दो साल भी तो नहीं हुए—जब यही मातादीन उसके तलवे सहलाता था, जब उसने जनेऊ हाथ में लेकर कहा था—सिलिया, जबतक दम में दम है, तुझे ब्याहता की तरह रखूँगा ; जब वह प्रेमातुर होकर हार में और बाग में और नदी के तट पर उसके पीछे-पीछे

पागलों की भाँति फिरा करता था। और आज उसका यह निष्ठुर व्यवहार! मुट्ठी-भर अनाज के लिए उसका पानी उतार लिया!

उसने कोई जवाब न दिया। कण्ठ में नमक के एक डले का-सा अनुभव करती हुई, आहत हृदय और शिथिल हाथों से फिर काम करने लगी।

उसी वक्त उसकी माँ, बाप, दोनों भाई और कई अन्य चमारों ने न जाने किधर से आकर मातादीन को घेर लिया। सिलिया की मा ने आते ही उसके हाथ से अनाज की टोकरी छीनकर फेंक दी और गाली देकर बोली—राँड़, जब तुझे मजूरी ही करनी थी तो घर की मजूरी छोड़कर यहाँ क्या करने आई। जब बाम्हन के साथ रहती है, तो बाम्हन की तरह रह। सारी बिरादरी की नाक कटवाकर भी चमारिन ही बनना था, तो यहाँ क्या घी का लौंदा लेने आई थी? चुल्लू-भर पानी में डूब नहीं मरती!

झिंगुरीसिंह और दातादीन दोनों दौड़े और चमारों के बदले हुए तेवर देखकर उन्हें शान्त करने की चेष्टा करने लगे। झिंगुरीसिंह ने सिलिया के बाप से पूछा—क्या बात है चौधरी, किस बात का झगड़ा है?

सिलिया का बाप हरखू साठ साल का बूढ़ा था, काला, दुबला, सूखी मिर्च की तरह पिचका हुआ; पर उतना ही तीक्ष्ण। बोला—झगड़ा कुछ नहीं है ठाकुर, हम आज या तो मातादीन को चमार बना के छोड़ेंगे, या उनका और अपना रकत एक कर देंगे। सिलिया कन्या जात है, किसी-न-किसी के घर तो जायगी ही। इस पर हमें कुछ नहीं कहना है; मगर उसे जो कोई भी रखे, हमारा होकर रहे। तुम हमें बाम्हन नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं। हमें बाम्हन बना दो, हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है। जब यह सामरथ नहीं है, तो फिर तुम भी चमार बनो, हमारे साथ खाओ-पिओ, हमारे साथ उठो-बैठो। हमारी इज्जत लेते हो, तो अपना धरम हमें दो।

दातादीन ने लाठी फटकारकर कहा—मुँह सँभालकर बातें कर हरखुआ! तेरी बिटिया वह खड़ी है, ले जा जहाँ चाहे। हमने उसे बाँध नहीं रखा। काम करती थी, मजूरी लेती थी। यहाँ मजूरों की कमी नहीं है।

सिलिया की मा उँगली चमकाकर बोली—वाह-वाह पण्डित, खूब नियाव कहते हो। तुम्हारी लड़की किसी चमार के साथ निकल गई होती और तुम इस तरह

की बातें करते, तो देखती। हम चमार हैं इसलिए हमारी कोई इज्ज़त ही नहीं! हम सिलिया को अकेली न ले जायँगे, उसके साथ मातादीन को भी ले जायँगे, जिसने उसकी इज्ज़त बिगाड़ी है। तुम बड़े नेमी-धर्मी हो। उसके साथ सोओगे; लेकिन उसके हाथ का पानी न पिओगे! वही चुड़ैल है कि यह सब सहती है। मैं तो ऐसे आदमी को माहुर दे देती।

हरखू ने अपने साथियों को ललकारा—सुन ली इन लोगों की बात कि नहीं! अब क्या खड़े मुँह ताकते हो।

इतना सुनना था कि दो चमारों ने लपककर मातादीन के हाथ पकड़ लिए, तीसरे ने झपटकर उसका जनेऊ तोड़ डाला और इसके पहले कि दातादीन और झिंगुरीसिंह अपनी-अपनी लाठी सँभाल सकें, दो चमारों ने मातादीन के मुँह में एक बड़ी-सी हड्डी का टुकड़ा डाल दिया। मातादीन ने दाँत जकड़ लिये, फिर भी वह घिनौनी वस्तु उनके ओठों में तो लग ही गई। उन्हें मतली हुई और मुँह आप-से-आप खुल गया और हड्डी कण्ठ तक जा पहुँची। इतने में खलिहान के सारे आदमी जमा हो गये; पर आश्चर्य यह कि कोई इन धर्म के लुटेरों से मुज़ाहिम न हुआ। मातादीन का व्यवहार सभी को नापसन्द था। वह गाँव की बहू-बेटियों को घूरा करता था; इसलिए मन में सभी उसकी दुर्गति से प्रसन्न थे; हाँ, ऊपरी मन से लोग चमारों पर रोब जमा रहे थे।

होरी ने कहा—अच्छा, अब बहुत हुआ हरखू! भला चाहते हो, तो यहाँ से चले जाओ।

हरखू ने निडरता से उत्तर दिया—तुम्हारे घर में भी लड़कियाँ हैं होरी महतो, इतना समझ लो। इस तरह गाँव की मरजाद बिगड़ने लगी, तो किसी की आबरू न बचेगी।

एक क्षण में शत्रु पर पूरी विजय पाकर आक्रमणकारियों ने वहाँ से टल जाना ही उचित समझा। जन-मत बदलते देर नहीं लगती। उससे बचे रहना ही अच्छा।

मातादीन क़ै कर रहा था। दातादीन ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा—एक-एक को पाँच-पाँच साल के लिए न भेजवाया, तो कहना। पाँच-पाँच साल तक चक्की पिसवाऊँगा।

हरखू ने हेकड़ी के साथ जवाब दिया—इसका यहाँ कोई गम नहीं। कौन तुम्हारी तरह बैठे मौज करते हैं। जहाँ काम करेंगे, वहीं आधा पेट दाना मिल जायगा।

मातादीन कै कर चुकने के बाद निर्जीव-सा ज़मीन पर लेट गया, मानो कमर टूट गई हो, मानो डूब मरने के लिए चुल्लू भर पानी खोज रहा हो। जिस मर्यादा के बल पर उसकी रसिकता और घमण्ड और पुरुषार्थ अकड़ता फिरता था, वह मिट चुकी थी। उस हड्डी के टुकड़े ने उसके मुँह को ही नहीं, उसकी आत्मा को भी अपवित्र कर दिया था। उसका धर्म इसी खान-पान, छूत-विचार पर टिका हुआ था। आज उस धर्म की जड़ कट गई। अब वह लाख प्रायश्चित्त करे, लाख गोबर खाय और गंगाजल पिये, लाख दान-पुण्य और तीर्थ-व्रत करे, उसका मरा हुआ धर्म जी नहीं सकता; अगर अकेले की बात होती, तो छिपा ली जाती, यहाँ तो सबके सामने उसका धर्म लुटा। अब उसका सिर हमेशा के लिए नीचा हो गया। आज से वह अपने ही घर में अछूत समझा जायगा। उसकी स्नेहमयी माता भी उससे घृणा करेगी। और संसार से धर्म का ऐसा लोप हो गया कि इतने आदमी केवल खड़े तमाशा देखते रहे। किसी ने चूँ तक न की। एक क्षण पहले जो लोग उसे देखते ही पालागन करते थे, अब उसे देखकर मुँह फेर लेंगे। वह किसी मन्दिर में भी न जा सकेगा, न किसी के बरतन-भांड़े छू सकेगा। और यह सब इस अभागिन सिलिया के कारण।

सिलिया जहाँ अनाज ओसा रही थी, वहीं सिर झुकाये खड़ी थी, मानो यह उसी की दुर्गति हो रही है। सहसा उसकी मा ने आकर डाटा—खड़ी ताकती क्या है, चल सीधे घर, नहीं बोटी-बोटी काट डालूँगी। बाप-दादा का नाम तो खूब उजागिर कर चुकी, अब क्या करने पर लगी है।

सिलिया मूर्तिवत् खड़ी रही। माता-पिता और भाइयों पर उसे क्रोध आ रहा था। यह लोग क्यों उसके बीच में बोलते हैं। वह जैसे चाहती है, रहती है, दूसरों से क्या मतलब? कहते हैं, यहाँ तेरा अपमान होता है, तब क्या कोई बाम्हन उसका पकाया खा लेगा? उसके हाथ का पानी पी लेगा? अभी ज़रा देर पहले उसका मन मातादीन के निठुर व्यवहार से खिन्न हो रहा था; पर अपने घरवालों और बिरादरी के इस अत्याचार ने उस विराग को प्रचण्ड अनुराग का रूप दे दिया।

विद्रोह-भरे मन से बोली मैं कहीं न जाऊँगी। तू क्या यहाँ भी मुझे जीने न देगी ?

बुढ़िया कर्कश स्वर में बोली—तू न चलेगी ?

'नहीं।'

'चल सीधे से।'

'नहीं जाती।'

तुरत दोनों भाइयों ने उसके हाथ पकड़ लिये और उसे घसीटते हुए ले चले। सिलिया ज़मीन पर बैठ गई। भाइयों ने इस पर भी न छोड़ा। घसीटते ही रहे। उसकी साड़ी फट गई, पीठ और कमर की खाल छिल गई; पर वह जाने पर राज़ी न हुई।

तब हरखू ने लड़कों से कहा—अच्छा, अब इसे छोड़ दो। समझ लेंगे मर गई; मगर अब जो कभी मेरे द्वार पर आई, तो लहू पी जाऊँगा।

सिलिया जान पर खेलकर बोली—हाँ, जब तुम्हारे द्वार पर जाऊँ, तो पी लेना।

बुढ़िया ने क्रोध के उन्माद में सिलिया को कई लातें जमाईं और हरखू ने उसे हटा न दिया होता, तो शायद प्राण ही लेकर छोड़ती।

बुढ़िया फिर झपटी, तो हरखू ने उसे धक्के देकर पीछे हटाते हुए कहा—तू बड़ी हत्यारिनी है, कलिया ! क्या उसे मार ही डालेगी ?

सिलिया बाप के पैरों से लिपटकर बोली—मार डालो दादा, सब जने मिलकर मार डालो। हाय अम्माँ, तुम इतनी निर्दयी हो; इसी लिए दूध पिलाकर पाला था ? सौर में ही क्यों न गला घोंट दिया ? हाय ! मेरे पीछे पण्डित को भी तुमने भिरस्ट कर दिया। उसका धरम लेकर तुम्हें क्या मिला ? अब तो वह भी मुझे न पूछेगा, लेकिन पूछे या न पूछे, रहूँगी तो उसी के साथ। वह मुझे चाहे भूखों रखे, चाहे मार डाले, पर उसका साथ न छोड़ूँगी। उसको साँसत कराके छोड़ दूँ ! मर जाऊँगी, पर हरजाई न बनूँगी। एक बार जिसने बाँह पकड़ ली, उसी की रहूँगी।

कलिया ने होंठ चबाकर कहा—जाने दो राँड़ को। समझती है, वह इसका निबाह करेगा; मगर आज ही मारकर भगा न दे तो मुँह न दिखाऊँ।

भाइयों को भी दया आ गई। सिलिया को वहीं छोड़कर सब-के-सब चले गये।

तब वह धीरे से उठकर लँगड़ाती, कराहती, खलिहान में आकर बैठ गई और अंचल में मुँह ढाँपकर रोने लगी।

दातादीन ने जुलाहे का गुस्सा डाढ़ी पर उतारा—उनके साथ चली क्यों नहीं गई री सिलिया! अब क्या करवाने पर लगी हुई है? मेरा सत्यानास कराके भी पेट नहीं भरा!

सिलिया ने आँसू-भरी आँखें ऊपर उठाईं। उनमें तेज की झलक थी।

'उनके साथ क्यों जाऊँ? जिसने बाँह पकड़ी है, उसके साथ रहूँगी।'

पण्डितजी ने धमकी दी—मेरे घर में पाँव रखा, तो लातों से बात करूँगा।

सिलिया ने भी उद्दण्डता से कहा—मुझे जहाँ वह रखेंगे, वहाँ रहूँगी। पेड़ तले रखें, चाहे महल में रखें।

मातादीन संज्ञाहीन-सा बैठा था। दोपहर होने आ रहा था। धूप पत्तियों से छन-छनकर उसके चेहरे पर पड़ रही थी। माथे से पसीना टपक रहा था। पर वह मौन, निःस्पन्द बैठा हुआ था।

सहसा जैसे उसने होश में आकर कहा—मेरे लिए अब क्या कहते हो दादा?

दातादीन ने उसके सिर पर हाथ रखकर ढाढ़स देते हुए कहा—तुम्हारे लिए अभी मैं क्या कहूँ बेटा? चलकर नहाओ, खाओ। फिर पण्डितों की जैसी व्यवस्था होगी, वैसा किया जायगा। हाँ, एक बात है; सिलिया को त्यागना पड़ेगा।

मातादीन ने सिलिया की ओर रक्त-भरे नेत्रों से देखा—मैं अब उसका कभी मुँह न देखूँगा; लेकिन परासचित हो जाने पर फिर तो कोई दोष न रहेगा?

'परासचित हो जाने पर कोई दोष-पाप नहीं रहता।'

'तो आज ही पण्डितों के पास जाओ।'

'आज ही जाऊँगा, बेटा।'

'लेकिन पण्डित लोग कहें कि इसका परासचित नहीं हो सकता, तब?'

'उनकी जैसी इच्छा!'

'तो तुम मुझे घर से निकाल दोगे!'

दातादीन ने पुत्र-स्नेह से विह्वल होकर कहा—ऐसा कहीं हो सकता है, बेटा! धन जाय, धरम जाय, लोक-मरजाद जाय; पर तुम्हें नहीं छोड़ सकता।

मातादीन ने लकड़ी उठाई और बाप के पीछे-पीछे घर चला। सिलिया भी उठी और लँगड़ाती हुई उसके पीछे हो ली।

मातादीन ने पीछे फिरकर निर्मम स्वर से कहा—मेरे साथ मत आ। मेरा तुझसे कोई वास्ता नहीं। इतनी साँसत करवा के भी तेरा पेट नहीं भरता।

सिलिया ने धृष्टता के साथ उसका हाथ पकड़कर कहा—वास्ता कैसे नहीं है? इसी गाँव में तुमसे धनी, तुमसे सुन्दर, तुमसे इज्ज़तदार लोग हैं। मैं उनका हाथ क्यों नहीं पकड़ती। तुम्हारी यह दुर्दसा ही आज क्यों हुई? जो रस्सी तुम्हारे गले में पड़ गई है, उसे तुम लाख चाहो, नहीं तोड़ सकते। और न मैं तुम्हें छोड़कर कहीं जाऊँगी। मजूरी करूँगी, भीख माँगूँगी; लेकिन तुम्हें न छोड़ूँगी।

यह कहते हुए उसने मातादीन का हाथ छोड़ दिया और फिर खलिहान में जाकर अनाज ओसाने लगी। होरी अभी तक वहाँ अनाज माँड़ रहा था। धनिया उसे भोजन करने के लिए बुलाने आई थी। होरी ने बैलों को पैरे से बाहर निकालकर एक पेड़ में बाँध दिया और सिलिया से बोला—तू भी जा खा-पी आ सिलिया! धनिया यहाँ बैठी है। तेरी पीठ पर की साड़ी तो लहू से रँग गई है, रे! कहीं घाव पक न जाय तेरे घरवाले बड़े निर्दयी हैं।

सिलिया ने उसकी ओर करुण नेत्रों से देखा—यहाँ निर्दयी कौन नहीं है, दादा! मैंने तो किसी को दयावान नहीं पाया।

'क्या कहा पंडित ने?'

'कहते हैं, मेरा तुझसे कोई वास्ता नहीं।'

'अच्छा! ऐसा कहते हैं!'

'समझते होंगे इस तरह अपने मुँह की लाली रख लेंगे; लेकिन जिस बात को दुनिया जानती है, उसे कैसे छिपा लेंगे। मेरी रोटियाँ भारी हैं, न दें। मेरे लिए क्या? मजूरी अब भी करती हूँ। तब भी करूँगी। सोने को हाथ भर जगह तुम्हीं से माँगूँगी तो क्या तुम न दोगे?'

धनिया दयार्द्र होकर बोली—जगह की कौन कमी है बेटी! तू चल मेरे घर रह।

होरी ने कातर स्वर में कहा—बुलाती तो है, लेकिन पंडित को जानती नहीं?

धनिया ने निर्भीक भाव से कहा—बिगड़ेंगे तो एक रोटी बेसी खा लेंगे,

और क्या करेंगे। कोई उनकी दबैल हूँ। उसकी इज्जत ली, बिरादरी से निकलवाया, अब कहते हैं, मेरा तुमसे कोई वास्ता नहीं। आदमी है कि कसाई। यह उसी नीयत का आज फल मिला है। पहले नहीं सोच लिया था। तब तो बिहार करते रहे। अब कहते हैं, मुझसे कौन वास्ता।

होरी के विचार में धनिया गलती कर रही थी। सिलिया के घरवालों ने मतई को कितना बेधरम कर दिया, यह कोई अच्छा काम नहीं किया। सिलिया को चाहे मारकर ले जाते, चाहे दुलारकर ले जाते। वह उनकी लड़की है। मतई को क्यों बेधरम किया?

धनिया ने फटकार बताई—अच्छा रहने दो, बड़े न्यायी बने हो। मरद-मरद सब एक होते हैं। इसको मतई ने बेधरम किया तब तो किसी को बुरा न लगा। अब जो मतई बेधरम हो गये तो क्यों बुरा लगता है? क्या सिलिया का धरम, धरम ही नहीं? रखी तो चमारिन उस पर नेमी-धर्मी बनते हैं। बड़ा अच्छा किया हरखू चौधरी ने। ऐसे गुण्डों की यही सजा है। तू चल सिलिया मेरे घर। न-जाने कैसे बेदरद मा-बाप हैं कि बेचारी की सारी पीठ लहूलुहान कर दी। तुम जाके सोना को भेज दो। मैं इसे लेकर आती हूँ।

होरी घर चला और सिलिया धनिया के पैरों पर गिरकर रोने लगी।

सोना सत्रहवें साल में थी और इस साल उसका विवाह करना आवश्यक था। होरी तो दो साल से इसी फ़िक्र में था, पर हाथ ख़ाली होने से कोई क़ाबू न चलता था। मगर इस साल जैसे भी हो, उसका विवाह कर देना ही चाहिए, चाहे कर्ज़ लेना पड़े, चाहे खेत गिरों रखने पड़ें। और अकेले होरी की बात चलती तो दो साल पहले ही विवाह हो गया होता। वह किफ़ायत से काम करना चाहता था। पर धनिया कहती थी, कितना ही हाथ बाँधकर ख़र्च करो, दो-ढाई सौ लग ही जायँगे। झुनिया के आ जाने से बिरादरी में इन लोगों का स्थान कुछ हेठा हो गया था और बिना सौ-दो सौ दिये कोई कुलीन वर न मिल सकता था। पिछले साल चैती में कुछ न मिला। था तो पण्डित दातादीन से आधा साझा; मगर पण्डितजी ने बीज और मजूरी का कुछ ऐसा ब्योरा बताया कि होरी के हाथ एक चौथाई से ज़्यादा अनाज न लगा। और लगान देना पड़ गया पूरा। ऊख और [illegible] हो गई। सन तो वर्षा अधिक होने और ऊख दीमक लग जाने

के कारण। हाँ, इस साल की चैती अच्छी थी और ऊख भी खूब लगी हुई थी। विवाह के लिए गल्ला तो मौजूद था; दो सौ रुपये भी हाथ आ जायँ, तो कन्या-ऋण से उसका उद्धार हो जाय। अगर गोबर सौ रुपए की मदद कर दे, तो बाकी सौ रुपये होरी को आसानी से मिल जायँगे, झिंगुरीसिंह और मँगरू साह दोनों ही अब कुछ नर्म पड़ गये थे। जब गोबर परदेश में कमा रहा है, तो उनके रुपए मारे न पड़ सकते थे।

एक दिन होरी ने गोबर के पास दो-तीन दिन के लिए जाने का प्रस्ताव किया मगर धनिया अभी तक गोबर के वह कठोर शब्द न भूली थी। वह गोबर से एक पैसा भी न लेना चाहती थी, किसी तरह नहीं।

होरी ने झुँझलाकर कहा—लेकिन काम कैसे चलेगा, यह बता?

धनिया सिर हिलाकर बोली—मान लो गोबर परदेश न गया होता, तब तुम क्या करते? वही अब करो।

होरी की ज़बान बन्द हो गई। एक क्षण के बाद बोला—मैं तो तुमसे पूछता हूँ।

धनिया ने जान बचाई—यह सोचना मरदों का काम है।

होरी के पास जवाब तैयार था—मान ले, मैं न होता, तू ही अकेली रहती, तब तू क्या करती। वही कर।

धनिया ने तिरस्कार भरी आँखों से देखा—तब मैं कुश-कन्या भी दे देती तो कोई हँसनेवाला न था।

कुश-कन्या होरी भी दे सकता था। इसी में उसका मंगल भी था; लेकिन कुल-मर्यादा कैसे छोड़ दे? उसकी बहनों के विवाह में तीन-तीन सौ बराती द्वार पर आये थे। दहेज भी अच्छा ही दिया गया था। नाच-तमाशा, बाजा-गाजा, हाथी-घोड़े, सभी आये थे। आज भी बिरादरी में उसका नाम है। दस गाँव के आदमियों से उसका हेल-मेल है। कुश-कन्या देकर वह किसे मुँह दिखायेगा? इससे तो मर जाना अच्छा है। और वह क्यों कुश-कन्या दे? पेड़-पालो हैं, जमीन है और थोड़ी-सी साख भी है; अगर वह एक बीघा भी बेच दे, तो सौ मिल जायँ; लेकिन किसान के लिए ज़मीन जान से भी प्यारी है, कुल-मर्यादा से भी प्यारी है। और

कुल तीन ही बीघे तो उसके पास हैं ; अगर एक बीघा बेच दे, तो फिर खेती कैसे करेगा ?

कई दिन इसी हैस-बैस में गुजरे। होरी कुछ फैसला न कर सका।

दशहरे की छुट्टियों के दिन थे। झिंगुरी, पटेश्वरी और नोखेराम तीनों ही सज्जनों के लड़के छुट्टियों में घर आये थे। तीनों अँग्रेज़ी पढ़ते थे और यद्यपि तीनों बीस-बीस साल के हो गये थे, पर अभी तक युनिवर्सिटी में जाने का नाम न लेते थे। एक-एक क्लास में दो-दो, तीन-तीन साल पड़े रहते। तीनों की शादियाँ हो चुकी थीं पटेश्वरी के सपूत बिन्देसरी तो एक पुत्र के पिता भी हो चुके थे। तीनों दिन भर तो ताश खेलते, भंग पीते और छैला बने घूमते। वे दिन में कई-कई बार होरी के द्वार की ओर ताकते हुए निकलते और कुछ ऐसा संयोग था कि जिस वक्त वे निकलते, उसी वक्त सोना भी किसी-न-किसी काम से द्वार पर आ खड़ी होती। इन दिनों वह वही साड़ी पहनती थी, जो गोबर उसके लिए लाया था। यह सब तमाशा देख-देखकर होरी का ख़ून सूखता जाता था, मानो उसकी खेती चौपट करने के लिए आकाश में ओलेवाले पीले बादल उठे चले आते हों।

एक दिन तीनों उसी कुएँ पर नहाने जा पहुँचे, जहाँ होरी ऊख सींचने के लिए पुर चला रहा था। सोना मोट ले रही थी। होरी का ख़ून आज खौल उठा।

उसी साँझ को वह दुलारी सहुआइन के पास गया। सोचा, औरतों में दया होती है, शायद इसका दिल पसीज जाय और कम सूद पर रुपए दे दे। मगर दुलारी अपना ही रोना ले बैठी। गाँव में ऐसा कोई घर न था जिस पर उसके कुछ रुपए न आते हों, यहाँ तक कि झिंगुरीसिंह पर भी उसके बीस रुपए आते थे ; लेकिन कोई देने का नाम न लेता था। बेचारी कहाँ से रुपए लाये ?

होरी ने गिड़गिड़ाकर कहा—भाभी बड़ा पुन्न होगा। तुम रुपए न दोगी, मेरे गले की फाँसी खोल दोगी। झिंगुरी और पटेसरी मेरे खेतों पर दाँत लगाये हुए हैं। मैं समझता हूँ कि, बाप-दादों की यही तो निशानी है, यह निकल गई, तो जाऊँगा कहाँ ? एक सपूत वह होता है कि घर की सम्पत बढ़ाता है, मैं ऐसा कपूत हो जाऊँ कि बाप-दादों की कमाई पर झाड़ू फेर दूँ !

दुलारी ने कसम खाई—होरी, मैं ठाकुरजी के चरन छूकर कहती हूँ कि इस समय मेरे पास कुछ नहीं है। जिसने लिया, वह देता नहीं तो मैं क्या करूँ ? तुम

कोई गैर तो नहीं हो। सोना भी मेरी ही लड़की है; लेकिन तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ? तुम्हारा ही भाई हीरा है। बैल के लिए पचास रुपये लिये। उसका तो कहीं पता-ठिकाना नहीं, उसकी घरवाली से माँगो तो लड़ने को तैयार। सोभा भी देखने में बड़ा सीधा-सादा है; लेकिन पैसा देना नहीं जानता। और असल बात तो यह है कि किसी, के पास है ही नहीं दे कहाँ से। सबकी दशा देखती हूँ, इसी मारे सबर कर जाती हूँ। लोग किसी तरह पेट पाल रहे हैं, और क्या। खेती-बारी बेचने को मैं सलाह न दूँगी। कुछ नहीं है, मरजाद तो है।

फिर कनफुसकियों में बोली—पटेसरी लाला का लौंडा तुम्हारे घर की ओर बहुत चक्कर लगाया करता है। तीनों का वही हाल है। इनसे चौकस रहना। यह सहरी हो गये, गाँव का भाई-चारा क्या समझें। लड़के गाँव में भी हैं; मगर उनमें कुछ लिहाज है, कुछ अदब है, कुछ डर है। ये सब तो छूटे साँड़ हैं। मेरी कौसल्या ससुराल से आई थी, मैंने सबों के ढंग देखकर उसके ससुर को बुलाकर बिदा कर दिया। कोई कहाँ तक पहरा दे।

होरी को मुस्कराते देखकर उसने सरस ताड़ना के भाव से कहा—हँसोगे होरी तो मैं भी कुछ कह दूँगी। तुम क्या किसी से कम नटखट थे। दिन में पचीसों बार किसी-न-किसी बहाने मेरी दूकान पर आया करते थे; मगर मैंने कभी ताका तक नहीं।

होरी ने मीठे प्रतिवाद के साथ कहा—यह तो तुम झूठ बोलती हो भाभी। बिना कुछ रस पाये थोड़े ही आता था। चिड़िया एक बार परच जाती है, तभी दूसरी बार आँगन में आती है।

'चल झूठे।'

'आँखों से न ताकती रही हो; लेकिन तुम्हारा मन तो ताकता ही था; बल्कि बुलाता था।'

'अच्छा रहने दो, बड़े आये अन्तरजामी बनके। तुम्हें बार-बार मँड़राते देखके मुझे दया आ जाती थी, नहीं तुम ऐसे कोई बाँके जवान न थे।'

हुसेन एक पैसे का नमक लेकर चला गया, तो दुलारी ने फिर कहा—गोबर के पास क्यों नहीं चले जाते। देखते भी आओगे और साइत कुछ मिल भी जाय।

होरी निराश मन से बोला—वह कुछ न देगा। लड़के चार पैसे कमाने लगते

हैं, तो उनकी आँखें फिर जाती हैं। मैं तो बेहयाई करने को तैयार था; लेकिन धनिया नहीं मानती। उसकी मरजी बिना चला जाऊँ तो घर में रहना अगाढ़ कर दे। उसका सुभाव तो जानती हो।

दुलारी ने कटाक्ष करके कहा—तुम तो मेहरिया के जैसे गुलाम हो गये।

'तुमने पूछा ही नहीं तो क्या करता?'

'मेरी गुलामी करने को कहते तो मैंने लिखा होता, सच!

'तो अब से क्या बिगड़ा है, लिखा लो न। दो सौ में लिखता हूँ, इन दामों महंगा नहीं हूँ।'

'तब धनिया से तो न बोलोगे?'

'नहीं, कहो कसम खाऊँ।'

'और जो बोले?'

'तो मेरी जीभ काट लेना।'

'अच्छा तो जाओ, घर ठीक-ठाक करो, मैं रुपये दे दूँगी।'

होरी ने सजल नेत्रों से दुलारी के पाँव पकड़ लिये। भावावेश से मुँह बन्द हो गया।

सहुआइन ने पाँव खींचकर कहा—अब यही सरारत मुझे अच्छी नहीं लगती। मैं साल-भर के भीतर अपने रुपये सूद-समेत कान पकड़कर लूँगी। तुम तो व्यवहार के ऐसे सच्चे नहीं हो; लेकिन धनिया पर मुझे विश्वास है। सुना, पंडित तुमसे बहुत बिगड़े हुए हैं। कहते हैं, इसे गाँव से निकालकर न छोड़ा तो बाम्हन नहीं। तुम सिलिया को निकाल बाहर क्यों नहीं करते। बैठे-बैठाये झगड़ा मोल ले लिया।

'धनिया उसे रखे हुए है, मैं क्या करूँ।'

'सुना है, पंडित कासी गये थे। वहाँ एक बड़ा नामी विद्वान पण्डित है। वह पाँच सौ माँगता है। तब परासचित करायेगा। भला पूछो, ऐसा अन्धेर कहीं हुआ है। जब धरम नष्ट हो गया, तो एक नहीं हजार परासचित करो, इससे क्या होता है। तुम्हारे हाथ का छुआ पानी कोई न पियेगा, चाहे जितना परासचित करो।'

होरी यहाँ से घर चला, तो उसका दिल उछल रहा था। जीवन में ऐसा सुखद

अनुभव उसे न हुआ था। रास्ते में शोभा के घर गया और सगाई लेकर चलने के लिए नेवता दे आया। फिर दोनों दातादीन के पास सगाई की साइत पूछने गये। वहाँ से आकर द्वार पर सगाई की तैयारियों की सलाह करने लगे।

धनिया ने बाहर निकलकर कहा—पहर रात गई, अभी रोटी खाने की बेला नहीं आई? खाकर बैठो। गपड़चौथ करने को तो सारी रात पड़ी है।

होरी ने उसे भी परामर्श में शरीक होने का अनुरोध करते हुए कहा—इसी सहालग में लगन ठीक हुआ है। बता, क्या-क्या सामान लाना चाहिए। मुझे तो कुछ मालूम नहीं।

'जब कुछ मालूम ही नहीं, तो सलाह करने क्या बैठे हो; कुछ रुपए पैसे का डौल भी हुआ कि मन की मिठाई खा रहे हो?'

होरी ने गर्व से कहा—तुझे इससे क्या मतलब। तू इतना बता दे क्या-क्या सामान लाना होगा?

'तो मैं ऐसी मन की मिठाई नहीं खाती।'

'तू इतना बता दे कि हमारी बहनों के ब्याह में क्या-क्या सामान आया था।'

'पहले यह बता दो, रुपए मिल गये?'

'हाँ, मिल गये, और नहीं क्या भंग खाई है?'

'तो पहले चलकर खा लो। फिर सलाह करेंगे।'

मगर जब उसने सुना कि दुलारी से बातचीत हुई है, तो नाक सिकोड़कर बोली—उससे रुपए लेकर आज तक कोई उरिन हुआ है? चुड़ैल कितना कसकर सूद लेती है?

'लेकिन करता क्या? दूसरा देता कौन।'

'यह क्यों नहीं कहते कि इसी बहाने दो गाल हँसने-बोलने गया था। बूढ़े हो गये; पर वह बान न गई।'

'तू तो धनिया, कभी-कभी बच्चों की-सी बातें करने लगती है। मेरे-जैसे फटे-हालों से वह हँसे-बोलेगी? सीधे मुँह बात तो करती नहीं।'

'तुम-जैसे को छोड़कर उसके पास और जायगा ही कौन?'

'उसके द्वार पर अच्छे-अच्छे नाक रगड़ते हैं धनिया, तू क्या जाने। उसके पास लच्छमी है।'

'उसने ज़रा-सी हामी भर दी, तुम तो चारों ओर ख़ुशख़बरी लेकर दौड़े।'

'हामी नहीं भर दी, पक्का वादा किया है।'

होरी रोटी खाने गया और शोभा अपने घर चला गया, तो सोना सिलिया के साथ बाहर निकली। वह द्वार पर खड़ी सारी बातें सुन रही थी। उसकी सगाई के लिए दो सौ रुपए दुलारी से उधार लिये जा रहे हैं, यह बात उसके पेट में इस तरह खलबली मचा रही थी, जैसे ताज़ा चूना पानी में पड़ गया हो। द्वार पर एक कुप्पी जल रही थी, जिससे ताक के ऊपर की दीवार काली हो गई थी। दोनों बैल नाँद में सानी खा रहे थे और कुत्ता ज़मीन पर टुकड़े के इन्तज़ार में बैठा हुआ था। दोनो युवतियाँ बैलों की चरनी के पास आकर खड़ी हो गईं।

सोना बोली—तूने कुछ सुना? दादा सहुआइन से मेरी सगाई के लिए दो सौ रुपये उधार ले रहे हैं।

सिलिया घर का रत्ती-रत्ती हाल जानती थी। बोली—घर में पैसा नहीं है, तो क्या करें।

सोना ने सामने के काले वृक्षों की ओर ताकते हुए कहा—मैं ऐसा नहीं करना चाहती, जिसमें मा-बाप को कर्ज़ा लेना पड़े। कहाँ से देंगे बेचारे, बता। पहले ही कर्ज के बोझ से दबे हुए हैं। दो सौ और ले लेंगे, तो बोझा और भारी होगा कि नहीं?

'बिना दान-दहेज के बड़े आदमियों का कहीं ब्याह होता है। पगली? बिना दहेज के तो कोई बूढ़ा-ठेला ही मिलेगा। जायेगी बूढ़े के साथ?'

'बूढ़े के साथ क्यों जाऊँ? भैया बूढ़े थे जो झुनिया को ले आये। उन्हें किसने कै पैसे दहेज में दिये थे?'

'उसमें बाप-दादा का नाम डूबता है।'

'मैं तो सोनारीवालों से कह दूँगी, अगर तुमने एक पैसा भी दहेज लिया, तो मैं तुमसे ब्याह न करूँगी।

सोना का विवाह सोनारी के एक धनी किसान के लड़के से ठीक हुआ था।

'और जो वह कह दे, कि मैं क्या करूँ, तुम्हारे बाप देते हैं, मेरे बाप लेते हैं, इसमें मेरा क्या अख़्तियार है!

सोना ने जिस अस्त्र को रामबाण समझा था, अब मालूम हुआ कि वह बाँस

की कैन है। हताश होकर बोली—मैं एक बार उसे कहके देख लेना चाहती हूँ; अगर उसने कह दिया कि मेरा कोई अख़्तियार नहीं है, तो क्या गोमती यहाँ से बहुत दूर है? डूब मरूँगी। मा-बाप ने मर-मरके पाला-पोसा। उसका बदला क्या यही है कि उनके घर से जाने लगूँ, तो उन्हें कर्ज़ से और लादती जाऊँ? मा-बाप को भगवान् ने दिया हो, तो ख़ुशी से जितना चाहें लड़की को दें, मैं मना नहीं करती; लेकिन जब वह पैसे-पैसे को तंग हो रहे हैं, आज महाजन नालिश करके लिल्लाम करा ले, तो कल मजूरी करनी पड़े, तो कन्या का धरम यही है कि डूब मरे। घर की जमीन-जैजात तो बच जायगी! रोटी का सहारा तो रह जायगा! मा-बाप चार दिन मेरे नाम को रोकर सन्तोष कर लेंगे। यह तो न होगा कि मेरा ब्याह करके उन्हें जन्म-भर रोना पड़े। तीन-चार साल में दो सौ के दूने हो जायँगे। दादा कहाँ से लाकर देंगे!

सिलिया को जान पड़ा, जैसे उसकी आँख में नई ज्योति आ गई है। आवेश में सोना को छाती से लगाकर बोली—तूने इतनी अक्कल कहाँ से सीख ली सोना? देखने में तो तू बड़ी भोली-भाली है।

'इसमें अक्कल की कौन बात है चुड़ैल! क्या मेरे आँखें नहीं हैं कि मैं पागल हूँ? दो सौ मेरे ब्याह में लें। तीन-चार साल में वह दूना हो जाय। तब रुपिया के ब्याह में दो सौ और लें। जो कुछ खेती-बारी है, सब लिलाम-तिलाम हो जाय, और द्वार द्वार भीख माँगते फिरें। यही न? इससे तो कहीं अच्छा है कि मैं अपनी ही जान दे दूँ। मुँह-अँधेरे सोनारी चली जाना और उसे बुला लाना; मगर नहीं, बुलाने का काम नहीं। मुझे उससे बोलते लाज आयेगी। तू ही मेरा यह संदेशा कह देना। देख क्या जवाब देता है। कौन दूर है। नदी के उस पार ही तो है। कभी-कभी ढोर लेकर इधर आ जाता है। एक बार उसकी भैंस मेरे खेत में पड़ गई थी, तो मैंने उसे बहुत गालियाँ दी थीं। हाथ जोड़ने लगा। हाँ, यह तो बता, इधर मतई से तेरी भेंट नहीं हुई? सुना, बाम्हन लोग उन्हें बिरादरी में नहीं ले रहे हैं।

सिलिया ने हक़ारत के साथ कहा—बिरादरी में क्यों न लेंगे? हाँ, बूढ़ा रुपये नहीं खरच करना चाहता। इसको पैसा मिल जाय, तो झूठो गंगा उठा ले। लड़का आजकल बाहर ओसारे में टिक्कड़ लगाता है।

'तू इसे छोड़ क्यों नहीं देती ? अपनी बिरादरी में किसी के साथ बैठ जा और आराम से रह । वह तेरा अपमान तो न करेगा !'

'हाँ रे, क्यों नहीं, मेरे पीछे उस बेचारे की इतनी दुरदसा हुई, अब मैं उसे छोड़ दूँ ! अब वह चाहे पंडित बन जाय, चाहे देवता बन जाय, मेरे लिए तो वही मतई है, जो मेरे पैरों पर सिर रगड़ा करता था ; और बाम्हन भी हो जाय और बाम्हनी से ब्याह भी कर ले, फिर भी जितनी उसकी सेवा मैंने की है, वह कोई बाम्हनी क्या करेगी ? अभी मान-मरजाद के मोह में वह चाहे मुझे छोड़ दे ; लेकिन देख लेना, फिर दौड़ा आयेगा ।'

'आ चुका अब । तुझे पा जाय तो कच्चा ही खा जाय ।'

'तो उसे बुलाने ही कौन जाता है । अपना-अपना धरम अपने-अपने साथ है । वह अपना धरम तोड़ रहा है, तो मैं अपना धरम क्यों तोड़ूँ ?'

प्रातःकाल सिलिया सोनारी की ओर चली ; लेकिन होरी ने रोक लिया । धनिया के सिर में दर्द था । उसकी जगह क्यारियों को नराना था । सिलिया इनकार न कर सकी । यहाँ से जब दोपहर को छुट्टी मिली तो वह सोनारी चली ।

इधर तीसरे पहर होरी फिर कुएँ पर चला तो सिलिया का पता न था । बिगड़कर बोला—सिलिया कहाँ उड़ गई ? रहती है, रहती है, न जाने किधर चल देती है, जैसे किसी काम में जी ही नहीं लगता । तू जानती है सोना, कहाँ गई है ?

सोना ने बहाना किया । मुझे तो कुछ मालूम नहीं । कहती थी, धोबिन के घर कपड़े लेने जाना है, वहीं चली गई होगी ।

धनिया ने खाट से उठकर कहा—चलो, मैं क्यारी बराये देती हूँ । कौन उसे मजूरी देते हो जो उसे बिगड़ रहे हो ।

'हमारे घर में रहती नहीं है ? उसके पीछे सारे गाँव में बदनाम नहीं हो रहे हैं ?'

'अच्छा रहने दो । एक कोने में पड़ी हुई है, तो उससे किराया लोगे ?'

'एक कोने में नहीं पड़ी हुई है, एक पूरी कोठरी लिये हुए है ।'

'तो उस कोठरी का किराया होगा कोई पचास रुपये महीना !'

'उसका किराया एक पैसा सही। हमारे घर में रहती है, जहाँ जाय, पूछकर जाय। आज आती है तो ख़बर लेता हूँ।'

पुर चलने लगा। धनिया को होरी ने न आने दिया। रूपा क्यारी बराती थी। और सोना मोट ले रही थी। रूपा गीली मिट्टी के चूल्हे और बरतन बना रही थी, और सोना सशंक आँखों से सोनारी की ओर ताक रही थी। शंका भी थी, आशा भी थी; शंका अधिक थी, आशा कम। सोचती थी, उन लोगों को रुपये मिल रहे हैं, तो क्यों छोड़ने लगे। जिनके पास पैसे हैं, वे तो पैसे पर और भी जान देते हैं, और गौरी महतो तो एक ही लालची है। मथुरा में दया है, धरम है; लेकिन बाप की इच्छा जो होगी, वही उसे माननी पड़ेगी; मगर सोना भी बचा को ऐसा फटकारेगी कि याद करेंगे। वह साफ़ कहेगी, जाकर किसी धनी की लड़की से ब्याह कर, तुम्ह जैसे पुरुष के साथ मेरा निबाह न होगा। कहीं गौरी महतो मान गये, तो वह उनके चरण धो-धोकर पियेगी। उनकी ऐसी सेवा करेगी कि अपने बाप की भी न की होगी। और सिलिया को भर-पेट मिठाई खिलायेगी। गोबर ने उसे जो रुपया दिया था, उसे वह अभी तक संचे हुए थी। इस मृदु कल्पना से उसकी आँखें चमक उठीं और कपोलों पर हलकी-सी लाली दौड़ गई।

मगर सिलिया अभी तक आई क्यों नहीं? कौन बड़ी दूर है। न आने दिया होगा उन लोगों ने। अहा! वह आ रही है; लेकिन बहुत धीरे-धीरे आती है। सोना का दिल बैठ गया। अभागे नहीं माने साइत, नहीं सिलिया दौड़ती आती। तो सोना से हो चुका ब्याह। मुँह धो रखो।

सिलिया आई ज़रूर; पर कुएँ पर न आकर खेत में क्यारी बराने लगी। डर रही थी, होरी पूछेंगे कहाँ थी, अब तक, तो क्या जवाब देगी। सोना ने यह दो घण्टे का समय बड़ी मुश्किल से काटा। पुर छूटते ही वह भागी हुई सिलिया के पास पहुँची।

'वहाँ जाकर तू मर गई थी क्या? ताकते-ताकते आँखें फूट गईं।'

सिलिया को बुरा लगा—तो क्या मैं वहाँ सोती थी? इस तरह की बातचीत राह चलते थोड़े ही हो जाती है। अवसर देखना पड़ता है। मथुरा नदी की ओर ढोर चराने गया था। खोजती-खोजती उसके पास गई और तेरा सन्देसा कहा। ऐसा परसन हुआ कि तुमसे क्या कहूँ। मेरे पाँव पर गिर पड़ा और बोला—सिल्लो, मैंने

तो जबसे सुना है कि सोना मेरे घर में आ रही है, तबसे आँखों की नींद हर गई है। उसकी वह गालियाँ मुझे फल गईं; लेकिन काका को क्या करूँ। वह किसी की नहीं सुनते।

सोना ने टोका—तो न सुनें। सोना भी जिद्दिन है। जो कहा है वह कर दिखलायेगी। फिर हाथ मलते रह जायँगे।

'बस उसी छन ढोरों को वहीं छोड़, मुझे लिये हुए गौरी महतो के पास गया। महतो के चार पुर चलते हैं। कुआँ भी उन्हीं का है। दस बीघे ऊख है। महतो को देखके मुझे हँसी आ गई। जैसे कोई घसियारा हो। हाँ, भाग का बली है। बाप-बेटे में खूब कहा-सुनी हुई। गौरी महतो कहते थे, तुमसे क्या मतलब, मैं चाहे कुछ लूँ या न लूँ; तू कौन होता है बोलनेवाला। मथुरा कहता था, तुमको लेना-देना है, तो मेरा ब्याह मत करो, मैं अपना ब्याह जैसे चाहूँगा, कर लूँगा। बात बढ़ गई और गौरी महतो ने पनहियाँ उतारकर मथुरा को खूब पीटा। कोई दूसरा लड़का इतनी मार खाकर बिगड़ खड़ा होता। मथुरा एक घूँसा भी जमा देता, तो महतो फिर न उठते; मगर बेचारा पचासों जूते खाकर भी कुछ न बोला। आँखों में आँसु भरे, मेरी ओर गरीबों की तरह ताकता हुआ चला गया। तब महतो मुझ पर बिगड़ने लगे। सैकड़ों गालियाँ दीं; मगर मैं क्यों सुनने लगी थी। मुझे उनका क्या डर था? मैंने सफा कह दिया—महतो, दो-तीन सौ कोई भारी रकम नहीं है, और होरी महतो, इतने में बिक न जायँगे, न तुम्हीं धनवान हो जाओगे, वह सब धन नाच-तमासे में ही उड़ जायगा। हाँ, ऐसी बहू न पाओगे।

सोना ने सजल आँखों से पूछा—महतो इतनी ही बात पर उन्हें मारने लगे?

सिलिया ने यह बात छिपा रखी थी। ऐसी अपमान की बात सोना के कानों में न डालना चाहती थी, पर यह प्रश्न सुनकर संयम न रख सकी। बोली—वही गोबर भैयावाली बात थी। महतो ने कहा—आदमी जूठा तभी खाता है जब मीठा हो। कलंक चाँदी से ही धुलता है। इस पर मथुरा बोला—काका, कौन घर कलंक से बचा हुआ है। हाँ, किसी का खुल गया, किसी का छिपा हुआ है। गौरी महतो भी पहले एक चमारिन से फँसे थे। उससे दो लड़के भी हैं। मथुरा के मुँह से इतना निकलना था कि डोकरे पर जैसे भूत सवार हो गया। जितना लालची है, उतना ही क्रोधी भी है। बिना लिये न मानेगा।

दोनों घर चलीं। सोना के सिर पर चरसा, रस्सा और जुए का भारी बोझ था; पर इस समय वह उसे फूल से हल्का लग रहा था। उसके अन्तस्तल में जैसे आनन्द और स्फूर्ति का सोता खुल गया हो। मथुरा की वह वीर मूर्ति सामने खड़ी थी, और वह जैसे उसे अपने हृदय में बैठाकर उसके चरण आँसुओं से पखार रही थी। जैसे आकाश की देवियाँ उसे गोद में उठाये आकाश में छाई हुई लालिमा में लिये चली जा रही हों।

उसी रात को सोना के बड़े ज़ोर का ज्वर चढ़ आया।

तीसरे दिन गौरी महतो ने नाई के हाथ यह पत्र भेजा—

'स्वस्ती श्री सर्वोपमा जोग श्री होरी महतो को गौरीराम का राम-राम बाँचना। आगे जो हम लोगों में दहेज की बातचीत हुई थी, उस पर हमने सान्त मन से विचार किया, समझ में आया कि लेन-देन से वर और कन्या दोनों ही के घरवाले जेर-बार होते हैं। जब हमारा तुम्हारा सम्बन्ध हो गया, तो हमें ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि किसी को न अखरे। तुम दान-दहेज की कोई फिकर मत करना, हम तुमको सौगन्ध देते हैं। जो कुछ मोटा-महीन जुरे, बरातियों को खिला देना। हम वह भी न माँगेंगे। रसद का इन्तजाम हमने कर लिया है। हाँ, तुम खुसी-खुर्रमी से हमारी जो खातिर करोगे, वह सिर झुकाकर स्वीकार करेंगे।'

होरी ने पत्र पढ़ा और दौड़े हुए भीतर जाकर धनिया को सुनाया। हर्ष के मारे उछल पड़ता था; मगर धनिया किसी विचार में डूबी बैठी रही। एक क्षण के बाद बोली—यह गौरी महतो की भलमनसी है; लेकिन हमें भी तो अपने मरजाद का निबाह करना है। संसार क्या कहेगा! रुपया हाथ का मैल है। उसके लिए कुल मरजाद नहीं छोड़ा जाता। जो कुछ हमसे हो सकेगा, देंगे और गौरी महतो को लेना पड़ेगा। तुम यही जवाब लिख दो। मा-बाप की कमाई में क्या लड़की का कोई हक नहीं है? नहीं, लिखना क्या है, चलो मैं नाई से सन्देसा कहलाये देती हूँ।

होरी हतबुद्धि-सा आँगन में खड़ा था और धनिया उस उदारता की प्रतिक्रिया में, जो गौरी महतो की सज्जनता ने जगा दी थी, सन्देसा कह रही थी। फिर उसने नाई को रस पिलाया और बिदाई देकर बिदा किया।

वह चला गया तो होरी ने कहा—यह तूने क्या कर डाला धनिया? तेरा

मिजाज आज तक मेरी समझ में न आया। तू आगे भी चलती है, पीछे भी चलती है। पहले तो इस बात पर लड़ रही थी कि किसी से एक पैसा करज मत लो, कुछ देने-दिलाने का काम नहीं है, और जब भगवान् ने गौरी के भीतर पैठकर यह पत्र लिखवाया, तो तूने कुल-मरजाद का राग छेड़ दिया। तेरा करम भगवान् ही जानें।

धनिया बोली—मुँह देखकर बीड़ा दिया जाता है, जानते हो कि नहीं। तब गौरी अपनी सान दिखाते थे, अब वह भलमनसी दिखा रहे हैं। ईंट का जवाब चाहे पत्थर हो; लेकिन सलाम का जवाब तो गाली नहीं है।

होरी ने नाक सिकोड़कर कहा—तो दिखा अपनी भलमनसी। देखें कहाँ से रुपये लाती है।

धनिया आँखें चमकाकर बोली—रुपये लाना मेरा काम नहीं है, तुम्हारा काम है

'मैं तो दुलारी से ही लूँगा।'

'ले लो उसी से। सूद तो सभी लेंगे। जब डूबना ही है, तो क्या तालाब और क्या गंगा।'

होरी बाहर जाकर चिलम पीने लगा। कितने मजे से गला छूटा जाता था। लेकिन धनिया जब जान छोड़े तब तो। जब देखो उल्टी ही चलती है। इसे जैसे कोई भूत सवार हो जाता है। घर को दसा देखकर भी इसकी आँखें नहीं खुलतीं।

२५

भोला इधर दूसरी सगाई लाये थे। औरत के बगैर उनका जीवन नीरस था। जब तक झुनिया थी, उन्हें हुक्का-पानी दे देती थी। समय से खाने को बुला ले जाती थी। अब बेचारे अनाथ-से हो गये थे। बहुओं को घर के काम-धाम से छुट्टी न मिलती थी, उनका क्या सेवासत्कार करतीं; इसलिए अब सगाई परमावश्यक हो गई थी। संयोग से एक जवान विधवा मिल गई, जिसके पति का देहान्त हुए केवल तीन महीने हुए थे। एक लड़का भी था। भोला की राल टपक पड़ी। झटपट शिकार मार लाये। जब तक सगाई न हुई, उसका घर खोद डाला।

अभी तक उनके घर में जो कुछ था, बहुओं का था, जो चाहती थीं, करती

थीं ; जैसे चाहती थीं, रहती थीं । जंगी जबसे अपनी स्त्री को लेकर लखनऊ चला गया था, कामता की बहू ही घर की स्वामिनी थी । पाँच-छः महीनों में ही उसने तीस-चालीस रुपये अपने हाथ में कर लिये थे । सेर-आध सेर दूध-दही चोरी से बेच लेती थी । अब स्वामिनी हुई उसकी सौतेली सास । उसका नियंत्रण बहू को बुरा लगता था और आये दिन दोनों में तकरार होती रहती थी । यहाँ तक कि औरतों के पीछे भोला और कामता में भी कहा-सुनी हो गई । झगड़ा इतना बढ़ा कि अलग्योझे की नौबत आ गई । और यह रीति सनातन से चली आई है कि अलग्योझे के समय मार-पीट अवश्य हो । यहाँ भी उस रीति का पालन किया गया । कामता जवान आदमी था । भोला का उस पर जो कुछ दबाव था, वह पिता के नाते था ; मगर नई स्त्री लाकर बेटे से आदर पाने का अब उसे कोई हक़ न रहा था । कम-से-कम कामता इसे स्वीकार न करता था । उसने भोला को पटककर कई लातें जमाईं और घर से निकाल दिया । घर की चीज़ें न छूने दीं । गाँववालों में भी किसी ने भोला का पक्ष न लिया । नई सगाई ने उन्हें नक्कू बना दिया था । रात तो उन्होंने किसी तरह एक पेड़ के नीचे काटी, सुबह होते ही नोखेराम के पास जा पहुँचे और अपनी फरियाद सुनाई । भोला का गाँव भी उन्हीं के इलाक़े में था और इलाक़े-भर के मालिक-मुखिया जो कुछ थे, वही थे । नोखेराम को भोला पर तो क्या दया आती ; पर उनके साथ एक चटपटी, रँगीली स्त्री देखी, तो चटपट आश्रय देने पर राज़ी हो गये । जहाँ उनकी गायें बँधती थीं, वहीं एक कोठरी रहने को दे दी । अपने जानवरों की देख-भाल, सानी-भूसे के लिए उन्हें एकाएक एक जानकार आदमी की ज़रूरत मालूम होने लगी । भोला को तीन रुपया महीना और सेर-भर रोज़ाना पर नौकर रख लिया ।

नोखेराम नाटे, मोटे, खल्वाट, लम्बी नाक और छोटी-छोटी आँखोंवाले साँवले आदमी थे । बड़ा-सा पग्गड़ बाँधते, नीचा कुरता पहनते और जाड़ों में लिहाफ़ ओढ़कर बाहर आते-जाते थे । उन्हें तेल की मालिश कराने में बड़ा आनन्द आता था । इसलिए उनके कपड़े हमेशा मैले, चीकट रहते थे । उनका परिवार बहुत बड़ा था । सात भाई और उनके बाल-बच्चे सभी उन्हीं पर आश्रित थे । उस पर स्वयं उनका लड़का नवें दरजे में अँग्रेज़ी पढ़ता था और उसका बबुआई ठाठ निभाना कोई आसान काम न था । राय साहब से उन्हें केवल बारह रुपये वेतन मिलता

था ; मगर ख़र्च सौ रुपये से कौड़ी कम न था। इसलिए असामी किसी तरह उनके चंगुल में फँस जाय तो बिना उसे अच्छी तरह चूसे न छोड़ते थे ; पहले छः रुपये वेतन मिलता था, तब असामियों से इतनी नोच-खसोट न करते थे। जबसे बारह रुपये हो गये थे, तबसे उनकी तृष्णा और भी बढ़ गई थी ; इसलिए राय साहब उनकी तरक्की न करते थे।

गाँव में और तो सभी किसी-न-किसी रूप में उनका दबाव मानते थे, यहाँ तक कि दातादीन और झिंगुरीसिंह भी उनकी ख़ुशामद करते थे, केवल पटेश्वरी उनसे ताल ठोकने को हमेशा तैयार रहते थे। नोखेराम को अगर यह ज़ोम था कि हम ब्राह्मण हैं और कायस्थों को उँगली पर नचाते हैं, तो पटेश्वरी को भी घमण्ड था कि हम कायस्थ हैं, क़लम के बादशाह, इस मैदान में कोई हमसे क्या बाज़ी ले जायगा। फिर वह ज़मींदार के नौकर नहीं, सरकार के नौकर हैं, जिसके राज में सूरज कभी नहीं डूबता। नोखेराम अगर एकादशी को व्रत रखते हैं और पाँच ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं, तो पटेश्वरी हर पूर्णमासी को सत्यनारायण की कथा सुनेंगे और दस ब्राह्मण को भोजन करायेंगे। जबसे उनका जेठा लड़का सज़ावल हो गया था, नोखेराम इस ताक में रहते थे कि उनका लड़का किसी तरह दसवाँ पास कर ले, तो उसे भी कहीं वक़ालतनवीसी दिला दें। इसलिए हुक्काम के पास फ़सली सौगातें लेकर बराबर सलामी करते रहते थे। एक और बात में पटेश्वरी उनसे बढ़े हुए थे। लोगों का खयाल था कि वह अपनी विधवा कहारिन को रखे हुए हैं। अब नोखेराम को भी अपनी शान में यह कसर पूरी करने का अवसर मिलता हुआ जान पड़ा।

भोला को ढारस देते हुए बोले—तुम यहाँ आराम से रहो भोला, किसी बात का खटका नहीं। जिस चीज़ की ज़रूरत हो, हमसे आकर कहो। तुम्हारी घरवाली है, उसके लिए भी कोई-न-कोई काम निकल आयेगा। बखारों में अनाज रखना, निकालना, पछोड़ना, फटकना क्या थोड़ा काम है ?

भोला ने अरज़ की—सरकार, एक बार कामता को बुलाकर पूछ लो, क्या बाप के साथ बेटे का यही सलूक होना चाहिए। घर हमने बनवाया, गायें-भैंसें हमने लीं। अब उसने सब कुछ हथिया लिया और हमें निकाल

बाहर किया। यह अन्याय नहीं तो क्या है। हमारे मालिक तो तुम्हीं हो। तुम्हारे दरबार से इसका फैसला होना चाहिए।

नोखेराम ने समझाया—भोला, तुम उससे लड़कर पेश न पाओगे; उसने जैसा किया है, उसकी सजा उसे भगवान् देंगे। बेईमानी करके कोई आज तक फलीभूत हुआ है! संसार में अन्याय न होता, तो इसे नरक क्यों कहा जाता? यहाँ न्याय और धर्म को कौन पूछता है। भगवान् सब देखते हैं। संसार का रत्ती-रत्ती हाल जानते हैं। तुम्हारे मन में इस समय क्या बात है, यह उनसे क्या छिपा है? इसी से तो अन्तरजामी कहलाते हैं। उनसे बचकर कोई कहाँ जायगा। तुम चुपके होके बैठो। भगवान् की इच्छा हुई, तो यहाँ तुम उससे बुरे न रहोगे।

यहाँ से उठकर भोला ने होरी के पास जाकर अपना दुखड़ा रोया। होरी ने अपनी बीती सुनाई—लड़कों की आजकल कुछ न पूछो भोला भाई! मर-मरकर पालो, जवान हों, तो दुसमन हो जायँ। मेरे ही गोबर को देखो। मा से लड़कर गया, और सालों हो गये, न चिट्ठी न पत्तर। उसके लेखे तो मा-बाप मर गये। बिटिया का ब्याह सिर पर है; लेकिन उससे कोई मतलब नहीं। खेत रेहन रखकर दो सौ रुपये लिये हैं। इज्जत-आबरू का निबाह तो करना ही होगा।

कामता ने बाप को निकाल बाहर तो किया; लेकिन अब उसे मालूम होने लगा कि बुड्ढा कितना कामकाजी आदमी था। सबेरे उठकर सानी-पानी करना, दूध दुहना, फिर दूध लेकर बाजार जाना, वहाँ से आकर फिर सानी पानी करना, फिर दूध दुहना; एक पखवारे में उसका हुलिया बिगड़ गया। स्त्री-पुरुष में लड़ाई हुई। स्त्री ने कहा—मैं जान देने के लिए तुम्हारे घर नहीं आई हूँ। मेरी रोटी तुम्हें भारी हो, तो मैं अपने घर चली जाऊँ। कामता डरा, यह कहीं चली जाय, तो रोटी का ठिकाना भी न रहे, अपने हाथ से ठोंकना पड़े। आखिर एक नौकर रखा; लेकिन उससे काम न चला। नौकर खली-भूसा चुरा-चुराकर बेचने लगा। उसे अलग किया। फिर स्त्री-पुरुष में लड़ाई हुई। स्त्री रूठकर मैके चली गई। कामता के हाथ-पाँव फूल गये। हारकर भोला के पास आया और चिरौरी करने लगा—दादा, मुझसे जो कुछ भूल-चूक हुई हो, क्षमा करो। अब चलकर घर सँभालो, जैसे तुम रखोगे, वैसे ही रहूँगा।

भोला को यहाँ मजूरों की तरह रहना अखर रहा था। पहले महीने-दो महीने उनकी जो खातिर हुई, वह अब न थी। नोखेराम कभी-कभी उनसे चिलम भरने या चारपाई बिछाने को भी कहते थे। तब बेचारा भोला ज़हर की घूँट पीकर रह जाता था। अपने घर में लड़ाई-दंगा भी हो, तो किसी की टहल तो न करनी पड़ेगी।

उसकी स्त्री नोहरी ने यह प्रस्ताव सुना तो ऐंठकर बोली—जहाँ से लात खाकर आये, वहाँ फिर जाओगे? तुम्हें लाज भी नहीं आती।

भोला ने कहा—तो यहाँ कौन सिंहासन पर बैठा हुआ हूँ।

नोहरी ने मटककर कहा—तुम्हें जाना हो तो जाओ, मैं नहीं जाती।

भोला जानता था, नोहरी विरोध करेगी। इसका कारण भी वह कुछ-कुछ समझता था, कुछ देखता भी था। उसके यहाँ से भागने का एक कारण यह भी था। यहाँ उसकी तो कोई बात न पूछता था; पर नोहरी की बड़ी खातिर होती थी। प्यादे और शहने तक उसका दबाव मानते थे। उसका जवाब सुनकर भोला को क्रोध आया; लेकिन करता क्या। नोहरी को छोड़कर चले जाने का साहस उसमें होता तो नोहरी भी झख मारकर उसके पीछे-पीछे चली जाती। अकेले उसे यहाँ अपने आश्रय में रखने की हिम्मत न थी। वह टट्टी की आड़ से शिकार खेलने-वाले जीव थे; मगर नोहरी भोला के स्वभाव से परिचित हो चुकी थी।

भोला मिन्नत करके बोला—देख नोहरी, दिक मत कर। अब तो वहाँ बहुएँ भी नहीं हैं। तेरे ही हाथ में सब कुछ रहेगा। यहाँ मजूरी करने से बिरादरी में कितनी बदनामी हो रही है, यह सोच!

नोहरी ने ठेंगा दिखाकर कहा—तुम्हें जाना है जाओ, मैं तुम्हें रोक तो नहीं रही हूँ। तुम्हें बेटे की लातें प्यारी लगती होंगी, मुझे नहीं लगतीं। मैं अपनी मजदूरी में मगन हूँ।

भोला को रहना पड़ा और कामता अपनी स्त्री की खुशामद करके उसे मना लाया। इधर नोहरी के विषय में कनबतियाँ होती रहीं—नोहरी ने आज गुलाबी साड़ी पहनी है। अब क्या पूछना है, चाहे रोज एक साड़ी पहने। सैयाँ भये कोतवाल अब डर काहे का। भोला की आँखें फूट गई हैं क्या!

शोभा बड़ा हँसोड़ था। सारे गाँव का विदूषक, बल्कि नारद। हर एक बात

की टोह लगाता रहता था। एक दिन नोहरी उसे घर में मिल गई। कुछ हँसी कर बैठा। नोहरी ने नोखेराम से जड़ दिया। शोभा की चौपाल में तलबी हुई और ऐसी डाँट पड़ी की उम्र भर न भूलेगा।

एक दिन लाला पटेश्वरीप्रसाद की शामत आ गई। गर्मियों के दिन थे। लाला बगीचे में बैठे आम तुड़वा रहे थे। नोहरी बनी-ठनी उधर से निकली। लाला ने पुकारा—नोहरा रानी, इधर आओ, थोड़े-से आम लेती जाओ, बड़े मीठे हैं।

नोहरी को भ्रम हुआ, लाला मेरा उपहास कर रहे हैं। उसे अब घमण्ड होने लगा था। वह चाहती थी, लोग उसे ज़मींदारिन समझें। और उसका सम्मान करें। घमण्डी आदमी प्रायः शक्की हुआ करता है। और जब मन में चोर हो तो शक्क पन और भी बढ़ जाता है। वह मेरी ओर देखकर क्यों हँसा? सब लोग मुझे देखकर जलते क्यों हैं? मैं किसी से कुछ माँगने नहीं जाती। कौन बड़ी सतवन्ती है! ज़रा मेरे सामने आये, तो देखूँ। इतने दिनों में नोहरी गाँव के गुप्त रहस्यों से परिचित हो चुकी थी। यही लाला कहारिन को रखे हुए हैं और मुझे हँसते हैं। इन्हें कोई कुछ नहीं कहता। बड़े आदमी हैं न। नोहरी गरीब है, जात की हेठी है; इसलिए सभी उसका उपहास करते हैं। और जैसा बाप है, वैसा ही बेटा। इन्हीं का रमेसरी तो सिलिया के पीछे पागल बना फिरता है। चमारियों पर तो गिद्ध की तरह टूटते हैं, उस पर दावा है कि हम ऊँचे हैं।

उसने वहीं खड़े होकर कहा—तुम दानी कबसे हो गये लाला! पाओ तो दूसरों की थाली की रोटी उड़ा जाओ। आज बड़े आमवाले हुए हैं। मुझसे छेड़ की तो अच्छा न होगा, कहे देती हैं।

ओ हो! इस अहीरिन का इतना मिजाज! नोखेराम को क्या फाँस लिया, समझती है सारी दुनिया पर उसका राज है। बोले—तू तो ऐसी तिनक रही है नोहरी, जैसे अब किसी को गाँव में रहने न देगी। ज़रा ज़बान सँभालकर बातें किया कर, इतनी जल्द अपने को न भूल जा।

'तो क्या तुम्हारे द्वार कभी भीख माँगने आई थी?'

'नोखेराम ने छाँह न दी होती, तो भीख भी माँगती।'

नोहरी को लाल मिर्च-सा लगा। जो कुछ मुँह में आया, बका—दाढ़ीजार

लम्पट, मुँहझौंसा और जाने क्या-क्या कहा और उसी क्रोध में भरी हुई कोठरी में गई और अपने बरतन-भाँडे निकाल-निकालकर बाहर रखने लगी।

नोखेराम ने सुना तो घबराये हुए आये और पूछा—अब क्या कर रही है नोहरी, कपड़े-लत्ते क्यों निकाल रही है? किसी ने कुछ कहा है क्या?

नोहरी मर्दों के नचाने की कला जानती थी। अपने जीवन में उसने यही विद्या सीखी थी। नोखेराम पढ़े-लिखे आदमी थे। कानून भी जानते थे। धर्म की पुस्तकें भी बहुत पढ़ी थीं। बड़े-बड़े वकीलों, बैरिस्टरों की जूतियाँ सीधी की थीं; पर इस मूर्ख नोहरी के हाथ का खिलौना बने हुए थे। भौंहें सिकोड़ कर बोली— समय का फेर है, यहाँ आ गई; लेकिन अपनी आबरू न गँवाऊँगी।

ब्राह्मण सतेज हो उठा। मूँछें खड़ी करके बोला—तेरी ओर जो ताके उसकी आँखें निकाल लूँ।

नोहरी ने लोहे को लाल करके घन जमाया—लाला पटेसरी जब देखो मुझसे बेबात की बात किया करते हैं। मैं हरजाई थोड़े ही हूँ कि कोई मुझे पैसे दिखाये। गाँव-भर सभी औरतें तो हैं, कोई उनसे नहीं बोलता। जिसे देखो, मुझी को छेड़ता है।

नोखेराम के सिर पर भूत सवार हो गया। अपना मोटा डंडा उठाया और आँधी की तरह हरहराते हुए बाग में पहुँचकर लगे ललकारने—आ जा बड़ा मर्द है तो। मूँछें उखाड़ लूँगा, खोदकर गाड़ दूँगा। निकल आ सामने। अगर फिर कभी नोहरी को छेड़ा होगा, तो खून पी जाऊँगा। सारी पटवार-गिरी निकाल दूँगा। जैसा खुद है, वैसा ही दूसरों को समझता है। तू है किस घमंड में?

लाला पटेश्वरी सिर झुकाये, दम साधे जड़वत् खड़े थे। ज़रा भी ज़बान खोली और शामत आ गई। उनका इतना अपमान जीवन में कभी न हुआ था। एक बार लोगों ने उन्हें ताल के किनारे रात को घेरकर खूब पीटा था; लेकिन गाँव में उसकी किसी को ख़बर न हुई थी। किसी के पास कोई प्रमाण न था; लेकिन आज तो सारे गाँव के सामने उनकी इज्ज़त उतर गई। कल जो औरत गाँव में आश्रय माँगती आई थी, आज सारे गाँव पर उसका आतंक था! अब किसकी

हिम्मत है जो उसे छेड़ सके। जब पटेश्वरी कुछ नहीं कर सके, तो दूसरों की बिसात ही क्या।

अब नोहरी गाँव की रानी थी। उसे आते देखकर किसान लोग उसके रास्ते से हट जाते थे। यह खुला हुआ रहस्य था कि उसको थोड़ी-सी पूजा करके नोखेराम से बहुत काम निकल सकता है। किसी को बटवारा कराना हो, लगान के लिए मुहलत माँगनी हो, मकान बनाने के लिए ज़मीन की ज़रूरत हो, नोहरी की पूजा किये बग़ैर उसका काम सिद्ध नहीं हो सकता। कभी-कभी वह अच्छे-अच्छे असामियों को डाँट देती थी। असामी ही नहीं, अब कारकुन साहब पर भी रोब जमाने लगी थी।

भोला उसके आश्रित बनकर न रहना चाहते थे। औरत की कमाई खाने से ज्यादा अधम उनकी दृष्टि में दूसरा काम न था। उन्हें कुल तीन रुपये माहवार मिलते थ, यह भी उनके हाथ न लगते। नोहरी ऊपर ही ऊपर उड़ा लेती। उन्हें तमाखू पीने को धेला मयस्सर नहीं, और नोहरी दो आने रोज़ के पान खा जाती थी। जिसे देखो, वही उन पर रोब जमाता था। प्यादे उससे चिलम भरवाते, लकड़ी कटवाते, बेचारा दिन भर का हारा-थका आता और द्वार पर पेड़ के नीचे झिलगे खाट पर पड़ा रहता। कोई एक लुटिया पानी देनेवाला भी नहीं। दोपहर की बासी रोटियाँ रात को खानी पड़तीं और वह भी नमक या पानी और नमक के साथ।

आख़िर हारकर उसने घर जाकर कामता के साथ रहने का निश्चय किया। कुछ न होगा, एक टुकड़ा रोटी तो मिल ही जायगी, अपना घर तो है।

नोहरी बोली—मैं वहाँ किसी की गुलामी करने न जाऊँगी।

भोला ने जी कड़ा करके कहा—तुम्हें जाने को तो मैं नहीं कहता। मैं तो अपने को कहता हूँ।

'तुम मुझे छोड़कर चले जाओगे? कहते लाज नहीं आती?'

'लाज तो घोलकर पी गया।'

'लेकिन मैंने तो अपनी लाज नहीं पी। तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकते।'

'तू अपने मन की है, तो मैं तेरी गुलामी क्यों करूँ?'

'पंचायत करके मुँह में कालिख लगा दूँगी, इतना समझ लेना।'

'क्या अभी कुछ कम कालिख लगी है? क्या अब भी मुझे धोखे में रखना चाहती है?'

'तुम तो ऐसा ताव दिखा रहे हो, जैसे मुझे रोज गहने ही तो गढ़वाते हो। तो यहाँ नोहरी किसी की ताव सहनेवाली नहीं है।'

भोला झल्लाकर उठे और सिरहाने से लकड़ी उठाकर चले कि नोहरी ने लपककर उनका पहुँचा पकड़ लिया। उनके बलिष्ठ पंजों से निकलना भोला के लिए मुश्किल था। चुपके से कैदी की तरह बैठ गये। एक ज़माना था, जब वह औरतों के करपाश में बँधे हुए हैं और किसी तरह निकल नहीं सकते। हाथ छुड़ाने की कोशिश करके वह परदा नहीं खोलना चाहते। अपनी सीमा का अनुमान उन्हें हो गया है। मगर वह क्यों उससे निडर होकर नहीं कह देते कि तू मेरे काम की नहीं है, मैं तुझे त्यागता हूँ। पंचायत की धमकी देती है। पंचायत क्या कोई हौवा है; अगर तुझे पंचायत का डर नहीं, तो मैं क्यों पंचायत से डरूँ?

लेकिन यह भाव शब्दों में आने का साहस न कर सकता था। नोहरी ने जैसे उन पर कोई वशीकरण डाल दिया हो।

२६

लाला पटेश्वरी पटवारी-समुदाय के सद्गुणों के साक्षात् अवतार थे। वह यह न देख सकते थे कि कोई असामी अपने दूसरे भाई की इञ्च-भर भी ज़मीन दबा ले। न वह यही देख सकते थे कि असामी किसी महाजन के रुपये दबा ले। गाँव के समस्त प्राणियों के हितों की रक्षा करना उनका परम धर्म था। समझौते या मेल-जोल में उनका विश्वास न था। यह निर्जीवता के लक्षण हैं! आये-दिन इस जीवन को उत्तेजन देने का प्रयास करते रहते थे। एक-न-एक फुलझड़ी छोड़ते रहते थे। मँगरू साह पर इन दिनों उनकी विशेष कृपा-दृष्टि थी। मँगरू साह गाँव का सबसे धनी आदमी था; पर स्थानीय राजनीति में बिलकुल भाग न लेता था। रोब या अधिकार की लालसा उसे न थी। मकान भी उसका गाँव के बाहर था, जहाँ उसने एक बाग और एक कुआँ और एक छोटा-सा शिव-मन्दिर बनवा लिया था। बाल-बच्चा कोई न था: इसलिए लेन-देन भी कम कर दिया था और अधिकतर पूजा-पाठ में ही लगा रहता था। कितने ही असामियों ने उसके रुपये

हज़म कर लिये थे ; पर उसने किसी पर नालिश फ़रियाद न की। होरी पर भी उसके सूद-ब्याज मिलाकर कोई डेढ़ सौ हो गये थे ; मगर न होरी को ऋण चुकाने की कोई चिन्ता थी और न उसे वसूल करने की। दो-चार बार उसने तक़ाज़ा किया, घुड़का-डाँटा भी ; मगर होरी की दशा देखकर चुप हो बैठा। अबकी संयोग से होरी की ऊख गाँव भर के ऊपर थी। कुछ नहीं तो उसके दो-ढाई सौ सीधे हो जायँगे, ऐसा लोगों का अनुमान था। पटेश्वरीप्रसाद ने मँगरू को सुझाया कि अगर इस वक्त होरी पर दावा कर दिया जाय तो सब रुपये वसूल हो जायँ। मँगरू उतना दयालु नहीं, जितना आलसी था। झंझट में पड़ना न चाहता था ; मगर जब पटेश्वरी ने जिम्मा लिया कि उसे एक दिन भी कचहरी न जाना पड़ेगा, न कोई दूसरा कष्ट होगा, बैठे-बैठाये उसकी डिग्री हो जायगी, तो उसने नालिश करने की अनुमति दे दी और अदालत खर्च के लिये रुपये भी दे दिये। होरी को खबर भी न थी कि क्या खिचड़ी पक रही है। कब दावा दायर हुआ, कब डिग्री हुई, उसे बिल्कुल पता न चला। कुर्कअमीन उसकी ऊख नीलाम करने आया, तब उसे मालूम हुआ। सारा गाँव खेत के किनारे जमा हो गया। होरी मँगरू साह के पास दौड़ा और धनियाँ पटेश्वरी को गालियाँ देने लगी। उसकी सहज-बुद्धि ने बता दिया कि पटेश्वरी ही की कारस्तानी है, मगर मँगरू साह पूजा पर थे, मिल न सके और धनिया गालियों की वर्षा करके भी पटेश्वरी का कुछ बिगाड़ न सकी। उधर ऊख डेढ़ सौ रुपये में नीलाम हो गई और बोली भी हो गई मँगरू साह ही के नाम। कोई दूसरा आदमी न बोल सका। दातादीन में भी धनिया की गालियाँ सुनने का साहस न था।

धनिया ने होरी को उत्तेजित करके कहा—बैठे क्या हो, जाकर पटवारी से पूछते क्यों नहीं, यही धरम है तुम्हारा गाँव-घर के आदमियों के साथ ?

होरी ने दीनता से कहा—पूछने के लिए तूने मुँह भी रखा हो। तेरी गालियाँ क्या उन्होंने न सुनी होंगी ?

'जो गाली खाने का काम करेगा, उसे गालियाँ मिलेंगी ही।'

'तू गालियाँ भी देगी और भाई-चारा भी निभायेगी ?'

'देखूँगी, मेरे खेत के नगीच कौन आता है।'

'मिलवाले आकर काट ले जायँगे, तू क्या करेगी और मैं क्या करूँगा। गालियाँ देकर अपनी जीभ की खुजली चाहे मिटा लो।'

'मेरे जीते-जी कोई मेरा खेत काट ले जायगा ?'

'हाँ-हाँ, तेरे और मेरे जीते-जी। सारा गाँव मिलकर भी उसे नहीं रोक सकता। अब वह चीज़ मेरी नहीं, मँगरू साह की है।'

'मँगरू साह ने मर-मरकर जेठ की दुपहरी में सिंचाई और गोड़ाई की थी ?'

'वह सब तूने किया; मगर अब वह चीज़ मँगरू साह की है। हम उनके करजदार नहीं हैं ?'

ऊख तो गई; लेकिन उसके साथ ही एक नई समस्या आ पड़ी। दुलारी इसी ऊख पर रुपए देने पर तैयार हुई थी। अब वह किस जमानत पर रुपये दे ? अभी उसके पहले ही के दो सौ पड़े हुए थे। सोचा था, ऊख के पुराने रुपये मिल जायँगे, तो नया हिसाब चलने लगेगा। उसकी नज़र में होरी की साख दो सौ तक थी। इससे ज्यादा देना जोखिम था। सहालग सिर पर था। तिथि निश्चित हो चुकी थी। गौरी महतो ने सारी तैयारियाँ कर ली होंगी। अब विवाह का टलना असम्भव था। होरी को ऐसा क्रोध आता था कि जाकर दुलारी का गला दबा दे। जितनी चिरौरी-विनती हो सकती थी, वह कर चुका; मगर वह पत्थर की देवी ज़रा भी न पसीजी। उसने चलते-चलते हाथ बाँधकर कहा—दुलारी, मैं तुम्हारे रुपये लेकर भाग न जाऊँगा। न इतनी जल्द मरा ही जाता हूँ। खेत हैं, पेड़-पालो हैं, घर है, जवान बेटा है। तुम्हारे रुपये मारे न जायँगे, मेरी इज्जत जा रही है, इसे सँभालो; मगर दुलारी ने दया को व्यापार में मिलाना स्वीकार न किया; अगर व्यापार को वह दया का रूप दे सकती, तो उसे कोई आपत्ति न होती। दया को व्यापार का रूप देना उसने न सीखा था।

होरी ने घर आकर धनिया से कहा—अब ?

धनिया ने उसी पर दिल का गुबार निकाला—यही तो तुम चाहते थे।

होरी ने ज़ख्मी आँखों से देखा—मेरा ही दोष है ?

'किसी का दोष हो। हुई तुम्हारे मन की।'

'तेरी इच्छा है कि ज़मीन रेहन रख दूँ ?'

'ज़मीन रेहन रख दोगे, तो करोगे क्या ?'

'मजूरी।'

मगर ज़मीन दोनों को एक-सी प्यारी थी। उसी पर तो उनकी इज़्ज़त और आबरू अवलम्बित थी। जिसके पास ज़मीन नहीं, वह गृहस्थ नहीं, मजूर है।

होरी ने कुछ जवाब न पाकर पूछा—तो क्या कहती है?

धनिया ने आहत कण्ठ से कहा—कहना क्या है। गौरी बरात लेकर आवेंगे। एक जून खिला देना। सबेरे बेटी बिदा कर देना। दुनिया हँसेगी, हँस ले। भगवान की यही इच्छा है, कि हमारी नाक कटे, मुँह में कालिख लगे, तो हम क्या करेंगे।

सहसा नोहरी चुँदरी पहने सामने से जाती हुई दिखाई दी। होरी को देखते ही उसने ज़रा-सा घूँघट निकाल लिया। उससे समधी का नाता मानती थी।

धनिया से उसका परिचय हो चुका था। उसने पुकारा—आज किधर चलीं समधिन? आओ, बैठो।

नोहरी ने दिग्विजय कर ली थी और अब जनमत को अपने पक्ष में बटोर लेने का प्रयास कर रही थी। आकर खड़ी हो गई।

धनिया ने उसे सिर से पाँव तक आलोचना की आँखों से देखकर कहा—आज इधर कैसे भूल पड़ीं?

नोहरी ने कातर स्वर में कहा—ऐसे ही तुम लोगों से मिलने चली आई। बिटिया का ब्याह कब तक है?

धनिया सन्दिग्ध भाव से बोली—भगवान् के अधीन है, जब हो जाय।

'मैंने तो सुना, इसी सहालग में होगा। तिथि ठीक हो गई है?'

'हाँ, तिथि तो ठीक हो गई है।'

'मुझे भी नेवता देना।'

'तुम्हारी तो लड़की है, नेवता कैसा?'

'दहेज का सामान तो मँगवा लिया होगा। जरा मैं भी देखूँ।'

धनिया असमंजस में पड़ी, क्या कहे। होरी ने उसे सँभाला—अभी तो कोई सामान नहीं मँगवाया है, और सामान क्या करना है, कुश-कन्या तो देना है।

नोहरी ने अविश्वास-भरी आँख से देखा—कुश-कन्या क्यों दोगे महतो, पहली बेटी है, दिल खोलकर ब्याह करो।

होरी हँसा, मानो कह रहा हो, तुम्हें चारों ओर हरा दिखाई देता होगा, यहाँ तो सूखा ही पड़ा हुआ है।

'रुपये-पैसे की तंगी है, क्या दिल खोलकर कहूँ। तुम से कौन परदा है।'

'बेटा कमाता है, तुम कमाते हो; फिर भी रुपये-पैसे की तंगी! किसे विश्वास आयेगा?'

'बेटा ही लायक होता, तो फिर काहे का रोना था। चिट्ठी-पत्तर तक भेजता नहीं, रुपये क्या भेजेगा? यह दूसरा साल है, एक चिट्ठि नहीं।'

इतने में सोना बैलों के चारे के लिए हरियाली का एक गट्ठा सिर पर लिये, यौवन को अपने अंचल से चुराती, बालिका-सी सरल, आई और गट्ठा वहीं पटककर अन्दर चली गई।

नोहरी ने कहा—लड़की तो खूब सयानी हो गई है।

धनिया बोली—लड़की की बाढ़ रेंड़ की बाढ़ है। है के दिन की।

'वर तो ठीक हो गया है न?'

'हाँ, वर तो ठीक है। रुपये का बन्दोबस्त हो गया, तो इसी महीने में ब्याह कर देंगे।'

नोहरी दिल की ओछी थी। इधर उसने जो थोड़े-से रुपये जोड़े थे, वे उसके पेट में उछल रहे थे; अगर वह सोना के ब्याह के लिए कुछ रुपये दे दे, तो कितना यश मिलेगा! सारे गाँव में उसकी चर्चा हो जायगी। लोग चकित होकर कहेंगे, नोहरी ने इतने रुपये दे दिये। बड़ी देवी है। होरी और धनिया दोनों घर-घर उसका बखान करते फिरेंगे। गाँव में उसका मान-सम्मान कितना बढ़ जायगा। वह उँगली दिखानेवालों का मुँह सी देगी। फिर किसकी हिम्मत है, जो उस पर हँसे, या उस पर आवाज़ें कसे। अभी सारा गाँव उसका दुश्मन है। तब सारा गाँव उसका हितैषी हो जायगा। इस कल्पना से उसकी मुद्रा खिल गई।

'थोड़े-बहुत से काम चलता हो, तो मुझसे लो, जब हाथ में रुपये आ जायँ, तो दे देना।'

होरी और धनिया दोनों ही ने उसकी ओर देखा। नहीं, नोहरी दिल्लगी नहीं कर रही है। दोनों की आँखों में विस्मय था, कृतज्ञता थी, सन्देह था और लज्जा थी। नोहरी उतनी बुरी नहीं है, जितना लोग समझते हैं।

नोहरी ने फिर कहा—तुम्हारी और हमारी इज्जत एक है। तुम्हारी हँसी हो, तो क्या मेरी हँसी न होगी? कैसे भी हुआ हो; पर अब तो तुम हमारे समधी हो।

होरी ने सकुचाते हुए कहा—तुम्हारे रुपये तो घर में ही हैं, जब काम पड़ेगा ले लेंगे। आदमी अपनों ही का भरोसा तो करता है; मगर ऊपर से इन्तजाम हो जाय, तो घर के रुपये क्यों छुए।

धनिया ने अनुमोदन किया—हाँ और क्या।

नोहरी ने अपनापन जताया—जब घर में रुपये हैं, तो बाहरवालों के सामने हाथ क्यों फैलाओ। सूद भी देना पड़ेगा, उस पर इस्टाम लिखो, गवाही कराओ, दस्तूरी दो, खुशामद करो! हाँ, मेरे रुपये में छूत लगी हो, तो दूसरी बात है।

होरी ने सँभाला—नहीं, नहीं नोहरी, जब घर में काम चल जायगा, तो बाहर क्यों हाथ फैलायेंगे; लेकिन आपसवाली बात है। खेती-बारी का भरोसा नहीं। तुम्हें जल्दी कोई काम पड़ा और हम रुपये न जुटा सके, तो तुम्हें भी बुरा लगेगा और हमारी जान भी संकट में पड़ेगी। इससे कहता था। नहीं लड़की तो तुम्हारी है।

'मुझे अभी रुपये की ऐसी जल्दी नहीं है।'

'तो तुम्हीं से लेंगे। कन्यादान का फल भी क्यों बाहर जाय।'

'कितने रुपये चाहिए?'

'तुम कितने दे सकोगी?'

'सौ में काम चल जायगा?'

होरी को लालच आया। भगवान् ने छप्पर फाड़कर रुपये दिये हैं, तो जितना ले सके, उतना क्यों न ले।

'सौ में भी चल जायगा, पाँच सौ में भी चल जायगा। जैसा हौसला हो।'

'मेरे पास कुल दो सौ रुपये हैं, वह मैं दे दूँगी।'

'तो इतने में बड़ी खुशफैली से काम चल जायगा। अनाज घर में है; मगर ठकुराइन, आज तुमसे कहता हूँ, मैं तुम्हें ऐसी लच्छमी न समझता था। इस ज़माने में कौन किसको मदद करता है, और किसके पास है। तुमने मुझे डूबने से बचा लिया।'

दिया-बत्ती का समय आ गया था। ठंडक पड़ने लगी थी। ज़मीन ने नीली चादर ओढ़ ली थी। धनिया अन्दर जाकर अँगीठी लाई। सब तापने लगे। पुआल के प्रकाश में छबीली, रँगीली, कुलटा नोहरी उनके सामने वरदान-सी बैठी थी। इस समय उनकी उन आँखों में कितनी सहृदयता थी, कपोलों पर कितनी लज्जा, ओठों पर कितनी सत्प्रेरणा!

कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करके नोहरी उठ खड़ी हुई और यह कहती हुई घर चली—अब देर हो रही है। कल तुम आकर रुपये ले लेना महतो।

'चलो, मैं तुम्हें पहुँचा दूँ।'

'नहीं-नहीं, तुम बैठो, मैं चली जाऊँगी।'

'जी तो चाहता है, तुम्हें कन्धे पर बैठाकर पहुँचाऊँ।'

नोखेराम की चौपाल गाँव के दूसरे सिरे पर थी और बाहर-बाहर जाने का रास्ता साफ़ था। दोनों उसी रास्ते से चले। अब चारों ओर सन्नाटा था।

नोहरी ने कहा—तनिक समझा देते रावत को। क्यों सबसे लड़ाई किया करते हैं। जब इन्हीं लोगों के बीच में रहना है, तो ऐसे रहना चाहिए न कि चार आदमी अपने हो जायँ। और इनका हाल यह है कि सबसे लड़ाई, सबसे झगड़ा। जब तुम मुझे परदे में नहीं रख सकते, मुझे दूसरों की मजूरी करनी पड़ती है, तो यह कैसे निभ सकता है कि मैं न किसी से हँसूँ, न बोलूँ, न कोई मेरी ओर ताके, न हँसे। यह सब तो परदे में ही हो सकता है। पूछो, कोई मेरी ओर ताकता या घूरता है, तो मैं क्या करूँ। उसकी आँखें तो नहीं फोड़ सकती। फिर मेल-मुहब्बत से आदमी के सौ काम निकलते हैं। जैसा समय देखो, वैसा व्यवहार करो। तुम्हारे घर हाथी झूमता था, तो अब वह तुम्हारे किस काम का। अब तो तुम तीन रुपये के मजूर हो। मेरे घर तो भैंस लगती थी, लेकिन अब तो मजूरिन हूँ; मगर उनकी समझ में कोई बात आती ही नहीं। कभी लड़कों के साथ रहने की सोचते हैं, कभी लखनऊ जाकर रहने की सोचते हैं। नाक में दम कर रखा है मेरी।

होरी ने ठकुरसुहाती की—यह भोला की सरासर नादानी है। बूढ़े हुए, तो उन्हें समझ आनी चाहिए। मैं समझा दूँगा।

'तो सबेरे आ जाना, रुपये दे दूँगी।'

'कुछ लिखा-पढ़ी...'

'तुम मेरे रुपये हजम न करोगे, मैं जानती हूँ।'

उसका घर आ गया। वह अन्दर चली गई। होरी घर लौटा।

२७

गोबर को शहर आने पर मालूम हुआ कि जिस अड्डे पर वह अपना खोंचा ले कर बैठता था, वहाँ एक दूसरा खोंचेवाला बैठने लगा है और गाहक अब गोबर को

भूल गये हैं। वह घर भी अब उसे पिंजरे-सा लगता था। झुनिया उसमें अकेली बैठी रोया करती। लड़का दिन-भर आँगन में या द्वार पर खेलने का आदी था। यहाँ उसके खेलने को कोई जगह न थी। कहाँ जाय? द्वार पर मुश्किल से एक गज का रास्ता था। दुर्गन्ध उड़ा करती थी। गर्मी में कहीं बाहर बैठने-लेटने को जगह नहीं। लड़का मा को एक क्षण के लिए न छोड़ता था। और जब कुछ खेलने को न हो तो कुछ खाने और दूध पीने के सिवा वह और क्या करे! घर पर कभी धनिया खेलाती, कभी रूपा, कभी सोना, कभी होरी, कभी पुनिया। यहाँ अकेली झुनिया थी और उसे घर का सारा काम करना पड़ता था।

और गोबर जवानी के नशे में मस्त था। उसकी अतृप्त लालसाएँ विषय-भोग के सागर में डूब जाना चाहती थीं। किसी काम में उसका मन न लगता। खोंचा लेकर जाता, तो घण्टे-भर ही में लौट आता। मनोरंजन का कोई दूसरा सामान न था। पड़ोस के मजूर और इक्केवान रात-रात भर ताश और जुआ खेलते थे। पहले वह भी खूब खेलता था; मगर अब उसके लिए केवल मनोरंजन था, झुनिया के साथ हास-विलास। थोड़े ही दिनों में झुनिया इस जीवन से ऊब गई। वह चाहती थी, कहीं एकान्त में जाकर बैठे, ख़ूब निश्चिन्त होकर लेटे-सोये; मगर वह एकान्त कहीं न मिलता। उसे अब गोबर पर गुस्सा आता। उसने शहर के जीवन का कितना मोहक चित्र खींचा था, और यहाँ इस काली कोठरी के सिवा और कुछ नहीं। बालक से भी उसे चिढ़ होती थी। कभी-कभी वह उसे मारकर बाहर निकाल देती और अन्दर से किवाड़ बन्द कर लेती। बालक रोते-रोते बेदम हो जाता।

उस पर विपत्ति यह कि उसे दूसरा बच्चा पैदा होनेवाला था। कोई आगे, न पीछे। अक्सर सिर में दर्द हुआ करता। खाने से अरुचि हो गई थी। ऐसी तन्द्रा होती थी कि कोने में चुपचाप पड़ी रहे। कोई उससे न बोले न चाले; मगर यहाँ गोबर का निष्ठुर प्रेम स्वागत के लिए द्वार पर खट-खटाता रहता था। स्तन में दूध नाम को नहीं; लेकिन लल्लू छाती पर सवार रहता था। देह के साथ उसका मन भी दुर्बल हो गया था। वह जो संकल्प करती, उसे थोड़े-से आग्रह पर तोड़ देती। वह लेटी होती और लल्लू आकर जबरदस्ती उसकी छाती पर बैठ जाता और स्तन मुँह में लेकर चबाने लगता। वह अब दो साल का हो गया था। बड़े तेज़ दाँत निकल आये थे। मुँह में दूध न जाता, तो वह क्रोध में आकर स्तन में दाँत काट लेता; लेकिन

झुनिया में अब इतनी शक्ति भी न थी कि उसे छाती पर से ढकेल दे। उसे हरदम मौत सामने खड़ी नज़र आती। पति और पुत्र किसी से भी उसे स्नेह न था। सभी अपने मतलब के यार हैं। बरसात के दिनों में जब लल्लू को दस्त आने लगे और उसने दूध पीना छोड़ दिया, तो झुनिया को सिर से एक विपत्ति टल जाने का अनुभव हुआ; लेकिन जब एक सप्ताह के बाद बालक मर गया, तो उसकी स्मृति पुत्र-स्नेह से सजीव होकर उसे रुलाने लगी।

और जब गोबर बालक के मरने के ही सप्ताह बाद फिर आग्रह करने लगा, तो उसने क्रोध से जलकर कहा—तुम कितने पशु हो!

झुनिया को अब लल्लू की स्मृति लल्लू से भी कहीं प्रिय थी। लल्लू जब तक सामने था, वह उससे जितना सुख पाती थी, उससे कहीं ज़्यादा कष्ट पाती थी। अब लल्लू उसके मन में आ बैठा था, शांत, स्थिर, सुशील, सहास। उसकी कल्पना में अब वेदनामय आनन्द था, जिसमें प्रत्यक्ष की काली छाया न थी। बाहरवाला लल्लू उसके भीतरवाले लल्लू का प्रतिबिम्ब मात्र था। प्रतिबिम्ब सामने न था जो असत्य था, अस्थिर था। सत्य रूप तो उसके भीतर था, उसकी आशाओं और शुभेच्छाओं से सजीव। दूध की जगह वह उसे अपना रक्त पिला-पिलाकर पाल रही थी। उसे अब वह बन्द कोठरी, और वह दुर्गन्धभरी वायु और वह दोनों जून धुएँ में जलना, इन बातों का मानो ज्ञान ही न रहा। वह स्मृति उसके भीतर बैठी हुई जैसे उसे शक्ति प्रदान करती रहती। जीते-जी जो उसके जीवन का भार था, मरकर उसके प्राणों में समा गया था। उसकी सारी ममता अन्दर जाकर बाहर से उदासीन हो गई। गोबर देर में आता है या जल्द, रुचि से भोजन करता है या नहीं, प्रसन्न है या उदास, इसकी अब उसे बिल्कुल चिन्ता न थी। गोबर क्या कमाता है और कैसे खर्च करता है, इसकी भी उसे परवा न थी। उसका जीवन जो कुछ था, भीतर था, बाहर वह केवल निर्जीव यन्त्र थी।

उसके शोक में भाग लेकर, उसके अन्तर्जीवन में पैठकर, गोबर उसके समीप जा सकता था, उसके जीवन का अङ्ग बन सकता था; पर वह उसके बाह्य-जीवन के सूखे तट पर आकर ही प्यासा लौट जाता था।

एक दिन उसने रूखे स्वर में कहा—तो लल्लू के नाम को कब तक रोये जायगी? चार-पाँच महीने तो हो गये।

झुनिया ने ठंडी साँस लेकर कहा—तुम मेरा दुःख नहीं समझ सकते। अपना काम देखो। मैं जैसी हूँ, वैसी पड़ी रहने दो।

'तेरे रोते रहने से लल्लू लौट आयेगा ?'

झुनिया के पास इसका कोई जवाब न था। वह उठकर पतीली में कचालू के लिए आलू उबालने लगी। गोबर को ऐसा पाषाण-हृदय उसने न समझा था।

इस बेदर्दी ने लल्लू को उसके मन में और भी सजग कर दिया। लल्लू उसी का है, उसमें किसी का साझा नहीं, किसी का हिस्सा नहीं। अभी तक लल्लू किसी अंश में उसके हृदय के बाहर भी था, गोबर के हृदय में भी उसकी कुछ ज्योति थी। अब वह सम्पूर्ण रूप से उसका था।

गोबर ने खोंचे से निराश होकर शक्कर के मिल में नौकरी कर ली थी। मिस्टर खन्ना ने पहले मिल से प्रोत्साहित होकर हाल में यह दूसरा मिल खोल दिया था। गोबर को वहाँ बड़े सबेरे जाना पड़ता, और दिन-भर के बाद जब वह दिया-जले घर लौटता, तो उसकी देह में ज़रा भी जान न रहती। घर पर भी उसे इससे कम मेह-नत न करनी पड़ती थी; लेकिन वहाँ उसे ज़रा भी थकन न होती थी। बीच-बीच में वह हँस-बोल भी लेता था। फिर, उस खुले हुए मैदान में उन्मुक्त आकाश के नीचे, जैसे उसकी क्षति पूरी हो जाती थी; वहाँ उसकी देह चाहे जितना काम करे, मन स्वच्छन्द रहता था। यहाँ देह को उतनी मेहनत न होने पर भी जैसे उस कोलाहल, उस गति और तूफ़ानी शोर का उस पर बोझ-सा लदा रहता था। यह शंका भी बनी रहती थी कि न-जाने कब डाँट पड़ जाय। सभी श्रमिकों की यही दशा थी। सभी ताड़ी या शराब में अपनी दैहिक थकन और मानसिक अवसाद को डुबाया करते थे। गोबर को भी शराब का चस्का पड़ा। घर आता तो नशे में चूर, और पहर रात गये। और आकर कोई-न-कोई बहाना खोजकर झुनिया को गालियाँ देता, घर से निकालने लगता और कभी-कभी पीट भी देता।

झुनिया को अब यह शंका होने लगी कि वह रखेली है, इसी से उसका यह अपमान हो रहा है। ब्याहता होती, तो गोबर की मज़ाल थी कि उसके साथ यह बर्ताव करता। बिरादरी उसे दण्ड देती, हुक्का-पानी बन्द कर देती। उसने कितनी बड़ी भूल की कि इस कपटी के साथ घर से निकल भागी। सारी दुनिया में हँसी भी हुई और हाथ कुछ न आया। वह गोबर को अपना दुश्मन समझने लगी। न उसके

खाने-पीने की परवा करती, न अपने खाने-पीने की। जब गोबर उसे मारता, तो उसे ऐसा क्रोध आता कि गोबर का गला छूरे से रेत डाले। गर्भ ज्यों-ज्यों पूरा होता जाता है, उसकी चिन्ता बढ़ती जाती है। इस घर में तो उसकी मरन हो जायगी। कौन उसकी देख-भाल करेगा, कौन उसे सँभालेगा? और जो गोबर इसी तरह मारता-पीटता रहा, तब तो उसका जीवन नरक ही हो जायगा।

एक दिन वह बम्बे पर पानी भरने गई, तो पड़ोस की एक स्त्री ने पूछा—कै महीने का है रे?

झुनिया ने लजाकर कहा—क्या जाने दीदी, मैंने तो गिना-गिनाया नहीं है।

दोहरी देह की, काली-कलूटी, नाटी, कुरूपा, बड़े-बड़े स्तनोंवाली स्त्री थी। उसका पति एक्का हाँकता था और वह खुद लकड़ी की दूकान करती थी। झुनिया कई बार उसकी दूकान से लकड़ी लाई थी। इतना ही परिचय था।

मुस्कराकर बोली—मुझे तो जान पड़ता है, दिन पूरे हो गये हैं। आज ही कल में होगा। कोई दाई-वाई ठीक कर ली है?

झुनिया ने भयातुर स्वर में कहा—मैं तो यहाँ किसी को नहीं जानती।

'तेरा मर्दुआ कैसा है, जो कान में तेल डाले बैठा है?'

'उन्हें मेरी क्या फिकर।'

'हाँ, देख तो रही हूँ। तुम तो सौर में बैठोगी, कोई करने-धरनेवाला चाहिए कि नहीं। सास-ननद, देवरानी-जेठानी कोई है कि नहीं! किसी को बुला लेना था।'

'मेरे लिए सब मर गये।'

वह पानी लाकर जूठे बरतन माँजने लगी, तो प्रसव की शंका से हृदय में धड़कनें हो रही थीं। सोचने लगी—कैसे क्या होगा भगवान्! उँह! यही तो होगा मर जाऊँगी, अच्छा है, जंजाल से छूट जाऊँगी।

शाम को उसके पेट में दर्द होने लगा। समझ गई, विपत्ति की घड़ी आ पहुँची। पेट को एक हाथ से पकड़े हुए पसीने से तर उसने चूल्हा जलाया, खिचड़ी डाली और दर्द से व्याकुल होकर वहीं ज़मीन पर लेट रही। कोई दस बजे रात को गोबर आया, ताड़ी की दुर्गन्ध उड़ाता हुआ। लटपटाती हुई ज़बान से ऊटपटाँग बक रहा था—मुझे किसी की परवा नहीं है। जिसे सौ दफ़े गरज हो रहे, नहीं चला जाय। मैं किसी का ताव नहीं सह सकता। अपने मा-बाप का ताव नहीं सहा, जिसने

जनम दिया। तब दूसरों का ताव क्यों सहूँ। जमादार आँखें दिखाता है। यहाँ किसी की धौंस सहनेवाले नहीं हैं। लोगों ने पकड़ न लिया होता, तो खून पी जाता, खून! कल देखूँगा बचा को, फाँसी ही तो होगी। दिखा दूँगा कि मर्द कैसे मरते हैं। हँसता हुआ, अकड़ता हुआ, मूँछों पर ताव देता हुआ फाँसी के तख्ते पर जाऊँ, तो सही। औरत की जात! कितनी बेवफ़ा होती है। खिचड़ी डाल दी और टाँग पसारकर सो रही। कोई खाय या न खाय, उसकी बला से। आप मजे से फुलके उड़ाती है, मेरे लिए खिचड़ी। सता ले जितना सताते बने; तुझे भगवान् सतायेंगे, जो न्याय करते हैं।

उसने झुनिया को जगाया नहीं। कुछ बोला भी नहीं। चुपके से खिचड़ी थाली में निकाल और दो-चार कौर निगलकर बरामदे में लेट रहा। पिछले पहर उसे सर्दी लगी। कोठरी में कम्बल लेने गया, तो झुनिया के कराहने की आवाज़ सुनी। नशा उतर चुका था। पूछा—कैसा जी है झुनिया? कहीं दरद है क्या?

'हाँ, पेट में ज़ोर से दरद हो रहा है।'

'तूने पहले क्यों नहीं कहा। अब इस बखत कहाँ जाऊँ?'

'किससे कहती?'

'मैं क्या मर गया था?'

'तुम्हें मेरे मरने-जीने की क्या चिन्ता?'

गोबर घबराया। कहाँ दाई खोजने जाय? इस वक्त वह आने ही क्यों लगी। घर में कुछ है भी तो नहीं, चुड़ैल ने पहले बता दिया होता, तो किसी से दो-चार रुपये माँग लाता। इन्हीं हाथों में सौ-पचास रुपये हरदम पड़े रहते थे, चार आदमी खुशामद करते थे। इस कुलच्छनी के आते ही जैसे लक्ष्मी रूठ गईं। टके टके को मुहताज हो गया।

सहसा किसी ने पुकारा—यह क्या तुम्हारी घरवाली कराह रही है? दरद तो नहीं हो रहा है?

यह वही मोटी औरत थी, जिससे आज झुनिया की बात-चीत हुई थी, घोड़े को दाना खिलाने उठी थी। झुनिया का कराहना सुनकर पूछने आ गई थी।

गोबर ने बरामदे में जाकर कहा—पेट में दरद है। छटपटा रही है। यहाँ कोई दाई मिलेगी?

'वह तो मैं आज उसे देखकर ही समझ गई थी। दाई कचीसराय में रहती है। लपककर बुला लाओ। कहना, जल्दी चल। तब तक मैं यहीं बैठी हूँ।'

'मैंने तो कचीसराय नहीं देखी, किधर है?'

'अच्छा, तुम उसे पंखा झलते रहो, मैं बुलाये लाती हूँ। यही कहते हैं, अनाड़ी आदमी किसी काम का नहीं। पूरा पेट और दाई की खबर नहीं।'

यह कहती हुई वह चल दी। इसके मुँह पर तो लोग इसे चुहिया कहते हैं, यही इसका नाम था; लेकिन पीठ पीछे मोटल्ली कहा करते थे। किसी को मोटल्ली कहते सुन लेती थी, तो उसके सात पुरखों तक चढ़ जाती थी।

गोबर को बैठे दस मिनट भी न हुए होंगे कि वह लौट आई और बोली—अब संसार में गरीबों का कैसे निबाह होगा। राँड़ कहती है, पाँच रुपये लूँगी, तब चलूँगी! और आठ आने रोज। बारहवें दिन एक साड़ी। मैंने कहा तेरा मुँह झुलस दूँ! तू जा चूल्हे में! मैं देख लूँगी। बारह बच्चों की मा यों ही नहीं हो गई हूँ। तुम बाहर आ जाओ गोबरधन, मैं सब कर लूँगी। बखत पड़ने पर आदमी ही आदमी के काम आता है। चार बच्चे जना लिये तो दाई बन बैठी!

वह झुनिया के पास जा बैठी और उसका सिर अपनी जाँघ पर रखकर उसका पेट सहलाती हुई बोली—मैं तो आज तुझे देखते ही समझ गई थी। सच पूछो, तो इसी धड़के में आज मुझे नींद नहीं आई। यहाँ तेरा कौन सगा बैठा है।

झुनिया ने दर्द से दाँत जमाकर 'सी' करते हुए कहा—अब न बचूँगी दीदी! हाय। मैं तो भगवान् से माँगने न गई थी। एक को पाला-पोसा। उसे तुमने छीन लिया, तो फिर इसका कौन काम था। मैं मर जाऊँ माता, तो तुम बच्चे पर दया करना। उसे पाल-पोस लेना। भगवान् तुम्हारा भला करेंगे।

चुहिया स्नेह से उसके केश सुलझाती हुई बोली—धीरज धर बेटी, धीरज धर। अभी छन-भर में कष्ट कटा जाता है। तूने भी तो जैसे चुप्पी साध ली थी। इसमें किस बात की लाज। मुझसे बता दिया होता तो मैं मौलवी साहब के पास से ताबीज ला देती। वही मिर्जाजी जो इस हाते में रहते हैं।

इसके बाद झुनिया को कुछ होश न रहा। नौ बजे सुबह उसे होश आया, तो उसने देखा, चुहिया शिशु को लिये बैठी है और वह साफ़ साड़ी पहने लेटी सोई है। ऐसी कमज़ोरी थी, मानो देह में रक्त का नाम न हो।

चुहिया रोज़ सबेरे आकर झुनिया के लिए हरीरा और हलवा पका जाती, और दिन में भी कई बार आकर बच्चे को उबटन मल जाती और ऊपर का दूध पिला जाती। आज चौथा दिन था; पर झुनिया के स्तनों में दूध न उतरा था। शिशु रो-रोकर गला फाड़े लेता था; क्योंकि ऊपर का दूध उसे पचता न था। एक छन को भी चुप न होता था। चुहिया अपना स्तन उसके मुँह में दे देती। बच्चा एक क्षण चूसता; पर जब दूध न निकलता, तो फिर चीखने लगता। जब चौथे दिन साँझ तक भी झुनिया के दूध न उतरा, तो चुहिया घबराई। बच्चा सूखता चला जाता था। नखास पर एक पेन्शनर डाक्टर रहते थे। चुहिया उन्हें ले आई। डाक्टर ने देख-भालकर कहा—इसकी देह में ख़ून तो है ही नहीं, दूध कहाँ से आये। समस्या जटिल हो गई। देह में ख़ून लाने के लिए महीनों पुष्टिकारक दवाएँ खानी पड़ेंगी, तब कहीं दूध उतरेगा। तब तक तो इस मांस के लोथड़े का ही काम तमाम हो जायगा।

पहर रात हो गई थी। गोबर ताड़ी पिये ओसारे में पड़ा था। चुहिया बच्चे को चुप कराने के लिए उसके मुँह में अपनी छाती डाले हुए थी कि सहसा उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसकी छाती में दूध आ गया है। प्रसन्न होकर बोली—ले झुनिया, अब तेरा बच्चा जी जायगा, मेरे दूध आ गया।

झुनिया ने चकित होकर कहा—तुम्हें दूध आ गया?

'नहीं री, सच!'

'मैं तो नहीं पतियाती।'

'देख ले!'

उसने अपना स्तन दबाकर दिखाया। दूध की धार फूट निकली।

झुनिया ने पूछा—तुम्हारी छोटी बिटिया तो आठ साल से कम की नहीं है!

'हाँ, आठवाँ है; लेकिन मुझे दूध बहुत होता था।'

'इधर तो तुम्हें कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ?'

'वही लड़की पेट-पोछनी थी। छाती बिल्कुल सूख गई थी; लेकिन भगवान् की लीला है, और क्या!'

अबसे चुहिया चार-पाँच बार आकर बच्चे को दूध पिला जाती। बच्चा पैदा तो हुआ था दुर्बल, लेकिन चुहिया का स्वस्थ दूध पीकर गदराया जाता था। एक

दिन चुहिया नदी स्नान करने चली गई। बच्चा भूख के मारे छटपटाने लगा। चुहिया दस बजे लौटी, तो झुनिया बच्चे को कन्धे से लगाये झुला रही थी और बच्चा रोये जाता था। चुहिया ने बच्चे को उसकी गोद से लेकर दूध पिला देना चाहा; पर झुनिया ने उसे झिड़ककर कहा—रहने दो। अभागा मर जाय, वही अच्छा। किसी का एहसान तो न लेना पड़े।

चुहिया गिड़गिड़ाने लगी। झुनिया ने बड़े अदरावन के बाद बच्चा उसकी गोद में दिया।

लेकिन झुनिया और गोबर में अब भी न पटती थी। झुनिया के मन में बैठ गया था कि यह पक्का मतलबी, बेदर्द आदमी है, मुझे केवल भोग की वस्तु समझता है, मैं मरूँ या जिऊँ। उसकी इच्छा पूरी किये जाऊँ, उसे बिलकुल गम नहीं। सोचता होगा, यह मर जायगी, तो दूसरी लाऊँगा; लेकिन मुँह धो रखें बच्चू। मैं ही ऐसी अल्हड़ थी कि तुम्हारे फन्दे में आ गई। तब तो पैरों पर सिर रखे देता था। यहाँ आते ही न जाने क्यों जैसे इसका मिजाज ही बदल गया। जाड़ा आ गया था; पर न ओढ़न, न बिछावन। रोटी-दाल से जो दो-चार रुपये बचते, ताड़ी में उड़ जाते थे। एक पुराना लिहाफ़ था। दोनों उसी में सोते थे; लेकिन फिर भी उनमें सौ कोस का अन्तर था। दोनों एक ही करवट में रात काट देते।

गोबर का जी शिशु को गोद में लेकर खेलाने के लिए तरसकर रह जाता था। कभी-कभी वह रात को उठकर उसका प्यारा मुखड़ा देख लिया करता; लेकिन झुनिया की ओर से उसका मन खिंचता था। झुनिया भी उससे बात न करती, न उसकी कुछ सेवा ही करती और दोनों के बीच में यह मालिन्य समय के साथ लोहे के मोर्चे की भाँति गहरा, दृढ़ और कठोर होता जाता था। दोनों एक दूसरे की बातों का उलटा ही अर्थ निकालते, वही जिससे आपस का द्वेष और भड़के। और कई दिनों तक एक-एक वाक्य को मन में पाले रहते और उसे अपना रक्त पिला-पिलाकर एक दूसरे पर झपट पड़ने के लिए तैयार करते रहते, जैसे शिकारी कुत्ते हों।

उधर गोबर के कारखाने में भी आये-दिन एक न एक हंगामा उठता रहता था। अबकी बजट में शक्कर पर ड्यूटी लग गई थी। मिल के मालिकों को मजूरी घटाने का अच्छा बहाना मिल गया। ड्यूटी से अगर पाँच की हानि थी, तो मजूरी घटा देने से दस का लाभ था। इधर महीनों से इस मिल में भी यही मसला छिड़ा हुआ

था। मजूरों का संघ हड़ताल करने को तैयार बैठा हुआ था। इधर मजूरी घटी और उधर हड़ताल हुई। उसे मजूरी में धेले की कटौती भी स्वीकार न थी। जब इस तेज़ी के दिनों में मजूरी में एक धेले की भी बढ़ती नहीं हुई, तो अब वह घाटे में क्यों साथ दे। मिर्ज़ा खुर्शेद संघ के सभापति और पण्डित ओंकारनाथ 'बिजली'-सम्पादक, मन्त्री थे। दोनों ऐसी हड़ताल कराने पर तुले हुए थे कि मिल-मालिकों को कुछ दिन याद रहे। मजूरों को भी हड़ताल से क्षति पहुँचेगी, यहाँ तक कि हज़ारों आदमी रोटियों को भी मुहताज हो जायँगे, इस पहलू को ओर उनकी निगाह बिल्कुल न थी। और गोबर हड़तालियों में सबसे आगे था। उद्दण्ड स्वभाव का था ही, ललकारने की ज़रूरत थी। फिर वह मारने-मरने को न डरता था। एक दिन झुनिया ने उसे जो कड़ा करके समझाया भी—तुम बाल-बच्चेवाले आदमी हो, तुम्हारा इस तरह आग में कूदना अच्छा नहीं। इस पर गोबर बिगड़ उठा—तू कौन होती है मेरे बीच में बोलनेवाली? मैं तुझसे सलाह नहीं पूछता। बात बढ़ गई और गोबर ने झुनिया को ख़ूब पीटा। चुहिया ने आकर झुनिया को छुड़ाया और गोबर को डाँटने लगी। गोबर के सिर पर शैतान सवार था। लाल-लाल आँखें निकालकर बोला—तुम मेरे घर में मत आया करो चूहा, तुम्हारे आने का कुछ काम नहीं।

चुहिया ने व्यंग्य के साथ कहा—तुम्हारे घर में न आऊँगी, तो मेरी रोटियाँ कैसे चलेंगी। यहीं से माँग-जाँचकर ले जाती हूँ, तब तवा गर्म होता है। मैं न होती लाला, तो यह बीबी आज तुम्हारी लातें खाने के लिए बैठी न होती।

गोबर घूँसा तानकर बोला—मैंने कह दिया, मेरे घर में न आया करो। तुम्हीं ने इस चुड़ैल का मिजाज आसमान पर चढ़ा दिया है।

चुहिया वहीं डटी हुई निःशङ्क खड़ी थी, बोली—अच्छा अब चुप रहना गोबर! बेचारी अधमरी लड़कोरी औरत को मारकर तुमने कोई बड़ी जवाँमर्दी का काम नहीं किया है। तुम उसके लिए क्या करते हो कि वह तुम्हारी मार सहे? एक रोटी खिला देते हो इसलिए? अपने भाग बखानो कि ऐसी गऊ औरत पा गये हो। दूसरी होती, तो तुम्हारे मुँह में झाड़ू मारकर निकल गई होती।

मुहल्ले के लोग जमा हो गये और चारों ओर से गोबर पर फटकारें पड़ने लगीं। वही लोग, जो अपने घरों में अपनी स्त्रियों को रोज़ पीटते थे, इस वक्त

न्याय और दया के पुतले बने हुए थे। चुहिया और शेर हो गई और फ़रियाद करने लगी—डाढ़ीजार कहता है, मेरे घर न आया करो। बीबी-बच्चा रखने चला है, यह नहीं जानता कि बीबी-बच्चों का पालन बड़े गुर्दे का काम है। इससे पूछो, मैं न होती तो आज यह बच्चा जो बछड़े की तरह कुलेलें कर रहा है, कहाँ होता। औरत को मारकर जवानी दिखाता है। मैं न हुई तेरी बीबी, नहीं यही जूती उठाकर मुँह पर तड़ातड़ जमाती और कोठरी में ढकेलकर बाहर से किवाड़ बन्द कर देती। दाने को तरस जाते।

गोबर झल्लाया हुआ अपने काम पर चला गया। चुहिया औरत न होकर मर्द होती, तो मज़ा चखा देता। औरत के मुँह क्या लगे!

मिल में असन्तोष के बादल घने होते जा रहे थे। मज़दूर 'बिजली' की प्रतियाँ जेब में लिये फिरते और ज़रा भी अवकाश पाते, तो दो-तीन मज़दूर मिलकर उसे पढ़ने लगते। पत्र की बिक्री ख़ूब बढ़ रही थी। मज़दूरों के नेता 'बिजली' कार्यालय में आधी रात तक बैठे हड़ताल की स्कीमें बनाया करते और प्रातःकाल जब पत्र में यह समाचार मोटे-मोटे अक्षरों में छपता, तो जनता टूट पड़ती और पत्र की कापियाँ दूने-तिगुने दाम पर बिक जातीं। उधर कम्पनी के डायरेक्टर भी अपनी घात में बैठे हुए थे। हड़ताल हो जाने में ही उनका हित था। आदमियों की कमी तो है नहीं। बेकारी बढ़ी हुई है, इसके आधे वेतन पर ऐसे ही आदमी आसानी से मिल सकते हैं। माल की तैयारी में एकदम आधी बचत हो जायगी। दस-पाँच दिन काम का हरज होगा, कुछ परवाह नहीं। आख़िर यह निश्चय हो गया कि मजूरी में कमी का एलान कर दिया जाय। दिन और समय नियत कर लिया गया। पुलिस को सूचना दे दी गई। मजूरों को कानोंकान ख़बर न थी। वे अपनी घात में थे। उसी वक़्त हड़ताल करना चाहते थे, जब गोदाम में बहुत थोड़ा माल रह जाय और माँग की तेज़ी हो।

एकाएक एक दिन जब मजूर लोग शाम को छुट्टी पाकर चलने लगे, तो डायरेक्टरों का एलान सुना दिया गया। उसी वक़्त पुलिस आ गई। मजूरों को अपनी इच्छा के विरुद्ध उसी वक्त हड़ताल करनी पड़ी, जब गोदाम में इतना माल भरा हुआ था कि बहुत तेज़ माँग होने पर भी छः महीने से पहले न उठ सकता था।

मिर्ज़ा ख़ुर्शेद ने यह ख़बर सुनी, तो मुस्कराये, जैसे कोई मनस्वी योद्धा अपने

शत्रु के रण-कौशल पर मुग्ध हो गया हो। एक क्षण विचारों में डूबे रहने के बाद बोले—अच्छी बात है। अगर डायरेक्टरों की यही इच्छा है, तो यही सही। हालतें उनके मुआफ़िक़ हैं; लेकिन हमें न्याय का बल है। वह लोग नये आदमी रखकर अपना काम चलाना चाहते हैं। हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि उन्हें एक भी नया आदमी न मिले। यही हमारी फ़तह होगी।

'बिजली'-कार्यालय में उसी वक़्त ख़तरे की मीटिंग हुई, कार्य-कारिणीसभा का संगठन हुआ, पदाधिकारियों का चुनाव हुआ और आठ बजे रात को मजूरों का लम्बा जुलूस निकला। दस बजे रात को कल का सारा प्रोग्राम तय किया गया और यह ताकीद कर दी गई कि किसी तरह का दंगा-फ़साद न होने पाये।

मगर सारी कोशिश बेकार हुई। हड़तालियों ने नये मजूरों का टिड्डी-दल मिल के द्वार पर खड़ा देखा, तो उनकी हिंसा-वृत्ति क़ाबू के बाहर हो गई। सोचा था, सौ-सौ, पचास-पचास आदमी रोज़-रोज़ भर्ती होने के लिए आयेंगे। उन्हें समझा-बुझाकर या धमकाकर भगा देंगे। हड़तालियों की संख्या देखकर नये लोग आप ही भयभीत हो जायँगे; मगर यहाँ तो नक़शा ही कुछ और था; अगर यह सारे आदमी भर्ती हो गये, तो हड़तालियों के लिए समझौते की कोई आशा ही न थी। तय हुआ कि नये आदमियों को मिल में जाने ही न दिया जाय। बल-प्रयोग के सिवा और कोई उपाय न था। नया दल भी लड़ने-मरने पर तैयार था। उनमें अधिकांश ऐसे भुखमरे थे, जो इस अवसर को किसी तरह भी न छोड़ना चाहते थे। भूखों मर जाने से या अपने बाल-बच्चों को भूखों मरते देखने से तो यह कहीं अच्छा था कि इस परिस्थिति से लड़कर मरें। दोनों दलों में फ़ौजदारी हो गई। 'बिजली'-सम्पादक तो भाग खड़े हुए, बेचारे मिर्ज़ाजी पिट गये और उनकी रक्षा करते हुए गोबर भी बुरी तरह घायल हो गया। मिर्ज़ाजी पहलवान आदमी थे और मँजे हुए फ़िकैत, अपने ऊपर कोई गहरा वार न पड़ने दिया। गोबर गँवार था। पूरा लट्ठ मारना जानता था; पर अपनी रक्षा करना न जानता था, जो लड़ाई में मारने से ज़्यादा महत्त्व की बात है। उसके एक हाथ की हड्डी टूट गई, सिर खुल गया और अन्त में वह वहीं ढेर हो गया; कन्धों पर अनगिनती लाठियाँ पड़ी थीं, जिससे उसका एक-एक अंग चूर हो गया था। हड़तालियों ने उसे गिरते देखा, तो भाग खड़े हुए। केवल दस-बारह जँचे हुए आदमी मिर्ज़ा को घेरकर खड़े रहे।

नये आदमी विजय-पताका उड़ाते हुए मिल में दाख़िल हुए और पराजित हड़ताली अपने हताहतों को उठा-उठाकर अस्पताल पहुँचाने लगे ; मगर अस्पताल में इतने आदमियों के लिए जगह न थी । मिर्ज़ाजी तो ले लिये गये । गोबर की मरहम-पट्टी करके उसके घर पहुँचा दिया गया ।

झुनिया ने गोबर की वह चेष्टाहीन लोथ देखी तो उसका नारीत्व जाग उठा । अब तक उसने उसे सबल के रूप में देखा था, जो उस पर शासन करता था, डाँटता था, मारता था । आज वह अपंग था, निस्सहाय था, दयनीय था । झुनिया ने खाट पर झुककर आँसू भरी आँखों से गोबर को देखा और घर की दशा का ख़याल करके उसे गोबर पर एक ईर्ष्यामय क्रोध आया । गोबर जानता था कि घर में एक पैसा नहीं है । यह जानते हुए भी, उसके बार-बार समझाने पर भी, उसने यह विपत्ति अपने ऊपर ली । उसने कितनी बार कहा था—तुम इस झगड़े में न पड़ो, आग लगानेवाले आग लगाकर अलग हो जायँगे, जायगी ग़रीबों के सिर ; लेकिन वह कब उसकी सुनने लगा था । वह तो उसकी बैरिन थी । मित्र तो वह लोग थे, जो अब मज़े से मोटरों में घूम रहे हैं । उस क्रोध में एक प्रकार की तुष्टि थी, जैसे हम उन बच्चों को कुरसी से गिर पड़ते देखकर, जो बार-बार मना करने पर खड़े होने से बाज़ न आते थे, चिल्ला उठते हैं—अच्छा हुआ, बहुत अच्छा, तुम्हारा सिर क्यों न दो हो गया ।

लेकिन एक ही क्षण में गोबर का करुण-क्रन्दन सुनकर उसकी सारी संज्ञा सिहर उठी । व्यथा में डूबे हुए ये शब्द उसके मुँह से निकले—हाय-हाय ! सारी देह भुरकस हो गई । सबों को तनिक भी दया न आई ।

वह उसी तरह बड़ी देर तक गोबर का मुँह देखती रही । वह क्षीण होती हुई आशा से जीवन का कोई लक्षण पा लेना चाहती थी । और प्रतिक्षण उसका धैर्य अस्त होनेवाले सूर्य की भाँति डूबता जाता था, और भविष्य का अन्धकार उसे अपने अन्दर समेटे लेता था ।

सहसा चुहिया ने आकर पुकारा—गोबर का क्या हाल है, बहू ! मैंने तो अभी सुना । दूकान से दौड़ी आई हूँ ।

झुनिया के रुके हुए आँसू उबल पड़े ; कुछ बोल न सकी । भयभीत आँखों से चुहिया की ओर देखा ।

चुहिया ने गोबर का मुँह देखा, उसकी छाती पर हाथ रखा और आश्वासन भरे स्वर में बोली—यह चार दिन में अच्छे हो जायँगे। घबड़ा मत। कुशल हुई। तेरा सोहाग बलवान् था। कई आदमी उसी दंगे में मर गये। घर में कुछ रुपये-पैसे हैं?

झुनिया ने लज्जा से सिर हिला दिया।

'मैं लाये देती हूँ। थोड़ा-सा दूध लाकर गर्म कर ले।'

झुनिया ने उसके पाँव पकड़कर कहा—दीदी, तुम्हीं मेरी माता हो। मेरा दूसरा कोई नहीं है।

जाड़ों की उदास सन्ध्या आज और भी उदास मालूम हो रही थी। झुनिया ने चूल्हा जलाया और दूध उबालने लगी। चुहिया बरामदे में बच्चे को लिये खेला रही थी।

सहसा झुनिया भारी कण्ठ से बोली—मैं बड़ी अभागिन हूँ दीदी! मेरे मन में ऐसा आ रहा है, जैसे मेरे ही कारन इनकी यह दसा हुई है। जी कुढ़ता है, तब मन दुखी होता ही है, फिर गालियाँ भी निकलती हैं, सराप भी निकलता है। कौन जाने मेरी गालियों......

इसके आगे वह कुछ न कह सकी। आवाज़ आँसुओं के रेले में बह गई।

चुहिया ने अंचल से उसके आँसू पोंछते हुए कहा—कैसी बातें सोचती है बेटी! यह तेरे सिन्दूर का भाग है कि यह बच गये। मगर हाँ, इतना है कि आपस में लड़ाई हो, तो मुँह से चाहे जितना बक ले, मन में कीना न पाले। बीज अन्दर पड़ा, तो अखुआ निकले बिना नहीं रहता।

झुनिया ने कम्पन-भरे स्वर में पूछा—अब मैं क्या करूँ दीदी?

चूहिया ने ढारस दिया—कुछ नहीं बेटी! भगवान् का नाम ले। वही ग़रीबों की रक्षा करते हैं।

उसी समय गोबर ने आँखें खोलीं और झुनिया को सामने देखकर याचना-भाव से क्षीण-स्वर में बोला—आज बहुत चोट खा गया झुनिया! मैं किसी से कुछ नहीं बोला। सबों ने अनायास मुझे मारा। कहा-सुना माफ कर! तुझे सताया था, उसी का यह फल मिला। थोड़ी देर का और मेहमान हूँ। अब न बचूँगा। मारे दरद के सारी देह फटी जाती है।

चुहिया ने अन्दर आकर कहा - चुपचाप पड़े रहो। बोलो-चालो नहीं। मरोगे नहीं, इसका मेरा जुम्मा।

गोबर के मुख पर आशा की रेखा झलक पड़ी। बोला—सच कहती हो, मैं मरूँगा नहीं!

'हाँ, नहीं मरोगे। तुम्हें हुआ क्या है? ज़रा सिर में चोट आ गई और हाथ की हड्डी उतर गई है। ऐसी चोटें मरदों को रोज ही लगा करती हैं। इन चोटों से कोई नहीं मरता।'

'अब मैं झुनिया को कभी न मारूँगा।'

'डरते होगे कि कहीं झुनिया तुम्हें न मारे।'

'वह मारेगी भी, तो न बोलूँगा।'

'अच्छे होने पर भूल जाओगे।'

'नहीं दीदी, कभी न भूलूँगा।'

गोबर इस समय बच्चों की-सी बातें किया करता। दस-पाँच मिनट अचेत-सा पड़ा रहता। उसका मन न जाने कहाँ-कहाँ उड़ा करता। कभी देखता, वह नदी में डूबा जा रहा है, और झुनिया उसे बचाने के लिए नदी में चली आ रही है। कभी देखता, कोई दैत्य उसकी छाती पर सवार है और झुनिया की शक्ल की कोई देवी उसकी रक्षा कर रही है। और बार-बार चौंककर पूछता—मैं मरूँगा तो नहीं झुनिया!

तीन दिन उसकी यही दशा रही और झुनिया ने रात को जागकर और दिन को उसके सामने खड़ी रहकर जैसे मौत से उसकी रक्षा की। बच्चे को चुहिया सँभाले रहती। चौथे दिन झुनिया एक्का लाई और सबों ने गोबर को उस पर लादकर अस्पताल पहुँचाया। वहाँ से लौटकर गोबर को मालूम हुआ कि अब वह सचमुच बच जायगा। उसने आँखों में आँसू भरकर कहा—मुझे क्षमा कर दो झुना!

इन तीन-चार दिनों में चुहिया के तीन-चार रुपये खर्च हो गये थे, और अब झुनिया को उससे कुछ लेते संकोच होता था। वह भी कोई मालदार तो थी नहीं। लकड़ी की बिक्री के रुपये झुनिया को दे देती। आख़िर झुनिया ने कुछ काम करने का विचार किया। अभी गोबर को अच्छे होने में महीनों लगेंगे। खाने-पीने को भी चाहिए, दवा-दारू को भी चाहिए। वह कुछ काम करके खानेभर को तो ले ही

आयेगी। बचपन से उसने गउओं का पालन और घास छीलना सीखा था। यहाँ गउएँ कहाँ थीं; हाँ, वह घास छील सकती थी। मुहल्ले के कितने ही स्त्री-पुरुष बराबर घास छीलने जाते थे, और आठ-दस आने कमा लेते थे। वह प्रातःकाल गोबर का हाथ-मुँह धुलाकर और बच्चे को उसे सौंपकर घास छीलने निकल जाती, और तीसरे पहर तक भूखी-प्यासी घास छीलती रहती। फिर उसे मंडी में ले जाकर बेचती और शाम को घर आती। रात को भी वह गोबर की नींद सोती और गोबर की नींद जागती; मगर इतना कठोर श्रम करने पर भी उसका मन ऐसा प्रसन्न रहता, मानो झूले पर बैठी गा रही है; रास्ते भर साथ की स्त्रियों और पुरुषों से चुहल और विनोद करती जाती। घास छीलते समय भी सबों में हँसी-दिल्लगी होती रहती। न किस्मत का रोना, न मुसीबत का गिला। जीवन की सार्थकता में, अपनों के लिए कठिन से कठिन त्याग में और स्वाधीन सेवा में जो उल्लास है, उसकी ज्योति उसके एक-एक अंग पर चमकती रहती। बच्चा अपने पैरों पर खड़ा होकर जैसे तालियाँ बजा-बजाकर खुश होता है, उसी आनन्द का वह अनुभव कर रही थी; मानो उसके प्राणों में आनन्द का कोई सोता खुल गया हो। और मन स्वस्थ हो, तो देह कैसे अस्वस्थ रहे। इसी एक महीने में जैसे उसका कायाकल्प हो गया हो। उसके अंगों में अब शिथिलता नहीं, चपलता है, लचक है, और सुकुमारता है। मुख पर वह पीलापन नहीं रहा, खून की गुलाबी चमक है। उसका यौवन जो बन्द कोठरी में पड़े-पड़े अपमान और कलह से कुण्ठित हो गया था, वह मानो ताजी हवा और प्रकाश पाकर लहलहा उठा है। अब उसे किसी बात पर क्रोध नहीं आता। बच्चे के ज़रा-सा रोने पर जो वह झुँझला उठा करती थी, अब जैसे उसके धैर्य और प्रेम का अन्त ही न था।

इसके खिलाफ़ गोबर अच्छा होते जाने पर भी कुछ उदास रहता था। जब हम अपने किसी प्रिय जन पर अत्याचार करते हैं, और जब विपत्ति आ पड़ने से हममें इतनी शक्ति आ जाती है कि उसकी तीव्र व्यथा का अनुभव करें, तो उससे हमारी आत्मा में जागृति का उदय हो जाता है, और हम उस बेजा व्यवहार का प्रायश्चित्त करने के लिए तैयार हो जाते हैं। गोबर उसी प्रायश्चित्त के लिए व्याकुल हो रहा था। अब उसके जीवन का रूप बिल्कुल दूसरा होगा, जिसमें कटुता की जगह मृदुता होगी, अभिमान की जगह नम्रता। उसे अब ज्ञात हुआ कि सेवा

करने का अवसर बड़े सौभाग्य से मिलता है, और वह इस अवसर को कभी न भूलेगा।

२८

मिस्टर खन्ना को मजूरों की यह हड़ताल बिलकुल बेजा मालूम होती थी। उन्होंने हमेशा जनता के साथ मिले रहने की कोशिश की थी। वह अपने को जनता का ही आदमी समझते थे। पिछले कौमी आन्दोलन में उन्होंने बड़ा जोश दिखाया था। ज़िले के प्रमुख नेता रहे थे, दो बार जेल गये थे और कई हज़ार का नुकसान उठाया था। अब भी वह मजूरों की शिकायतें सुनने को तैयार रहते थे; लेकिन यह तो नहीं हो सकता कि वह शक्कर-मिल के हिस्सेदारों के हित का विचार न करें। अपना स्वार्थ त्यागने को वह तैयार हो सकते थे, अगर उनको ऊँची मनोवृत्तियों को स्पर्श किया जाता; लेकिन हिस्सेदारों के स्वार्थ की रक्षा न करना, यह तो अधर्म था। यह तो व्यापार है, कोई सदाव्रत नहीं कि सब कुछ मजूरों को ही बाँट दिया जाय। हिस्सेदारों को यह विश्वास दिलाकर रुपये लिये गये थे कि इस काम में पन्द्रह-बीस सैकड़े का लाभ है। अगर उन्हें दस सैकड़े भी न मिले, तो वे डायरेक्टरों को और विशेष कर मिस्टर खन्ना को धोखेबाज़ ही तो समझेंगे। फिर अपना वेतन वह कैसे कम कर सकते थे। और कम्पनियों को देखते उन्होंने अपना वेतन बहुत कम रखा था। केवल एक हज़ार रुपया महीना लेते थे। कुछ कमीशन भी मिल जाता था; मगर वह इतना लेते थे, तो मिल का संचालन भी करते थे। मजूर केवल हाथ से काम करते हैं। डायरेक्टर अपनी बुद्धि से, विद्या से, प्रतिभा से, प्रभाव से काम करता है। दोनों शक्तियों का मोल बराबर तो नहीं हो सकता! मजूरों को यह सन्तोष क्यों नहीं होता कि यह मन्दी का समय है, और चारों तरफ़ बेकारी फैली रहने के कारण आदमी सस्ते हो गये हैं। उन्हें तो एक की जगह पौन भी मिले, तो सन्तुष्ट रहना चाहिए था। और सच पूछो, तो वे सन्तुष्ट हैं। उनका कोई क़सूर नहीं। वे तो मूर्ख हैं, बछिया के ताऊ! शरारत तो ओंकारनाथ और मिर्ज़ा खुर्शेद की है। यही लोग उन बेचारों को कठपुतली की तरह नचा रहे हैं, केवल थोड़े-से पैसे और यश के लोभ में पड़कर। यह नहीं सोचते कि उनकी दिल्लगी से कितने घर तबाह हो जायँगे। ओंकारनाथ का पत्र नहीं चलता, तो बेचारे खन्ना क्या करें! और आज उनके पत्र के एक लाख ग्राहक हो जायँ, और उससे उन्हें पाँच लाख का लाभ होने लगे, तो क्या वह केवल

अपने गुज़ारे-भर लेकर शेष कार्यकर्ताओं में बाँट देंगे ? कहाँ की बात ! और वह त्यागी मिर्ज़ा खुर्शेद भी तो एक दिन लखपती थे। हज़ारों मजूर उनके नौकर थे। तो क्या वह अपने गुज़ारे-भर को लेकर सब कुछ मजूरों को बाँट देते थे ? वह उसी गुज़ारे की रक़म में यूरेशियन छोकरियों के साथ विहार करते थे, बड़े-बड़े अफ़सरों के साथ दावतें उड़ाते थे, हज़ारों रुपये महीने की शराब पी जाते थे और हरसाल फ्रांस और स्विटज़रलैंड की सैर करते थे ! आज मजूरों की दशा पर उनका कलेजा फटता है !

इन दोनों नेताओं की तो खन्ना को परवा न थी। उनकी नीयत की सफ़ाई में पूरा सन्देह था। न राय साहब को ही उन्हें परवा थी, जो हमेशा खन्ना की हाँ में हाँ मिलाया करते थे और उनके हरएक काम का समर्थन कर दिया करते थे। अपने परिचितों में केवल एक ही ऐसा व्यक्ति था, जिसके निष्पक्ष विचार पर खन्नाजी को पूरा भरोसा था और वह डाक्टर मेहता थे। जबसे उन्होंने मालती से घनिष्ठता बढ़ानी शुरू की थी, खन्ना की नज़रों में उनकी इज़्ज़त बहुत कम हो गई थी। मालती बरसों खन्ना की हृदयेश्वरी रह चुकी थी ; पर उसे उन्होंने सदैव खिलौना समझा था। इसमें सन्देह नहीं कि वह खिलौना उन्हें बहुत प्रिय था। उसके खो जाने, या टूट जाने, या छिन जाने पर वह ख़ूब रोते, और रोये थे, लेकिन थी वह खिलौना ही। उन्हें कभी मालती पर विश्वास न हुआ। वह कभी उनके ऊपरी विलास-आवरण को छेदकर उनके अन्तःकरण तक न पहुँच सकी थी। वह अगर खुद खन्ना से विवाह का प्रस्ताव करती, तो वह स्वीकार न करते। कोई बहाना करके टाल देते। अन्य कितने ही प्राणियों की भाँति खन्ना का जीवन भी दोहरा या दोरुखी था। एक ओर वह त्याग और जन-सेवा और उपकार के भक्त थे, तो दूसरी ओर स्वार्थ और विलास और प्रभुता के। कौन उत्तम असली रुख़ था, यह कहना कठिन है। कदाचित् उनकी आत्मा का उत्तम आधा सेवा और सहृदयता से बना हुआ था, मद्धिम आधा स्वार्थ और विलास से। पर उत्तम और मद्धिम में बराबर झगड़ा होता रहता था। और मद्धिम ही अपनी उद्दण्डता और हठ के कारण सौम्य और शान्त उत्तम पर ग़ालिब आता था। उनका मद्धिम मालती की ओर झुकता था, उत्तम मेहता की ओर, लेकिन वह उत्तम अब मद्धिम के साथ एक हो गया था। उनकी समझ में न आता था कि मेहता-जैसा आदर्शवादी व्यक्ति मालती-जैसी चंचल,

विलासिनी रमणी पर कैसे आसक्त हो गया। वह बहुत प्रयास करने पर भी मेहता को वासनाओं का शिकार न सिद्ध कर सकते थे और कभी-कभी उन्हें यह सन्देह भी होने लगता था कि मालती का कोई दूसरा रूप भी है, जिसे वह न देख सके या जिसे देखने की उनमें क्षमता न थी।

पक्ष और विपक्ष के सभी पहलुओं पर विचार करके उन्होंने यही नतीजा निकाला कि इस परिस्थिति में मेहता ही से उन्हें प्रकाश मिल सकता है।

डाक्टर मेहता को काम करने का नशा था। आधी रात को सोते थे और घड़ी रात रहे उठ जाते थे। कैसा भी काम हो, उसके लिए वह कहीं-न-कहीं से समय निकाल लेते थे। हाकी खेलना हो या यूनिवर्सिटी डिबेट, ग्राम्यसंगठन हो या किसी शादी का नेवेद्य, सभी कामों के लिए उनके पास लगन थी और समय था। वह पत्रों में लेख भी लिखते थे और कई साल से एक वृहद् दर्शन-ग्रन्थ लिख रहे थे, जो अब समाप्त होनेवाला था। इस वक्त भी वह एक वैज्ञानिक खेल ही खेल रहे थे। अपने बागीचे में बैठे हुए पौधों पर विद्युत् संचार-क्रिया की परीक्षा कर रहे थे। उन्होंने हाल में एक विज्ञान-परिषद् में यह सिद्ध किया था कि फसलें बिजली के ज़ोर से बहुत थोड़े समय में पैदा की जा सकती हैं, उनकी पैदावार बढ़ाई जा सकती है और बेफ़स्ल की चीज़ें भी उपजाई जा सकती हैं। आज-कल सबेरे के दो-तीन घण्टे वह इन्हीं परीक्षाओं में लगाया करते थे।

मिस्टर खन्ना की कथा सुनकर उन्होंने कठोर मुद्रा से उनकी ओर देखकर कहा—क्या यह ज़रूरी था कि ड्यूटी लग जाने से मजूरों का वेतन घटा दिया जाय? आपको सरकार से शिकायत करनी चाहिए थी। अगर सरकार ने नहीं सुना, तो उसका दण्ड मज़ूरों को क्यों दिया जाय? क्या आपका विचार है कि मजूरों को इतनी मजूरी दी जाती है कि उसमें चौथाई कम कर देने से मजूरों को कष्ट न होगा। आपके मजूर बिलों में रहते हैं—गंदे, बदबूदार बिलों में—जहाँ आप एक मिनट भी रह जायँ, तो आपको क़ै हो जाय। कपड़े जो वह पहनते हैं, उनसे आप अपने जूते भी न पोछेंगे। खाना जो वह खाते हैं, वह आपका कुत्ता भी न खायेगा। मैंने उनके जीवन में भाग लिया है। आप उनकी रोटियाँ छीनकर अपने हिस्सेदारों का पेट भरना चाहते हैं...

खन्ना ने अधीर होकर कहा—लेकिन हमारे सभी हिस्सेदार तो धनी नहीं

हैं। कितनों ही ने अपना सर्वस्व इसी मिल की भेंट कर दिया है और इसके नफ़े के सिवा उनके जीवन का कोई आधार नहीं है।

मेहता ने इस भाव से जवाब दिया, जैसे इस दलील का उनकी नज़रों में कोई मूल्य नहीं है—जो आदमी किसी व्यापार में हिस्सा लेता है, वह इतना दरिद्र नहीं होता कि उसके नफ़े ही को जीवन का आधार समझे। हो सकता है कि नफ़ा कम मिलने पर उसे अपना एक नौकर कम कर देना पड़े या उसके मक्खन और फलों का बिल कम हो जाय; लेकिन वह नंगा या भूखा न रहेगा। जो अपनी जान खपाते हैं उनका हक उन लोगों से ज़्यादा है, जो केवल रुपया लगाते हैं।

यही बात पंडित ओंकारनाथ ने कही थी। मिर्ज़ा खुर्शेद ने भी यही सलाह दी थी। यहाँ तक कि गोविन्दी ने भी मजूरों ही का पक्ष लिया था; पर खन्नाजी ने उन लोगों की परवा न की थी, लेकिन मेहता के मुँह से वही बात सुनकर वह प्रभावित हो गये। ओंकारनाथ को वह स्वार्थी समझते थे, मिर्ज़ा खुर्शेद को ग़ैरज़िम्मेदार और गोविन्दी को अयोग्य। मेहता की बात में चरित्र, अध्ययन और सद्भाव की शक्ति थी।

सहसा मेहता ने पूछा—आपने अपनी देवीजी से भी इस विषय में राय ली?

खन्ना ने सकुचाते हुए कहा—हाँ, पूछा था।

'उनकी क्या राय थी?'

'वही जो आपकी है।'

'मुझे यही आशा थी। और आप उस विदुषी को अयोग्य समझते हैं।'

उसी वक्त मालती आ पहुँची और खन्ना को देखकर बोली—अच्छा, आप विराज रहे हैं? मैंने मेहताजी की आज दावत की है। सभी चीज़ें अपने हाथ से पकाई हैं। आपको भी नेवता देती हूँ। गोविन्दी देवी से आपका यह अपराध क्षमा करा दूँगी।

खन्ना को कुतूहल हुआ। अब मालती अपने हाथों से खाना पकाने लगी है! मालती! वही मालती, जो खुद कभी अपने जूते न पहनती थी, जो खुद कभी बिजली का बटन तक न दबाती, विलास और विनोद ही जिसका जीवन था।

मुस्कराकर कहा—अगर आपने पकाया है, तो ज़रूर खाऊँगा। मैं तो कभी सोच ही न सकता था कि आप पाक-कला में भी निपुण हैं।

मालती निःसंकोच-भाव से बोली—इन्होंने मार-मारकर वैद्य बना दिया। इनका हुक्म कैसे टाल सकती। पुरुष देवता ठहरे!

खन्ना ने इस व्यंग्य का आनन्द लेकर मेहता की ओर आँखें मारते हुए कहा—पुरुष तो आपके लिए इतने सम्मान की वस्तु न थी।

मालती झेंपी नहीं। इस संकेत का आशय समझकर जोश-भरे स्वर में बोली—लेकिन अब हो गई है; इसलिए कि मैंने पुरुष का जो रूप अपने परिचितों की परिधि में देखा था, उससे यह कहीं सुन्दर है। पुरुष इतना सुन्दर, इतना कोमल-हृदय···

मेहता ने मालती की ओर दीन-भाव से देखा और बोले—नहीं मालती, मुझ पर दया करो, नहीं मैं यहाँ से भाग जाऊँगा।

इन दिनों जो कोई मालती से मिलता, वह उससे मेहता की तारीफ़ों के पुल बाँध देती, जैसे कोई नवदीक्षित अपने नये विश्वासों का ढिंढोरा पीटता फिरे। सुरुचि का ध्यान भी उसे न रहता। और बेचारे मेहता दिल में कटकर रह जाते थे। वह कड़ी और कड़वी आलोचना तो बड़े शौक से सुनते थे; लेकिन अपनी तारीफ़ सुनकर जैसे बेवकूफ़ बन जाते थे; मुँह ज़रा-सा निकल आता था, जैसे कोई फबती छा गई हो। और मालती उन औरतों में न थी, जो भीतर रह सके। वह बाहर ही रह सकती थी, पहले भी और अब भी, व्यवहार में भी, विचार में मन में कुछ रखना वह न जानती थी। जैसे एक अच्छी साड़ी पाकर वह उसे पहनने के लिए अधीर हो जाती थी, उसी तरह मन में कोई सुन्दर भाव आये, तो वह उसे प्रकट किये बिना चैन न पाती थी।

मालती ने और समीप आकर उनकी पीठ पर हाथ रखकर मानो उनकी रक्षा करते हुए कहा—अच्छा भागो नहीं, अब कुछ न कहूँगी। मालूम होता है, तुम्हें अपनी निन्दा ज़्यादा पसन्द है। तो निन्दा ही सुनो—खन्नाजी, यह महाशय मुझ पर अपने प्रेम का जाल···

शक्कर-मिल की चिमनी यहाँ से साफ़ नज़र आती थी। खन्ना ने उसकी तरफ़ देखा। वह चिमनी खन्ना के कीर्तिस्तम्भ की भाँति आकाश में सिर उठाये खड़ी थी। खन्ना की आँखों में अभिमान चमक उठा। इसी वक्त उन्हें मिल के दफ़्तर में जाना है। वहाँ डायरेक्टरों की एक अर्जेन्ट मीटिंग करनी होगी और इस परिस्थिति को उन्हें समझाना होगा और इस समस्या को हल करने का उपाय भी बतलाना होगा।

मगर चिमनी के पास यह धुआँ कहाँ से उठ रहा है। देखते-देखते सारा आकाश बैलून की भाँति धुएँ से भर गया। सबों ने सशंक होकर उधर देखा। कहीं आग तो नहीं लग गई? आग ही मालूम होती है।

सहसा सामने सड़क पर हज़ारों आदमी मिल की तरफ़ दौड़े जाते नज़र आये। खन्ना ने खड़े होकर ज़ोर से पूछा—तुम लोग कहाँ दौड़े जा रहे हो?

एक आदमी ने रुककर कहा—अजी शक्कर-मिल में आग लग गई! आप देख नहीं रहे हैं?

खन्ना ने मेहता की ओर देखा और मेहता ने खन्ना की ओर। मालती दौड़ी हुई बँगले में गई और अपने जूते पहन आई। अफ़सोस और शिकायत करने का अवसर न था। किसी के मुँह से एक बात न निकली। खतरे में हमारी चेतना अन्तर्मुखी हो जाती है। खन्ना की कार खड़ी थी ही। तीनों आदमी घबराये हुए आकर बैठे और मिल की तरफ़ भागे। चौरस्ते पर पहुँचे, तो देखा, सारा शहर मिल की ओर उमड़ा चला आ रहा है। आग में आदमियों को खींचने का जादू है। कार आगे न बढ़ सकी।

मेहता ने पूछा—आग-बीमा तो करा लिया था न?

खन्ना ने लम्बी साँस खींचकर कहा—कहाँ भाई, अभी तो लिखा-पढ़ी हो रही थी। क्या जानता था, यह आफ़त आनेवाली है।

कार वहीं राम-आसरे छोड़ दी गई और तीनों आदमी भीड़ चीरते हुए मिल के सामने जा पहुँचे। देखा तो अग्नि का एक सागर आकाश में उमड़ रहा था। अग्नि की उन्मत्त लहरें एक पर एक, दाँत पीसती थीं, जीभ लपकाती थीं जैसे आकाश को भी निगल जायँगी। उस अग्नि-समुद्र के नीचे ऐसा धुआँ छाया था, मानो सावन की घटा कालिख में नहाकर नीचे उतर आई हो। उसके ऊपर जैसे आग का थरथराता हुआ, उबलता हुआ, हिमाचल खड़ा था। हाते में लाखों आदमियों की भीड़ थी, पुलीस भी थी, फ़ायर-ब्रिग्रेड भी, सेवा-समितियों के सेवक भी; पर सब-के-सब आग की भीषणता से मानो शिथिल हो गये हों। फ़ायर-ब्रिग्रेड के छींटे उस अग्नि-सागर में जाकर जैसे बुझ जाते थे। ईंटें जल रही थीं, लोहे के गर्डर जल रहे थे और पिघली हुई शक्कर के परनाले चारों तरफ़ बह रहे थे। और तो और, ज़मीन से भी ज्वाला निकल रही थी।

दूर से तो मेहता और खन्ना को यह आश्चर्य हो रहा था कि इतने आदमी खड़े तमाशा क्यों देख रहे हैं, आग बुझाने में मदद क्यों नहीं करते; मगर अब इन्हें भी ज्ञात हुआ कि तमाशा देखने के सिवा और कुछ करना अपने वश से बाहर है। मिल की दीवारों से पचास गज़ के अन्दर जाना जान-जोखिम था। ईंट और पत्थर के टुकड़े चटाक-चटाक टूटकर उछल रहे थे। कभी-कभी हवा का रुख इधर हो जाता था, तो भगदड़ पड़ जाती थी।

ये तीनों आदमी भीड़ के पीछे खड़े थे। कुछ समझ में न आता था, क्या करें। आखिर आग लगी कैसे? और इतनी जल्द फैल कैसे गई? क्या पहले किसी ने देखा ही नहीं? या देखकर भी बुझाने का प्रयास न किया? इस तरह के प्रश्न सभी के मन में उठ रहे थे; मगर वहाँ पूछें किससे, मिल के कर्मचारी होंगे तो ज़रूर; लेकिन उस भीड़ में उनका पता मिलना कठिन था।

सहसा हवा का इतना तेज़ झोंका आया कि आग की लपटें नीची होकर इधर लपकीं, जैसे समुद्र में ज्वार आ गया हो। लोग सिर पर पाँव रखकर भागे; एक दूसरे पर गिरते, रेलते, जैसे कोई शेर झपटा आता हो। अग्नि-ज्वालाएँ जैसे सजीव हो गई थीं, सचेष्ट भी, जैसे कोई शेषनाग अपने सहस्र मुख से आग फुँकार रहा हो। कितने ही आदमी तो इस रेले में कुचल गये। खन्ना मुँह के बल गिर पड़े, मालती को मेहताजी दोनों हाथों से पकड़े हुए थे, नहीं ज़रूर कुचल गई होतीं। तीनों आदमी हाते की दीवार के पास एक इमली के पेड़ के नीचे आकर रुके। खन्ना एक प्रकार की चेतना-शून्य तन्मयता से मिल की चिमनी की ओर टकटकी लगाये खड़े थे।

मेहता ने पूछा—आपको ज़्यादा चोट तो नहीं आई?

खन्ना ने कोई जवाब न दिया। उसी तरफ़ ताकते रहे। उनकी आँखों में वह शून्यता थी, जो विक्षिप्तता का लक्षण है।

मेहता ने उनका हाथ पकड़कर फिर पूछा—हम लोग यहाँ व्यर्थ खड़े हैं, मुझे भय होता है, आपको चोट ज़्यादा आ गई। आइए, लौट चलें।

खन्ना ने उनकी तरफ़ देखा और जैसे सनक में बोले—जिनकी यह हरकत है, उन्हें मैं ख़ूब जानता हूँ। अगर उन्हें इसी में सन्तोष मिलता है, तो भगवान् उनका भला करें। मुझे कुछ परवा नहीं, कुछ परवा नहीं! कुछ परवा नहीं! मैं आज

चाहूँ, तो ऐसी नई मिल खड़ी कर सकता हूँ। जी हाँ, बिल्कुल नई मिल खड़ी कर सकता हूँ। ये लोग मुझे क्या समझते हैं ? मिल ने मुझे नहीं बनाया, मैंने मिल को बनाया। और मैं फिर बना सकता हूँ; मगर जिनकी यह हरकत है, उन्हें मैं खाक में मिला दूँगा। मुझे सब मालूम है, रत्ती-रत्ती मालूम है।

मेहता ने उनका चेहरा और उनकी चेष्टा देखी और घबराकर बोले—चलिए! आपको घर पहुँचा दूँ। आपकी तबीयत अच्छी नहीं है।

खन्ना ने कहकहा मारकर कहा—मेरी तबीयत अच्छी नहीं है! इसलिए कि मिल जल गई। ऐसी मिलें मैं चुटकियों में खोल सकता हूँ। मेरा नाम खन्ना है, चन्द्रप्रकाश खन्ना! मैंने अपना सब कुछ इस मिल में लगा दिया। पहली मिल में हमने २०% नफ़ा दिया। मैंने प्रोत्साहित होकर यह मिल खोला था। इसमें आधे रुपये मेरे हैं। मैंने बैंक के दो लाख इस मिल में लगा दिये। मैं एक घण्टा नहीं, आध घण्टा पहले, दस लाख का आदमी था। जी हाँ, दस लाख; मगर इस वक्त फ़ाके-मस्त हूँ—नहीं दिवालिया हूँ। मुझे बैंक को दो लाख देना है। जिस मकान में रहता हूँ वह अब मेरा नहीं है। जिस बर्तन में खाता हूँ, वह भी अब मेरा नहीं है। बैंक से मैं निकाल दिया जाऊँगा। जिस खन्ना को देखकर लोग जलते थे, वह खन्ना अब धूल में मिल गया है। समाज में अब मेरा कोई स्थान नहीं है, मेरे मित्र मुझे अपने विश्वास का पात्र नहीं, दया का पात्र समझेंगे। मेरे शत्रु मुझसे जलेंगे नहीं, मुझ पर हँसेंगे। आप नहीं जानते मिस्टर मेहता, मैंने अपने सिद्धान्तों की कितनी हत्या की है। कितनी रिश्वतें दी हैं, कितनी रिश्वतें ली हैं। किसानों की ऊख तौलने के लिए कैसे आदमी रखे, कैसे नक़ली बाट रखे। क्या कीजिएगा, यह सब सुनकर; लेकिन खन्ना अपनी यह दुर्दशा कराने के लिए क्यों ज़िन्दा रहे। जो कुछ होना है हो, दुनिया जितना चाहे हँसे, मित्र लोग जितना चाहें अफ़सोस करें, लोग जितनी गालियाँ देना चाहें दें। खन्ना अपनी आँखों से देखने और अपने कानों से सुनने के लिए, जीता न रहेगा। वह बेहया नहीं, बेग़ैरत नहीं है!

यह कहते-कहते खन्ना दोनों हाथों से सिर पीटकर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे।

मेहता ने उन्हें छाती से लगाकर दुःखित स्वर में कहा—खन्नाजी, ज़रा धीरज से काम लीजिए। आप समझदार होकर दिल इतना छोटा करते हैं! दौलत से आदमी को जो सम्मान मिलता है, वह उसका सम्मान नहीं, उसकी दौलत

का सम्मान है। आप निर्धन रहकर भी मित्रों के विश्वास-पात्र रह सकते हैं और शत्रुओं के भी; बल्कि तब कोई आपका शत्रु रहेगा ही नहीं। आइए, घर चलें। ज़रा आराम कर लेने से चित्त शान्त हो जायगा।

खन्ना ने कोई जवाब न दिया। तीनों आदमी चौरस्ते पर आये। कार खड़ी थी। दस मिनट में खन्ना की कोठी पर पहुँच गये।

खन्ना ने उतरकर शान्त-स्वर में कहा—कार आप ले जायँ। अब मुझे इसकी ज़रूरत नहीं है।

मालती और मेहता भी उतर पड़े। मालती ने कहा—तुम चलकर आराम से लेटो, हम बैठे गप शप करेंगे; घर जाने की तो ऐसी कोई जल्दी नहीं है।

खन्ना ने कृतज्ञता से उसकी ओर देखा और करुण-कण्ठ से बोले—मुझसे जो अपराध हुए हैं, उन्हें क्षमा कर देना मालती! तुम और मेहता, बस तुम्हारे सिवा संसार में मेरा कोई नहीं है। मुझे आशा है, तुम मुझे अपनी नज़रों से न गिराओगी। शायद दस-पाँच दिन में यह कोठी भी छोड़नी पड़े। क़िस्मत ने कैसे धोखा दिया!

मेहता ने कहा—मैं आपसे सच कहता हूँ खन्नाजी, आज मेरी नज़रों में आपकी जो इज़्ज़त है वह कभी न थी।

तीनों आदमी कमरे में दाखिल हुए। द्वार खुलने की आहट पाते ही गोविन्दी भीतर से आकर बोली—क्या आप लोग वहीं से आ रहे हैं? महाराज तो बड़ी बुरी खबर लाया।

खन्ना के मन में ऐसा प्रबल, न रुकनेवाला, तूफ़ानी आवेश उठा कि गोविन्दी के चरणों पर गिर पड़ें, और उसे आँसुओं से धो दें। भारी गले से बोले—हाँ, प्रिये, हम तबाह हो गये।

उनकी निर्जीव, निराश, आहत आत्मा सान्त्वना के लिए विकल हो रही थी; सच्ची, स्नेह में डूबी हुई सान्त्वना के लिए, उस रोगी की भाँति जो जीवन-सूत्र क्षीण हो जाने पर भी वैद्य के मुख की ओर आशा-भरी आँखों से ताक रहा हो। वही गोविन्दी जिस पर उन्होंने हमेशा ज़ुल्म किया, जिसका हमेशा अपमान किया, जिससे हमेशा बेवफ़ाई की, जिसे सदैव जीवन का भार समझा, जिसकी मृत्यु की सदैव कामना करते रहे, वही इस समय जैसे अंचल में आशीर्वाद और मंगल

और अभय लिये उन पर बार रही थी, जैसे उन चरणों में ही उसके जीवन का स्वर्ग हो, जैसे वह उनके अभागे मस्तक पर हाथ रखकर ही उनकी प्राणहीन धमनियों में फिर रक्त का संचार कर देगी। मन की इस दुर्बल दशा में, इस घोर विरक्ति में, मानो वह उन्हें कण्ठ से लगा लेने के लिए खड़ी थी। नौका पर बैठे हुए जल-विहार करते समय हम जिन चट्टानों को घातक समझते हैं, और चाहते हैं कि कोई इन्हें खोदकर फेंक देता, उन्हीं से नौका टूट जाने पर हम चिमट जाते हैं।

गोविन्दी ने उन्हें एक सोफ़ा पर बैठा दिया और स्नेह-कोमल स्वर में बोली—तो तुम इतना दिल छोटा क्यों करते हो? धन के लिए, जो सारे पाप की जड़ है? उस धन से हमें क्या सुख था? सवेरे से आधी रात तक एक-न-एक झंझट—आत्मा का सर्वनाश! लड़के तुमसे बात करने को तरस जाते थे, तुम्हें सम्बन्धियों को पत्र लिखने तक की फ़ुरसत न मिलती थी। क्या बड़ी इज़्ज़त थी? क्योंकि दुनिया आजकल धन की पूजा करती चली आई है। उसे तुमसे कोई प्रयोजन नहीं। जब तक तुम्हारे पास लक्ष्मी है, तुम्हारे सामने पूँछ हिलायेगी, कल उतनी ही भक्ति से दूसरों के द्वार पर सिजदे करेगी। तुम्हारी तरफ़ ताकेगी भी नहीं। सत्पुरुष धन के आगे सिर नहीं झुकाते। वह देखते हैं, तुम क्या हो; अगर तुममें सचाई है, न्याय है, त्याग है, पुरुषार्थ है, तो वे तुम्हारी पूजा करेंगे। नहीं तुम्हें समाज का लुटेरा समझकर मुँह फेर लेंगे; बल्कि तुम्हारे दुश्मन हो जायँगे! मैं गलत तो नहीं कहती मेहताजी?

मेहता ने मानो स्वर्ग-स्वप्न से चौंककर कहा—गलत! आप वही कह रही हैं, जो संसार के महान् पुरुषों ने जीवन का तात्त्विक अनुभव करने के बाद कहा है। जीवन का सच्चा आधार यही है।

गोविन्दी ने मेहता को सम्बोधित करके कहा—धनी कौन होता है, इसका कोई विचार नहीं करता। वही जो अपने कौशल से दूसरों को बेवकूफ़ बना सकता है···

खन्ना ने बात काटकर कहा—नहीं गोविन्दी, धन कमाने के लिए अपने में संस्कार चाहिए। केवल कौशल में धन नहीं मिलता। इसके लिए भी त्याग और तपस्या करनी पड़ती है। शायद इतनी साधना में ईश्वर भी मिल जाय। हमारी सारी आत्मिक और बौद्धिक और शारीरिक शक्तियों के सामंजस्य का नाम धन है।

गोविन्दी ने विपक्षी न बनकर मध्यस्थ के भाव से कहा—मैं मानती हूँ कि धन के लिए थोड़ी तपस्या नहीं करनी पड़ती; लेकिन फिर भी हमने उसे जीवन में जितने महत्त्व की वस्तु समझ रखा है, उतना महत्त्व उसमें नहीं है। मैं तो खुश हूँ कि तुम्हारे सिर से यह बोझ टला। अब तुम्हारे लड़के आदमी होंगे, स्वार्थ और अभिमान के पुतले नहीं। जीवन का सुख दूसरों को सुखी करने में है, उनको लूटने में नहीं। बुरा न मानना, अब तक तुम्हारे जीवन का अर्थ था आत्मसेवा, भोग और विलास। दैव ने तुम्हें उस साधन से वंचित करके तुम्हें ज़्यादा ऊँचे और पवित्र जीवन का रास्ता खोल दिया है। यह सिद्धि प्राप्त करने में अगर कुछ कष्ट भी हो, तो उसका स्वागत करो। तुम इसे विपत्ति समझते ही क्यों हो? क्यों नहीं समझते, तुम्हें अन्याय से लड़ने का अवसर मिला है। मेरे विचार में तो पीड़क होने से पीड़ित होना कहीं श्रेष्ठ है। धन खोकर अगर हम अपनी आत्मा को पा सकें, तो यह कोई महँगा सौदा नहीं है। न्याय के सैनिक बनकर लड़ने में जो गौरव, जो उल्लास है, क्या उसे इतनी जल्द भूल गये?

गोविन्दी के पीले, सूखे, मुख पर तेज की ऐसी चमक थी, मानो उसमें कोई विलक्षण शक्ति आ गई हो, मानो उसकी सारी मूक साधना प्रगल्भ हो उठी हो।

मेहता उसकी ओर भक्ति-पूर्ण नेत्रों से ताक रहे थे, खन्ना सिर झुकाये इसे दैवी प्रेरणा समझने की चेष्टा कर रहे थे और मालती मन में लज्जित थी। गोविन्दी के विचार इतने ऊँचे, उसका हृदय इतना विशाल और उसका जीवन इतना उज्ज्वल है!

३६

धनिया उन औरतों में न थी, जो नेकी करके दरिया में डाल देती है। उसने नेकी की है, तो उसका खूब ढिंढोरा पीटेगी और उससे जितना यश मिल सकता है, उससे कुछ ज़्यादा ही पाने के लिए हाथ-पाँव मारेगी। ऐसे आदमी को यश के बदले अपयश और बदनामी ही मिलती है। नेकी न करना बदनामी की बात नहीं। अपनी इच्छा नहीं है, या सामर्थ्य नहीं है। इसके लिए कोई हमें बुरा नहीं कह सकता; मगर जब हम नेकी करके उसका एहसान जताने लगते हैं, तो वही जिसके साथ हमने नेकी की, हमारा शत्रु हो जाता है, और हमारे एहसान को मिटा देना चाहता है। वही नेकी अगर करनेवाले के दिल में रहे, तो नेकी है, बाहर निकल

आये तो बदी है, नोहरी चारों ओर कहती फिरती थी—बेचारा होरी बड़ी मुसीबत में था, बेटी के ब्याह के लिए जमीन रेहन रख रहा था। मैंने उसकी यह दशा देखी, तो मुझे दया आई। धनिया से तो जी जलता था, वह राँड़ तो मारे घमण्ड के धरती पर पाँव ही नहीं रखती। बेचारा होरी चिन्ता से घुला जाता था मैंने सोचा, इस संकट में इसकी मदद कर दूँ। आखिर आदमी ही तो आदमी के काम आता है। और होरी तो अब कोई गैर नहीं है, मानो चाहे न मानो, वह तुम्हारे नातेदार हो चुके। रुपए निकालकर दे दिये। नहीं, लड़की अब तक बैठी होती।

धनिया भला यह जीट कब सुनने लगी थी। रुपये खैरात दिये थे। बड़ी देने-वाली! सूद महाजन भी लेगा, तुम भी लोगी। एहसान काहे का। दूसरों को देती, सूद की जगह मूल भी गायब हो जाता, हमने लिया है, तो हाथ में रुपये आते ही नाक पर रख देंगे। हमीं थे कि तुम्हारे घर का बिष उठाके पी गये, और कभी मुँह पर नहीं लाये। कोई यहाँ द्वार पर नहीं खड़ा होने देता था। हमने तुम्हारी मरजाद बना दिया, तुम्हारे मुँह की लाली रख ली।

रात के दस बज गये थे। सावन की अँधेरी घटा छाई थी। सारे गाँव में अन्धकार था। होरी ने भोजन करके तमाखू पिया और सोने जा रहा था कि भोला आकर खड़ा हो गया।

होरी ने पूछा—कैसे चले भोला महतो! जब इसी गाँव में रहना है, तो क्यों अलग छोटा-सा घर नहीं बना लेते? गाँव में लोग कैसी-कैसी कुत्सा उड़ाया करते हैं, क्या यह तुम्हें अच्छा लगता है? बुरा न मानना, तुमसे सम्बन्ध हो गया है, इसलिए तुम्हारी बदनामी नहीं सुनी जाती, नहीं मुझे क्या करना था!

धनिया उसी समय लोटे का पानी लेकर होरी के सिरहाने रखने आई। सुनकर बोली—दूसरा मर्द होता, तो ऐसी औरत का सिर काट लेता।

होरी ने डाटा—क्यों बेबात की बात करती है। पानी रख दे और जा सो। आज तू ही कुराह चलने लगे, तो मैं तेरा सिर काट लूँगा? काटने देगी?

धनिया उसे पानी का एक छींटा मारकर बोली—कुराह चले तुम्हारी बहन, मैं क्यों कुराह चलने लगी। मैं तो दुनिया की बात कहती हूँ, तुम मुझे गालियाँ देने लगे। अब मुँह मीठा हो गया होगा। औरत चाहे जिस रास्ते जाय, मर्द टुकुर-टुकुर देखता रहे! ऐसे मर्द को मैं मर्द नहीं कहती।

होरी दिल में कटा जाता था। भोला उससे अपना दुःख-दर्द कहने आया होगा। वह उलटे उसी पर टूट पड़ी। ज़रा गर्म होकर बोला—तू जो सारे दिन अपने ही मन की किया करती है, तो मैं तेरा क्या बिगाड़ लेता हूँ। कुछ कहता हूँ तो काटने दौड़ती है। यही सोच।

धनिया ने लल्लो-चप्पो करना न सीखा था, बोली—औरत घी का घड़ा लुढ़का दे, घर में आग लगा दे, मर्द सह लेगा; लेकिन उसका कुराह चलना कोई मर्द न सहेगा।

भोला दुःखित-स्वर में बोला—तू बहुत ठीक कहती है धनिया! बेसक मुझे उसका सिर काट लेना चाहिए था, लेकिन अब उतना पौरुख तो नहीं रहा। तू चलकर समझा दे, मैं सब कुछ करके हार गया।

'जब औरत को बस में रखने का बूता न था, तो सगाई क्यों की थी? इसी छीछालेदर के लिए? क्या सोचते थे, वह आकर तुम्हारे पाँव दबायेगी, तुम्हें चिलम भर-भर पिलायेगी और जब तुम बीमार पड़ोगे तो तुम्हारी सेवा करेगी? तो ऐसा वही औरत कर सकती है, जिसने तुम्हारे साथ जवानी का सुख उठाया हो। मेरी समझ में यही नहीं आता कि तुम उसे देखकर लट्टू कैसे हो गये। कुछ देख-भाल तो कर लिया होता कि किस स्वभाव की है, किस रंग-ढंग की है। तुम तो भूखे सियार की तरह टूट पड़े। अब तो तुम्हारा धरम यही है कि गँड़ासे से उसका सिर काट लो। फाँसी ही तो पाओगे। फाँसी इस छीछालेदर से अच्छी!

भोला के खून में कुछ स्फूर्ति आई। बोला—तो तुम्हारी यही सलाह है?

धनिया बोली—हाँ, मेरी यही सलाह है। अब सौ-पचास बरस तो जोओगे नहीं। समझ लेना इतनी ही उमिर थी।

होरी ने अबकी ज़ोर से फटकारा—चुप रह, बड़ी आई है वहाँ से सतवन्ती बनके। जबरदस्ती चिड़िया तक तो पिंजरे में रहती नहीं, आदमी क्या रहेगा। तुम उसे छोड़ दो भोला और समझ लो, मर गई और जाकर अपने बाल-बच्चों में आराम से रहो। दो रोटी खाओ और राम का नाम लो। जवानी के सुख अब गये। वह औरत चञ्चल है, बदनामी और जलन के सिवा तुम उससे कोई सुख न पाओगे।

भोला नोहरी को छोड़ दे? असम्भव! नोहरी इस समय भी उसकी ओर रोष-

भरी आँखों से तरेरती हुई जान पड़ती थी; लेकिन नहीं, भोला अब उसे छोड़ ही देगा। जैसा कर रही है, उसका फल भोगे।

आँखों में आँसू आ गये। बोला—होरी भैया, इस औरत के पीछे मेरी जितनी साँसत हो रही है, मैं ही जानता हूँ। इसी के पीछे कामता से मेरी लड़ाई हुई। बुढ़ापे में यह दाग भी लगना था, वह लग गया। मुझे रोज ताना देती है कि तुम्हारी तो लड़की निकल गई। मेरी लड़की निकल गई, चाहे भाग गई; लेकिन अपने आदमी के साथ पड़ी तो है, उसके सुख-दुःख को साथिन तो है। इसकी तरह तो मैंने औरत ही नहीं देखी। दूसरों के साथ तो हँसती है, मुझे देखा तो कुप्पे-सा मुँह फुला लिया। मैं गरीब आदमी ठहरा, तीन-चार आने रोज की मजूरी करता हूँ। दूध-दही, माँस-मछली, रबड़ी-मलाई कहाँ से लाऊँ!

भोला यहाँ से प्रतिज्ञा करके अपने घर गये। अब बेटों के साथ रहेंगे, बहुत धक्के खा चुके; लेकिन दूसरे दिन प्रातःकाल होरी ने देखा, तो भोला दुलारी सहुआइन की दुकान से तमाखू लिये चले जा रहे थे।

होरी ने पुकारना उचित न समझा। आसक्ति में आदमी अपने वश में नहीं रहता। वहाँ से आकर धनिया से बोला—भोला तो अभी वहीं है। नोहरी ने सचमुच इन पर कोई जादू कर दिया है।

धनिया ने नाक सिकोड़कर कहा—जैसी बेहया वह है, वैसा ही बेहया यह। ऐसे मर्द को तो चुल्लू-भर पानी में डूब मरना चाहिए। अब वह सेखी न जाने कहाँ गई। झुनिया यहाँ आई, तो उसके पीछे डण्डा लिये फिर रहे थे। इज्जत बिगड़ी जाती थी। अब इज्जत नहीं बिगड़ती!

होरी को भोला पर दया आ रही थी। बेचारा इस कुलटा के फेर में पड़कर अपनी जिन्दगी बरबाद किये डालता है। छोड़कर जाय भी, तो कैसे! स्त्री को इस तरह छोड़कर जाना क्या सहज है? यह चुड़ैल उसे वहाँ भी तो चैन से न बैठने देगी! कहीं पंचायत करेगी, कहीं रोटी-कपड़े का दावा करेगी। अभी तो गाँव ही के लोग जानते हैं। किसी को कुछ कहते संकोच होता है। कनफुसकियाँ करके ही रह जाते हैं। तब तो दुनिया भी भोला ही को बुरा कहेगी। लोग यही तो कहेंगे, कि जब मर्द ने छोड़ दिया, तो बेचारी अबला क्या करे। मर्द बुरा हो, तो औरत की गर्दन काट लेगा। औरत बुरी हो, तो मर्द के मुँह में कालिख लगा देगी।

इसके दो महीने बाद एक दिन गाँव में यह ख़बर फैली कि नोहरी ने मारे जूतों के भोला की चाँद गञ्जी कर दी।

वर्षा समाप्त हो गई थी और रबी बोने की तैयारियाँ हो रही थीं। होरी की ऊख तो नीलाम हो गई थी। ऊख के बीज के लिए उसे रुपये न मिले और ऊख न बोई गई। उधर दाहिना बैल भी बैठाऊँ हो गया था और एक नये बैल के बिना काम न चल सकता था। पुनिया का एक बैल नाले में गिरकर मर गया था, तबसे और भी अड़चन पड़ गई थी। एक दिन पुनिया के खेत में हल जाता, एक दिन होरी के खेत में। खेतों की जुताई जैसी होनी चाहिए, वैसी न हो पाती थी।

होरी हल लेकर खेत में गया, मगर भोला की चिन्ता बनी हुई थी। उसने अपने जीवन में कभी यह न सुना था कि किसी स्त्री ने अपने पति को जूते से मारा हो। जूतों से क्या, थप्पड़ या घूँसे से मारने की भी कोई घटना उसे याद न आती थी; और आज नोहरी ने भोला को जूतों से पीटा और सब लोग तमाशा देखते रहे। इस औरत से कैसे उस अभागे का गला छूटे। अब तो भोला को कहीं डूब ही मरना चाहिए। जब ज़िन्दगी में बदनामी और दुर्दशा के सिवा और कुछ न हो, तो आदमी का मर जाना ही अच्छा। कौन भोला के नाम को रोनेवाला बैठा है! बेटे चाहे क्रिया-करम कर दें; लेकिन लोक-लाज के बस। आँसू किसी की आँख में न आयेगा। तिरसना के बस में पड़कर आदमी इस तरह अपनी जिन्दगी चौपट करता है। जब कोई रोनेवाला ही नहीं, तो फिर जिन्दगी का क्या मोह और मरने से क्या डरना!

एक यह नोहरी है और एक यह चमारिन है सिलिया! देखने-सुनने में उससे लाख दरजे अच्छी। चाहे तो दो को खिलाकर खाये और राधिका बनी घूमे; लेकिन मजूरी करती है, भूखों मरती है और मतई के नाम पर बैठी है, और वह निर्दयी बात भी नहीं पूछता। कौन जाने, धनिया मर गई होती, तो आज होरी की भी यही दसा होती। उसकी मौत की कल्पना ही से होरी को रोमांच हो उठा। धनिया की मूर्ति मानसिक नेत्रों के सामने आकर खड़ी हो गई—सेवा और त्याग की देवी; ज़बान की तेज़, पर मोम जैसा हृदय; पैसे-पैसे के पीछे प्राण देनेवाली, पर मर्यादा-रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार। जवानी में वह कम रूपवती । नोहरी उसके सामने क्या है। चलती थी, तो रानी-सी लगती थी। जो

देखता था, देखता ही रह जाता था। यह पटेश्वरी और झिंगुरी तब जवान थे। दोनों धनिया को देखकर छाती पर हाथ रख लेते थे। द्वार के सौ-सौ चक्कर लगाते थे। होरी उनकी ताक में रहता था; मगर छेड़ने का कोई बहाना न पाता था। उन दिनों घर में खाने-पीने को बड़ी तंगी थी। पाला पड़ गया था और खेतों में भूसा तक न हुआ था। लोग झड़बेरियाँ खा-खाकर दिन काटते थे। होरी को क़हत के कैम्प में काम करने जाना पड़ता था। छः पैसे रोज़ मिलते थे। धनिया घर में अकेली ही रहती थी; लेकिन कभी किसी ने उसे किसी छैला की ओर ताकते नहीं देखा। पटेश्वरी ने एक बार कुछ छेड़ की थी। उसका ऐसा मुँह तोड़ जवाब दिया कि अब तक नहीं भूले।

सहसा उसने मातादीन को अपनी ओर आते देखा। कसाई कहीं का, कैसा तिलक लगाये हुए है, मानो भगवान् का असली भगत है। रँगा हुआ सियार! ऐसे बाम्हन को पालागन कौन करे।

मातादीन ने समीप आकर कहा—तुम्हारा दाहिना तो बूढ़ा हो गया होरी, अबकी सिंचाई में न ठहरेगा। कोई पाँच साल हुए होंगे इसे लाये?

होरी ने दायें बैल की पीठ पर हाथ रखकर कहा—कैसा पाँचवाँ, यह आठवाँ चल रहा है भाई! जी तो चाहता है, इसे पिंसिन दे दूँ; लेकिन किसान और किसान के बैल इनको जमराज ही पिंसिन दे, तो मिले। इसकी गर्दन पर जुआ रखते मेरा मन कचोटता है। बेचारा सोचता होगा, अब भी छुट्टी नहीं, अब क्या मेरा हाड़ जोतेगा क्या; लेकिन अपना कोई काबू नहीं। तुम कैसे चले? अब तो जी अच्छा है?

मातादीन इधर एक महीने से मलेरिया ज्वर में पड़ा हुआ था। एक दिन तो उसकी नाड़ी छूट गई थी। चारपाई से नीचे उतार दिया गया था। तबसे उसके मन में यह प्रेरणा हुई थी कि सिलिया के साथ अत्याचार करने का उसे यह दण्ड मिला है। जब उसने सिलिया को घर से निकाला, तब वह गर्भवती थी। उसे तनिक भी दया न आई। पूरा गर्भ लेकर भी वह मजूरी करती रही। अगर धनिया ने उस पर दया न की होती, तो मर गई होती। कैसी-कैसी मुसीबतें झेलकर जी रही है। मजूरी भी तो इस दशा में नहीं कर सकती। अब लज्जित और द्रवित होकर वह सिलिया को होरी के हस्ते दो रुपये देने आया है; अगर होरी उसे यह रुपये दे दे तो वह उसका बहुत उपकार मानेगा।

होरी ने कहा—तुम्हीं जाकर क्यों नहीं दे देते?

मातादीन ने दीन-भाव से कहा—मुझे उसके पास मत भेजो होरी महतो! कौन-सा मुँह लेकर जाऊँ? डर भी लग रहा है कि मुझे देखकर कहीं फटकार सुनाने लगे। तुम मुझपर इतनी दया करो। अभी मुझसे चला नहीं जाता; लेकिन इसी रुपये के लिए एक जजमान के पास कोसभर दौड़ा गया था। अपनी करनी का फल बहुत भोग चुका। इस बम्हनई का बोझ अब नहीं उठाये उठता। लुक-छिपकर चाहे जितना कुकर्म करो, कोई नहीं बोलता। परतच्छ कुछ नहीं कर सकते, नहीं कुल में कलंक लग जायेगा। तुम उसे समझा देना दादा कि मेरा अपराध क्षमा कर दे। यह धरम का बन्धन बड़ा बड़ा होता है। जिस समाज में जन्मे और पले, उसकी मर्यादा का पालन तो करना ही पड़ता है। और किसी जाति का धरम बिगड़ जाय, उसे कोई बिसेस हानि नहीं होती; बाम्हन का धरम बिगड़ जाय, तो वह कहीं का नहीं रहता। उसका धरम ही उसके पूर्वजों की कमाई है। इसी की वह रोटी खाता है। इस परासचित के पीछे हमारे तीन सौ बिगड़ गये। तो जब बेधरम होकर ही रहना है, तो फिर जो कुछ करना है परतच्छ करूँगा। समाज के नाते आदमी का अगर कुछ धरम है, तो मनुष्य के नाते भी तो उसका कुछ धरम है। समाज-धरम पालने से समाज आदर करता है; मगर मनुष्य-धरम पालने से तो ईश्वर प्रसन्न होता है।

संध्या-समय जब होरी ने सिलिया को डरते-डरते रुपये दिये, तो वह जैसे अपनी तपस्या का वरदान पा गई। दुःख का भार तो वह अकेली उठा सकती थी। सुख का भार तो अकेले नहीं उठता। किसे यह ख़ुश-ख़बरी सुनाये? धनिया से वह अपने दिल की बातें नहीं कह सकती। गाँव में और कोई प्राणी नहीं, जिससे उसकी घनिष्ठता हो। उसके पेट में चूहे दौड़ रहे थे। सोना ही उसकी सहेली थी। सिलिया उससे मिलने के लिए आतुर हो गई। रात-भर कैसे सब्र करे? मन में एक आँधी-सी उठ रही थी। अब वह अनाथ नहीं है। मातादीन ने उसकी बाँह फिर पकड़ ली। जीवन-पथ में उसके सामने अब अँधेरी, बिकराल मुखवाली खाईं नहीं है, लहलहाता हुआ हरा-भरा मैदान है, जिसमें झरने गा रहे हैं और हिरन कुलेलें कर रहे हैं। उसका रूठा हुआ स्नेह आज उन्मत्त हो गया है। मातादीन को उसने मन में कितना पानी पी-पीकर कोसा था। अब वह उनसे क्षमा दान माँगेगी। उसके

सचमुच बड़ी भूल हुई कि उसने उनको सारे गाँव के सामने अपमानित किया। वह तो चमारिन है, जात की हेठी, उसका क्या बिगड़ा। आज दस-बीस लगाकर बिरादरी को रोटी दे-दे, फिर बिरादरी में ले ली जायगी। उन बेचारे का तो सदा के लिए धरम नास हो गया। वह मरजाद अब उन्हें फिर नहीं मिल सकती। वह क्रोध में कितनी अन्धी हो गई थी कि सबसे उनके प्रेम का ढिंढोरा पीटती फिरी। उनका तो धरम भिरष्ट हो गया था, उन्हें तो क्रोध था ही, उसके सिर पर क्यों भूत सवार हो गया? वह अपने ही घर चली जाती, तो कौन बुराई हो जाती। घर में उसे कोई बाँध तो न लेता। देश मातादीन की पूजा इसी लिए तो करता है कि वह नेम-धरम से रहते हैं। वही धरम नष्ट हो गया, तो वह क्यों न उसके ख़ून के प्यासे हो जाते।

ज़रा देर पहले तक उसकी नज़र में सारा दोष मातादीन का था। और अब सारा दोष अपना था। सहृदयता ने सहृदयता पैदा की। उसने बच्चे को छाती से लगाकर ख़ूब प्यार किया। अब उसे देखकर लज्जा और ग्लानि नहीं होती। वह अब केवल उसकी दया का पात्र नहीं। वह अब उसके सम्पूर्ण मातृ-स्नेह और गर्व का अधिकारी है।

कार्तिक की रुपहली चाँदनी प्रकृति पर मधुर संगीत की भाँति छाई हुई थी। सिलिया घर से निकली। वह सोना के पास जाकर यह सुख-संवाद सुनायेगी। अब उससे नहीं रहा जाता। अभी तो साँझ हुई है। डोंगी मिल जायगी। वह क़दम बढ़ाती हुई चली। नदी पर आकर देखा, तो डोंगी उस पार थी। और माँझी का कहीं पता नहीं। चाँद घुलकर जैसे नदी में बहा जा रहा था। वह एक क्षण खड़ी सोचती रही। फिर नदी में घुस पड़ी। नदी में कुछ ऐसा ज़्यादा पानी तो क्या होगा। उस उल्लास के सागर के सामने वह नदी क्या चीज़ थी। पानी पहले तो घुटनों तक था, फिर कमर तक आया, और अन्त में गर्दन तक पहुँच गया। सिलिया डरी, कहीं डूब न जाय। कहीं कोई गढ़ा न पड़ जाय, पर उसने जान पर खेलकर पाँव आगे बढ़ाया। अब वह मँझधार में है। मौत उसके सामने नाच रही है, मगर वह घबड़ाई नहीं है। उसे तैरना आता है। लड़कपन में इसी नदी में वह कितनी बार तैर चुकी है। खड़े-खड़े नदी को पार भी कर चुकी है। फिर भी उसका कलेजा धक्-धक् कर रहा है; मगर पानी कम होने लगा। अब कोई भय नहीं। उसने

जल्दी-जल्दी नदी पार की और किनारे पहुँचकर अपने कपड़े का पानी निचोड़ा और शीत से काँपती आगे बढ़ी। चारों ओर सन्नाटा था। गीदड़ों की आवाज़ भी न सुनाई पड़ती थी; और सोना से मिलने की मधुर कल्पना उसे उड़ाये लिये जाती थी।

मगर उस गाँव में पहुँचकर उसे सोना के घर जाते हुए संकोच होने लगा। मथुरा क्या कहेगा। उसके घरवाले क्या कहेंगे। सोना भी बिगड़ेगी कि इतनी रात गये तू क्यों आई। देहातों में दिन-भर के थके-माँदे किसान सरेशाम ही सो जाते हैं। सारे गाँव में सोता पड़ गया था। मथुरा के घर के द्वार बन्द थे। सिलिया किवाड़ न खुलवा सकी। लोग उसे इस भेस में देखकर क्या कहेंगे। वहीं द्वार पर अलाव में अभी आग चमक रही थी। सिलिया अपने कपड़े सेकने लगी। सहसा किवाड़ खुला और मथुरा ने बाहर निकलकर पुकारा—अरे! कौन बैठा है अलाव के पास?

सिलिया ने जल्दी से अञ्चल सिर पर खींच लिया और समीप आकर बोली—मैं हूँ, सिलिया।

'सिलिया! इतनी रात गये कैसे आई! वहाँ तो सब कुशल है?'

'हाँ, सब कुशल है। जी घबड़ा रहा था। सोचा, चलूँ सबसे भेंट करती आऊँ। दिन को तो छुट्टी ही नहीं मिलती।'

'तो क्या नदी थहाकर आई है?'

'और कैसे आती! पानी कम न था।'

मथुरा उसे अन्दर ले गया। बरोठे में अँधेरा था। उसने सिलिया का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा। सिलिया ने झटके से हाथ छुड़ा लिया और रोष से बोली—देखो मथुरा, मुझे छेड़ोगे, तो मैं सोना से कह दूँगी। तुम मेरे छोटे बहनोई हो, यह समझ लो! मालूम होता है, सोना से मन नहीं पटता।

मथुरा ने उसकी कमर में हाथ डालकर कहा—तुम बहुत निठुर हो सिल्लो? इस बखत कौन देखता है?

'क्या मैं सोना से सुन्दर हूँ। अपने भाग नहीं बखानते कि ऐसी इन्दर की परी पा गये। अब भौंरा बनने को मन चला है। उससे कह दूँ तो तुम्हारा मुँह न देखे।'

मथुरा लम्पट नहीं था। सोना से उसे प्रेम भी था। इस वक्त अँधेरा और एकान्त और सिलिया का यौवन देखकर उसका मन चञ्चल हो उठा था। यह तम्बोह पाकर होश में आ गया। सिलिया को छोड़ता हुआ बोला—तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ सिल्लो, उससे न कहना। अभी जो सजा चाहो, दे लो।

सिल्लो को उस पर दया आ गई। धीरे से उसके मुँह पर चपत जमाकर बोली—इसकी सजा यही है कि फिर मुझसे सरारत न करना, न और किसी से करना, नहीं सोना तुम्हारे हाथ से निकल जायगी।

'मैं कसम खाता हूँ सिल्लो, अब कभी ऐसा न होगा।'

उसकी आवाज़ में याचना थी। सिल्लो का मन आन्दोलित होने लगा। उसकी दया सरस होने लगी।

'और जो करो!'

'तो तुम जो चाहना करना।'

सिल्लो का मुँह उसके मुँह के पास आ गया था, और दोनों की साँस और आवाज़ और देह में कम्पन हो रहा था। सहसा सोना ने पुकारा—किससे बातें करते हो वहाँ?

सिल्लो पीछे हट गई। मथुरा आगे बढ़कर आँगन में आ गया और बोला—सिल्लो तुम्हारे गाँव से आई है।

सिल्लो पीछे-पीछे आकर आँगन में खड़ी हो गई। उसने देखा, सोना यहाँ कितने आराम से रहती है। ओसारी में खाट है। उस पर सुजनी का नर्म बिस्तर बिछा हुआ है; बिल्कुल वैसा ही, जैसा मातादीन की चारपाई पर बिछा रहता था। तकिया भी है, लिहाफ भी है। खाट के नीचे लोटे में पानी रखा हुआ है। आँगन में ज्योत्स्ना ने आइना-सा बिछा रखा है। एक कोने में तुलसी का चबूतरा है, दूसरी ओर जुआर के ठेठों के कई बोझ दीवार से लगाकर रखे हैं। बीच में पुआलों के गड्ढे हैं। समीप ही ओखल है, जिसके पास कूटा हुआ धान पड़ा है। खपरैल पर लौकी की बेल चढ़ी हुई है और कई लौकियाँ ऊपर चमक रही हैं। दूसरी ओर की ओसारी में एक गाय बँधी हुई है। इस खण्ड में मथुरा और सोना सोते हैं। और लोग दूसरे खण्ड में होंगे। सिलिया ने सोचा, सोना का जीवन कितना सुखी है। सोना उठकर आँगन में आ गई थी; मगर सिल्लो से टूटकर गले नहीं मिली।

सिल्लो ने समझा, शायद मथुरा के खड़े रहने के कारण सोना संकोच कर रही है। या कौन जाने उसे अभिमान हो गया हो—सिल्लो चमारिन से गले मिलने में अपना अपमान समझती हो। उसका सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया। इस मिलन से हर्ष के बदले उसे ईर्ष्या हुई। सोना का रङ्ग कितना खुल गया है, और देह कैसी कञ्चन की तरह निखर आई है। गठन भी सुडौल हो गई है। मुख पर गृहणीत्व की गरिमा के साथ युवती की सहास छवि भी है। सिल्लो एक क्षण के लिए जैसे मन्त्र-मुग्ध-सी खड़ी ताकती रह गई। यह वह सोना है, जो सूखी-सी देह लिये, झोंटे खोले इधर-उधर दौड़ा करती थी। महीनों सिर में तेल न पड़ता था। फटे चिथड़े लपेटे फिरती थी। आज अपने घर की रानी है। गले में हँसुली और हुमेल है, कानों में करनफूल, और सोने की बालियाँ, हाथों में चाँदी के चूड़े और कङ्गन। आँखों में काजल है, माँग में सेंदुर। सिलिया के जीवन का स्वर्ग यहीं था, और सोना को वहाँ देखकर वह प्रसन्न न हुई। इसे कितना घमण्ड हो गया है। कहाँ सिलिया के गले में बाँहें डाले घास छीलने जाती थी, और आज सीधे ताकती भी नहीं। उसने सोचा था, सोना उसके गले लिपटकर ज़रा-सा रोयेगी, उसे आदर से बैठायेगी, उसे खाना खिलायेगी; और गाँव और घर की सैकड़ों बातें पूछेगी और अपने नये जीवन के अनुभव बयान करेगी—सोहाग-रात और मधुर मिलन की बातें होंगी। और सोना के मुँह में दही जमा हुआ है। वह यहाँ आकर पछताई।

आख़िर सोना ने रूखे स्वर में पूछा—इतनी रात को कैसे चलीं, सिल्लो?

सिल्लो ने आँसुओं को रोकने की चेष्टा करके कहा—तुमसे मिलने को बहुत जी चाहता था। इतने दिन हो गये, भेंट करने चली आई।

सोना का स्वर और कठोर हुआ—लेकिन आदमी किसी के घर जाता है, तो दिन को कि इतनी रात गये?

वास्तव में सोना को उसका आना बुरा लग रहा था। वह समय उसकी प्रेम-क्रीड़ा और हास-विलास का था, सिल्लो ने उसमें बाधक होकर जैसे उसके सामने से परोसी हुई थाली खींच ली थी।

सिल्लो निःसंज्ञ-सी भूमि की ओर ताक रही थी। धरती क्यों नहीं फट जाती कि वह उसमें समा जाय। इतना अपमान! उसने अपने इतने ही जीवन में बहुत अपमान सहा था, बहुत दुर्दशा देखी थी; लेकिन आज यह फाँस जिस तरह उसके

अन्तःकरण में चुभ गई, वैसी कभी कोई बात न चुभी थी। गुड़ घर के अन्दर मटकों में बन्द रखा हो, तो कितना ही मूसलाधार पानी बरसे कोई हानि नहीं; पर जिस वक्त वह धूप में सूखने के लिए बाहर फैलाया गया हो उस वक्त तो पानी का एक छींटा भी उसका सर्वनाश कर देगा। सिलिया के अन्तः-करण की सारी कोमल भावनाएँ इस वक्त मुँह खोले बैठी हुई थीं कि आकाश से अमृत-वर्षा होगी। बरसा क्या, अमृत के बदले विष, और सिलिया के रोम-रोम में दौड़ गया। सर्प-दंश के समान लहरें आईं। घर में उपवास करके सो रहना और बात है; लेकिन पंगत से उठा दिया जाना तो डूब मरने ही की बात है। सिलिया को यहाँ एक क्षण ठहरना भी असह्य हो गया, जैसे कोई उसका गला दबाये हुए हो। वह कुछ न पूछ सकी। सोना के मन में क्या है, यह वह भाँप रही थी। वह बाँबी में बैठा हुआ साँप कहीं बाहर न निकल आये, इसके पहले ही वह यहाँ से भाग जाना चाहती थी। कैसे भागे, क्या बहाना करे! उसके प्राण क्यों नहीं निकल जाते!

मथुरा ने भण्डारे की कुंजी उठा ली थी, कि सिलिया के जलपान के लिए कुछ निकाल लाये, कर्तव्य विमूढ़-सा खड़ा था। इधर सिल्लो की साँस टँगी हुई थी, मानो सिर पर तलवार लटक रही हो।

सोना की दृष्टि में सबसे बड़ा पाप किसी पुरुष का पर-स्त्री और स्त्री का पर-पुरुष की ओर ताकना था। इस अपराध के लिए उसके यहाँ कोई क्षमा न थी। चोरी, हत्या, जाल, कोई अपराध इतना भीषण न था। हँसी-दिल्लगी को वह बुरा न समझती थी; अगर खुले हुए रूप में हो, छुपे-छिपे की हँसी-दिल्लगी को भी वह हेय समझती थी। छुटपन से ही वह बहुत-सी रीति की बातें जानने और समझने लगी थी। होरी को जब कभी हाट से घर आने में देर हो जाती थी और धनिया को पता लग जाता था कि वह दुलारी सहुआइन की दूकान पर गया था, चाहे तमाखू लेने ही क्यों न गया हो, तो वह कई-कई दिन तक होरी से बोलती न थी और न घर का काम करती थी। एक बार इसी बात पर वह अपने नैहर भाग गई थी। यह भावना सोना में और तीव्र हो गई थी। जब तक उसका विवाह न हुआ था, यह भावना उतनी बलवान न थी; पर विवाह हो जाने के बाद तो उसने व्रत का रूप धारण कर लिया था। ऐसे स्त्री-पुरुषों की अगर खाल भी खींच ली जाती, तो उसे दया न आती। प्रेम के लिए दाम्पत्य के बाहर उसकी दृष्टि में कोई स्थान न था। स्त्री-पुरुष का एक

दूसरे के साथ जो कर्तव्य है, इसी को वह प्रेम समझती थी। फिर सिल्लो से उसका बहन का नाता था। सिल्लो को वह प्यार करती थी, उस पर विश्वास करती थी। वही सिल्लो आज उससे विश्वासघात कर रही है। मथुरा और सिल्लो में अवश्य ही पहले से साँठ-गाँठ होगी। मथुरा उससे नदी के किनारे या खेतों में मिलता होगा। और आज वह इतनी रात गये नदी पार करके इसी लिए आई है। अगर उसने इन दोनों की बातें सुन न ली होतीं, तो उसे खबर तक न होती। मथुरा ने प्रेम-मिलन के लिए यही अवसर सबसे अच्छा समझा होगा। घर में सन्नाटा जो है। उसका हृदय सब कुछ जानने के लिए विकल हो रहा था। वह सारा रहस्य जान लेना चाहती थी, जिसमें अपनी रक्षा के लिए कोई विधान सोच सके। और यह मथुरा यहाँ क्यों खड़ा है ? क्या वह उसे कुछ बोलने भी न देगा ?

उसने रोष से कहा—तुम बाहर क्यों नहीं जाते, या यहीं पहरा देते रहोगे ?

मथुरा बिना कुछ कहे बाहर चला गया। उसके प्राण सूखे जाते थे कि कहीं सिल्लो सब कुछ कह न डाले।

और सिल्लो के प्राण सूखे जाते थे कि अब वह लटकती हुई तलवार सिर पर गिरा चाहती है।

तब सोना ने बड़े गम्भीर स्वर में सिल्लो से पूछा—देखो सिल्लो, मुझसे साफ़-साफ़ बता दो, नहीं मैं तुम्हारे सामने, यहीं, अपनी गर्दन पर गँड़ासा मार लूँगी। फिर तुम मेरी सौत बनकर राज करना। देखो, गँड़ासा वह सामने पड़ा है। एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं।

उसने लपककर सामने आँगन में से गँड़ासा उठा लिया और उसे हाथ में लिये, फिर बोली—यह मत समझना कि मैं खाली धमकी दे रही हूँ। क्रोध में मैं क्या कर बैठूँ, नहीं कह सकती। साफ़-साफ़ बता दो।

सिलिया काँप उठी। एक-एक शब्द उसके मुँह से निकल पड़ा, मानो ग्रामोफोन में भरी हुई आवाज़ हो। वह एक शब्द भी न छिपा सकी, सोना के चेहरे पर भीषण संकल्प खेल रहा था, मानो खून सवार हो।

सोना ने उसकी ओर बरछी की-सी चुभनेवाली आँखों से देखा और मानो कटार का आघात करती हुई बोली—ठीक-ठीक कहती हो ?

'बिल्कुल ठीक ; अपने बच्चे की कसम।'

'कुछ छिपाया तो नहीं ?'

'अगर मैंने रत्ती-भर छिपाया हो तो मेरी आँखें फूट जायँ।'

'तुमने उस पापी को लात क्यों नहीं मारी ? उसे दाँत क्यों नहीं काट लिया ? उसका ख़ून क्यों नहीं पी लिया, चिल्लाई क्यों नहीं ?'

सिल्लो क्या जवाब दे।

सोना ने उन्मादिनी की भाँति अँगारे की-सी आँखें निकालकर कहा—बोलती क्यों नहीं ? क्यों तूने उसकी नाक दाँतों से नहीं काट ली ! क्यों नहीं दोनों हाथों से उसका गला दबा दिया। तब मैं तेरे चरणों पर सिर झुकाती। अब तो तुम मेरी आँखों में हरजाई हो, निरी बेसवा ; अगर यही करना था, तो मातादीन का नाम क्यों कलंकित कर रही है ; क्यों किसी को लेकर बैठ नहीं जाती ; क्यों अपने घर नहीं चली गई ? यही तो तेरे घरवाले चाहते थे। तू उपले और घास लेकर बाजार जाती, वहाँ से रुपये लाती और तेरा बाप बैठा, उसी रुपये को ताड़ी पीता, फिर क्यों उस बाम्हन का अपमान कराया ? क्यों उसकी आबरू में बट्टा लगाया ? क्यों सतवन्ती बनी बैठी हो ! जब अकेले नहीं रहा जाता, तो किसी से सगाई क्यों नहीं कर लेती ; क्यों नदी-तालाब में डूब नहीं मरती ? तो क्यों दूसरों के जीवन में विष घोलती है ? आज मैं तुमसे कहे देती हूँ कि अगर इस तरह की बात फिर कभी हुई और मुझे पता लगा, तो हम तीनों में से एक भी जीता न रहेगा। बस अब मुँह में कालिख लगाकर जाओ। आज से मेरे और तुम्हारे बीच में कोई नाता नहीं रहा।

सिल्लो धीरे से उठी और सँभलकर खड़ी हुई। जान पड़ा, उसकी कमर टूट गई है। एक क्षण साहस बटोरती रही, किन्तु अपनी सफाई में कुछ सूझ न पड़ा। आँखों के सामने अँधेरा था, सिर में चक्कर, कण्ठ सूख रहा था, और सारी देह सुन्न हो गई थी, मानो रोम-छिद्रों से प्राण उड़े जा रहे हों। एक-एक पग इस तरह रखती हुई, मानो सामने गड्ढा है, वह बाहर आई और नदी की ओर चली।

द्वार पर मथुरा खड़ा था। बोला—इस वक्त कहाँ जाती हो सिल्लो ?

सिल्लो ने कोई जवाब न दिया। मथुरा ने भी फिर कुछ न पूछा।

वही रुपहली चाँदनी अब भी छाई हुई थी। नदी की लहरें अब भी चाँद की किरणों में नहा रही थीं और सिल्लो विक्षिप्त-सी स्वप्न-छाया की भाँति नदी में चली जा रही थी।

३०

मिल क़रीब-क़रीब पूरी जल चुकी है ; लेकिन उसी मिल को फिर से खड़ा करना होगा। मिस्टर खन्ना ने अपनी सारी कोशिशें इसके लिए लगा दी हैं। मज़-दूरों की हड़ताल जारी है ; मगर अब उससे मिल के मालिकों की कोई विशेष हानि नहीं है। नये आदमी कम वेतन पर मिल गये हैं और जो तोड़कर काम करते हैं ; क्योंकि उनमें सभी ऐसे हैं, जिन्होंने बेकारी के कष्ट भोग लिये हैं और अब अपना बस चलते ऐसा कोई काम करना नहीं चाहते जिससे उनकी जीविका में बाधा पड़े। चाहे जितना काम लो, चाहे जितनी कम छुट्टियाँ दो, उन्हें कोई शिकायत नहीं। सिर झुकाये बैलों की तरह काम में लगे रहते हैं। घुड़कियाँ, गालियाँ, यहाँ तक कि डण्डों की मार भी उनमें ग्लानि नहीं पैदा करती ; और अब पुराने मज़दूरों के लिए इसके सिवा कोई मार्ग नहीं रह गया है कि वह इसी घटी हुई मजूरी पर काम करने आयें और खन्ना साहब की खुशामद करें। पण्डित ओंकारनाथ पर तो उन्हें अब रत्ती-भर भी विश्वास नहीं है। उन्हें वे अकेले-दुकेले पायें, तो शायद उनकी बुरी गत बनायें ; पर पण्डितजी बहुत बचे हुए रहते हैं। चिराग़ जलने के बाद अपने कार्या-लय से बाहर नहीं निकलते और अफ़सरों की खुशामद करने लगे हैं। मिर्ज़ा ख़ुर्शेद की धाक अब भी ज्यों-की-त्यों है ; लेकिन मिर्ज़ाजी इन बेचारों का कष्ट और उसके निवारण का अपने पास कोई उपाय न देखकर दिल से चाहते हैं कि सब-के-सब बहाल हो जायँ ; मगर इसके साथ ही नये आदमियों के कष्ट का ख़याल करके जिज्ञा-सुओं से यही कह दिया करते हैं कि जैसी इच्छा हो वैसा करो।

मिस्टर खन्ना ने पुराने आदमियों को फिर नौकरी के लिए इच्छुक देखा, तो और भी अकड़ गये, हालाँकि वह मन में चाहते थे कि इस वेतन पर पुराने आदमी नयों से कहीं अच्छे हैं। नये आदमी अपना सारा ज़ोर लगाकर भी पुराने आदमियों के बराबर काम नहीं कर सकते थे। पुराने आदमियों में अधिकांश तो बचपन से ही मिल में काम करने के अभ्यस्त थे और खूब मँजे हुए। नये आदमियों में अधिकतर देहातों के दुखी किसान थे, जिन्हें खुली हवा और मैदान में पुराने ज़माने के लकड़ी के औज़ारों से काम करने की आदत थी। मिल के अन्दर उनका दम घुटता था और मेशीनरी के तेज चलनेवाले पुर्ज़ों से उन्हें भय लगता था। आखिर

जब पुराने आदमी ख़ूब परास्त हो गये, तब खन्ना उन्हें बहाल करने पर राज़ी हुए ; मगर नये आदमी इससे कम वेतन पर काम करने के लिए तैयार थे और अब डायरेक्टरों के सामने यह सवाल आया कि वह पुरानों को बहाल करें या नयों को रहने दें। डायरेक्टरों में आधे तो नये आदमियों का वेतन घटाकर रखने के पक्ष में थे । आधों की यह धारणा थी कि पुराने आदमियों को हाल के वेतन पर रख लिया जाय । थोड़े-से रुपये ज़्यादा खर्च होंगे ज़रूर ; मगर काम कहीं उससे ज़्यादा होगा। खन्ना मिल के प्राण थे, एक तरह से सर्वेसर्वा । डायरेक्टर तो उनके हाथ की कठपुतलियाँ थे । निश्चय खन्ना ही के हाथों में था और वह अपने मित्रों से नहीं, शत्रुओं से भी इस विषय में सलाह ले रहे थे । सबसे पहले तो उन्होंने गोविन्दी की सलाह ली । जबसे मालती की ओर से उन्हें निराशा हो गई थी और गोविन्दी को मालूम हो गया था कि मेहता जैसा विद्वान् और अनुभवी और ज्ञानी आदमी मेरा कितना सम्मान करता है और मुझसे किस प्रकार की साधना की आशा रखता है, तबसे दम्पति में स्नेह फिर जाग उठा था । स्नेह मत कहो ; मगर साहचर्य तो था ही । आपस में वह जलन और अशान्ति न थी । बीच की दीवार टूट गई थी ।

मालती के रंग-ढंग की भी कायापलट होती जाती थी । मेहता का जीवन अब तक स्वाध्याय और चिन्तन में गुजरा था, और सब कुछ पढ़ चुकने के बाद और आत्मवाद तथा अनात्मवाद को खूब छान-बीन कर लेने पर वह इसी तत्व पर पहुँच जाते थे कि प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों के बीच में जो सेवा-मार्ग है, चाहे उसे कर्मयोग ही कहो, वही जीवन को सार्थक कर सकता है, वही जीवन को ऊँचा और पवित्र बना सकता है । किसी सर्वज्ञ ईश्वर में उनका विश्वास न था । यद्यपि वह अपनी नास्तिकता को प्रकट न करते थे, इसलिए कि इस विषय में निश्चित रूप से कोई मत स्थिर करना वह अपने लिए असंभव समझते थे ; पर यह धारणा उनके मन में दृढ़ हो गई थी कि प्राणियों के जन्म-मरण, सुख-दुःख, पाप-पुण्य में कोई ईश्वरीय विधान नहीं है । उनका खयाल था कि मनुष्य ने अपने अहंकार में अपने को इतना महान बना लिया है कि उसके हर एक काम की प्रेरणा ईश्वर की ओर से होती है । इसी तरह टिड्डियाँ भी ईश्वर को उत्तरदायी ठहराती होंगी; जो अपने मार्ग में समुद्र आ जाने पर अरबों की संख्या में नष्ट हो जाती हैं । अगर ईश्वर के यह विधान इतने अज्ञेय हैं कि मनुष्य की समझ में नहीं आते, तो उन्हें मानने से ही मनुष्य को क्या सन्तोष मिल सकता

है। ईश्वर की कल्पना का एक ही उद्देश्य उनको समझ में आता था और वह था मानव-जीवन की एकता। एकात्मवाद या सर्वात्मवाद या अहिंसा तत्त्व को वह आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं, भौतिक दृष्टि से ही देखते थे; यद्यपि इन तत्त्वों का, इतिहास के किसी काल में भी आधिपत्य नहीं रहा, फिर भी मनुष्य-जाति के सांस्कृतिक विकास में उनका स्थान बड़े महत्त्व का है। मानव-समाज की एकता में मेहता का दृढ़ विश्वास था; मगर इस विश्वास के लिए उन्हें ईश्वर-तत्त्व के मानने की ज़रूरत न मालूम होती थी। उनका मानव-प्रेम इस आधार पर अवलम्बित न था कि प्राणी-मात्र में एक आत्मा का निवास है। द्वैत और अद्वैत का व्यावहारिक महत्त्व के सिवा वह और कोई उपयोग न समझते थे, और वह व्यावहारिक महत्त्व उनके लिए मानव-जाति को एक दूसरे के समीप लाना, आपस के भेद-भाव को मिटाना और भ्रातृ-भाव को दृढ़ करना ही था। यह एकता, यह अभिन्नता उनकी आत्मा में इस तरह जम गई थी कि उनके लिए किसी आध्यात्मिक आधार की सृष्टि उनकी दृष्टि में व्यर्थ थी। और एक बार इस तत्त्व को पाकर वह शान्त न बैठ सकते थे। स्वार्थ से अलग अधिक से अधिक काम करना उनके लिए आवश्यक हो गया था। इसके बग़ैर उनका चित्त शांत न हो सकता था। यश, लोभ या कर्त्तव्य-पालन के भाव उनके मन में आते ही न थे। इनकी तुच्छता ही उन्हें इनसे बचाने के लिए काफ़ी थी। सेवा ही अब उनका स्वार्थ होती जाती थी। और उनकी इस उदार वृत्ति का असर अज्ञात रूप से मालती पर भी पड़ता जाता था। अब तक जितने मर्द उसे मिले, सभी ने उसकी विलास-वृत्ति को ही उकसाया। उसकी त्याग-वृत्ति दिन-दिन क्षीण होती जाती थी; पर मेहता के संसर्ग में आकर उसकी त्याग-भावना सजग हो उठी थी। सभी मनस्वी प्राणियों में यह भावना छिपी रहती है और प्रकाश पाकर चमक उठती है। आदमी अगर धन या नाम के पीछे पड़ा है, तो समझ लो कि अभी तक वह किसी परिष्कृत आत्मा के सम्पर्क में नहीं आया। मालती अब अक्सर ग़रीबों के घर बिना फीस लिये ही मरीज़ों को देखने चली जाती थी। मरीजों के साथ उसके व्यवहार में मृदुता आ गई थी। हाँ, अभी तक वह शौक़-सिंगार से अपना मन न हटा सकती थी। रंग और पाउडर का त्याग उसे अपने आंतरिक परिवर्तनों से भी कहीं ज़्यादा कठिन जान पड़ता था।

इधर कभी-कभी दोनों देहातों की ओर चले जाते थे और किसानों के साथ

दो-चार घण्टे रहकर उनके झोपड़ों में रात काटकर, और उन्हीं का-सा भोजन करके अपने को धन्य समझते थे। एक दिन वे सेमरी पहुँच गये और घूमते-घामते बेलारी जा निकले। होरी द्वार पर बैठा चिलम पी रहा था कि मालती और मेहता आकर खड़े हो गये। मेहता ने होरी को देखते ही पहचान लिया और बोले—यही तुम्हारा गाँव है? याद है, हम लोग राय साहब के यहाँ आये थे और तुम धनुषयज्ञ की लीला में माली बने थे!

होरी की स्मृति जाग उठी। पहचाना और पटेश्वरी के घर की ओर कुरसियाँ लाने चला।

मेहता ने कहा—कुरसियों का कोई काम नहीं। हम लोग इसी खाट पर बैठ जाते हैं। यहाँ कुरसी पर बैठने नहीं, तुमसे कुछ सीखने आये हैं।

दोनों खाट पर बैठे। होरी हत-बुद्धि-सा खड़ा था। इन लोगों की क्या ख़ातिर करे। बड़े-बड़े आदमी हैं। उनकी ख़ातिर करने लायक उसके पास है ही क्या?

आखिर उसने पूछा—पानी लाऊँ?

मेहता ने कहा—हाँ, प्यास तो लगी है।

'कुछ मीठा भी लेता आऊँ!'

'लाओ, अगर घर में हो।'

होरी घर में मीठा और पानी लाने गया। तब तक गाँव के बालकों ने आकर इन दोनों आदमियों को घेर लिया और लगे निरखने, मानो चिड़िया-घर के अनोखे जन्तु आ गये हों।

सिल्लो बच्चे को लिये किसी काम से चली जा रही थी। इन दोनों आदमियों को देखकर कुतूहल-वश ठिठक गई।

मालती ने आकर उसके बच्चे को गोद में ले लिया और प्यार करती हुई बोली—कितने दिनों का है?

सिल्लो को ठीक न मालूम था। एक दूसरी औरत ने बताया—कोई साल-भर का होगा, क्यों री?

सिल्लो ने समर्थन किया।

मालती ने विनोद किया—प्यारा बच्चा है। इसे हमें दे दो।

सिल्लो ने गर्व से फूलकर कहा—आप ही का तो है।

'तो मैं इसे ले जाऊँ ?'

'ले जाइए। आपके साथ रहकर आदमी हो जायगा।'

गाँव की और महिलाएँ आ गईं और मालती को होरी के घर में ले गईं। यहाँ मरदों के सामने मालती से वार्तालाप करने का अवसर उन्हें न मिलता। मालती ने देखा, खाट बिछी है, और उस पर एक दरी पड़ी हुई है, जो पटेश्वरी के घर से माँगे आई थी। मालती जाकर बैठी। सन्तान रक्षा और शिशु-पालन की बातें होने लगीं। औरतें मन लगाकर सुनती रहीं।

धनिया ने कहा—यहाँ यह सब सफाई और संजम कैसे होगा सरकार ! भोजन तक का ठिकाना तो है नहीं।

मालती ने समझाया, सफ़ाई में कुछ खर्च नहीं। केवल थोड़ी-सी मेहनत और होशियारी से काम चल सकता है।

दुलारी सहुआइन ने पूछा—यह सारी बातें आपको कैसे मालूम हुईं सरकार, आपका तो अभी ब्याह ही नहीं हुआ ?

मालती ने मुस्कराकर पूछा—तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मेरा ब्याह नहीं हुआ है ?

सभी स्त्रियाँ मुँह फेरकर मुस्कराईं। पुनिया बोली—भला यह भी छिपा रहता है, मिस साहब ; मुँह देखते ही पता चल जाता है।

मालती ने झेंपते हुए कहा—इसी लिए ब्याह नहीं किया कि आप लोगों की सेवा कैसे करती ?

सबने एक स्वर से कहा—धन्य हो सरकार, धन्य हो !

सिलिया मालती के पाँव दबाने लगी—सरकार कितनी दूर से आई हैं, थक गई होंगी।

मालती ने पाँव खींचकर कहा—नहीं-नहीं, मैं थकी नहीं हूँ। मैं तो हवागाड़ी पर आई हूँ। मैं चाहती हूँ, आप लोग अपने बच्चे लायें, तो मैं उन्हें देखकर आप लोगों को बताऊँ कि आप उन्हें कैसे तन्दुरुस्त और नीरोग रख सकती हैं।

ज़रा देर में बीस-पचीस बच्चे आ गये। मालती उनकी परीक्षा करने लगी। कई बच्चों की आँखें उठी थीं, उनकी आँख में दवा डाली। अधिकतर बच्चे दुर्बल

थे। जिसका कारण था, माता-पिता को भोजन अच्छा न मिलना। मालती को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि बहुत कम घरों में दूध होता था। घी के तो सालों दर्शन नहीं होते।

मालती ने यहाँ भी उन्हें भोजन करने का महत्त्व समझाया, जैसा वह सभी गावों में किया करती थी। उसका जी इसलिए जलता था कि ये लोग अच्छा भोजन क्यों नहीं करते? उसे ग्रामीणों पर क्रोध आ जाता था। क्या तुम्हारा जन्म इसी लिए हुआ है कि तुम मर-मरकर कमाओ और जो कुछ पैदा हो, उसे खा न सको? जहाँ दो-चार बैलों के लिए भोजन है, एक-दो गाय-भैंसों के लिए चारा नहीं है? क्यों ये लोग भोजन को जीवन की मुख्य वस्तु न समझकर उसे केवल प्राणरक्षा की वस्तु समझते हैं? क्यों सरकार से नहीं कहते कि नाम-मात्र के ब्याज पर रुपये देकर उन्हें सूदखोर महाजनों के पंजे से बचाये? उसने जिस किसी से पूछा, यही मालूम हुआ कि उसकी कमाई का बड़ा भाग महाजनों का क़र्ज़ चुकाने में ख़र्च हो जाता है। बटवारे का मरज़ भी बढ़ता जाता था। आपस में इतना वैमनस्य था कि शायद ही कोई दो भाई एक साथ रहते हों। उनकी इस दुर्दशा का कारण बहुत कुछ उनकी संकीर्णता और स्वार्थपरता थी। मालती इन्हीं विषयों पर महिलाओं से बातें करती रही। उनकी श्रद्धा देख देखकर उसके मन में सेवा की प्रेरणा और भी प्रबल हो रही थी। इस त्यागमय जीवन के सामने वह विलासी जीवन कितना तुच्छ और बनावटी था! आज उसके वह रेशमी कपड़े, जिनपर ज़री का काम था, और वह सुगन्धसे महकता हुआ शरीर, और वह पाउडर से अलंकृत मुख-मण्डल, उसे लज्जित करने लगा। उसकी कलाई पर बँधी सोने की घड़ी जैसे अपने अपलक नेत्रों से उसे घूर रही थी। उसके गले में चमकता हुआ जड़ाऊ नेकलेस मानो उसका गला घोंट रहा था। इस त्याग और श्रद्धा की देवियों के सामने वह अपनी ही दृष्टि में नीची लग रही थी। वह इन ग्रामीणों से बहुत-सी बातें ज़्यादा जानती थी, समय की गति ज़्यादा पहचानती थी, लेकिन जिन परिस्थितियों में ये ग़रीबिनें जीवन को सार्थक कर रही हैं, उनमें क्या वह एक दिन भी रह सकती है? जिनमें अहंकार का नाम नहीं, दिन भर काम करती हैं, उपवास करती हैं, रोती हैं, फिर भी इतनी प्रसन्न-मुख! दूसरे उनके लिए इतने अपने हो गये हैं कि अपना अस्तित्व ही नहीं रहा। उनका अपनापन अपने लड़कों में, अपने पति में, अपने सम्बन्धियों में है। इस भावना की

रक्षा करते हुए—इसी भावना का क्षेत्र और बढ़ाकर—भावी नारीत्व का आदर्श निर्माण होगा। जाग्रत देवियों में इसकी जगह आत्म-सेवन का जो भाव आ बैठा है—सब कुछ अपने लिए, अपने भोग-विलास के लिए—उससे तो यह सुषुप्तावस्था ही अच्छी। पुरुष निर्दयी है, माना; लेकिन है तो इन्हीं माताओं का बेटा। क्यों माता ने पुत्र को ऐसी शिक्षा नहीं दी कि वह माता की, स्त्री-जाति की, पूजा करता? इसी लिए कि माता को यह शिक्षा देना नहीं आती, इसी लिए कि उसने अपने को इतना मिटाया कि उसका रूप ही बिगड़ गया, उसका व्यक्तित्व ही नष्ट हो गया।

नहीं, अपने को मिटाने से काम न चलेगा। नारी को समाज के कल्याण के लिए अपने अधिकारों की रक्षा करनी पड़ेगी। उसी तरह जैसे इन किसानों को अपनी रक्षा के लिए इस देवत्व का कुछ त्याग करना पड़ेगा।

सन्ध्या हो गई थी। मालती को औरतें अब तक घेरे हुए थीं। उसकी बातों से जैसे उन्हें तृप्ति ही न होती थी। कई औरतों ने उससे रात को यहीं रहने का आग्रह किया। मालती को भी उनका सरल स्नेह ऐसा प्यारा लगा कि उसने उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। रात को औरतें उसे अपना गाना सुनायेंगी। मालती ने भी प्रत्येक घर में जा-जाकर उसकी दशा से परिचय प्राप्त करने में अपने समय का सदुपयोग किया, उसकी निष्कपट सद्भावना और सहानुभूति उन गँवारिनों के लिए देवी के वरदान से कम न थी।

उधर मेहता साहब खाट पर आसन जमाये किसानों की कुश्ती देख रहे थे। पछता रहे थे, मिर्ज़ाजी को क्यों न साथ ले लिया, नहीं उनका भी एक जोड़ हो जाता। उन्हें आश्चर्य हो रहा था, ऐसे प्रौढ़ और निरीह बालकों के साथ शिक्षित कहलानेवाले लोग कैसे निर्दय हो जाते हैं। अज्ञान की भाँति ज्ञान भी सरल, निष्कपट और सुनहले स्वप्न देखनेवाला होता है। मानवता में उसका विश्वास इतना दृढ़, इतना सजीव होता है कि वह इसके विरुद्ध व्यवहार को अमानुषीय समझने लगता है। यह वह भूल जाता है कि भेड़ियों ने भेड़ों की निरीहता का जवाब सदैव पंजे और दाँतों से दिया है। वह अपना एक आदर्श-संसार बनाकर उसको आदर्श-मानवता से आबाद करता है और उसी में मग्न रहता है। यथार्थता कितनी अगम्य, कितनी दुर्बोध, कितनी अप्राकृतिक है, उसकी ओर विचार करना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। मेहताजी इस समय इन गँवारों के बीच में बैठे हुए इसी प्रश्न को हल

कर रहे थे कि इनकी दशा इतनी दयनीय क्यों है। वह इस सत्य से आँखें मिलाने का साहस न कर सकते थे कि इनका देवत्व ही इनकी दुर्दशा का कारण है। काश ये आदमी ज़्यादा और देवता कम होते, तो यों न ठुकराये जाते। देश में कुछ भी हो, क्रान्ति ही क्यों न आ जाय, इनसे कोई मतलब नहीं। कोई दल उनके सामने सबल के रूप में आये, उसके सामने सिर झुकाने को तैयार। उनकी निरीहता जड़ता की हद तक पहुँच गई है, जिसे कोई कठोर आघात ही कर्मण्य बना सकता है। उनकी आत्मा जैसे चारों ओर से निराश होकर अब अपने अन्दर ही टाँगें तोड़कर बैठ गई है। उनमें अपने जीवन की चेतना ही जैसे लुप्त हो गई है।

सन्ध्या हो गई थी। जो लोग अब तक खेतों में काम कर रहे थे, वे भी दौड़े चले आ रहे थे। उसी समय मेहता ने मालती को कई गाँव की औरतों के साथ इस तरह तल्लीन होकर एक बच्चे को गोद में लिये देखा, मानो वह भी उन्हीं में से एक है। मेहता का हृदय आनन्द से गद्गद हो उठा। मालती ने एक प्रकार से अपने को मेहता पर अर्पण कर दिया था। इस विषय में मेहता को अब कोई सन्देह न था; मगर अभी तक उनके हृदय में मालती के प्रति वह उत्कट भावना जाग्रत न हुई थी, जिसके बिना विवाह का प्रस्ताव करना उनके लिए हास्य-जनक था। मालती बिना बुलाये मेहमान की भाँति उनके द्वार पर आकर खड़ी हो गई थी, और मेहता ने उसका स्वागत किया था। इसमें प्रेम का भाव न था, केवल पुरुषत्व का भाव था। अगर मालती उन्हें इस योग्य समझती है कि उन पर अपनी कृपा-दृष्टि फेरे, तो मेहता उसकी इस कृपा को अस्वीकार न कर सकते थे। इसके साथ ही वह मालती को गोविन्दी के रास्ते से हटा देना चाहते थे और वह जानते थे, मालती जब तक आगे अपना पाँव न जमा लेगी, वह पिछला पाँव न उठायेगी। वह जानते थे, मालती के साथ छल करके वह अपनी नीचता का परिचय दे रहे हैं। इसके लिए उनकी आत्मा बराबर उन्हें धिक्कारती रही थी; मगर ज्यों-ज्यों वह मालती को निकट से देखते थे, उनके मन में आकर्षण बढ़ता जाता था। रूप का आकर्षण तो उन पर कोई असर न कर सकता था। यह गुण का आकर्षण था। यह वह जानते थे, जिसे सच्चा प्रेम कह सकते हैं, केवल एक बन्धन में बँध जाने के बाद ही पैदा हो सकता है। इसके पहले जो प्रेम होता है, वह तो रूप की आसक्ति-मात्र है, जिसका कोई टिकाव नहीं; मगर इसके पहले यह निश्चय तो कर लेना ही था कि जो पत्थर साहचर्य के

खराद पर चढ़ेगा, उसमें खरादे जाने की क्षमता है भी या नहीं। सभी पत्थर तो खराद पर चढ़कर सुन्दर मूर्तियाँ नहीं बन जाते। इतने दिनों में मालती ने उनके हृदय के भिन्न-भिन्न भागों में अपनी रश्मियाँ डाली थीं; पर अभी तक वे केन्द्रित होकर उस ज्वाला के रूप में न फूट पड़ी थीं, जिससे उनका सारा अन्तस्तल प्रज्वलित हो जाता। आज मालती ने ग्रामीणों में मिलकर और सारे भेद-भावों को मिटाकर इन रश्मियों को मानो केन्द्रित कर दिया। और आज पहली बार मेहता को मालती से एकात्मता का अनुभव हुआ। ज्यों ही मालती गाँव का चक्कर लगाकर लौटी, उन्होंने उसे साथ लेकर नदी की ओर प्रस्थान किया। रात यहीं काटने का निश्चय हो गया। मालती का कलेजा आज न जाने क्यों धक्-धक् करने लगा। मेहता के मुख पर आज उसे एक विचित्र ज्योति और इच्छा झलकती हुई नज़र आई।

नदी के किनारे चांदी का फ़र्श बिछा हुआ था और नदी रत्न-जटित आभूषण पहने मीठे स्वरों में गाती चाँद को और तारों को और सिर झुकाये नींद में माते वृक्षों को अपना नृत्य दिखा रही थी। मेहता प्रकृति की उस मादक शोभा से जैसे मस्त हो गये। जैसे उनका बालपन अपनी सारी क्रीड़ाओं के साथ लौट आया हो। बालू पर कई कुलाटें मारीं। फिर दौड़े हुए नदी में जाकर घुटने तक पानी में खड़े हो गये।

मालती ने कहा—पानी में न खड़े हो। कहीं ठंड न लग जाय।

मेहता ने पानी उछालकर कहा—मेरा तो जी चाहता है, नदी के उस पार तैरकर चला जाऊँ।

'नहीं-नहीं, पानी से निकल आओ। मैं न जाने दूँगी।'

'तुम मेरे साथ न चलोगी? उस सूनी बस्ती में जहाँ स्वप्नों का राज्य है।'

'मुझे तो तैरना नहीं आता।'

'अच्छा, आओ एक नाव बनायें, और उस पर बैठकर चलें।'

वह बाहर निकल आये। आस-पास बड़ी दूर तक झाऊ का जंगल खड़ा था। मेहता ने जेब से चाकू निकाला, और बहुत-सी टहनियाँ काटकर जमा कीं। करार पर सरपत के जुट खड़े थे। ऊपर चढ़कर सरपत का एक गट्ठा काट लाये और वहीं बालू के फ़र्श पर बैठकर सरपत की रस्सी बटने लगे। ऐसे प्रसन्न थे, मानो स्वर्गारोहण की तैयारी कर रहे हैं। कई बार उँगलियाँ चिर गईं, खून निकला। मालती बिगड़ रही थी, बार-बार गाँव लौट चलने के लिए आग्रह कर रही थी; पर

उन्हें कोई परवाह न थी। वही बालकों का-सा उल्लास था, वही अल्हड़पन, वही हठ। दर्शन और विज्ञान सभी इस प्रवाह में बह गये थे।

रस्सी तैयार हो गई। झाऊ का बड़ा-सा तख्त बन गया। टहनियाँ दोनों सिरों पर रस्सी से जोड़ दी गई थीं। उसके छिद्रों में झाऊ की टहनियाँ भर दी गईं, जिससे पानी ऊपर न आये। नौका तैयार हो गई। रात और भी स्वप्निल हो गई थी।

मेहता ने नौका को पानी में डालकर मालती का हाथ पकड़कर कहा—आओ, बैठो।

मालती ने सशंक होकर कहा—दो आदमियों का बोझ सँभाल लेगी?

मेहता ने दार्शनिक मुस्कान के साथ कहा—जिस तरी पर बैठे हम लोग जीवन-यात्रा कर रहे हैं, वह तो इससे कहीं निस्सार है मालती? क्या डर रही हो?

'डर किस बात का, जब तुम साथ हो।'

'सच कहती हो?'

'अब तक मैंने बगैर किसी की सहायता के बाधाओं को जीता है। अब तो तुम्हारे संग हूँ।'

दोनों उस झाऊ के तख्ते पर बैठे और मेहता ने झाऊ के एक डण्डे से ही उसे खेना शुरू किया। तख्ता डगमगाता हुआ पानी में चला।

मालती ने मन को इस खतरे से हटाने के लिए पूछा—तुम तो हमेशा शहरों में रहे, गाँव के जीवन का तुम्हें कैसे अभ्यास हो गया? मैं तो ऐसा तख्ता कभी न बना सकती।

मेहता ने उसे अनुरक्त नेत्रों से देखकर कहा—शायद यह मेरे पिछले जन्म का संस्कार है। प्रकृति से स्पर्श होते ही जैसे मुझमें एक-एक पक्षी, एक-एक पशु, जैसे मुझे आनन्द का निमन्त्रण देता हुआ जान पड़ता है, मानो भूले हुए सुखों की याद दिला रहा हो। यह आनन्द मुझे और कहीं नहीं मिलता मालती, संगीत के रुलानेवाले स्वरों में भी नहीं, दर्शन की ऊँची उड़ानों में भी नहीं। जैसे अपने आपको पा जाता हूँ, जैसे पक्षी अपने घोंसले में आ जाय।

तख्ता डगमगाता, कभी तिर्छा, कभी सीधा, कभी चक्कर खाता हुआ चला जा रहा था।

सहसा मालती ने कातर कण्ठ से पूछा—और मैं तुम्हारे जीवन में कभी नहीं आती ?

मेहता ने उसका हाथ पकड़कर कहा—आती हो, बार-बार आती हो, सुगन्ध के एक झोंके की तरह, कल्पना की एक छाया की तरह और फिर अदृश्य हो जाती हो। दौड़ता हूँ कि तुम्हें करपाश में बाँध लूँ; पर हाथ खुले रह जाते हैं और तुम ग़ायब हो जाती हो।

मालती ने उन्माद की दशा में कहा—लेकिन तुमने इसका कारण भी सोचा ? समझना चाहा ?

'हाँ मालती, बहुत सोचा, बार-बार सोचा।'

'तो क्या मालूम हुआ ?'

'यही कि मैं जिस आधार पर जीवन का भवन खड़ा करना चाहता हूँ, वह अस्थिर है। यह कोई विशाल भवन नहीं है, केवल एक छोटी-सी शान्त कुटिया है; लेकिन उसके लिए भी तो कोई स्थिर आधार चाहिए !'

मालती ने अपना हाथ छुड़ाकर जैसे मान करते हुए कहा—यह झूठा आक्षेप है। तुमने सदैव मुझे परीक्षा की आँखों से देखा, कभी प्रेम की आँखों से नहीं ! क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि नारी परीक्षा नहीं चाहती, प्रेम चाहती है। परीक्षा गुणों को अवगुण, सुन्दर को असुन्दर बनानेवाली चीज़ है; प्रेम अवगुणों को गुण बनाता है, असुन्दर को सुन्दर। मैंने तुमसे प्रेम किया, मैं कल्पना ही नहीं कर सकती कि तुममें कोई बुराई भी है; मगर तुमने मेरी परीक्षा की और तुम मुझे अस्थिर, चंचल और जाने क्या-क्या समझकर मुझसे हमेशा दूर भागते रहे। नहीं, मैं जो कुछ कहना चाहती हूँ, वह मुझे कह लेने दो। मैं क्यों अस्थिर और चंचल हूँ; इसी लिए कि मुझे वह प्रेम नहीं मिला, जो मुझे स्थिर और अचञ्चल बनाता; अगर तुमने मेरे सामने उसी तरह आत्म-समर्पण किया होता, जैसे मैंने तुम्हारे सामने किया है, तो तुम आज मुझ पर यह आक्षेप न रखते।

मेहता ने मालती के मान का आनन्द उठाते हुए कहा—तुमने मेरी परीक्षा कभी नहीं की ! सच कहती हो ?

'कभी नहीं।'

'तो तुमने ग़लती की।'

'मैं इसकी परवा नहीं करती।'

'भावुकता में न आओ मालती! प्रेम देने के पहले हम सब परीक्षा करते हैं और तुमने की, चाहे अप्रत्यक्षरूप से ही की हो। मैं आज तुमसे स्पष्ट कहता हूँ कि पहले मैंने तुम्हें उसी तरह देखा, जैसे रोज़ ही हज़ारों देवियों को देखा करता हूँ, केवल विनोद के भाव से ; अगर मैं ग़लती नहीं करता, तो तुमने भी मुझे मनो-रंजन के लिए एक नया खिलौना समझा।'

मालती ने टोका— ग़लत कहते हो। मैंने कभी तुम्हें इस नज़र से नहीं देखा। मैंने पहले ही दिन तुम्हें अपना देव बनाकर अपने हृदय...'

मेहता बात काटकर बोले—फिर वही भावुकता। मुझे ऐसे महत्त्व के विषय में भावुकता पसन्द नहीं ; अगर तुमने पहले ही दिन से मुझे इस कृपा के योग्य समझा, तो इसका यही कारण हो सकता है, कि मैं रूप भरने में तुमसे ज़्यादा कुशल हूँ, वरना जहाँ तक मैंने नारियों का स्वभाव देखा है, वह प्रेम के विषय में काफ़ी छान-बीन करती हैं। पहले भी तो स्वयंवर से पुरुषों की परीक्षा होती थी। वह मनोवृत्ति अब भी मौजूद है, चाहे उसका रूप कुछ बदल गया हो। मैंने तबसे बरा-बर यही कोशिश की है कि अपने को सम्पूर्ण रूप से तुम्हारे सामने रख दूँ और उसके साथ ही तुम्हारी आत्मा तक भी पहुँच जाऊँ। और मैं ज्यों-ज्यों तुम्हारे अन्तस्तल की गहराई में उतरा हूँ, मुझे रत्न ही मिले हैं। मैं विनोद के लिए आया और आज उपासक बना हुआ हूँ। तुमने मेरे भीतर क्या पाया, यह मुझे मालूम नहीं।

नदी का दूसरा किनारा आ गया। दोनों उतरकर उसी बालू के फ़र्श पर जा बैठे और मेहता फिर उसी प्रवाह में बोले—और आज मैं यहाँ वही पूछने के लिए तुम्हें लाया हूँ।

मालती ने काँपते हुए स्वर में कहा—क्या अभी तुम्हें मुझसे यह पूछने की ज़रूरत बाक़ी है?

'हाँ, इसलिए कि मैं आज तुम्हें अपना वह रूप दिखाऊँगा, जो शायद अभी तक तुमने नहीं देखा और जिसे मैंने भी छिपाया है। अच्छा, मान लो, मैं तुमसे विवाह करके कल तुमसे बेवफ़ाई करूँ, तो तुम मुझे क्या सज़ा दोगी?'

मालती ने उनकी ओर चकित होकर देखा। इसका आशय उसकी समझ में न आया।

'ऐसा प्रश्न क्यों करते हो?'

'मेरे लिए यह बड़े महत्त्व की बात है।'

'मैं इसकी सम्भावना नहीं समझती।'

'संसार में कुछ भी असम्भव नहीं है। बड़े से बड़ा महात्मा भी एक क्षण में पतित हो सकता है।'

'मैं उसका कारण खोजूँगी और उसे दूर करूँगी।'

'मान लो, मेरी आदत न छूटे!'

'फिर मैं नहीं कह सकती, क्या करूँगी। शायद विष खाकर सो रहूँ।'

'लेकिन यदि तुम मुझसे यही प्रश्न करो, तो मैं उसका दूसरा जवाब दूँगा।'

मालती ने सशंक होकर पूछा—बतलाओ।

मेहता ने दृढ़ता के साथ कहा—मैं पहले तुम्हारा प्राणान्त कर दूँगा, फिर अपना।

मालती ने ज़ोर से क़हक़हा मारा और सिर से पाँव तक सिहर उठी। उसकी हँसी केवल उसके सिहरन को छिपाने का आवरण थी। मेहता ने पूछा—तुम हँसीं क्यों?

'इसी लिए कि तुम तो ऐसे हिंसावादी नहीं जान पड़ते।'

'नहीं मालती, इस विषय में पूरा पशु हूँ और उस पर लज्जित होने का कोई कारण नहीं देखता। आध्यात्मिक प्रेम और त्यागमय प्रेम और निःस्वार्थ प्रेम जिसमें आदमी अपने को मिटाकर केवल प्रेमिका के लिए जीता है, उसके आनन्द से आनन्दित होता है और उसके चरणों पर अपनी आत्मा समर्पण कर देता है, मेरे लिए निरर्थक शब्द हैं। मैंने पुस्तकों में ऐसी प्रेम-कथाएँ पढ़ी हैं, जहाँ प्रेमी ने प्रेमिका के नये प्रेमियों के लिए अपनी जान दे दी है; मगर उस भावना को मैं श्रद्धा कह सकता हूँ, सेवा कह सकता हूँ, प्रेम कभी नहीं। प्रेम सीधी-सादी गऊ नहीं, खूँख्वार शेर है, जो अपने शिकार पर किसी की आँख भी नहीं पड़ने देता।'

मालती ने उनकी आँखों में आँखें डालकर कहा—अगर प्रेम खूँख्वार शेर है, तो मैं उससे दूर ही रहूँगी। मैंने तो उसको गाय समझ रखा था। मैं प्रेम को सन्देह से ऊपर समझती हूँ। वह देह की वस्तु नहीं, आत्मा की वस्तु है। सन्देह का वहाँ

ज़रा भी स्थान नहीं और हिंसा तो सन्देह का ही परिणाम है। वह सम्पूर्ण आत्मसमर्पण है। उसके मन्दिर में तुम परीक्षक बनकर नहीं, उपासक बनकर ही वरदान पा सकते हो।

वह उठकर खड़ी हो गई और तेज़ी से नदी की तरफ़ चली, मानो उसने अपना खोया हुआ मार्ग पा लिया हो। ऐसी स्फूर्ति का उसे कभी अनुभव न हुआ था। उसने स्वतंत्र जीवन में भी अपने में एक दुर्बलता पाई थी, जो उसे सदैव आन्दोलित करती रहती थी, सदैव अस्थिर रखती थी। उसका मन जैसे कोई आश्रय खोजा करता था, जिसके बल पर वह टिक सके, संसार का सामना कर सके। अपने में उसे यह शक्ति न मिलती थी। बुद्धि और चरित्र की शक्ति देखकर वह उसकी ओर लालायित हो जाती थी। पानी की भाँति हर एक पात्र का रूप धारण कर लेती थी। उसका अपना कोई रूप न था।

उसकी मनोवृत्ति अभी तक किसी परीक्षार्थी छात्र की-सी थी। छात्र को पुस्तकों से प्रेम हो सकता है और हो जाता है; लेकिन वह पुस्तक के उन्हीं भागों पर ज़्यादा ध्यान देता है, जो परीक्षा में आ सकते हैं। उसकी पहली गरज़ परीक्षा में सफल होना है। ज्ञानार्जन इसके बाद। अगर उसे मालूम हो जाय कि परीक्षक बड़ा दयालु है या अन्धा है और छात्रों को यों ही पास कर दिया करता है, तो शायद वह पुस्तकों की ओर आँख उठाकर भी न देखे। मालती जो कुछ करती थी, मेहता को प्रसन्न करने के लिए। उसका मतलब था, मेहता का प्रेम और विश्वास प्राप्त करना, उनके मनोराज्य की रानी बन जाना; लेकिन उसी छात्र की तरह अपनी योग्यता का विश्वास जमाकर। लियाक़त आ जाने से परीक्षक आप ही आप उससे सन्तुष्ट हो जायगा, इतना धैर्य उसे न था।

मगर आज मेहता ने जैसे उसे ठुकराकर उसकी आत्मशक्ति को जगा दिया। मेहता को जबसे उसने पहली बार देखा था, तभी से उसका मन उनकी ओर झुका था। उसे वह अपने परिचितों में सबसे समर्थ जान पड़े। उसके परिष्कृत जीवन में बुद्धि की प्रखरता और विचारों की दृढ़ता ही सबसे ऊँची वस्तु थी। धन और ऐश्वर्य को तो वह केवल खिलौना समझती थी, जिसे खेलकर लड़के तोड़-फोड़ डालते हैं। रूप में भी अब उसके लिए विशेष आकर्षण न था, यद्यपि कुरूपता के लिए घृणा थी। उसको तो अब बुद्धि-शक्ति ही अपनी ओर झुका सकती थी, जिसके

आश्रय में उसमें आत्मविश्वास जगे, अपने विकास की प्रेरणा मिले, अपने में शक्ति का संचार हो, अपने जीवन की सार्थकता का ज्ञान हो। मेहता के बुद्धिबल और तेजस्विता ने उसके ऊपर अपनी मुहर लगा दी और तबसे वह अपना संस्कार करती चली आती थी। जिस प्रेरक शक्ति की उसे ज़रूरत थी, वह मिल गई थी और अज्ञात रूप से उसे गति और शक्ति दे रही थी। जीवन का नया आदर्श जो उसके सामने आ गया था, वह अपने को उसके समीप पहुँचाने की चेष्टा करती हुई, और सफलता का अनुभव करती हुई उस दिन की कल्पना कर रही थी, जब वह और मेहता एकात्मा हो जायँगे और यह कल्पना उसे और भी दृढ़ और निष्ठ बना रही थी।

मगर आज जब मेहता ने उसकी आशाओं को द्वार तक लाकर प्रेम का वह आदर्श उसके सामने रखा, जिसमें प्रेम को आत्मा और समर्पण के क्षेत्र से गिराकर भौतिक धरातल तक पहुँचा दिया गया था, जहाँ सन्देह और ईर्ष्या और भोग का राज है, तब उसकी परिष्कृत बुद्धि आहत हो उठी। और मेहता से जो उसे श्रद्धा थी, उसे एक धक्का-सा लगा, मानो कोई शिष्य अपने गुरु को कोई नीच कर्म करते देख ले। उसने देखा मेहता की बुद्धि-प्रखरता प्रेमत्व को पशुता की ओर खींचे लिये जाती है और उसके देवत्व की ओर से आँखें बन्द किये लेती है, और यह देखकर उसका दिल बैठ गया।

मेहता ने कुछ लज्जित होकर कहा—आओ, कुछ देर और बैठें।

मालती बोली—नहीं, अब लौटना चाहिए। देर हो रही है।

३१

राय साहब का सितारा बुलन्द था। उनके तीनों मंसूबे पूरे हो गये थे। कन्या की शादी धूम-धाम से हो गई थी, मुकदमा जीत गये थे और निर्वाचन में सफल ही न हुए थे, होम मेम्बर हो गये थे। चारों ओर से बधाइयाँ मिल रही थीं। तारों का ताँता लगा हुआ था। इस मुकदमे को जीतकर उन्होंने ताल्लुकेदारों की प्रथम श्रेणी में स्थान प्राप्त कर लिया था। सम्मान तो उनका पहले भी किसी से कम न था; मगर अब तो उसकी जड़ और भी गहरी और मजबूत हो गई थी। सामयिक पत्रों में उनके चित्र और चरित्र दनादन निकल रहे थे। कर्ज़ की मात्रा बहुत बढ़ गई थी; मगर अब राय साहब को इसकी परवा न थी। वह इस नई मिलकियत का एक छोटा-

सा टुकड़ा बेचकर कर्ज से मुक्त हो सकते थे। सुख की जो ऊँची से ऊँची कल्पना उन्होंने की थी, उससे कहीं ऊँचे जा पहुँचे थे। अभी तक उनका बँगला केवल लखनऊ में था। अब नैनीताल, मंसूरी और शिमला तीनों स्थानों में एक-एक बँगला बनवाना लाजिम हो गया। अब उन्हें यह शोभा नहीं देता कि इन स्थानों में जायँ, तो होटलों में या किसी दूसरे राजा के बँगले में ठहरें। जब सूर्यप्रतापसिंह के बँगले इन सभी स्थानों में थे, तो राय साहब के लिए यह बड़ी लज्जा की बात थी कि उनके बँगले न हों। संयोग से बँगले बनवाने की ज़हमत न उठानी पड़ी। बने-बनाये बँगले सस्ते दामों में मिल गये। हरएक बँगले के लिए माली, चौकीदार, कारिन्दा, खान-सामा आदि भी रख लिये गये थे। और सबसे बड़े सौभाग्य की बात यह थी कि अबकी हिज़ मैजेस्टी के जन्म-दिन के अवसर पर उन्हें राजा की पदवी मिल गई। अब उनकी महत्वाकांक्षा सम्पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हो गई। उस दिन खूब जशन मनाया गया और इतनी शानदार दावत हुई कि पिछले सारे रेकार्ड टूट गये। जिस वक्त हिज़ एक्सलेन्सी गवर्नर ने उन्हें पदवी प्रदान की है, गर्व के साथ राजभक्ति की ऐसी तरंग उनके मन में उठी कि उनका एक-एक रोम उससे प्लावित हो उठा। यह है जीवन! नहीं विद्रोहियों के फेर में पड़कर व्यर्थ बदनामी ली, जेल गये और अफ़सरों की नज़रों से गिर गये। जिस डी० एस० पी० ने उन्हें पिछली बार गिरफ़्तार किया था, इस वक्त वह उनके सामने हाथ बाँधे खड़ा था और शायद अपने अपराध के लिये क्षमा माँग रहा था।

मगर जीवन की सबसे बड़ी विजय उन्हें उस वक्त हुई, जब उनके पुराने, परास्त शत्रु सूर्यप्रतापसिंह ने उनके बड़े लड़के रुद्रपालसिंह से अपनी कन्या के विवाह का सन्देशा भेजा। राय साहब को न मुकदमा जीतने की इतनी खुशी हुई थी, न मिनिस्टर होने की। वह सारी बातें कल्पना में आती थीं; मगर यह बात तो आशातीत ही नहीं, कल्पनातीत थी। वही सूर्यप्रतापसिंह जो अभी कई महीने तक उन्हें अपने कुत्ते से भी नीचा समझता था, वह आज उनके लड़के से अपनी लड़की का विवाह करना चाहता है! कितनी असम्भव बात! रुद्रपाल इस समय एम० ए० में पढ़ता था, बड़ा निर्भीक, पक्का आदर्शवादी, अपने ऊपर भरोसा रखनेवाला, अभि-मानी, रसिक और आलसी युवक था, जिसे अपने पिता की यह धन और मानलिप्सा बुरी लगती थी।

राय साहब इस समय नैनीताल में थे। यह सन्देशा पाकर फूल उठे। यद्यपि वह विवाह के विषय में लड़के पर किसी तरह का दबाव डालना नहीं चाहते थे, पर इसका उन्हें विश्वास था कि वह जो कुछ निश्चय कर लेंगे, उसमें रुद्रपाल को कोई आपत्ति न होगी और राजा सूर्यप्रतापसिंह से नाता हो जाना एक ऐसे सौभाग्य की बात थी कि रुद्रपाल का सहमत न होना ख़याल में भी न आ सकता था। उन्होंने तुरन्त राजा साहब को बात दे दी और उसी वक्त रुद्रपाल को फ़ोन किया।

रुद्रपाल ने जवाब दिया—मुझे स्वीकार नहीं।

राय साहब को अपने जीवन में न कभी इतनी निराशा हुई थी, न इतना क्रोध आया था। पूछा—कोई वजह?

'समय आने पर मालूम हो जायगा।'

'मैं अभी जानना चाहता हूँ।'

'मैं नहीं बतलाना चाहता।'

'तुम्हें मेरा हुक्म मानना पड़ेगा।'

'जिस बात को मेरी आत्मा स्वीकार नहीं करती, उसे मैं आपके हुक्म से नहीं मान सकता।'

राय साहब ने बड़ी नम्रता से समझाया—बेटा, तुम आदर्शवाद के पीछे अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हो। यह सम्बन्ध समाज में तुम्हारा स्थान कितना ऊँचा कर देगा, कुछ तुमने सोचा है? इसे ईश्वर की प्रेरणा समझो। उस कुल की कोई दरिद्र कन्या भी मुझे मिलती, तो मैं अपने भाग्य को सराहता, यह तो राजा सूर्यप्रताप की कन्या है, जो हमारे सिरमौर हैं। मैं उसे रोज़ देखता हूँ। तुमने भी देखा होगा। रूप, गुण, शील, स्वभाव में ऐसी युवती मैंने आज तक नहीं देखी। मैं तो चार दिन का और मेहमान हूँ। तुम्हारे सामने सारा जीवन पड़ा है। मैं तुम्हारे ऊपर दबाव नहीं डालना चाहता। तुम जानते हो, विवाह के विषय में मेरे विचार कितने उदार हैं, लेकिन मेरा यह भी धर्म है कि अगर तुम्हें ग़लती करते देखूँ, तो चेतावनी दे दूँ।

रुद्रपाल ने इसका जवाब दिया—मैं इस विषय में बहुत पहले निश्चय कर चुका हूँ। उसमें अब कोई परिवर्तन नहीं हो सकता।

राय साहब को लड़के की जड़ता पर फिर क्रोध आ गया। गरजकर बोले—

मालूम होता है, तुम्हारा सिर फिर गया है। आकर मुझसे मिलो। बिलम्ब न करना। मैं राजा साहब को जबान दे चुका हूँ।

रुद्रपाल ने जवाब दिया—खेद है, अभी मुझे अवकाश नहीं है।

दूसरे दिन राय साहब ख़ुद आ गये। दोनों अपने-अपने शस्त्रों से सजे हुए तैयार खड़े थे। एक ओर सम्पूर्ण जीवन का मँजा हुआ अनुभव था, समझौतों से भरा हुआ; दूसरी ओर कच्चा आदर्शवाद था, ज़िद्दी, उद्दण्ड और निर्मम।

राय साहब ने सीधे मर्म पर आघात किया—मैं जानना चाहता हूँ, यह कौन लड़की है?

रुद्रपाल ने अचल भाव से कहा—अगर आप इतने उत्सुक हैं, तो सुनिए। वह मालती देवी की बहन सरोज है।

राय साहब जैसे आहत होकर गिर पड़े—अच्छा वह!

'आपने तो सरोज को देखा होगा?'

'ख़ूब देखा है। तुमने राजकुमारी को देखा है या नहीं?'

'जी हाँ, ख़ूब देखा है।'

'फिर भी...'

'मैं रूप को कोई चीज़ नहीं समझता।'

'तुम्हारी अक्ल पर मुझे अफ़सोस आता है। मालती को जानते हो कैसी औरत है। उसकी बहन क्या कुछ और होगी?'

रुद्रपाल ने तेवरी चढ़ाकर कहा—मैं इस विषय में आपसे और कुछ नहीं कहना चाहता; मगर मेरी शादी होगी, तो सरोज से।

'मेरे जीते जी कभी नहीं हो सकती।'

'तो आपके बाद होगी।'

'अच्छा, तुम्हारे यह इरादे हैं!'

और राय साहब की आँखें सजल हो गईं। जैसे सारा जीवन उजड़ गया हो। मिनिस्ट्री और इलाका और पदवी, सब जैसे बासी फूलों की तरह नीरस, निरानन्द हो गये हों। जीवन की सारी साधना व्यर्थ हो गई। उनकी स्त्री का जब देहान्त हुआ था, तो उनकी उम्र छत्तीस साल से ज़्यादा न थी। वह विवाह कर सकते थे और भोग-विलास का आनन्द उठा सकते थे। सभी उनसे विवाह करने के लिए आग्रह कर रहे थे; मगर उन्होंने इन बालकों का मुँह देखा और विधुर जीवन को

साधना स्वीकार कर ली। इन्हीं लड़कों पर अपने जीवन का सारा भोग-विलास न्योछावर कर दिया। आज तक अपने हृदय का सारा स्नेह इन्हीं लड़कों को देते चले आये हैं, और आज यह लड़का इतनी निष्ठुरता से बातें कर रहा है, मानो उनसे कोई नाता नहीं। फिर वह क्यों जायदाद और सम्मान और अधिकार के लिए जान दें। इन्हीं लड़कों ही के लिए तो वह सब कुछ कर रहे थे, जब लड़कों को उनका ज़रा भी लिहाज़ नहीं, तो वह क्यों यह तपस्या करें। उन्हें कौन संसार में बहुत दिन रहना है। उन्हें भी आराम से पड़े रहना आता है। उनके और हज़ारों भाई मूँछों पर ताव देकर जीवन का भोग करते हैं और मस्त घूमते हैं। फिर वह भी क्यों न भोग-विलास में पड़े रहें। उन्हें इस वक्त याद न रहा कि वह जो तपस्या कर रहे हैं, वह लड़कों के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए। केवल यश के लिए नहीं, बल्कि इसीलिए कि वह कर्मशील हैं और उन्हें जीवित रहने के लिए इसकी ज़रूरत है। वह विलासी और अकर्मण्य बनकर अपनी आत्मा को सन्तुष्ट नहीं रख सकते। उन्हें मालूम नहीं, कि कुछ लोगों की प्रकृति ही ऐसी होती है कि वे विलास का अपाहिजपन स्वीकार ही नहीं कर सकते। वे अपने जिगर का खून पीने ही के लिए बने हैं, और मरते दम तक पिये जायँगे।

मगर इस चोट की प्रतिक्रिया भी तुरन्त हुई। हम जिनके लिए त्याग करते हैं उनसे किसी बदले की आशा न रखकर भी उनके मन पर शासन करना चाहते हैं; चाहे वह शासन उन्हीं के हित के लिए हो, यद्यपि उस हित को हम इतना अपना लेते हैं कि वह उनका न होकर हमारा हो जाता है। त्याग की मात्रा जितनी ही ज़्यादा होती है, यह शासन-भावना भी उतनी ही प्रबल होती है और जब सहसा हमें विद्रोह का सामना करना पड़ता है, तो हम क्षुब्ध हो उठते हैं, और वह त्याग जैसे प्रतिहिंसा का रूप ले लेता है। राय साहब को यह ज़िद पड़ गई कि रुद्रपाल का विवाह सरोज के साथ न होने पाये, चाहे इसके लिए उन्हें पुलिस की मदद क्यों न लेनी पड़े, नीति की हत्या क्यों न करनी पड़े।

उन्होंने जैसे तलवार खींचकर कहा—हाँ, मेरे बाद हो होगी और अभी उसे बहुत दिन है।

रुद्रपाल ने जैसे गोली चला दी—ईश्वर करे, आप अमर हों! सरोज से मेरा विवाह हो चुका!

'झूठ !'

'बिल्कुल नहीं, प्रमाण-पत्र मौजूद है।'

राय साहब आहत होकर गिर पड़े। इतनी सतृष्ण हिंसा की आँखों से उन्होंने कभी किसी शत्रु को न देखा था। शत्रु अधिक से अधिक उनके स्वार्थ पर आघात कर सकता था, या देह पर या सम्मान पर; पर यह आघात तो उस मर्मस्थल पर था, जहाँ जीवन की सम्पूर्ण प्रेरणा संचित थी। एक आँधी थी जिसने उनका जीवन जड़ से उखाड़ दिया। अब वह सर्वथा अपंग हैं। पुलीस की सारी शक्ति हाथ में रहते हुए अपंग हैं। बल-प्रयोग उनका अन्तिम शस्त्र था। वह शस्त्र उनके हाथ से निकल चुका था। रुद्रपाल बालिग है, सरोज भी बालिग है। और रुद्रपाल अपनी रियासत का मालिक है। उनका उस पर कोई दबाव नहीं। आह! अगर जानते, यह लौंडा यों विद्रोह करेगा, तो इस रियासत के लिए लड़ते ही क्यों। इस मुक़दमे-बाज़ी के पीछे दो ढाई लाख बिगड़ गये। जीवन ही नष्ट हो गया। अब तो उनकी लाज इसी तरह बचेगी कि इस लौंडे की खुशामद करते रहें, उन्होंने ज़रा बाधा दी और इज्ज़त धूल में मिली। वह अपने जीवन का बलिदान करके भी अब स्वामी नहीं हैं। ओह! सारा जीवन नष्ट हो गया। सारा जीवन!

रुद्रपाल चला गया था। राय साहब ने कार मँगवाई और मेहता से मिलने चले। मेहता अगर चाहें तो मालती को समझा सकते हैं। सरोज भी उनकी अव-हेलना न करेगी; अगर दस-बीस हज़ार रुपये बल खाने से भी यह विवाह रुक जाय, तो वह देने को तैयार थे। उन्हें उस स्वार्थ के नशे में यह बिल्कुल ख़याल न रहा कि वह मेहता के पास ऐसा प्रस्ताव लेकर जा रहे हैं, जिस पर मेहता की हमदर्दी कभी उनके साथ न होगी।

मेहता ने सारा वृत्तान्त सुनकर उन्हें बनाना शुरू किया। गम्भीर मुँह बनाकर बोले—यह तो आपकी प्रतिष्ठा का सवाल है।

राय साहब भाँप न सके। उछलकर बोले—जी हाँ, केवल प्रतिष्ठा का। राजा सूर्यप्रतापसिंह को तो आप जानते हैं।

'मैंने उनकी लड़की को भी देखा है। सरोज उसके पाँव की धूल भी नहीं है।'

'मगर इस लौंडे की अक्ल पर पत्थर पड़ गया है।'

'तो मारिए गोली, आपको क्या करना है। वही पछतायेगा।'

'आह! यही तो नहीं देखा जाता मेहताजी! मिलती हुई प्रतिष्ठा नहीं छोड़ी जाती। मैं इस प्रतिष्ठा पर अपनी आधी रियासत कुर्बान करने को तैयार हूँ। आप मालती देवी को समझा दें, तो काम बन जाय। इधर से इनकार हो जाय, तो रुद्रपाल सिर पीटकर रह जायगा और यह नशा दस-पाँच दिन में आप उतर जायगा। यह प्रेम-सेम कुछ नहीं, केवल सनक है।'

'लेकिन मालती बिना कुछ रिशवत लिये मानेगी नहीं।'

'आप जो कुछ कहिए, मैं उसे दूँगा। वह चाहे तो मैं उसे यहाँ के डफ़रिन हास्पिटल का इन्चार्ज बना दूँ।'

'मान लीजिए वह आपको चाहे तो आप राज़ी होंगे? जबसे आपको मिनिस्ट्री मिली है, आपके विषय में उसकी राय ज़रूर बदल गई होगी।'

राय साहब ने मेहता के चेहरे की तरफ़ देखा। उस पर मुस्कराहट की रेखा नज़र आई। समझ गये। व्यथित स्वर में बोले—आपको भी मुझसे मज़ाक करने का यही अवसर मिला। मैं आपके पास इसलिए आया था कि मुझे यक़ीन था कि आप मेरी हालत पर विचार करेंगे, मुझे उचित राय देंगे। और आप मुझे बनाने लगे। जिसके दाँत नहीं दुखे, वह दाँतों का दर्द क्या जाने।

मेहता ने गम्भीर स्वर से कहा—क्षमा कीजिएगा, आप ऐसा प्रश्न ही लेकर आये हैं कि उस पर गम्भीर विचार करना मैं हास्यास्पद समझता हूँ। आप अपनी शादी के जिम्मेदार हो सकते हैं। लड़के की शादी का दायित्व आप क्यों अपने ऊपर लेते हैं, खासकर जब आपका लड़का बालिग़ है और अपना नफ़ा-नुकसान समझता है। कम-से-कम मैं तो शादी-जैसे महत्त्व के मुआमले में प्रतिष्ठा का कोई स्थान नहीं समझता। प्रतिष्ठा धन से होती तो राजा साहब उस नंगे बाबा के सामने घण्टों गुलामों की तरह हाथ बाँधे न खड़े रहते। मालूम नहीं, कहाँ तक सही है; पर राजा साहब अपने इलाके के दारोग़ा तक को सलाम करते हैं; इसे आप प्रतिष्ठा कहते हैं? लखनऊ में आप किसी दूकानदार, किसी अहलकार, किसी राहगीर से पूछिए, उनका नाम सुनकर गालियाँ ही देगा। इसी को आप प्रतिष्ठा कहते हैं? जाकर आराम से बैठिए। सरोज से अच्छी बहू आपको बड़ी मुश्किल से मिलेगी।

राय साहब ने आपत्ति के भाव से कहा—बहन तो मालती ही की है।

मेहता ने गर्म होकर कहा—मालती को बहन होना क्या अपमान की बात है? मालती को आपने जाना नहीं, और न जानने की परवा की। मैंने भी यही समझा था; लेकिन अब मालूम हुआ कि वह आग में पड़कर चमकनेवाली सच्ची धातु है। वह उन वीरों में है जो अवसर पड़ने पर अपने जौहर दिखाते हैं, तलवार घुमाते नहीं चलते। आपको मालूम है, खन्ना की आजकल क्या दशा है?

राय साहब ने सहानुभूति के भाव से सिर हिलाकर कहा—सुन चुका हूँ, और बार-बार इच्छा हुई कि उनसे मिलूँ; लेकिन फ़ुरसत न मिली। उस मिल में आग लगना उनके सर्वनाश का कारण हो गया।

'जी हाँ। अब वह एक तरह से दोस्तों की दया पर अपना निर्वाह कर रहे हैं। उस पर गोविन्दी महीनों से बीमार है। उसने खन्ना पर अपने को बलिदान कर दिया, उस पशु पर जिसने हमेशा उसे जलाया; अब वह मर रही है। और मालती रात की रात उसके सिरहाने बैठी रह जाती है, वही मालती जो किसी राजा-रईस से पाँच सौ फ़ीस पाकर भी रात-भर न बैठेगी। खन्ना के छोटे बच्चों को पालने का भार भी मालती पर है। यह मातृत्व उसमें कहाँ सोया हुआ था, मालूम नहीं। मुझे तो मालती का यह स्वरूप देखकर अपने भीतर श्रद्धा का अनुभव होने लगा, हालाँकि आप जानते हैं, मैं घोर जड़वादी हूँ। और भीतर के परिष्कार के साथ उसकी छवि में भी देवत्व की झलक आने लगी है। मानवता इतनी बहुरंगी और इतनी समर्थ है, इसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। आप उनसे मिलना चाहें तो चलिए इसी बहाने मैं भी चला चलूँगा।'

राय साहब ने संदिग्ध भाव से कहा—जब आप ही मेरे दर्द को नहीं समझ सके, तो मालती देवी क्या समझेंगी, मुफ़्त में शर्मिन्दगी होगी, मगर आपको उनके पास जाने के लिए किसी बहाने की ज़रूरत क्यों? मैं तो समझता था, आपने उनके ऊपर अपना जादू डाल दिया है

मेहता ने हसरत-भरी मुसकराहट के साथ जवाब दिया—वह बात अब स्वप्न हो गई। अब तो कभी उनके दर्शन भी नहीं होते। उन्हें अब फ़ुरसत भी नहीं रहती। दो-चार बार गया; मगर मुझे मालूम हुआ, मुझसे मिलकर वह कुछ खुश नहीं हुईं, तबसे जाते झेंपता हूँ। हाँ, ख़ूब याद आया, आज महिला-व्यायामशाला का जलसा है, आप चलेंगे?

राय साहब ने बेदिली के साथ कहा—जी नहीं, मुझे फुरसत नहीं है। मुझे तो यह चिन्ता सवार है कि राजा साहब को क्या जवाब दूँगा। मैं उन्हें वचन दे चुका हूँ।

यह कहते हुए वह उठ खड़े हुए और मन्दगति से द्वार की ओर चले। जिस गुत्थी को, सुलझाने आये थे, वह और भी जटिल हो गई। अन्धकार और भी असूझ हो गया। मेहता ने कार तक आकर उन्हें विदा किया।

राय साहब सीधे अपने बँगले पर आये और दैनिक पत्र उठाया था कि मिस्टर तंखा का कार्ड मिला। तंखा से उन्हें घृणा थी, और उनका मुँह भी न देखना चाहते थे; लेकिन इस वक्त मन की दुर्बल दशा में उन्हें किसी की हमदर्दी की तलाश थी, जो और कुछ न कर सके; पर उनके मनोभावों से सहानुभूति तो करे। तुरन्त बुला लिया।

तंखा पाँव दबाते हुए, रोनी सूरत लिये कमरे में दाखिल हुए और ज़मीन तक झुककर सलाम करते हुए बोले—मैं तो हुज़ूर के दर्शन करने नैनीताल जा रहा था। सौभाग्य से यहीं दर्शन हो गये! हुज़ूर का मिज़ाज तो अच्छा है?

इसके बाद उन्होंने बड़ी लच्छेदार भाषा में, और अपने पिछले व्यवहार को बिल्कुल भूलकर, राय साहब का यशोगान आरम्भ किया—ऐसी होम-मेम्बरी कोई क्या करेगा! जिधर देखिए, हुज़ूर ही के चर्चे हैं। यह पद हुज़ूर ही को शोभा देता है।

राय साहब मन में सोच रहे थे, यह आदमी भी कितना बड़ा धूर्त है, अपनी गरज़ पड़ने पर गधे को दादा कहनेवाला, परले सिरे का बेवफ़ा और निर्लज्ज; मगर उन्हें उन पर क्रोध न आया। दया आई। पूछा—आजकल आप क्या कर रहे हैं?

'कुछ नहीं हुज़ूर, बेकार बैठा हूँ। इसी उम्मीद से आपकी ख़िदमत में हाज़िर होने जा रहा था कि अपने पुराने ख़ादिमों पर निगाह रहे। आजकल बड़ी मुसीबत में पड़ा हुआ हूँ हुज़ूर! राजा सूर्यप्रतापसिंह को तो हुज़ूर जानते हैं, अपने सामने किसी को नहीं समझते। एक दिन आपकी निन्दा करने लगे। मुझसे न सुना गया। मैंने कहा, बस कीजिए महाराज, राय साहब मेरे स्वामी हैं और मैं उनकी निन्दा नहीं सुन सकता। बस इसी बात पर बिगड़ गये। मैंने भी सलाम किया और घर चला आया। मैंने साफ़ कह दिया, आप कितना ही ठाट-बाट दिखायें; पर राय साहब

की जो इज्ज़त है, वह आपको नसीब नहीं हो सकती। इज्ज़त ठाट से नहीं होती, लियाक़त से होती है। आपमें जो लियाक़त है वह तो दुनिया जानती है।

राय साहब ने अभिनय किया—आपने तो सीधे घर में आग लगा दी।

तंखा ने अकड़कर कहा—मैं तो हुज़ूर साफ़ कहता हूँ, किसी को अच्छा लगे या बुरा। जब हुज़ूर के क़दमों को पकड़े हुए हूँ, तो किसी से क्यों डरूँ। हुज़ूर के तो नाम से जलते हैं। जब देखिए, हुज़ूर की बदगोई। जबसे आप मिनिस्टर हुए हैं, उनकी छाती पर साँप लोट रहा है। मेरी सारी की सारी मज़दूरी साफ़ डकार गये। देना तो जानते नहीं हुज़ूर। असामियों पर इतना अत्याचार करते हैं कि कुछ न पूछिए। किसी की आबरू सलामत नहीं। दिन दहाड़े औरतों को...

कार की आवाज़ आई और राजा सूर्यप्रतापसिंह उतरे। राय साहब ने कमरे से निकलकर उनका स्वागत किया और इस सम्मान के बोझ से नत होकर बोले—मैं तो आपकी सेवा में आनेवाला ही था।

यह पहला अवसर था कि राजा सूर्यप्रतापसिंह ने इस घर को अपने चरणों से पवित्र किया। यह सौभाग्य!

मिस्टर तंखा भीगी बिल्ली बने बैठे हुए थे। राजा साहब यहाँ! क्या इधर इन दोनों महोदयों में दोस्ती हो गई है! उन्होंने राय साहब की ईर्ष्याग्नि को उत्तेजित करके अपना हाथ सेंकना चाहा था; मगर नहीं, राजा साहब यहाँ मिलने के लिए आ भले ही गये हों, मगर दिलों में जो जलन है वह तो कुम्हार के आँवे की तरह इस ऊपर की लेस-थोप से बुझनेवाली नहीं।

राजा साहब ने सिगार जलाते हुए तंखा की ओर कठोर आँखों से देखकर कहा—तुमने तो सूरत ही नहीं दिखाई मिस्टर तंखा! मुझसे उस दावत के सारे रुपये वसूल कर लिये और होटलवालों को एक पाई न दी; वह मेरा सिर खा रहे हैं। मैं इसे विश्वासघात समझता हूँ। मैं चाहूँ तो अभी तुम्हें पुलीस में दे सकता हूँ।

यह कहते हुए उन्होंने राय साहब को सम्बोधित करके कहा—ऐसा बेईमान आदमी मैंने नहीं देखा राय साहब! मैं सत्य कहता हूँ, मैं कभी आपके मुक़ाबले में न खड़ा होता; मगर इसी शैतान ने मुझे बहकाया और मेरे एक लाख रुपये बरबाद करा दिये। बँगला ख़रीद लिया साहब, कार रख ली। एक वेश्या से आशनाई

भी कर रखी है। पूरे रईस बन गये। और अब दग़ाबाज़ी शुरू की है। रईसों की शान निभाने के लिए रियासत चाहिए। आपकी रियासत अपने दोस्तों की आँखों में धूल झोंकना है।

राय साहब ने तंखा की ओर तिरस्कार की आँखों से देखा और बोले—आप चुप क्यों हैं मिस्टर तंखा, कुछ जवाब दीजिए। राजा साहब ने तो आपका सारा मेहनताना दबा लिया था। है इसका कोई जवाब आपके पास? अब कृपा करके यहाँ से चले जाइए और ख़बरदार, फिर अपनी सूरत न दिखाइएगा। दो भले आदमियों में लड़ाई लगाकर अपना उल्लू सीधा करना बे-पूँजी का रोज़गार है; मगर इसका घाटा और नफ़ा दोनों ही जानजोखिम है, समझ लीजिए।

तंखा ने ऐसा सिर गड़ाया कि फिर न उठाया। धीरे से चले गये। जैसे कोई चोर कुत्ता मालिक के अन्दर आ जाने पर दबकर निकल जाय।

जब वह चले गये, तो राजा साहब ने पूछा—मेरी बुराई करता होगा?

'जी हाँ; मगर मैंने भी खूब बनाया।'

'शैतान है।'

'पूरा।'

'बाप-बेटे में लड़ाई करवा दे, मियाँ-बीबी में लड़ाई करवा दे। इस फन में उस्ताद है। ख़ैर, आज बचा को अच्छा सबक़ मिल गया।'

इसके बाद रुद्रपाल के विवाह की बातचीत शुरू हुई। राय साहब के प्राण सूखे जा रहे थे। मानो उन पर कोई निशाना बाँधा जा रहा हो। कहाँ छिप जायँ। कैसे कहें कि रुद्रपाल पर उनका कोई अधिकार नहीं रहा; मगर राजा साहब को परिस्थिति का ज्ञान हो चुका था। राय साहब को अपनी तरफ़ से कुछ न कहना पड़ा। जान बच गई।

उन्होंने पूछा—आपको इसकी क्योंकर ख़बर हुई?

'अभी-अभी रुद्रपाल ने लड़की के नाम एक पत्र भेजा है, जो उसने मुझे दे दिया।'

'आजकल के लड़कों में और तो कोई खूबी नज़र नहीं आती, बस स्वच्छन्दता की सनक सवार है।'

'सनक तो है ही; मगर इसकी दवा मेरे पास है। मैं उस छोकरी को ऐसा

गायब कर दूँ कि कहीं पता न लगेगा। दस-पाँच दिन में यह सनक ठण्डी हो जायगी। समझाने से कोई नतीजा नहीं।'

राय साहब काँप उठे। उनके मन में भी इस तरह की बात आई थी; लेकिन उन्होंने उसे आकार न लेने दिया था। संस्कार दोनों व्यक्तियों के एक-से थे; गुफावासी मनुष्य दोनों ही व्यक्तियों में जीवित था। राय साहब ने उसे ऊपरी वस्त्रों से ढँक दिया था। राजा साहब में वह नग्न था। अपना बड़प्पन सिद्ध करने के उस अवसर को राय साहब छोड़ न सके।

जैसे लज्जित होकर बोले—लेकिन यह बीसवीं सदी है, बारहवीं नहीं। रुद्रपाल के ऊपर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, मैं नहीं कह सकता; लेकिन मानवता की दृष्टि से ..

राजा साहब ने बात काटकर कहा—आप मानवता लिये फिरते हैं और यह नहीं देखते कि संसार में आज भी मनुष्य की पशुता ही उसकी मानवता पर विजय पा रही है। नहीं, राष्ट्रों में लड़ाइयाँ क्यों होतीं? पंचायतों से झगड़े न तय हो जाते! जब तक मनुष्य रहेगा, उसकी पशुता भी रहेगी।

छोटी-मोटी बहस छिड़ गई और विवाद के रूप में आकर अन्त में वितण्डा बन गई और राजा साहब नाराज़ होकर चले गये। दूसरे दिन राय साहब ने भी नैनीताल को प्रस्थान किया। और उसके एक दिन बाद रुद्रपाल ने सरोज के साथ इंगलैंड की राह ली। अब उनमें पिता-पुत्र का नाता न था। प्रतिद्वन्द्वी हो गये थे। मिस्टर तंखा अब रुद्रपाल के सलाहकार और पैरोकार थे। उन्होंने रुद्रपाल की तरफ़ से राय साहब पर हिसाब-फ़हमी का दावा किया। राय साहब पर दस लाख की डिग्री हो गई। उन्हें डिग्री का इतना दुःख न हुआ जितना अपने अपमान का। अपमान से भी बढ़कर दुःख था जीवन की सचित अभिलाषाओं के धूल में मिल जाने का, और सबसे बड़ा दुःख था इस बात का कि अपने बेटे ने ही दगा दी। आज्ञाकारी पुत्र के पिता बनने का गौरव बड़ी निर्दयता के साथ उनके हाथ से छीन लिया गया था।

मगर अभी शायद उनके दुःख का प्याला भरा न था। जो कुछ कसर थी, वह लड़की और दामाद के सम्बन्ध-विच्छेद ने पूरी कर दी। साधारण हिन्दू बालिकाओं की तरह मीनाक्षी भी बेज़बान थी। बाप ने जिसके साथ ब्याह कर दिया, उसके साथ चली गई; लेकिन स्त्री-पुरुष में प्रेम न था। दिग्विजयसिंह ऐयाश

भी थे, शराबी भी। मीनाक्षी भीतर ही भीतर कुढ़ती रहती थी। पुस्तकों और पत्रिकाओं से मन बहलाया करती थी। दिग्विजय की अवस्था तो तीस से अधिक न थी ; पढ़ा-लिखा भी था ; मगर बड़ा मगरूर, अपनी कुल-प्रतिष्ठा की डींग मारनेवाला, स्वभाव का निर्दयी और कृपण। गाँव की नीच जाति की बहू-बेटियों पर डोरे डाला करता था। सोहबत भी नीचों की थी, जिनकी खुशामदों ने उसे और भी खुशामदपसन्द बना दिया था। मीनाक्षी ऐसे व्यक्ति का सम्मान दिल से न कर सकती थी। फिर पत्रों में स्त्रियों के अधिकारों की चर्चा पढ़-पढ़कर उसकी आँखें खुलने लगी थीं। वह जनाना-क्लब में आने-जाने लगी। वहाँ कितनी ही शिक्षित, ऊँचे कुल की महिलाएँ आती थीं। उनमें वोट और अधिकार और स्वाधीनता और नारी-जागृति की खूब चर्चा होती थी, जैसे पुरुषों के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र रचा जा रहा हो। अधिकतर वही देवियाँ थीं जिनकी अपने पुरुषों से न पटती थी, जो नई शिक्षा पाने के कारण पुरानी मर्यादाओं को तोड़ डालना चाहती थी। कई युवतियाँ भी थीं, जो डिग्रियाँ ले चुकी थीं और विवाहित जीवन को आत्मसम्मान के लिए घातक समझकर नौकरियों की तलाश में थीं। उन्हीं में एक मिस सुलताना थीं, जो विलायत से बार-एटला होकर आई थीं और यहाँ परदानशीन महिलाओं को कानूनी सलाह देने का व्यवसाय करती थीं। उन्हीं की सलाह से मीनाक्षी ने पति पर गुजारे का दावा किया। वह अब उसके घर में न रहना चाहती थी। गुज़ारे की मीनाक्षी को ज़रूरत न थी। मैके में वह बड़े आराम से रह सकती थी ; मगर वह दिग्विजयसिंह के मुख में कालिख लगाकर यहाँ से जाना चाहती थी। दिग्विजयसिंह ने उस पर उलटा बदचलनी का आक्षेप लगाया। राय साहब ने इस कलह को शान्त करने की भरसक बहुत चेष्टा की; पर मीनाक्षी अब पति की सूरत भी नहीं देखना चाहती थी। यद्यपि दिग्विजयसिंह का दावा खारिज हो गया और मीनाक्षी ने उस पर गुज़ारे की डिग्री पाई ; मगर यह अपमान उसके जिगर में चुभता रहा। वह अलग एक कोठरी में रहती थी, और समष्टिवादी आन्दोलन में प्रमुख भाग लेती थी ; पर वह जलन शान्त न होती थी।

एक दिन वह क्रोध में आकर हंटर लिये दिग्विजयसिंह के बँगले पर पहुँची। शोहदे जमा थे और वेश्या का नाच हो रहा था। उसने रणचंडी की भाँति पिशाचों की इस चंडाल चौकड़ी में पहुँचकर तहलका मचा दिया। हंटर खा-खाकर लोग इधर-उधर भागने लगे। उसके तेज के सामने वह नीच शोहदे क्या टिकते! जब दिग्वि-

जयसिंह अकेले रह गये, तो उसने उनपर सड़ासड़ हंटर जमाने शुरू किये और इतना मारा कि कुँवर साहब बेदम हो गये। वेश्या अभी तक कोने में दबकी खड़ी थी। अब उसका नम्बर आया। मीनाक्षी हंटर तानकर जमाना ही चाहती थी कि वेश्या उसके पैरों पर गिर पड़ी और रोकर बोली—दुलहिनजी, आज आप मेरी जान बख्श दें। मैं फिर कभी यहाँ न आऊँगी। मैं निरपराध हूँ।

मीनाक्षी ने उसकी ओर घृणा से देखकर कहा—हाँ, तू निरपराध है। जानती है न, मैं कौन हूँ? चली जा। अब कभी यहाँ न आना। हम स्त्रियाँ भोग-विलास की चीज़ें हैं ही, तेरा कोई दोष नहीं!

वेश्या ने उसके चरणों पर सिर रखकर आवेग में कहा—परमात्मा आपको सुखी रखे। जैसा आपका नाम सुनती थी वैसा ही पाया।

'सुखी रहने से तुम्हारा क्या आशय है?'

'आप जो समझें महारानीजी!'

'नहीं, तुम बताओ।'

वेश्या के प्राण नखों में समा गये। कहाँ से कहाँ आशीर्वाद देने चली। जान बच गई थी, चुपके से अपनी राह लेनी चाहिए थी, दुआ देने की सनक सवार हुई। अब कैसे जान बचे।

डरती-डरती बोली—हुजूर का एकबाल बढ़े, मरतबा बढ़े, नाम बढ़े।

मीनाक्षी मुस्कराई—हाँ, ठीक है।

वह आकर अपनी कार पर बैठी, हाकिम-ज़िला के बँगले पर पहुँचकर इस कांड की सूचना दी और अपनी कोठी में चली आई। तबसे स्त्री-पुरुष दोनों एक दूसरे के खून के प्यासे थे। दिग्विजयसिंह रिवालवर लिये उसकी ताक में फिरा करते और वह भी अपनी रक्षा के लिये दो पहलवान ठाकुरों को अपने साथ लिये रहती थी। और राय साहब ने सुख का जो स्वर्ग बनाया था, उसे अपनी जिन्दगी में ही ध्वंस होते देख रहे थे। और अब संसार से निराश होकर उनकी आत्मा अन्तर्मुखी होती जाती थी। अब तक अभिलाषाओं से जीवन के लिए प्रेरणा मिलती रहती थी। उधर का रास्ता बन्द हो जाने पर उनका मन आप ही आप भक्ति की ओर झुका, जो अभिलाषाओं से कहीं बढ़कर सत्य था। जिस नई जायदाद के आसरे वह क़र्ज़ लिये थे, वह जायदाद क़र्ज़ की पुरौती किये बिना ही हाथ से निकल गई

थी और वह बोझ सिर पर लदा हुआ था। मिनिस्ट्री से ज़रूर अच्छी रक़म मिलती थी; मगर वह सारी की सारी उस पद का मर्यादा-पालन करने में ही उड़ जाती थी और राय साहब को अपना राजसी ठाट निभाने के लिए वही असामियों पर इज़ाफ़ा और बेदख़ली और नज़राना करना और लेना पड़ता था, जिससे उन्हें घृणा थी। वह प्रजा को कष्ट न देना चाहते थे। उनकी दशा पर उन्हें दया आती थी; लेकिन अपनी ज़रूरतों से हैरान थे। मुश्किल यह थी कि उपासना और भक्ति में भी उन्हें शान्ति न मिलती थी। वह मोह को छोड़ना चाहते थे; पर मोह उन्हें न छोड़ता था और इस खींच-तान में उन्हें अपमान, ग्लानि और अशान्ति से छुटकारा न मिलता था। और जब आत्मा में शान्ति नहीं तो देह कैसे स्वस्थ रहती? नीरोग रहने का सब उपाय करने पर भी एक न एक बाधा गले पड़ी रहती थी। रसोई में सभी तरह के पकवान बनते थे; पर उनके लिए वही मूँग की दाल और फुलके थे। अपने और भाइयों को देखते थे जो उनसे भी ज़्यादा मक़रूज़, अपमानित और शोक-ग्रस्त थे, जिनके भोग-विलास में, ठाट-बाट में किसी तरह की कमी न थी; मगर इस तरह की बेहयाई उनके बस में न थी। उनके मन के ऊँचे संस्कारों का ध्वंस न हुआ था। पर-पीड़ा, मक्कारी, निर्लज्जता और अत्याचार को वह ताल्लुक़ेदारी की शोभा और रोब-दाब का नाम देकर अपनी आत्मा को सन्तुष्ट न कर सकते थे, और यही उनकी सबसे बड़ी हार थी।

३१

मिर्ज़ा खुर्शेद ने अस्पताल से निकलकर एक नया काम शुरू कर दिया था। निश्चित बैठना उनके स्वभाव में न था। वह काम क्या था? नगर की वेश्याओं की एक नाटक-मण्डली बनाना। अपने अच्छे दिनों में उन्होंने ख़ूब ऐयाशी की थी और इन दिनों अस्पताल में एकान्त में घावों की पीड़ाएँ सहते-सहते उनकी आत्मा निष्ठा-वान् हो गई थी। उस जीवन की याद करके उन्हें गहरी मनोव्यथा होती थी। उस वक्त अगर उन्हें समझ होती, तो वह प्राणियों का कितना उपकार कर सकते थे; कितनों के शोक और दरिद्रता का भार हलका कर सकते थे; मगर वह धन उन्होंने ऐयाशी में उड़ाया। यह कोई नया आविष्कार नहीं है कि संकटों में ही हमारी आत्मा को जागृति मिलती है। बुढ़ापेमें कौन अपनी जवानी की भूलों पर दुखी नहीं होता। काश वह समय ज्ञान या शक्ति के संचय में लगाया होता, सुकृतियों का कोष भर लिया होता,

तो आज चित्त को कितनी शान्ति मिलती ! वहीं उन्हें इसका वेदनामय अनुभव हुआ कि संसार में कोई अपना नहीं, कोई उनकी मौत पर आँसू बहानेवाला नहीं। उन्हें रह-रहकर जीवन की एक पुरानी घटना याद आती थी। बम्बरे के एक गाँव में जब वह कैम्प में मलेरिया से ग्रस्त पड़े थे, एक ग्रामीण बाला ने उनकी तीमारदारी कितने आत्म-समर्पण से की थी। अच्छे हो जाने पर जब उन्होंने रुपये और आभूषणों से उसके एहसानों का बदला देना चाहा था, तो उसने किस तरह आँखों में आँसू भर-कर सिर नीचा कर लिया था और उन उपहारों को लेने से इनकार कर दिया था। इन नर्सों की शुश्रूषा में नियम है, व्यवस्था है, सचाई है; मगर वह प्रेम कहाँ, वह तन्मयता कहाँ जो उस बाला की अभ्यासहीन, अल्हड़ सेवाओं में थी? वह अनुराग-मूर्ति कबकी उनके दिल से मिट चुकी थी। वह उससे फिर आने का वादा करके कभी उसके पास न गये। विलास के उन्माद में कभी उसकी याद ही न आई। आई भी तो उसमें केवल दया थी, प्रेम न था। मालूम नहीं, उस बाला पर क्या गुज़री। मगर आजकल उसकी वह आतुर, नम्र, शान्त, सरल मुद्रा बराबर उनकी आँखों के सामने फिरा करती थी। काश उससे विवाह कर लिया होता, तो आज जीवन में कितना रस होता। और उसके प्रति अन्याय के दुःख ने उस सम्पूर्ण वर्ग को उनकी सेवा और सहानुभूति का पात्र बना दिया। जब तक नदी बाढ़ पर थी, उसके गँदले, तेज, फेनिल, प्रवाह में प्रकाश की किरणें बिखरकर रह जाती थीं। अब प्रवाह स्थिर और शान्त हो गया था और रश्मियाँ उसकी तह तक पहुँच रही थीं।

मिर्ज़ा साहब बसन्त की इस शीतल सन्ध्या में अपने झोंपड़े के बरामदे में दो वारांगनाओं के साथ बैठे कुछ बातचीत कर रहे थे कि मिस्टर मेहता पहुँचे। मिर्ज़ा ने बड़े तपाक से हाथ मिलाया और बोले—मैं तो आपकी खातिरदारी का सामान लिये आपकी राह देख रहा हूँ।

दोनों सुन्दरियाँ मुस्कराईं। मेहता कट गये।

मिर्ज़ा ने दोनों औरतों को वहाँ से चले जाने का संकेत किया और मेहता को मसनद पर बैठाते हुए बोले—मैं तो खुद आपके पास आनेवाला था। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि मैं जो काम करने जा रहा हूँ, वह आपकी मदद के बग़ैर पूरा न होगा। आप सिर्फ़ मेरी पीठ पर हाथ रख दीजिए और ललकारते जाइए—हाँ मिर्ज़ा, बढ़े चल पट्ठे!

मेहता ने हँसकर कहा—आप जिस काम में हाथ लगायेंगे, उसमें हम-जैसे किताबी कीड़ों की मदद की ज़रूरत न होगी। आपकी उम्र मुझसे ज़्यादा है, दुनिया भी आपने ख़ूब देखी है और छोटे से छोटे आदमियों पर अपना असर डाल सकने की जो शक्ति आपमें है, वह मुझमें होती, तो मैंने खुदा जाने क्या किया होता !

मिर्ज़ा साहब ने थोड़े-से शब्दों में अपनी नई स्कीम उनसे बयान की। उनकी धारणा थी कि रूप के बाज़ार में वही स्त्रियाँ आती हैं, जिन्हें या तो अपने घर में किसी कारण से सम्मान-पूर्ण आश्रय नहीं मिलता, या जो आर्थिक कष्टों से मजबूर हो जाती हैं, और अगर यह दोनों प्रश्न हल कर दिये जायँ, तो बहुत कम औरतें इस भाँति पतित हों।

मेहता ने भी अन्य विचारवान् सज्जनों की भाँति इस प्रश्न पर काफ़ी विचार किया था और उनका खयाल था कि मुख्यतः मन के संस्कार और भोग-लालसा ही औरतों को इस ओर खींचती है। इसी बात पर दोनों मित्रों में बहस छिड़ गई। दोनों अपने-अपने पक्ष पर अड़ गये।

मेहता ने मुट्ठी बाँधकर हवा में पटकते हुए कहा—आपने इस प्रश्न पर ठण्डे दिल से ग़ौर नहीं किया। रोज़ी के लिए और बहुत से ज़रिये हैं। ऐश की भूख रोटियों से नहीं जाती। उसके लिए दुनिया के अच्छे से अच्छे पदार्थ चाहिए। जब तक समाज की व्यवस्था ऊपरसे नीचे तक बदल न डाली जाय, इस तरह की मंडली से कोई फ़ायदा न होगा।

मिर्ज़ा ने मूछें खड़ी कीं—और मैं कहता हूँ कि यह महज़ रोज़ी का सवाल है, हाँ, यह सवाल सभी आदमियों के लिए एक-सा नहीं है। मज़दूर के लिए वह महज़ आटे-दाल और एक फूस की झोंपड़ी का सवाल है। एक वकील के लिए वह एक कार और बँगले और ख़िदमतगारों का सवाल है। आदमी महज़ रोटी नहीं चाहता, और भी बहुत-सी चीजें चाहता है। अगर औरतों के सामने भी वह प्रश्न तरह-तरह की सूरतों में आता है, तो उनका क्या कुसूर है !

डाक्टर मेहता अगर ज़रा ग़ौर करते, तो उन्हें मालूम होता कि उनमें और मिर्ज़ा में कोई भेद नहीं, केवल शब्दों का हेर-फेर है ; पर बहस की गर्मी में ग़ौर करने का धैर्य कहाँ ! गर्म होकर बोले—मुआफ़ कीजिए मिर्ज़ा साहब, जब तक दुनिया में दौलतवाले रहेंगे, वेश्याएँ भी रहेंगी। मण्डली अगर सफल भी हो जाय,

हालाँकि मुझे उसमें बहुत सन्देह है, तो आप दस-पाँच औरतों से ज़्यादा उसमें कभी न ले सकेंगे, और वह भी थोड़े दिनों के लिए। सभी औरतों में नाट्य करने की शक्ति नहीं होती, उसी तरह जैसे सभी आदमी कवि नहीं हो सकते। और यह भी मान लें कि वेश्याएँ आपकी मण्डली में स्थायी रूप से टिक जायँगी, तो भी बाज़ार में उनकी जगह खाली न रहेगी। जड़ पर जब तक कुल्हाड़े न चलेंगे, पत्तियाँ तोड़ने से कोई नतीजा नहीं। दौलतवालों में कभी-कभी ऐसे लोग निकल आते हैं, जो सब कुछ त्यागकर खुदा की याद में जा बैठते हैं; मगर दौलत का राज्य बदस्तूर क़ायम है। उसमें ज़रा भी कमज़ोरी नहीं आने पाई।

मिर्ज़ा को मेहता की हठधर्मी पर दुःख हुआ। इतना पढ़ा-लिखा विचारवान् आदमी इस तरह की बातें करे! समाज की व्यवस्था क्या आसानी से बदल जायगी? वह तो सदियों का मुआमला है; तब तक क्या यह अनर्थ होने दिया जाय? उसकी रोक-थाम न की जाय, इन अबलाओं को मर्दों की लिप्सा का शिकार होने दिया जाय? क्यों न शेर को पिंजरे में बन्द कर दिया जाय कि वह दाँत और नाखून होते भी किसीको हानि न पहुँचा सके। क्या उस वक्त तक चुपचाप बैठा रहा जाय, जब तक शेर अहिंसा का व्रत न ले ले? दौलतवाले और जिस तरह चाहें अपनी दौलत उड़ायें, मिर्ज़ाजी को गम नहीं। शराब में डूब जायँ, कारों की माला गले में डाल लें, क़िले बनवायें, धर्मशाले और मसजिदें खड़ी करें, उन्हें कोई परवा नहीं। अबलाओं की ज़िन्दगी न खराब करें। यह मिर्ज़ाजी नहीं देख सकते। वह रूप के बाज़ार को ऐसा खाली कर देंगे कि दौलतवालों की अशर्फ़ियों पर कोई थूकनेवाला भी न मिले। क्या जिन दिनों शराब की दूकानों की पिकेटिंग होती थी, अच्छे-अच्छे शराबी पानी पी-पीकर दिल की आग नहीं बुझाते थे?

मेहता ने मिर्ज़ा की बेवकूफ़ी पर हँसकर कहा—आपको मालूम होना चाहिए कि दुनिया में ऐसे मुल्क भी हैं जहाँ वेश्याएँ नहीं हैं। मगर अमीरों की दौलत वहाँ भी दिलचस्पियों के सामान पैदा कर लेती है।

मिर्ज़ाजी भी मेहता की जड़ता पर हँसे—जानता हूँ मेहरबान, जानता हूँ। आपकी दुआ से दुनिया देख चुका हूँ। मगर यह हिन्दुस्तान है, यूरोप नहीं।

'इंसान का स्वभाव सारी दुनिया में एक-सा है।'

'मगर यह भी मालूम रहे कि हरएक क़ौम में एक ऐसी चीज़ होती है, जिसे

उसकी आत्मा कह सकते हैं। अस्मत (सतीत्व) हिन्दुस्तानी तहज़ीब की आत्मा है।'

'अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू बन लीजिए।'

'दौलत को आप इतनी बुराई करते हैं, फिर भी खन्ना की हिमायत करते नहीं थकते। न कहिएगा।'

मेहता का तेज बिदा हो गया। नम्र भाव से बोले—मैंने खन्ना की हिमायत उस वक्त की है, जब वह दौलत के पंजे से छूट गये हैं, और आजकल उनकी हालत आप देखें, तो आपको दया आयेगी। और मैं क्या हिमायत करूँगा, जिसे अपनी किताबों और विद्यालय से छुट्टी नहीं! ज़्यादा से ज़्यादा सूखी हमदर्दी ही तो कर सकता हूँ। हिमायत की है मिस मालती ने कि खन्ना को बचा लिया। इंसान के दिल की गहराइयों में त्याग और कुर्बानी की कितनी ताकत छिपी होती है, इसका मुझे अब तक तजरबा न हुआ था। आप भी एक दिन खन्ना से मिल आइए। फूला न समाइएगा। इस वक्त उसे जिस चीज़ की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है, वह हमदर्दी है।

मिर्ज़ा ने जैसे अपनी इच्छा के विरुद्ध कहा—आप कहते हैं, तो जाऊँगा। आपके साथ जहन्नुम में जाने में भी मुझे उज्र नहीं; मगर मिस मालती से तो आपकी शादी होनेवाली थी। बड़ी गर्म खबर थी।

मेहता ने झेंपते हुए कहा—तपस्या कर रहा हूँ। देखिए कब वरदान मिले।

'अजी, वह तो आप पर मरती थी।'

'मुझे भी यही वहम हुआ था; मगर जब मैंने हाथ बढ़ाकर उसे पकड़ना चाहा, तो देखा, वह आसमान में जा बैठी है। उस ऊँचाई तक तो मैं क्या पहुँचूँगा, आरज़ू-मिन्नत कर रहा हूँ कि वह नीचे आ जाय। आजकल तो वह मुझसे बोलती भी नहीं।'

यह कहते हुए मेहता ज़ोर से रोती हुई हँसी हँसे और उठ खड़े हुए।

मिर्ज़ा ने पूछा—अब फिर कब मुलाकात होगी?

'अबकी आपको तकलीफ़ करनी पड़ेगी। खन्ना के पास जाइएगा ज़रूर!'

'जाऊँगा।'

मिर्ज़ा ने खिड़की से मेहता को जाते देखा। चाल में वह तेज़ी न थी, जैसे किसी चिन्ता में डूबे हुए हों।

३३

डाक्टर मेहता परीक्षक से परीक्षार्थी हो गये हैं। मालती से दूर-दूर रहकर उन्हें ऐसी शंका होने लगी है कि उसे खो न बैठें। कई महीनों से मालती उनके पास न आई थी और जब वह विकल होकर उसके घर गये, तो मुलाक़ात न हुई। जिन दिनों रुद्रपाल और सरोज़ का प्रेमकाण्ड चलता रहा, तब तो मालती उनकी सलाह लेने प्रायः एक-दो बार रोज़ आती थी; पर जबसे दोनों इगलैंड चले गये थे, उसका आना-जाना बन्द हो गया था। घर पर भी वह मुश्किल से मिलती। ऐसा मालूम होता था, जैसे वह उनसे बचती है, जैसे बलपूर्वक अपने मन को उनकी ओर से हटा लेना चाहती है। जिस पुस्तक में वह इन दिनों लगे हुए थे, वह आगे बढ़ने से इनकार कर रही थी, जैसे उनका मनोयोग लुप्त हो गया हो। गृह-प्रबन्ध में तो वह कभी बहुत कुशल न थे। सब मिलाकर एक हज़ार रुपये से अधिक महीने में कमा लेते थे; मगर बचत एक धेले की भी न होती थी। रोटी-दाल खाने के सिवा और उनके हाथ कुछ न आता था। तकल्लुफ़ अगर कुछ था तो वह उनकी कार थी, जिसे वह ख़ुद ड्राइव करते थे। कुछ रुपये किताबों में उड़ जाते थे, कुछ चन्दों में, कुछ गरीब छात्रों की परिवरिश में और अपने बाग की सजावट में जिससे उन्हें इश्क-सा था। तरह-तरह के पौधे और वनस्पतियाँ विदेशों से महँगे दामों मँगाना और उनको पालना; यही उनका मानसिक चटोरापन था, या इसे दिमागी ऐयाशी कहें; मगर इधर कई महीने से उस बगीचे की ओर से भी वह कुछ विरक्त-से हो रहे थे, और घर का इन्तज़ाम भी और अबतर हो गया था। खाते दो फुलके और ख़र्च हो जाते सौ से ऊपर! अचकन पुरानी हो गई थी; मगर इसी पर उन्होंने कड़ाके का जाड़ा काट दिया। नई अचकन सिलवाने की तौफ़ीक़ न हुई थी। कभी-कभी बिना घी की दाल खाकर उठना पड़ता। कब घी का कनस्तर मँगाया था, इसकी उन्हें याद ही न थी, और महाराज से पूछें भी तो कैसे। वह समझेगा नहीं कि उस पर अविश्वास किया जा रहा है। आख़िर एक दिन जब तीन निराशाओं के बाद चौथी बार मालती से मुलाक़ात हुई और उसने इनकी यह हालत देखी, तो उससे न रहा गया। बोली—तुम क्या अबकी जाड़ा यों ही काट दोगे? यह अचकन पहनते तुम्हें शर्म भी नहीं आती?

मालती उनकी पत्नी न होकर भी उनके इतने समीप थी कि यह प्रश्न उसने उसी सहज भाव से किया, जैसे अपने किसी आत्मीय से करती।

मेहता ने बिना झपे हुए कहा—क्या करूँ मालती, पैसा तो बचता ही नहीं।

मालती को अचरज हुआ—तुम एक हज़ार से ज्यादा कमाते हो, और तुम्हारे पास अपने कपड़े बनवाने को भी पैसे नहीं ! मेरी आमदनी कभी चार सौ से ज्यादा न थी; लेकिन मैं उसी में सारी गृहस्थी चलाती हूँ और कुछ बचा लेती हूँ। आख़िर तुम क्या करते हो ?

'मैं एक पैसा भी फ़ालतू नहीं ख़र्च करता। मुझे कोई ऐसा शौक़ भी नहीं है।'

'अच्छा, मुझसे रुपये ले जाओ और एक जोड़ी अचकन बनवा लो।'

मेहता ने लज्जित होकर कहा—अबकी बनवा लूँगा। सच कहता हूँ।

'अब आप यहाँ आयें तो आदमी बनकर आयें।'

'यह तो बड़ी कड़ी शर्त है।'

'कड़ी सही। तुम-जैसों के साथ बिना कड़ाई किये काम नहीं चलता।'

मगर वहाँ तो सन्दूक ख़ाली था और किसी दूकान पर बे-पैसे जाने का साहस न पड़ता था। मालती के घर जायँ, तो कौन मुँह लेकर। दिल में तड़प-तड़पकर रह जाते थे। एक दिन एक नई विपत्ति आ पड़ी। इधर कई महीने से मकान का किराया नहीं दिया था। पचहत्तर रुपये माहवार बढ़ते जाते थे। मकानदार ने जब बहुत तक़ाज़े करने पर भी रुपये वसूल न कर पाये, तो नोटिस दे दी; मगर नोटिस रुपये गढ़ने का कोई जन्तर तो है नहीं। नोटिस की तारीख निकल गई और रुपये न पहुँचे। तब मकानदार ने मजबूर होकर नालिश कर दी। वह जानता था, मेहताजी बड़े सज्जन और परोपकारी पुरुष हैं; लेकिन इससे ज़्यादा भलमनसी वह क्या करता कि छः महीने बैठा रहा। मेहता ने किसी तरह की पैरवी न की, एकतरफ़ा डिक्री हो गई। मकानदार ने तुरत डिक्री जारी कराई और कुर्कअमीन मेहता साहब के पास पूर्व सूचना देने आया; क्योंकि उसका लड़का यूनिवर्सिटी में पढ़ता था और उसे मेहता कुछ वज़ीफ़ा भी देते थे। संयोग से उस वक्त मालती भी बैठी थी।

बोली—कैसी कुर्की है ? किस बात की ?

अमीन ने कहा—वही किराये की डिक्री जो हुई थी। मैंने कहा, हुज़ूर को इत्तला दे दूँ। चार-पाँच सौ का मामला है, कौन-सी बड़ी रक़म है। दस दिन में भी रुपये दे दीजिए, तो कोई हरज नहीं। मैं महाजन को दस दिन तक उलझाये रहूँगा।

जब अमीन चला गया, तो मालती ने तिरस्कार-भरे स्वर में पूछा—अब यहाँ तक नौबत पहुँच गई ! मुझे आश्चर्य होता है कि तुम इतने मोटे-मोटे ग्रन्थ कैसे लिखते हो। मकान का किराया छः-छः महीने से बाक़ी पड़ा है और तुम्हें ख़बर नहीं।

मेहता लज्जा से सिर झुकाकर बोले—ख़बर क्यों नहीं है ; लेकिन रुपये बचते ही नहीं। मैं एक पैसा भी व्यर्थ नहीं ख़र्च करता।

'कोई हिसाब-किताब भी लिखते हो ?'

'हिसाब क्यों नहीं रखता। जो कुछ पाता हूँ, वह सब दर्ज करता जाता हूँ, नहीं इनकमटैक्सवाले ज़िन्दा न छोड़ें।'

'और जो कुछ ख़र्च करते हो वह ?'

'उसका तो कोई हिसाब नहीं रखता।'

'क्यों ?'

'कौन लिखे ; बोझ-सा लगता है।'

'और यह पोथे कैसे लिख डालते हो ?'

'उसमें तो विशेष कुछ नहीं करना पड़ता। क़लम लेकर बैठ जाता हूँ। हर वक्त ख़र्च का खाता तो खोलकर नहीं बैठता।'

'तो यह रुपये कैसे अदा करोगे ?'

'किसी से कर्ज़ ले लूँगा। तुम्हारे पास हों तो दे दो।'

'मैं तो एक ही शर्त पर दे सकती हूँ। तुम्हारी आमदनी सब मेरे हाथ में आये और ख़र्च भी मेरे हाथ से हो।'

मेहता प्रसन्न होकर बोले—वाह, अगर यह भार ले लो, तो क्या कहना, मूसकों ढोल बजाऊँ।'

मालती ने डिक्री के रुपये चुका दिये और दूसरे ही दिन मेहता को वह बँगला ख़ाली करने पर मजबूर किया। अपने बँगले में उसने उनके लिए दो बड़े-बड़े कमरे दे दिये। उनके भोजन आदि का प्रबन्ध भी अपनी ही गृहस्थी में कर लिया। मेहता के पास और सामान तो ज़्यादा न था ; मगर किताबें कई गाड़ी थीं। उनके दोनों कमरे पुस्तकों से भर गये। अपना बगीचा छोड़ने का उन्हें ज़रूर कलक हुआ ; लेकिन मालती ने अपना पूरा अहाता उनके लिए छोड़ दिया कि जो फूल-पत्तियाँ चाहें लगायें।

मेहता तो निश्चिन्त हो गये ; लेकिन मालती को उनकी आय-व्यय पर नियन्त्रण करने में बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा। उसने देखा, आय तो एक हज़ार से ज़्यादा है ; मगर वह सारी की सारी गुप्तदान में उड़ जाती है। बीस-पचीस लड़के उन्हीं से वज़ीफ़ा पाकर विद्यालय में पढ़ रहे थे। विधवाओं की तादाद भी इससे कम न थी। इस ख़र्च में कैसे कमी करे, यह उसे न सूझता था। सारा दोष उसी के सिर मढ़ा जायगा, सारा अपयश उसी के हिस्से पड़ेगा। कभी मेहता पर झुँझलाती, कभी अपने ऊपर, कभी प्रार्थियों के ऊपर जो एक सरल, उदार प्राणी पर अपना भार रखते ज़रा भी न सकुचाते थे। यह देखकर और भी झुँझलाहट होती थी कि इन दान लेनेवालों में कुछ तो इसके पात्र ही न थे। एक दिन उसने मेहता को आड़े हाथों लिया।

मेहता ने उसका आक्षेप सुनकर निश्चिन्त भाव से कहा—तुम्हें अख़्तियार है, जिसे चाहे दो, जिसे चाहे न दो। मुझसे पूछने की कोई ज़रूरत नहीं। हाँ, जवाब भी तुम्हीं को देना पड़ेगा।

मालती ने चिढ़कर कहा—हाँ, और क्या, यश तो तुम लो, अपयश मेरे सिर मढ़ो। मैं नहीं समझती, तुम किस तर्क से इस दान-प्रथा का समर्थन कर सकते हो। मनुष्य-जाति को इस प्रथा ने जितना आलसी और मुफ़्तख़ोर बनाया है और उसके आत्मगौरव पर जैसा आघात किया है, उतना अन्याय ने भी न किया होगा ; बल्कि मेरे ख़याल में अन्याय ने मनुष्य-जाति में विद्रोह की भावना उत्पन्न करके समाज का बड़ा उपकार किया है।

मेहता ने स्वीकार किया—मेरे भी यही ख़याल हैं।

'तुम्हारा यह ख़याल नहीं है।'

'नहीं मालती, मैं सच कहता हूँ।'

'तो विचार और व्यवहार में इतना भेद क्यों ?'

मालती ने तीसरे महीने बहुतों को निराश किया। किसी को साफ़ जवाब दिया, किसी से मजबूरी जताई, किसी की फ़ज़ीहत की।

मिस्टर मेहता का बजट तो धीरे-धीरे ठीक हो गया ; मगर इससे उनको एक प्रकार की ग्लानि हुई। मालती ने जब तीसरे महीने में तीन सौ की बचत दिखाई, तब वह उससे कुछ बोले नहीं ; मगर उनकी दृष्टि में उसका गौरव कुछ कम अवश्य

हो गया। नारी में दान और त्याग होना चाहिए। उसको यही सबसे बड़ी विभूति है। इसी आधार पर समाज का भवन खड़ा है। वणिक्-बुद्धि को वह आवश्यक बुराई ही समझते थे।

जिस दिन मेहता की अचकनें बनकर आईं और नई घड़ी आई, वह संकोच के मारे कई दिन बाहर न निकले। आत्म-सेवा से बड़ा उनकी नज़र में दूसरा अपराध न था।

मगर रहस्य की बात यह थी कि मालती उनको तो लेखे-ज्योढ़े में कसकर बाँधना चाहती थी, उनके धन-दान के द्वार बन्द कर देना चाहती थी; पर खुद जीवन-दान देने में अपने समय और सदाशयता को दोनों हाथों से लुटाती थी। अमीरों के घर तो वह बिना फ़ीस लिये न जाती थी; लेकिन ग़रीबों को मुफ़्त देखती थी, मुफ़्त दवा भी देती थी। दोनों में अन्तर इतना ही था, कि मालती घर की भी थी और बाहर की भी; मेहता केवल बाहर के थे, घर उनके लिये न था। निजत्व दोनों मिटाना चाहते थे। मेहता का रास्ता साफ़ था। उनपर अपनी ज़ात के सिवा और कोई ज़िम्मेदारी न थी। मालती का रास्ता कठिन था, उस पर दायित्व था, बन्धन था, जिसे वह तोड़ न सकती थी, न तोड़ना चाहती थी। उस बन्धन में ही उसे जीवन की प्रेरणा मिलती थी। उसे अब मेहता को समीप से देखकर यह अनुभव हो रहा था कि वह खुले जंगल में विचरनेवाले जीव को पिंजरे में बन्द नहीं कर सकती। और बन्द कर देगी तो वह काटने और नोचने दौड़ेगा। पिंजरे में सब तरह का सुख मिलने पर भी उसके प्राण सदैव जंगल के लिए ही तड़पते रहेंगे। मेहता के लिए घरबारी दुनिया एक अनजानी दुनिया थी, जिसकी रीति-नीति से वह परिचित न थे।

उन्होंने संसार को बाहर से देखा था और उसे मक्र और फ़रेब से ही भरा समझते थे। जिधर देखते थे, उधर बुराइयाँ ही नज़र आती थीं; मगर समाज में जब गहराई में जाकर देखा, तो उन्हें मालूम हुआ कि इन बुराइयों के नीचे त्याग भी है, प्रेम भी है, साहस भी है, धैर्य भी है; मगर यह भी देखा कि वह विभूतियाँ हैं तो ज़रूर, पर दुर्लभ हैं, और इस शंका और सन्देह में जब मालती का अन्धकार से निकलता हुआ देवी-रूप उन्हें नज़र आया, तब वह उसकी ओर उतावलेपन के साथ सारा धैर्य खोकर टूटे और चाहा कि उसे ऐसे जतन से छिपाकर रखें कि किसी दूसरे

की आँख भी उस पर न पड़े। यह ध्यान न रहा कि यह मोह ही विनाश की जड़ है। प्रेम-जैसी निर्मम वस्तु क्या भय से बाँधकर रखी जा सकती है? वह तो पूरा विश्वास चाहती है, पूरी स्वाधीनता चाहती है, पूरी जिम्मेदारी चाहती है। उसके पल्लवित होने की शक्ति उसके अन्दर है। उसे प्रकाश और क्षेत्र मिलना चाहिए। वह कोई दीवार नहीं है, जिस पर ऊपर से ईंटें रखी जाती हैं। उसमें तो प्राण है, फैलने की असीम शक्ति है।

जबसे मेहता इस बँगले में आये हैं, उन्हें मालती से दिन में कई बार मिलने का अवसर मिलता है। उनके मित्र समझते हैं, यह उनके विवाह की तैयारी है। केवल रस्म अदा करने की देर है। मेहता भी यही स्वप्न देखते रहते हैं। अगर मालती ने उन्हें सदा के लिए ठुकरा दिया होता तो क्यों उन पर इतना स्नेह रखती। शायद वह उन्हें सोचने का अवसर दे रही है, और वह खूब सोचकर इसी निश्चय पर पहुँचे हैं कि मालती के बिना वह आधे हैं, वही उन्हें पूर्णता की ओर ले जा सकती है। बाहर से वह विलासिनी है, भीतर से वही मनोवृत्ति शक्ति का केन्द्र है; मगर परिस्थिति बदल गई है। तब मालती प्यासी थी, अब मेहता प्यास से विकल हैं। और एकबार जवाब पा जाने के बाद उन्हें इस प्रश्न पर मालती से कुछ कहने का साहस नहीं होता, यद्यपि उनके मन में अब सन्देह का लेश नहीं रहा। मालती को समीप से देखकर उनका आकर्षण बढ़ता ही जाता है। दूर से पुस्तक के जो अक्षर लिपे-पुते-से लगते थे, समीप से वह स्पष्ट हो गये हैं, उनमें अर्थ है, सन्देश है।

इधर मालती ने अपने बाग के लिए गोबर को माली रख लिया था। एक दिन वह किसी मरीज को देखकर घर आ रही थी कि रास्ते में पेट्रोल न रहा। वह खुद ड्राइव कर रही थी। फिक्र हुई, पेट्रोल कैसे आये। रात के नौ बज गये थे और माघ का जाड़ा पड़ रहा था। सड़कों पर सन्नाटा हो गया था। कोई ऐसा आदमी नज़र न आता था, जो कार को अकेले ढकेलकर पेट्रोल की दूकान तक ले जाय। बार-बार नौकर पर झुँझला रही थी। हरामखोर कहीं का! बेखबर पड़ा रहता है।

संयोग से गोबर उधर से आ निकला। मालती को खड़ी देखकर उसने हालत समझ ली और गाड़ी को दो फर्लांग ठेलकर पेट्रोल की दूकान तक लाया।

मालती ने प्रसन्न होकर पूछा—नौकरी करोगे?

गोबर ने धन्यवाद के साथ स्वीकार किया। पन्द्रह रुपये वेतन तय हुआ। माली

का काम उसे पसन्द था। यही काम उसने किया था और उसमें मजा हुआ था। मिल की मजदूरी में वेतन ज्यादा मिलता था; पर उस काम से उसे उलझन होती थी।

दूसरे दिन से गोबर ने मालती के यहाँ काम करना शुरू कर दिया। उसे रहने को एक कोठरी मिल गई। झुनिया भी आ गई। मालती बाग में आती तो उसे झुनिया का बालक धूल-मिट्टी में खेलता मिलता। एक दिन मालती ने उसे एक मिठाई दे दी। बच्चा उस दिन से परच गया। उसे देखते ही उसके पीछे लग जाता और जब तक मिठाई न लेता, उसका पीछा न छोड़ता।

एक दिन मालती बाग में आई तो बालक न दिखाई दिया। झुनिया से पूछा तो मालूम हुआ, बच्चे को ज्वर आ गया है।

मालती ने घबराकर कहा—ज्वर आ गया! तो मेरे पास क्यों नहीं लाई, चल देखूँ?

बालक खटोले पर ज्वर में अचेत पड़ा था। खपरैल की उस कोठरी में इतनी सील, इतना अँधेरा, और इस ठण्ड के दिनों में भी इतने मच्छर कि मालती एक मिनट भी वहाँ न ठहर सकी, तुरन्त आकर थर्मामीटर लिया और फिर जाकर देखा, एक सौ चार था! मालती को भय हुआ, कहीं चेचक न हो। बच्चे को अभी तक टीका नहीं लगा था। और अगर इस सीली कोठरी में रहा, तो भय था, कहीं ज्वर और न बढ़ जाय।

सहसा बालक ने आँखें खोल दीं और मालती को खड़ी पाकर करुण-नेत्रों से उसकी ओर देखा और उसकी गोद के लिए हाथ फैलाये। मालती ने उसे गोद में उठा लिया और थपकियाँ देने लगी।

बालक मालती की गोद में आकर जैसे किसी बड़े सुख का अनुभव करने लगा। अपनी जलती हुई उँगलियों से उसके गले की मोतियों की माला पकड़कर अपनी ओर खींचने लगा। मालती ने नेकलस उतारकर उसके गले में डाल दी। बालक की स्वार्थी प्रकृति इस दशा में भी सजग थी। नेकलेस पाकर अब उसे मालती की गोद में रहने की कोई ऐसी ज़रूरत न रही। यहाँ उसके छिन जाने का भय था, झुनिया की गोद इस समय ज़्यादा सुरक्षित थी।

मालती ने खिले हुए मन से कहा—बड़ा चालाक है। चीज़ लेकर कैसा भागा!

झुनिया ने कहा—दे दो बेटा, मेम साहब का है।

बालक ने हार को दोनों हाथों से पकड़ लिया और मा की ओर रोष से देखा।

मालती बोली—तुम पहने रहो बच्चा, मैं माँगती नहीं हूँ।

उसी वक्त बँगले में आकर उसने अपना बैठक का कमरा ख़ाली कर दिया और उसी वक्त झुनिया उस नये कमरे में डट गई।

मंगल ने उस स्वर्ग को कुतूहल-भरी आँखों से देखा। छत में पंखा था, रंगीन बल्ब थे, दीवारों पर तसवीरें थीं। देर तक उन चीज़ों को टकटकी लगाये देखता रहा। मालती ने बड़े प्यार से पुकारा—मंगल!

मंगल ने मुस्कराकर उसकी ओर देखा, जैसे कह रहा हो—आज तो हँसा नहीं जाता मेम साहब! क्या करूँ? आपसे कुछ हो सके तो कीजिये।

मालती ने झुनिया को बहुत-सी बातें समझाईं और चलते-चलते पूछा—तेरे घर में कोई दूसरी औरत हो, तो गोबर से कह दे, दो-चार दिन के लिए बुला लाये। मुझे चेचक का डर है। कितनी दूर है तेरा घर?

झुनिया ने अपने गाँव का नाम और पता बताया। अन्दाज़ से अठारह-बीस कोस होंगे।

मालती को बेलारी याद था। बोली—वही गाँव तो नहीं जिसके पच्छिम तरफ़ आध मील पर नदी है?

'हाँ-हाँ मेम साहब, वही गाँव है। आपको कैसे मालूम?'

'एक बार हम लोग उस गाँव में गये थे। होरी के घर ठहरे थे। तू उसे जानती है?'

'वह तो मेरे ससुर हैं मेम साहब! मेरी सास भी मिली होंगी।'

'हाँ-हाँ, बड़ी समझदार औरत मालूम होती थी। मुझसे ख़ूब बातें करती रहीं। तो गोबर को भेज दे, अपनी मा को बुला लाये।'

'वह उन्हें बुलाने न जायँगे।'

'क्यों?'

'कुछ ऐसा ही कारन है।'

झुनिया को अपने घर का चौका-बरतन, झाड़ू-बहारू, रोटी-पानी, सभी कुछ करना पड़ता। दिन को तो दोनों चना-चबेना खाकर रह जाते। रात को जब मालती

आ जाती, तो झुनिया अपना खाना पकाती और मालती बच्चे के पास बैठती। वह बार-बार चाहती कि बच्चे के पास बैठे; लेकिन मालती उसे न आने देती। रात को बच्चे का ज्वर तेज हो जाता और वह बेचैन होकर दोनों हाथ ऊपर उठा लेता। मालती उसे गोद में लेकर घण्टों कमरे में टहलती। चौथे दिन उसे चेचक निकल आई। मालती ने सारे घर को टीका लगाया, खुद टीका लगवाया, मेहता को भी लगाया। गोबर, झुनिया, महराज, कोई न बचा। पहले दिन तो दाने छोटे थे और अलग-अलग थे। जान पड़ता था, छोटी माता हैं। दूसरे दिन दाने जैसे खिल उठे और अंगूर के दाने के बराबर हो गये और फिर कई-कई दाने मिलकर बड़े-बड़े आँवले जैसे हो गये। मंगल जलन और खुजली और पीड़ा से बेचैन होकर करुण स्वर में कराहता और दीन, असहाय नेत्रों से मालती की ओर देखता। उसका कराहना भी प्रौढ़ों का-सा था, और दृष्टि में भी प्रौढ़ता थी, जैसे वह एकाएक जवान हो गया हो। इस असह्य वेदना ने मानों उसके अबोध शिशुपन को मिटा डाला हो। उसकी शिशु-बुद्धि मानो सज्ञान होकर समझ रही थी कि मालती ही के जतन से वह अच्छा हो सकता है। मालती ज्यों ही किसी काम से चली जाती, वह रोने लगता। मालती के आते ही चुप हो जाता। रात को उसकी बेचैनी बढ़ जाती और मालती को प्रायः सारी रात बैठना पड़ जाता। मगर वह न कभी झुँझलाती, न चिढ़ती। हाँ, झुनिया पर उसे कभी-कभी अवश्य क्रोध आता; क्योंकि वह अज्ञान के कारण जो न करना चाहिए, वह कर बैठती। गोबर और झुनिया दोनों की आस्था झाड़-फूँक में अधिक थी; वहाँ उसका कोई अवसर न मिलता। उस पर झुनिया दो बच्चे की मा होकर बच्चे का पालन करना न जानती थी; मंगल दिक करता, तो उसे डाँटती-कोसती। ज़रा-सा भी अवकाश पाती, तो ज़मीन पर सो जाती और सबेरे से पहले न उठती; और गोबर तो उस कमरे में आते जैसे डरता था। मालती वहाँ बैठी है, कैसे जाय! झुनिया से बच्चे का हाल-हवाल पूछ लेता और खाकर पड़ रहता। उस चोट के बाद वह पूरा स्वस्थ न हो पाया था। थोड़ा-सा काम करके भी थक जाता था। उन दिनों जब झुनिया घास बेचती थी और वह आराम से पड़ा रहता था, वह कुछ हरा हो गया था; मगर इधर कई महीने बोझ ढोने और चूने-गारे का काम करने से उसकी दशा गिर गई थी। उस पर यहाँ काम बहुत था। सारे बाग को पानी निकालकर सींचना, क्यारियों को गोड़ना, घास छीलना, गायों

को चारा-पानी देना और दुहना। और जो मालिक इतना दयालु हो, उसके काम में काम-चोरी कैसे करे! यह एहसान उसे एक क्षण भी आराम से न बैठने देता, और जब मेहता ख़ुद खुरपी लेकर घण्टों बाग़ में काम करते, तो वह कैसे आराम करता। वह ख़ुद सूखता जाता हो; पर बाग हरा हो रहा था।

मिस्टर मेहता को भी बालक से स्नेह हो गया था। एक दिन मालती ने उसे गोद में लेकर उनकी मूँछ उखड़वा दी थी। दुष्ट ने मूँछों को ऐसा पकड़ा था कि समूल ही उखाड़ लेगा। मेहता की आँखों में आँसू भर आये थे।

मेहता ने बिगड़कर कहा था—बड़ा शैतान लौंडा है।

मालती ने उन्हें डाँटा था—तुम मूछें साफ़ क्यों नहीं कर लेते?

'मेरी मूछें मुझे प्राणों से प्रिय हैं।'

'अबकी पकड़ लेगा, तो उखाड़कर ही छोड़ेगा।'

'तो मैं इसके कान भी उखाड़ लूँगा।'

मंगल को उनकी मूँछें उखाड़ने में कोई ख़ास मज़ा आया था। वह खूब खिल-खिलाकर हँसा था और मूँछों को और ज़ोर से खींचा था; मगर मेहता को भी शायद मूँछें उखड़वाने में मज़ा आता था; क्योंकि वह प्रायः दो-एक बार रोज़ उससे अपनी मूँछों की रस्साकशी करा लिया करते थे।

इधर जबसे मंगल को चेचक निकल आई थी, मेहता को भी बड़ी चिन्ता हो गई थी। अकसर कमरे में जाकर मंगल को व्यथित आँखों से देखा करते। उसके कष्टों की कल्पना करके उनका कोमल हृदय हिल जाता था। उनके दौड़-धूप से वह अच्छा हो जाता, तो पृथ्वी के उस छोर तक दौड़ लगाते; रुपये खर्च करने से अच्छा होता, तो चाहे भीख ही माँगनी पड़ती, वह उसे अच्छा करके ही रहते; लेकिन यहाँ कोई बस न था। उसे छूते भी उनके हाथ काँपते थे। कहीं उसके आँबले न टूट जायँ। मालती कितने कोमल हाथों से उसे उठाती है, कन्धे पर उठाकर कमरे में टहलती है और कितने स्नेह से उसे बहलाकर दूध पिलाती है, यह वात्सल्य मालती को उनकी दृष्टि में न जाने कितना ऊँचा उठा देता है। मालती केवल रमणी नहीं है, माता भी है और ऐसी-वैसी माता नहीं, सच्चे अर्थों में देवी और माता और जीवन देनेवाली, जो पराये बालक को भी अपना समझ सकती है, जैसे उसने मातापन का सदैव संचय किया हो और आज दोनों हाथों से उसे लुटा रही हो।

उसके अङ्ग-अङ्ग से मातापन फूटा पड़ता था, मानो यही उसका यथार्थ रूप हो। यह हाव-भाव, यह शौक-सिंगार उसके मातापन के आवरण मात्र हों, जिसमें उस विभूति की रक्षा होती रहे।

रात को एक बज गया था। मंगल का रोना सुनकर मेहता चौंक पड़े। सोचा, बेचारी मालती आधी रात तक तो जागती रही होगी, इस वक्त उसे उठने में कितना कष्ट होगा; अगर द्वार खुला हो तो मैं ही बच्चे को चुप करा दूँ। तुरन्त उठकर उस कमरे के द्वार पर आये और शीशे से अन्दर झाँका। मालती बच्चे को गोद में लिये बैठी थी और बच्चा अनायास ही रो रहा था। शायद उसने कोई स्वप्न देखा था, या और किसी वजह से डर गया था। मालती चुमकारती थी, थपकती थी, तसवीरें दिखाती थी, गोद में लेकर टहलती थी; पर बच्चा चुप होने का नाम न लेता था। मालती का यह अटूट वात्सल्य, यह अदम्य मातृ-भाव देखकर उनकी आँखें सजल हो गईं। मन में ऐसा पुलक उठा कि अन्दर जाकर मालती के चरणों को हृदय से लगा लें। अन्तस्तल से अनुराग में डूबे हुए शब्दों का एक समूह मचल पड़ा—प्रिये, मेरे स्वर्ग की देवी, मेरी रानी, डारलिंग...

और उसी प्रेमोन्माद में उन्होंने पुकारा—मालती, ज़रा द्वार खोल दो।

मालती ने आकर द्वार खोल दिया और उनकी ओर जिज्ञासा की आँखों से देखा।

मेहता ने पूछा—क्या झुनिया नहीं उठी? यह तो बहुत रो रहा है।

मालती ने समवेदना भरे स्वर में कहा—आज आठवाँ दिन है, पीड़ा अधिक होगी। इसी से।

'तो लाओ, मैं कुछ देर टहला दूँ, तुम थक गई होगी।'

मालती ने मुस्कराकर कहा—तुम्हें ज़रा ही देर में गुस्सा आ जायगा!

बात सच थी; मगर अपनी कमज़ोरी को कौन स्वीकार करता है! मेहता ने ज़िद करके कहा—तुमने मुझे इतना हलका समझ लिया है?

मालती ने बच्चे को उनकी गोद में दे दिया। उनकी गोद में जाते ही वह एकदम चुप हो गया। बालकों में जो एक अन्तर्ज्ञान होता है, उसने उसे बता दिया, अब रोने में तुम्हारा कोई फ़ायदा नहीं। यह नया आदमी स्त्री नहीं, पुरुष है और

पुरुष गुस्सेवर होता है और निर्दयी भी होता है, और चारपाई पर लेटकर या बाहर अँधेरे में सुलाकर यह दूर चला जा सकता है और किसी को पास आने भी न देगा।

मेहता ने विजय-गर्व से कहा—देखा, कैसा चुप कर दिया !

मालती ने विनोद किया—हाँ, तुम इस कला में कुशल हो। कहाँ सीखी ?

'तुमसे।'

'मैं स्त्री हूँ और मुझ पर विश्वास नहीं किया जा सकता।'

मेहता ने लज्जित होकर कहा—मालती, मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहता हूँ, मेरे उन शब्दों को भूल जाओ। इन कई महीनों में मैं कितना पछताया हूँ, कितना लज्जित हुआ हूँ, कितना दुखी हुआ हूँ, शायद तुम इसका अन्दाज़ न कर सको।

मालती ने सरल भाव से कहा – मैं तो भूल गई, सच कहती हूँ।

'मुझे कैसे विश्वास आये ?'

'उसका प्रमाण यही है कि हम दोनों एक ही घर में रहते हैं, एक साथ खाते हैं, हँसते हैं, बोलते हैं।'

'क्या मुझे कुछ याचना करने की अनुमति न दोगी ?'

उन्होंने मंगल को खाट पर लिटा दिया, जहाँ वह दबककर सो रहा। और मालती की ओर प्रार्थी-आँखों से देखा जैसे उसी अनुमति पर उनका सब कुछ टिका हुआ हो।

मालती ने आर्द्र होकर कहा—तुम जानते हो, तुमसे ज़्यादा निकट संसार में मेरा कोई दूसरा नहीं है। मैंने बहुत दिन हुए, अपने को तुम्हारे चरणों पर समर्पित कर दिया। तुम मेरे पथ-प्रदर्शक हो, मेरे देवता हो, मेरे गुरु हो। तुम्हें मुझसे कुछ याचना करने की ज़रूरत नहीं, मुझे केवल संकेत कर देने की ज़रूरत है। जब मुझे तुम्हारे दर्शन न हुए थे और मैंने तुम्हें पहचाना न था, भोग और आत्म-सेवा ही मेरे जीवन का इष्ट था। तुमने आकर उसे प्रेरणा दी, स्थिरता दी। मैं तुम्हारे एहसान कभी नहीं भूल सकती। मैंने नदी की तटवाली तुम्हारी बातें गाँठ बाँध लीं। दुःख यही हुआ कि तुमने भी मुझे वही समझा जो कोई दूसरा पुरुष समझता, जिसकी मुझे तुमसे आशा न थी। उसका दायित्व मेरे ऊपर है, यह मैं जानती हूँ ; लेकिन तुम्हारा अमूल्य प्रेम पाकर भी मैं वही बनी रहूँगी, ऐसा समझकर मेरे साथ अन्याय किया। मैं इस समय कितने गर्व का अनुभव कर रही हूँ, यह तुम नहीं

समझ सकते। तुम्हारा प्रेम और विश्वास पाकर अब मेरे लिए कुछ भी शेष नहीं रह गया है। यह वरदान मेरे जीवन को सार्थक कर देने के लिए काफ़ी है। यह मेरी पूर्णता है।

यह कहते-कहते मालती के मन में ऐसा अनुराग उठा कि मेहता के सीने से लिपट जाय। भीतर की भावनाएँ बाहर आकर मानो सत्य हो गई थीं। उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। जिस आनन्द को उसने दुर्लभ समझ रखा था, वह इतना सुलभ, इतना समीप है? और हृदय का वह आह्लाद मुख पर आकर उसे ऐसी शोभा देने लगा कि मेहता को उसमें देवत्व की आभा दिखी। यह नारी है या मंगल की, पवित्रता की और त्याग की प्रतिमा!

उसी वक्त झुनिया जागकर उठ बैठी और मेहता अपने कमरे में चले गये और फिर दो सप्ताह तक मालती से कुछ बातचीत करने का अवसर उन्हें न मिला। मालती कभी उनसे एकान्त में न मिलती। मालती के वह शब्द उनके हृदय में गूँजते रहते। उनमें कितनी सान्त्वना थी, कितनी विनय थी, कितना नशा था!

दो सप्ताह में मंगल अच्छा हो गया। हाँ, मुँह पर चेचक के दाग न भर सके। उस दिन मालती ने आस-पास के लड़कों को भर-पेट मिठाई खिलाई और जो मनौतियाँ कर रखी थीं, वह भी पूरी कीं। इस त्याग के जीवन में कितना आनन्द है, इसका अब उसे अनुभव हो रहा था। झुनिया और गोबर का हर्ष मानो उसके भीतर प्रतिबिम्बित हो। दूसरों के कष्ट-निवारण में उसने जिस सुख और उल्लास का अनुभव किया, वह कभी भोग-विलास के जीवन में न किया था। वह लालसा अब उन फूलों की भाँति क्षीण हो गई थी जिसमें फल लग रहे हों। अब वह उस दर्जे से आगे निकल चुकी थी, जब मनुष्य स्थूल आनन्द को परम सुख मानता है। वह आनन्द अब उसे तुच्छ पतन की ओर ले जानेवाला, कुछ हलका; बल्कि बीभत्स-सा लगता था। उस बड़े बँगले में रहने का क्या आनन्द जब उसके आस-पास मिट्टी के झोंपड़े मानो विलाप कर रहे हों। कार पर चढ़कर अब उसे गर्व नहीं होता। मंगल-जैसे अबोध बालक ने उसके जीवन में कितना प्रकाश डाल दिया, उसके सामने सच्चे आनन्द का द्वार-सा खोल दिया।

एक दिन मेहता के सिर में ज़ोर का दर्द हो रहा था। वह आँखें बंद किये चार-

पाई पर पड़े तड़प रहे थे कि मालती ने आकर उनके सिर पर हाथ रखकर पूछा—कबसे यह दर्द हो रहा है ?

मेहता को ऐसा जान पड़ा, इन कोमल हाथों ने जैसे सारा दर्द खींच लिया। उठकर बैठ गये और बोले— दर्द तो दोपहर से ही हो रहा था और ऐसा सिर-दर्द मुझे आज तक नहीं हुआ था ; मगर तुम्हारे हाथ रखते ही सिर ऐसा हलका हो गया है, मानो दर्द था ही नहीं। तुम्हारे हाथों में यह सिद्धि है।

मालती ने उन्हें कोई दवा लाकर खाने को दे दी और आराम से लेटे रहने की ताकीद करके तुरन्त कमरे से निकल जाने को हुई।

मेहता ने आग्रह करके कहा—ज़रा दो मिनट बैठोगी नहीं ?

मालती ने द्वार पर से पीछे फिरकर कहा—इस वक्त बातें करोगे तो शायद फिर दर्द होने लगे। आराम से लेटे रहो। आज-कल मैं तुम्हें हमेशा कुछ न कुछ पढ़ते या लिखते देखती हूँ। दो-चार दिन पढ़ना-लिखना छोड़ दो।

'तुम एक मिनट बैठोगी नहीं ?'

'मुझे एक मरीज़ को देखने जाना है।'

'अच्छी बात है, जाओ।'

मेहता के मुख पर कुछ ऐसी उदासी छा गई कि मालती लौट पड़ी और सामने आकर बोली—अच्छा कहो, क्या कहते हो ?

मेहता ने विमन होकर कहा— कोई ख़ास बात नहीं है। यही कह रहा था कि इतनी रात गये किस मरीज़ को देखने जाओगी ?

'वही, राय साहब की लड़की है। उसकी हालत बहुत ख़राब हो गई थी। अब कुछ सँभल गई है।'

उसके जाते ही मेहता फिर लेट रहे। कुछ समझ में नहीं आया कि मालती के हाथ रखते ही दर्द क्यों शान्त हो गया। अवश्य ही उसमें कोई सिद्धि है, और यह उसकी तपस्या का, उसकी कर्मण्य-मानवता का ही वरदान है। मालती नारीत्व के उस ऊँचे आदर्श पर पहुँच गई थी, जहाँ वह प्रकाश के एक नक्षत्र-सी नज़र आती थी। अब वह प्रेम की वस्तु नहीं, श्रद्धा की वस्तु थी। अब वह दुर्लभ हो गई थी और दुर्लभता मनस्वी आत्माओं के लिए उद्योग का मंत्र है। मेहता प्रेम में जिस सुख की कल्पना कर रहे थे, उसे श्रद्धा ने और भी गहरा, और भी स्फूर्तिमय बना दिया।

प्रेम में कुछ मान भी होता है, कुछ महत्त्व भी। श्रद्धा तो अपने को मिटा डालती है और अपने मिट जाने को ही अपना इष्ट बना लेती है। प्रेम अधिकार करना चाहता है, जो कुछ देता है, उसके बदले में कुछ चाहता भी है। श्रद्धा का चरम आनन्द अपना समर्पण है, जिसमें अहंमन्यता का ध्वंस हो जाता है।

मेहता का वह बृहत् ग्रन्थ समाप्त हो गया था, जिसे वह तीन साल से लिख रहे थे और जिसमें उन्होंने संसार के सभी दर्शन-तत्त्वों का समन्वय किया था। यह ग्रन्थ उन्होंने मालती को समर्पित किया, और जिस दिन उसकी प्रतियाँ इङ्गलैंड से आईं और उन्होंने एक प्रति मालती को भेंट की, तो वह उसे अपने नाम से समर्पित देखकर विस्मित भी हुई और दुखी भी।

उसने कहा—यह तुमने क्या किया? मैं तो अपने को इस योग्य नहीं समझती।

मेहता ने गर्व से कहा—लेकिन मैं तो समझता हूँ। यह तो कोई चीज़ नहीं। मेरे तो अगर सौ प्राण होते, तो वह तुम्हारे चरणों पर न्योछावर कर देता।

'मुझ पर! जिसने स्वार्थ-सेवा के सिवा कुछ जाना ही नहीं।'

'तुम्हारे त्याग का एक टुकड़ा भी मैं पा जाता, तो अपने को धन्य समझता। तुम देवी हो।'

'पत्थर की, इतना और क्यों नहीं कहते?'

'त्याग की, मंगल की, पवित्रता की।'

'तब तुमने मुझे ख़ूब समझा! मैं और त्याग! मैं तुमसे सच कहती हूँ, सेवा या त्याग का भाव कभी मेरे मन में नहीं आया। जो कुछ करती हूँ, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष स्वार्थ के लिए करती हूँ। मैं गाती इसलिए नहीं कि त्याग करती हूँ, या अपने गीतों से दुखी आत्माओं को सान्त्वना देती हूँ; बल्कि केवल इसलिए कि उससे मेरा मन प्रसन्न होता है। इसी तरह दवा दारू भी गरीबों को दे देती हूँ, केवल अपने मन को प्रसन्न करने के लिए। शायद मन का अहंकार इसमें सुख मानता है। तुम मुझे ख्वाहम-ख्वाह देवी बनाये डालते हो। अब तो इतनी कसर रह गई है कि धूप-दीप लेकर मेरी पूजा करो।

मेहता ने कातर स्वर में कहा—वह तो मैं बरसों से कर रहा हूँ मालती, और उस व़क्त तक करता जाऊँगा जब तक वरदान न मिलेगा।

मालती ने चुटकी ली—तो वरदान पा जाने के बाद शायद देवी को मन्दिर से निकाल फेंको।

मेहता सँभलकर बोले—तब तो मेरी अलग सत्ता ही न रहेगी ; उपासक उपास्य में लय हो जायगा।

मालती ने गम्भीर होकर कहा—नहीं, मेहता, मैं महीनों से इस प्रश्न पर विचार कर रही हूँ और अन्त में मैंने यह तय किया है कि मित्र बनकर रहना स्त्री-पुरुष बनकर रहने से कहीं सुखकर है। तुम मुझसे प्रेम करते हो, मुझ पर विश्वास करते हो, और मुझे भरोसा है कि आज अवसर आ पड़े, तो तुम मेरी रक्षा प्राणों से करोगे। तुममें मैंने अपना पथ-प्रदर्शक ही नहीं, अपना रक्षक भी पाया है। मैं भी तुमसे प्रेम करती हूँ ; तुम पर विश्वास करती हूँ, और तुम्हारे लिए कोई ऐसा त्याग नहीं है, जो मैं न कर सकूँ। और परमात्मा से मेरी यही विनय है कि वह जीवन-पर्यन्त मुझे इसी मार्ग पर दृढ़ रखे। हमारी पूर्णता के लिए, हमारी आत्मा के विकास के लिए, और क्या चाहिए ? अपनी छोटी-सी गृहस्थी बनाकर, अपनी आत्माओं को छोटे-से पिंजड़े में बन्द करके, अपने दुःख-सुख को अपने ही तक रखकर, क्या हम असीम के निकट पहुँच सकते हैं ? वह तो हमारे मार्ग में बाधा ही डालेगा। कुछ विरले प्राणी ऐसे भी हैं, जो पैरों में यह बेड़ियाँ डालकर भी विकास के पथ पर चल सकते हैं, और चल रहे हैं। यह भी जानती हूँ कि पूर्णता के लिए पारिवारिक प्रेम और त्याग और बलिदान का बहुत बड़ा महत्त्व है। लेकिन मैं अपनी आत्मा को उतना दृढ़ नहीं पाती। जब तक ममत्व नहीं है, अपनापन नहीं है, तब तक जीवन का मोह नहीं है, स्वार्थ का जोर नहीं है। जिस दिन मन मोह में आसक्त हुआ, और हम बन्धन में पड़े, उसी क्षण हमारी मानवता का क्षेत्र सिकुड़ जायगा, नई-नई जिम्मेदारियाँ आ जायँगी और हमारी सारी शक्ति उन्हीं के पूरी करने में लगने लगेगी। तुम्हारे जैसे विचारवान्, प्रतिभाशाली मनुष्य की आत्मा को मैं इस कारागार में बन्द नहीं करना चाहती। अभी तक तुम्हारा जीवन यज्ञ था, जिसमें स्वार्थ के लिए बहुत थोड़ा स्थान था। मैं उसको नीचे की ओर न ले जाऊँगी। संसार को तुम-जैसे साधकों की ज़रूरत है, जो अपनेपन को इतना फैला दें कि सारा संसार अपना हो जाय। संसार में अन्याय की, आतंक की, भय की दुहाई मची हुई है। अन्धविश्वास का, कपट-धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त्त-पुकार सुनी है।

तुम भी न सुनोगे, तो सुननेवाले कहाँ से आयेंगे। और असत्य प्राणियों की तरह तुम भी उसकी ओर से अपने कान नहीं बन्द कर सकते। तुम्हें वह जीवन भार हो जायगा। अपनी विद्या और बुद्धि को, अपनी जागी हुई मानवता को और भी उत्साह और जोर के साथ उसी रास्ते पर ले जाओ। मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगी। अपने जीवन के साथ मेरा जीवन भी सार्थक कर दो। मेरा तुमसे यही आग्रह है। अगर तुम्हारा मन सांसारिकता की ओर लपकता है, तब भी मैं अपना क़ाबू चलते तुम्हें उधर से हटाऊँगी और ईश्वर न करे कि मैं असफल हो जाऊँ; लेकिन तब मैं तुम्हारा साथ दो बूँद आँसू गिराकर छोड़ दूँगी, और कह नहीं सकती, मेरा क्या अन्त होगा, किस घाट लगूँगी; पर चाहे वह कोई घाट हो, इस बन्धन का घाट न होगा। बोलो, मुझे क्या आदेश देते हो?

मेहता सिर झुकाये सुनते रहे। एक-एक शब्द मानो उनके भीतर की आँखें इस तरह खोल देता था, जैसी अब तक कभी न खुली थीं। वह भावनाएँ जो अब तक उनके सामने स्वप्न-चित्रों की तरह आई थीं, अब जीवन-सत्य बनकर स्पन्दित हो गई थीं। वह अपने रोम-रोम में प्रकाश और उत्कर्ष का अनुभव कर रहे थे। जीवन के महान् संकल्पों के सम्मुख हमारा बालपन हमारी आँखों में फिर जाता है। मेहता की आँखों में मधुर बाल-स्मृतियाँ सजीव हो उठीं, जब वह अपनी विधवा माता की गोद में बैठकर महान् सुख का अनुभव किया करते थे। कहाँ है वह माता, आये और देखे अपने बालक की इस सुकीर्ति को। मुझे आशीर्वाद दो। तुम्हारा वह जिद्दी बालक एक नया जन्म ले रहा है।

उन्होंने मालती के चरण दोनों हाथ से पकड़ लिये और काँपते हुए बोले—तुम्हारा आदेश स्वीकार है मालती!

और दोनों एकान्त होकर प्रगाढ़ आलिंगन में बँध गये। दोनों की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी।

३४

सिलिया का बालक अब दो साल का हो रहा था और सारे गाँव में दौड़ लगाता था। अपने साथ एक विचित्र भाषा लाया था, और उसी में बोलता था, चाहे कोई समझे या न समझे। उसकी भाषा में ट, ल और घ की कसरत थी और स, र, आदि

वर्ण गायब थे। उस भाषा में रोटी का नाम था ओटो, दूध का तूत, साग का ताग और कौड़ी का तौलो। जानवरों की बोलियों की ऐसी नक़ल करता है कि हँसते-हँसते लोगों के पेट में बल पड़ जाता है। किसी ने पूछा—रामू, कुत्ता कैसे बोलता है? रामू गम्भीर भाव से कहता—भों-भों, और काटने दौड़ता। बिल्ली कैसे बोले? और रामू म्यांव-म्यांव करके आँखें निकालकर ताकता और पंजों से नोचता। बड़ा मस्त लड़का था। जब देखो, खेलने में मगन रहता, न खाने की सुध थी, न पीने की। गोद से उसे चिढ़ थी। उसके सबसे सुखी क्षण वह होते, जब वह द्वार के नीम के नीचे मनों धूल बटोरकर उसमें लोटता, सिर पर चढ़ाता, उसकी ढेरियाँ लगाता, घरौंदे बनाता। अपनी उम्र के लड़कों से उसकी एक क्षण न पटती। शायद उन्हें अपने साथ खेलाने के योग्य ही न समझता था।

कोई पूछता—तुम्हारा क्या नाम है?

चटपट कहता—लामू!

'तुम्हारे बाप का क्या नाम है?'

'मातादीन।'

'और तुम्हारी मा का?'

'छिलिया।'

'और दातादीन कौन हैं?'

'वह अमाला छाला है;'

न जाने किसने दातादीन से उसका यह नाता बता दिया था।

रामू और रूपा में खूब पटती थी। यह रूपा का खिलौना था। उसे उबटन मलती, काजल लगाती, नहलाती, बाल सँवारती, अपने हाथों कौर-कौर बनाकर खिलाती, और कभी-कभी उसे गोद में लिये रात को सो जाती। धनिया डाँटती, तू सब-कुछ छुआछूत किये देती है; मगर वह किसी की न सुनती। चीथड़े की गुड़ियों ने उसे माता बनना सिखाया था। वह मातृ-भावना जीता-जागता बालक पाकर अब गुड़ियों से सन्तुष्ट न हो सकती थी।

उसी के घर के पिछवाड़े, जहाँ किसी ज़माने में उसकी बरदौर थी, होरी के खँडहर में सिलिया अपना एक फूस का झोंपड़ा डालकर रहने लगी थी। होरी के घर में तो उम्र नहीं कट सकती थी।

मातादीन को कई सौ रुपये खर्च करने के बाद अन्त में काशी के पंडितों ने फिर से ब्राह्मण बना दिया था। उस दिन बड़ा भारी हवन हुआ, बहुत-से ब्राह्मणों ने भोजन किया, और बहुत से मन्त्र और श्लोक पढ़े गये। मातादीन को शुद्ध गोबर और गोमूत्र खाना-पीना पड़ा। गोबर से उसका मन पवित्र हो गया। मूत्र से उसकी आत्मा में अशुचिता के कीटाणु मर गये।

लेकिन एक तरह से इस प्रायश्चित्त ने उसे सचमुच पवित्र कर दिया। हवन के प्रचण्ड अग्नि-कुण्ड में उसकी मानवता निखर गई और हवन की ज्वाला के प्रकाश में उसने धर्म-स्तम्भों को अच्छी तरह परख लिया। उस दिन से उसे धर्म के नाम से चिढ़ हो गई। उसने जनेऊ उतार फेंका और पुरोहिती को गंगा में डुबा दिया। अब वह पक्का खेतिहर था। उसने यह भी देखा कि यद्यपि विद्वानों ने उसका ब्राह्मणत्व स्वीकार कर लिया; लेकिन जनता अब भी उसके हाथ का पानी नहीं पीती, उससे मुहूर्त्त पूछती है, साइत और लग्न का विचार करवाती है, उसे पर्व के दिन दान भी दे देती है; पर उससे अपने बरतन नहीं छुलाती।

जिस दिन सिलिया के बालक का जन्म हुआ, उसने दूनी मात्रा में भंग पी, और गर्व से जैसे उसकी छाती तन गई, और उँगलियाँ बार-बार मूछों पर पड़ने लगीं। बच्चा कैसा होगा? उसी के जैसा? कैसे देखे! उसका मन मसोसकर रह गया।

तीसरे दिन रूपा खेत में उससे मिली। उसने पूछा—रुपिया, तूने सिलिया का लड़का देखा!

रुपिया बोली—देखा क्यों नहीं? लाल-लाल है, खूब मोटा, बड़ी-बड़ी आँखें हैं, सिर में झबराले बाल हैं। टुकुर-टुकुर ताकता है।

मातादीन के हृदय में जैसे वह बालक आ बैठा था, और हाथ-पाँव फेंक रहा था। उसकी आँखों में नशा-सा छा गया। उसने उस किशोरी रूपा को गोद में उठा लिया, फिर कन्धे पर बिठा, फिर उतार उसके कपोलों को चूम लिया।

रूपा बाल सँभालती हुई ढीठ होकर बोली—चलो, मैं तुमको दूर से दिखा दूँ। ओसारे में ही तो है। सिलिया बहन न जाने क्यों हरदम रोती रहती है।

मातादीन ने मुँह फेर लिया। उसकी आँखें सजल हो आई थीं, और ओठ काँप रहे थे।

उस रात को जब सारा गाँव सो गया और पेड़ अन्धकार में डूब गये, तो वह सिलिया के द्वार पर आया और सम्पूर्ण प्राणों से बालक का रोना सुना, जिसमें सारी दुनिया का संगीत, आनन्द और माधुर्य भरा हुआ था।

सिलिया बच्चे को होरी के घर में खटोले पर सुलाकर मजूरी करने चली जाती। मातादीन किसी न किसी बहाने से होरी के घर आता और कनखियों से बच्चे को देखकर अपना कलेजा और आँखें और प्राण शीतल करता।

धनिया मुस्कराकर कहती—लजाते क्यों हो, गोद में ले लो, प्यार करो, कैसा काठ का कलेजा है तुम्हारा। बिल्कुल तुमको पड़ा है।

मातादीन एक-दो रुपये सिलिया के लिए फेंककर बाहर निकल आया। बालक के साथ उसकी आत्मा भी बढ़ रही थी, खिल रही थी, चमक रही थी। अब उसके जीवन का भी उद्देश्य था, एक व्रत था। उसमें संयम आ गया, गम्भीरता आ गई, दायित्व आ गया।

एक दिन रामू खटोले पर लेटा हुआ था। धनिया कहीं गई थी। रूपा भी लड़कों का शोर सुनकर खेलने चली गई। घर अकेला था। उसी वक्त मातादीन पहुँचा। बालक नीले आकाश की ओर देख देख हाँथ-पाँव फेंक रहा था, हुमक रहा था, जीवन के उस उल्लास के साथ जो अभी उसमें ताजा था। मातादीन को देखकर वह हँस पड़ा। मातादीन स्नेह-विह्वल हो गया। उसने बालक को उठाकर छाती से लगा लिया। उसकी सारी देह और हृदय और प्राण रोमांचित हो उठे, मानो पानी की लहरों में प्रकाश की रेखाएँ काँप रही हों। बच्चे की गहरी, निर्मल, अथाह, मोद-भरी आँखों में जैसे उसके जीवन का सत्य मिल गया। उसे एक प्रकार का भय-सा लगा, मानो वह दृष्टि उसके हृदय में चुभी जाती हो—वह कितना अपवित्र है, ईश्वर का वह प्रसाद कैसे छू सकता है। उसने बालक को सशंक मन के साथ फिर लिटा दिया। उसी वक्त रूपा बाहर से आ गई और वह बाहर निकल गया।

एक दिन खूब ओले गिरे। सिलिया घास लेकर बाजार गई हुई थी। रूपा अपने खेल में मग्न थी। रामू अब बैठने लगा था। कुछ-कुछ बकवाँ चलने भी लगा था। उसने जो आँगन में बिनौले बिछे देखे, तो समझा, बतासे फैले हुए हैं। कई उठाकर

खाये और आँगन में ख़ूब खेला। रात को उसे ज्वर आ गया। दूसरे दिन निमोनिया हो गया। तीसरे दिन सन्ध्या समय सिलिया की गोद में ही बालक के प्राण निकल गये।

लेकिन बालक मरकर भी सिलिया के जीवन का केन्द्र बना रहा। उसकी छाती में दूध का उबाल-सा आता और आँचल भीग जाता। उसी क्षण आँखों से आँसू भी निकल पड़ते। पहले सब कामों से छुट्टी पाकर रात को जब वह रामू को हिये से लगाकर स्तन उसके मुँह में दे देती, तो मानो उसके प्राणों में बालक की स्फूर्ति भर जाती। तब वह प्यारे-प्यारे गीत गाती, मीठे-मीठे स्वप्न देखती और नये-नये संसार रचती, जिसका राजा रामू होता। अब सब कामों से छुट्टी पाकर वह अपनी सूनी झोंपड़ी में रोती थी और उसके प्राण तड़पते थे, उड़ जाने के लिए उस लोक में जहाँ उसका लाल इस समय भी खेल रहा होगा। सारा गाँव उसके दुःख में शरीक था। रामू कितना चोंचाल था, जो कोई बुलाता, उसी की गोद में चला जाता। मरकर और पहुँच से बाहर होकर वह अब और भी प्रिय हो गया था, उसकी छाया उससे कहीं सुन्दर, कहीं चोंचाल, कहीं लुभावनी थी।

मातादीन उस दिन खुल पड़ा। परदा होता है हवा के लिए। आँधी में परदे उठाके रख दिये जाते हैं कि आँधी के साथ उड़ न जायँ। उसने शव को दोनों हथेलियों पर उठा लिया और अकेला नदी के किनारे तक ले गया, जो एक मील का पाट छोड़कर एक पतली-सी धार में समा गई थी। आठ दिन तक उसके हाथ सीधे न हो सके। उस दिन वह ज़रा भी नहीं लजाया, ज़रा भी नहीं झिझका।

और किसी ने कुछ कहा भी नहीं; बल्कि सभी ने उसके साहस और दृढ़ता की तारीफ़ की।

होरी ने कहा—यही मरद का धरम है। जिसकी बाँह पकड़ी, उसे क्या छोड़ना!

धनिया ने आँखें नचाकर कहा—मत बखान करो, जी जलता है। यह मरद है? मैं ऐसे मरद को नामरद कहती हूँ। जब बाँह पकड़ी थी, तब क्या दूध पीता था कि सिलिया बाम्हनी हो गई थी?

एक महीना बीत गया। सिलिया फिर मजूरी करने लगी थी। सन्ध्या हो गई थी। पूर्णमासी का चाँद विहँसता-सा निकल आया था। सिलिया ने कटे हुए खेत में

से गिरे हुए जौ के बाल चुनकर टोकरी में रख लिये थे और घर जाना चाहती थी कि चाँद पर निगाह पड़ गई, और दर्द-भरी स्मृतियों का मानो स्रोत खुल गया। अंचल दूध से भींग गया और मुख आँसुओं से। उसने सिर लटका लिया और जैसे रुदन का आनन्द लेने लगी।

सहसा किसी की आहट पाकर वह चौंक पड़ी। मातादीन पीछे से आकर सामने खड़ा हो गया और बोला—कब तक रोये जायगी सिलिया! रोने से वह फिर तो न आ जायगा।

और यह कहते-कहते वह ख़ुद रो पड़ा।

सिलिया के कण्ठ में आये हुए भर्त्सना के शब्द पिघल गये। आवाज़ सँभालकर बोली—तुम आज इधर कैसे आ गये?

मातादीन कातर होकर बोला—इधर से जा रहा था। तुझे बैठी देखा, चला आया।

'तुम तो उसे खेला भी न पाये।'

'नहीं सिलिया, एक दिन खेलाया था।'

'सच?'

'हाँ, सच।'

'मैं कहाँ थी?'

'तू बाजार गई थी।'

'तुम्हारी गोद में रोया नहीं?'

'नहीं सिलिया, हँसता था।'

'सच!'

'सच।'

'बस एक ही दिन खेलाया?'

'हाँ एक ही दिन; मगर देखने रोज़ आता था। उसे खटोले पर खेलते देखता था और दिल थामकर चला जाता था।'

'तुम्हीं को पड़ा था।'

'मुझे तो पछतावा होता है कि नाहक उस दिन उसे गोद में लिया। यह मेरे पापों का दंड है।'

सिलिया की आँखों में क्षमा झलक रही थी। उसने टोकरी सिर पर रख ली और घर चली। मातादीन भी उसके साथ-साथ चला।

सिलिया ने कहा—मैं तो अब धनिया काकी के बरौठे में सोती हूँ। अपने घर में अच्छा नहीं लगता।

'धनिया मुझे बराबर समझाती रहती थी।'

'सच?'

'हाँ, सच। जब मिलती थी समझाने लगती थी।'

गाँव के समीप आकर सिलिया ने कहा—अच्छा, अब इधर से अपने घर चले जाओ। कहीं पण्डित देख न लें।

मातादीन ने गर्दन उठाकर कहा—मैं अब किसी से नहीं डरता।

'घर से निकाल देंगे तो कहाँ जाओगे?'

'मैंने अपना घर बना लिया है।'

'सच?'

'हाँ, सच।'

'कहाँ, मैंने तो नहीं देखा।'

'चल, तो दिखाता हूँ।'

दोनों और आगे बढ़े। मातादीन आगे था। सिलिया पीछे। होरी का घर आ गया। मातादीन उसके पिछवाड़े जाकर सिलिया की झोंपड़ी के द्वार पर खड़ा हो गया और बोला—यही हमारा घर है।

सिलिया ने अविश्वास, क्षमा, व्यंग्य और दुःख-भरे स्वर में कहा—यह तो सिलिया चमारिन का घर है।

मातादीन ने द्वार की टाटी खोलते हुए कहा—यह मेरी देवी का मंदिर है।

सिलिया की आँखें चमकने लगीं। बोली—मन्दिर है तो एक लोटा पानी उँड़ेलकर चले जाओगे।

मातादीन ने उसके सिर की टोकरी उतारते हुए कम्पित स्वर में कहा—नहीं सिलिया, जब तक प्राण है, तेरी शरण में रहूँगा। तेरी ही पूजा करूँगा।

'झूठ कहते हो।'

'नहीं, तेरे चरण छूकर कहता हूँ। सुना, पटवारी का लौंडा भुनेसरी तेरे पीछे बहुत पड़ा था। तूने उसे खूब डाँटा।'

'तुमसे किसने कहा?'

'भुनेसरी आप ही कहता था।'

'सच?'

'हाँ, सच।'

सिलिया ने दियासलाई से कुप्पी जलाई। एक किनारे मिट्टी का घड़ा था, दूसरी ओर चूल्हा था, जहाँ दो-तीन पीतल और लोहे के बासन मँजे-धुले रखे थे। बीच में पुआल बिछा था। वही सिलिया का बिस्तर था। इस बिस्तर के सिरहाने की ओर रामू की छोटी-सी खटोली जैसे रो रही थी, और उसी के पास दो-तीन मिट्टी के हाथी-घोड़े अङ्ग-भङ्ग दशा में पड़े हुए थे। जब स्वामी ही न रहा तो कौन उनकी देख-भाल करता। मातादीन पुआल पर बैठ गया। कलेजे में हूक-सी उठ रही थी, जी चाहता था, खूब रोये।

सिलिया ने उसकी पीठ पर हाथ रखकर पूछा—तुम्हें कभी मेरी याद आती थी?

मातादीन ने उसका हाथ पकड़कर हृदय से लगाकर कहा—तू हरदम मेरी आँखों के सामने फिरती रहती थी। तू भी कभी मुझे याद करती थी?

'मेरा तो तुमसे जी जलता था।'

'और दया नहीं आती थी!'

'कभी नहीं।'

'तो भुनेसरी...'

'अच्छा गाली मत दो। मैं डर रही हूँ, गाँववाले क्या कहेंगे।'

'जो भले आदमी हैं, वह कहेंगे यही इसका धरम था। जो बुरे हैं उनकी मैं परवा नहीं करता!'

'और तुम्हारा खाना कौन पकायेगा?'

'मेरी रानी सिलिया।'

'तो बाह्मन कैसे रहोगे?'

'मैं बाह्मन नहीं चमार ही रहना चाहता हूँ। जो अपना धरम पाले वही बाह्मन है, जो धरम से मुँह मोड़े वही चमार है।'

सिलिया ने उसके गले में बाहें डाल दीं।

३५

होरी की दशा दिन-दिन गिरती ही जा रही थी। जीवन के संघर्ष में उसे सदैव हार हुई; पर उसने कभी हिम्मत नहीं हारी। प्रत्येक हार जैसे उसे भाग्य से लड़ने की शक्ति दे देती थी; मगर अब वह उस अन्तिम दशा को पहुँच गया था, जब उसमें आत्म-विश्वास भी न रहा था; अगर वह अपने धर्म पर अटल रह सकता, तो भी कुछ आँसू पुँछते; मगर वह बात न थी। उसने नीयत भी बिगाड़ी, अधर्म भी कमाया, कोई ऐसी बुराई न थी, जिसमें वह न पड़ा हो; पर जीवन की कोई अभिलाषा न पूरी हुई, और भले दिन मृगतृष्णा की भाँति दूर ही होते चले गये, यहाँ तक कि अब उसे धोखा भी न रह गया था, झूठी आशा की हरियाली और चमक भी अब नज़र न आती थी। हारे हुए महीप की भाँति उसने अपने को इन तीन बीघे खेत के क़िले में बन्द कर लिया था और उसे प्राणों की तरह बचा रहा था। फ़ाके सहे, बदनाम हुआ, मजूरी की; पर किले को हाथ से न जाने दिया; मगर अब वह क़िला भी हाथ से निकला जाता था। तीन साल से लगान बाकी पड़ा हुआ था और अब पण्डित नोखेराम ने उस पर बेदखली का दावा कर दिया था। कहीं से रुपये मिलने की आशा न थी। ज़मीन उसके हाथ से निकल जायगी और उसके जीवन के बाक़ी दिन मजूरी करने में कटेंगे। भगवान् की इच्छा, राय साहब को क्यों दोष दे। असामियों ही से तो उनका भी गुजर है। इसी गाँव पर आधे से ज़्यादा घरों पर बेदखली आ रही है। आवे। औरों की जो दशा होगी, वही उसकी भी होगी। भाग्य में सुख बदा होता, तो लड़का यों हाथ से निकल जाता?

साँझ हो गई थी। वह इसी चिन्ता में डूबा बैठा था कि पण्डित दातादीन ने आकर कहा—क्या हुआ होरी, तुम्हारी बेदखली के बारे में? इन दिनों नोखेराम से मेरी बोल-चाल बन्द है। कुछ पता नहीं। सुना, तारीख़ को पंद्रह दिन और रह गये हैं।

होरी ने उनके लिए खाट डालकर कहा—वह मालिक हैं, जो चाहें करें, मेरे

पास रुपये होते, तो यह दुर्दशा क्यों होती। खाया नहीं, उड़ाया नहीं; लेकिन उपज ही न हो और जो हो भी, वह कौड़ियों के मोल बिके, तो किसान क्या करे?

'लेकिन जैजात तो बचानी ही पड़ेगी। निबाह कैसे होगा। बाप-दादों की इतनी निसानी बच रही है। वह निकल गई; तो कहाँ रहोगे।'

'भगवान् की मरजी है, मेरा क्या बस।'

'एक उपाय है जो तुम करो।

होरी को जैसे अभय-दान मिल गया। उनके पाँव पकड़कर बोला— बड़ा धरम होगा महाराज, तुम्हारे सिवा मेरा कौन है। मैं तो निरास हो गया था।'

'निराश होने की कोई बात नहीं। बस, इतना ही समझ लो कि सुख में आदमी का धरम कुछ और होता है, दुःख में कुछ और। सुख में आदमी दान देता है, मगर दुःख में भीख माँगता है। उस समय आदमी का यही धरम हो जाता है। सरीर अच्छा रहता है तो हम बिना असनान-पूजा किये मुँह में पानी भी नहीं डालते, लेकिन बीमार हो जाते हैं, तो बिना नहाये-धोये, कपड़े पहने, खाट पर बैठे, पथ्य लेते हैं। उस समय का यही धरम है। यहाँ हममें-तुममें कितना भेद है; लेकिन जगन्नाथपुरी में कोई भेद नहीं रहता। ऊँचे-नीचे सभी एक पङ्गत में बैठकर खाते हैं। आपत्काल में श्रीरामचन्द्र ने सेवरी के जूठे फल खाये थे, बालि का छिपकर बध किया था। जब संकट में बड़े-बड़ों की मर्यादा टूट जाती है, तो हमारी-तुम्हारी कौन बात है। रामसेवक महतो को तो जानते हो न?'

होरी ने निरुत्साह होकर कहा—हाँ, जानता क्यों नहीं।

'मेरा जजमान है। बड़ा अच्छा जमाना है उसका। खेती अलग, लेन-देन अलग। ऐसे रोब-दाब का आदमी ही नहीं देखा। कई महीने हुए, उसकी औरत मर गई है। सन्तान कोई नहीं। अगर रुपिया का ब्याह उससे करना चाहो, तो मैं उसे राजी कर लूँ। मेरी बात वह कभी न टालेगा। लड़की सयानी हो गई है, और जमाना बुरा है। कहीं कोई बात हो जाय, तो मुँह में कालिख लग जाय। यह बड़ा अच्छा औसर है। लड़की का ब्याह भी हो जायगा, और तुम्हारे खेत भी बच जायँगे। सारे खरच-बरच से बचे जाते हो।'

रामसेवक होरी से दो ही चार साल छोटा था। ऐसे आदमी से रूपा के ब्याह करने का प्रस्ताव ही अपमानजनक था। कहाँ फूल-सी रूपा और कहाँ वह बूढ़ा

ठूँठ। जीवन में होरी ने बड़ी-बड़ी चोटें सही थीं, मगर यह चोट सबसे गहरी थी। आज उसके ऐसे दिन आ गये हैं कि उससे लड़की बेचने की बात कही जाती है। और उसमें इनकार करने का साहस नहीं है। ग्लानि से उसका सिर झुक गया।

दातादीन ने एक मिनट के बाद पूछा—तो क्या कहते हो?

होरी ने साफ़ जवाब न दिया। बोला—सोचकर कहूँगा।

'इसमें सोचने की क्या बात है?'

'धनिया से भी तो पूछ लूँ।'

'तुम राजी हो कि नहीं?'

'ज़रा सोच लेने दो महाराज! आज तक कुल में कभी ऐसा नहीं हुआ। उसकी मरजाद भी तो रखनी है।'

'पाँच-छः दिन के अन्दर मुझे जवाब दे देना। ऐसा न हो, तुम सोचते ही रहो और बेदखली आ जाय।'

दातादीन चले गये। होरी की ओर से उन्हें कोई अन्देशा न था। अन्देशा था धनिया की ओर से। उसकी नाक बड़ी लम्बी है। चाहे मिट जाय, मरजाद न छोड़ेगी; मगर होरी हाँ कर ले, तो वह भी रो-धोकर मान ही जायगी। खेतों के निकलने में भी तो मर्जाद बिगड़ती है।

धनिया ने आकर पूछा—पंडित क्यों आये थे?

'कुछ नहीं, यही बेदखली की बातचीत थी।'

'आँसू पोंछने आये होंगे, यह तो न होगा कि सौ रुपये उधार दे दें।'

'माँगने का मुँह भी तो नहीं है!'

'तो यहाँ आते ही क्यों हैं?'

'रुपिया की सगाई की बात थी।'

'किससे?'

'रामसेवक को जानती है? उन्हीं से।'

'मैंने उन्हें कब देखा, हाँ, नाम बहुत दिन से सुनती हूँ। वह तो बूढ़ा होगा।'

'बूढ़ा नहीं है, हाँ, अधेड़ है।

'तुमने पण्डित को फटकारा नहीं। मुझसे कहते तो ऐसा जवाब देती कि याद करते।'

'फटकारा नहीं ; लेकिन इन्कार कर दिया। कहते थे, ब्याह भी बिना खरच-बरच के हो जायगा ; और खेत भी बच जायँगे।'

'साफ-साफ क्यों नहीं बोलते कि लड़की बेचने को कहते थे। कैसे इस बूढ़े का हियाव पड़ा?'

लेकिन होरी इस प्रश्न पर जितना ही विचार करता था, उतना ही उसका दुराग्रह कम होता जाता था। कुल-मर्यादा की लाज उसे कुछ कम न थी ; लेकिन जिसे असाध्य रोग ने ग्रस लिया हो, खाद्य-अखाद्य की परवा कब करता है। दातादीन के सामने होरी ने कुछ ऐसा भाव प्रकट किया था, जिसे स्वीकृति नहीं कहा जा सकता ; मगर भीतर से वह पिघल गया था। उम्र की ऐसी कोई बात नहीं। मरना-जीना तकदीर के हाथ है। बूढ़े बैठे रहते हैं, जवान चले जाते हैं। रूपा को सुख लिखा है, तो वहाँ भी सुख उठायेगी, दुःख लिखा है, तो कहीं भी सुख नहीं पा सकती, और लड़की बेचने की तो कोई बात ही नहीं। होरी उससे जो कुछ लेगा, उधार लेगा और हाथ में रुपये आते ही चुका देगा। इसमें शर्म या अपमान की कोई बात नहीं है। बेशक, उसमें समाई होती, तो वह रूपा का ब्याह किसी जवान लड़के से और अच्छे कुल में करता, दहेज भी देता, बरात के खिलाने-पिलाने में भी खूब दिल खोलकर खर्च करता ; मगर जब ईश्वर ने उसे इस लायक नहीं बनाया, तो कुश-कन्या के सिवा और वह क्या कर सकता है। लोग हँसेंगे ; लेकिन जो लोग खाली हँसते हैं, और कोई मदद नहीं करते, उनकी हँसी की वह क्यों परवा करे। मुश्किल यही है कि धनिया न राजी होगी। गधी तो है ही। वही पुरानी लाज ढोये जायगी। यह कुल-प्रतिष्ठा के पालने का समय नहीं, अपनी जान बचाने का अवसर है। ऐसी ही बड़ी लाजवाली है, तो लाये पाँच सौ, निकाले। कहाँ धरे हैं।

दो दिन गुजर गये और इस मामले पर लोगों में कोई बातचीत न हुई। हाँ, दोनों सांकेतिक भाषा में बातें करते थे।

धनिया कहती—वर-कन्या जोड़ के हों तभी ब्याह का आनन्द है।

होरी जवाब देता—ब्याह आनन्द का नाम नहीं है पगली, यह तो तपस्या है।

'चलो, तपस्या है!'

'हाँ, मैं कहता जो हूँ। भगवान् आदमी को जिस दसा में डाल दें, उसमें सुख रहना तपस्या नहीं, तो और क्या है?

दूसरे दिन धनिया ने वैवाहिक आनन्द का दूसरा पहलू सोच निकाला। घर में जब तक सास-ससुर, देवरानियाँ-जेठानियाँ न हों, तो ससुराल का सुख ही क्या? कुछ दिन तो लड़की बहुरिया बनने का सुख पाये!

होरी ने कहा—यह वैवाहिक-जीवन का सुख नहीं, दण्ड है।

धनिया तिनक उठी—तुम्हारी बातें भी निराली होती हैं। अकेली बहू घर में कैसे रहेगी, न कोई आगे, न कोई पीछे।

होरी बोला—तू तो इस घर में आई तो एक नहीं, दो-दो देवर थे, सास थी, ससुर था। तूने कौन-सा सुख उठा लिया, बता?

'क्या सभी घरों में ऐसे ही प्राणी होते हैं?'

'और नहीं तो क्या आकाश की देवियाँ आ जाती हैं? अकेली तो बहू। उस पर हुकूमत करनेवाला सारा घर। बेचारी किस-किस को खुश करे। जिसका हुक्म न माने, वही वैरी। सबसे भला अकेला।'

फिर भी बात यहीं तक रह गई; मगर धनिया का पल्ला हलका होता जाता था। चौथे दिन रामसेवक महतो खुद आ पहुँचे। कलाँ-रास घोड़े पर सवार, साथ एक नाई और एक खिदमतगार, जैसे कोई बड़ा ज़मींदार हो। उम्र चालीस से ऊपर थी, बाल खिचड़ी हो गये थे; पर चेहरे पर तेज था, देह गठी हुई। होरी उनके सामने बिल्कुल बूढ़ा लगता था। किसी मुक़दमे की पैरवी करने जा रहे थे। यहाँ ज़रा दोपहरी काट लेना चाहते हैं। धूप कितनी तेज़ है, और कितने ज़ोरों की लू चल रही है। होरी सहुआइन की दूकान से गेहूँ का आटा और घी लाया। पूरियाँ बनीं। तीनों मेहमानों ने खाया। दातादीन भी आशीर्वाद देने आ पहुँचे। बातें होने लगीं।

दातादीन ने पूछा—कैसा मुक़दमा है महतो?

रामसेवक ने शान जमाते हुए कहा—मुक़दमा तो एक-न-एक लगा ही रहता है महाराज! संसार में गऊ बनने से काम नहीं चलता। जितना दबो, उतना ही लोग दबाते हैं। थाना पुलीस, कचहरी-अदालत सब हैं हमारी रच्छा के लिए; लेकिन रच्छा कोई नहीं करता। चारों तरफ़ लूट है। जो गरीब है, बेकस है, उसकी गरदन काटने के लिए सभी तैयार रहते हैं। भगवान् न करे कोई बेइमानी

करे। यह बड़ा पाप है ; लेकिन अपने हक और न्याय के लिए न लड़ना उससे भी बड़ा पाप है। तुम्हीं सोचो, आदमी कहाँ तक दबे ? यहाँ तो जो किसान है, वह सबका नरम चारा है। पटवारी को नज़राना और दस्तूरी न दे, तो गाँव में रहना मुश्किल। ज़मींदार के चपरासी और कारिन्दों का पेट न भरे, तो निबाह न हो। थानेदार और कनिसिटिबिल तो जैसे उसके दामाद हैं, जब उनका दौरा गाँव में हो जाय, किसानों का धरम है कि वह उनका आदर-सत्कार करें, नज़र-नयाज दें, नहीं एक रपोट में गाँव का गाँव बँध जाय। कभी कानोगो आते हैं, कभी तहसीलदार, कभी डिप्टी, कभी जंट, कभी कलक्टर, कभी कमिसनर। किसान को उनके सामने हाथ बाँधे हाजिर रहना चाहिए। उनके लिए रसद-चारे, अंडे-मुर्गी, दूध-घी का इन्तज़ाम करना चाहिए। तुम्हारे सिर भी तो वही बीत रही है महाराज! एक न एक हाकिम रोज नये-नये बढ़ते जाते हैं। डाक्टर कुओं में दवाई डालने के लिए आने लगा है। एक दूसरा डाक्टर कभी-कभी ढोरों को देखता है, लड़कों का इम्तहान लेनेवाला इसपिट्टर है, और न जाने किस-किस महकमे के अफ़सर हैं, नहर के अलग, जङ्गल के अलग, ताड़ी-सराब के अलग, गाँव-सुधार के अलग, खेती-विभाग के अलग। कहाँ तक गिनाऊँ ? पादड़ी आ जाता है, तो उसे भी रसद देनी पड़ती है, नहीं शिकायत कर दे। और जो कहो कि इतने महकमों और इतने अफ़सरों से किसान का कुछ उपकार होता हो, नाम को नहीं। अभी ज़मींदार ने गाँव पर हल-पीछे दो-दो रुपये चन्दा लगाया। किसी बड़े अफ़सर को दवत की थी। किसानों ने देने से इन्कार कर दिया। बस उसने गाँव पर जाफा कर दिया। हाकिम भी जमींदार ही का पच्छ करते हैं। यह नहीं सोचते कि किसान भी आदमी हैं, उनके भी बाल-बच्चे हैं, उनकी भी इज़्ज़त-आबरू है। और यह सब हमारे दब्बूपन का फल है। मैंने गाँव-भर में डौंडी पिटवा दी कि कोई बेसी लगान न दो और न खेत छोड़ो। हमको कोई कायल कर दे, तो हम जाफा देने को तैयार हैं ; लेकिन जो तुम चाहो कि बेमुँह के किसानों को पीसकर पी जाँय, तो यह न होगा। गाँववालों ने मेरी बात मान ली, और सबने जाफा देने से इनकार कर दिया। ज़मींदार ने देखा, सारा गाँव एक हो गया है, तो लाचार हो गया। खेत बेदखल भी कर दे, तो जोते कौन ? इस जमाने में जब तक कड़े न पड़ो, कोई नहीं सुनता। बिना रोये तो बालक भी मा से दूध नहीं पाता।

रामसेवक तीसरे पहर चला गया और धनिया और होरी पर न मिटनेवाला असर छोड़ गया। दातादीन का मन्त्र जाग गया।

उन्होंने पूछा—अब क्या कहते हो?

होरी ने धनिया की ओर इशारा करके कहा—इससे पूछो।

'हम तुम दोनों से पूछते हैं।'

धनिया बोली—उमिर तो ज्यादा है; लेकिन तुम लोगों की राय है, तो मुझे भी मंजूर है। तक़दीर में जो लिखा होगा, वह तो आगे आयेगा ही, मगर आदमी अच्छा है।

और होरी को तो रामसेवक पर वह विश्वास हो गया था, जो दुर्बलों को जीवट वाले आदमियों पर होता है। वह शेखचिल्ली के-से मंसूबे बाँधने लगा था। ऐसा आदमी उसका हाथ पकड़ ले, तो बेड़ा पार है।

विवाह का मुहुर्त्त ठीक हो गया। गोबर को भी बुलाना होगा। अपनी तरफ़ से लिख दो, आने न आने का उसे अख़्तियार है। यह कहने को तो मुँह न रहे कि तुमने मुझे बुलाया कब था। सोना को भी बुलाना होगा।

धनिया ने कहा—गोबर तो ऐसा नहीं था; लेकिन जब झुनिया आने दे! परदेश जाकर ऐसा भूल गया कि न चिट्ठी न पत्री। न जाने कैसे है। यह कहते-कहते उसकी आँखें सजल हो गईं।

गोबर को ख़त मिला, तो चलने को तैयार हो गया। झुनिया को जाना अच्छा तो न लगता था; पर इस अवसर पर कुछ कह न सकी। बहन के ब्याह में भाई का न जाना कैसे सम्भव है? सोना के ब्याह में न जाने का कलंक क्या कम है?

गोबर आर्द्र कण्ठ से बोला—मा-बाप से खिंचे रहना कोई अच्छी बात नहीं है। अब हमारे हाथ-पाँव हैं, उनसे खिंच लें, चाहे लड़ लें, लेकिन जन्म तो उन्हीं ने दिया, पाल-पोसकर जवान तो उन्हीं ने किया? अब वह हमें चार बात भी कहें, तो हमें गम खाना चाहिए। इधर मुझे बार-बार अम्मा-दादा की याद आया करती है। उस बखत मुझे न जाने क्यों उन पर गुस्सा आ गया। तेरे कारन मा-बाप को भी छोड़ना पड़ा।

झुनिया तिनक उठी—मेरे सिर पर यह पाप न लगाओ, हाँ। तुम्हीं को लड़ने की सूझी थी। मैं तो अम्मा के पास इतने दिन रही, कभी साँस तक न लिया।

'लड़ाई तेरे कारन हुई।'

'अच्छा, मेरे ही कारन सही। मैंने भी तो तुम्हारे लिए अपना घर-बार छोड़ दिया!'

'तेरे घर में कौन तुझे प्यार करता था। भाई बिगड़ते थे, भावजें जलाती थीं। भोला तो तुझे पा जाते तो कच्चा ही खा जाते।'

'तुम्हारे ही कारन।'

'अबकी जब तक रहें इस तरह रहें कि उन्हें भी ज़िन्दगानी का कुछ सुख मिले। उनकी मरज़ी के खिलाफ़ कोई काम न करें। दादा इतने अच्छे हैं कि कभी मुझे डाँटा तक नहीं। अम्मा ने कई बार मारा है; लेकिन वह जब मारती थीं, तब कुछ-न-कुछ खाने को दे देती थीं। मारती थीं; पर जब तक मुझे हँसा न लें, उन्हें चैन न आता था।'

दोनों ने मालती से ज़िक्र किया। मालती ने छुट्टी ही नहीं दी, कन्या के उपहार के लिए चर्खा और हाथों का कंगन भी दिया। वह ख़ुद जाना चाहती थी; लेकिन कई ऐसे मरीज़ उसके इलाज में थे, जिन्हें एक दिन के लिए भी न छोड़ सकती थी। हाँ, शादी के दिन आने का वादा किया और बच्चे के लिए खिलौनों का ढेर लगा दिया। उसे बार-बार चूमती थी और प्यार करती थी, माना सब कुछ पेशगी ले लेना चाहती है, और बच्चा उसके प्यार की बिलकुल परवा न करके घर चलने के लिए ख़ुश था, उसे घर के लिए जिसको उसने देखा तक न था। उसकी बाल-कल्पना में घर स्वर्ग से भी बढ़कर कोई चीज़ था।

गोबर ने घर पहुँचकर उसकी दशा देखी, तो ऐसी निराशा हुई कि इसी वक्त यहाँ से लौट जाय। घर का एक हिस्सा गिरने-गिरने हो गया था। द्वार पर केवल एक बैल बँधा हुआ था, वह भी नीमजान। धनिया और होरी दोनों फूले न समाये; लेकिन गोबर का जी उचाट था। अब इस घर के सँभलने की क्या आशा है! वह ग़ुलामी करता है; लेकिन भरपेट खाता तो है! केवल एक ही मालिक का तो नौकर है! यहाँ तो जिसे देखो, वही रोब जमाता है। ग़ुलामी है; पर सूखी। मेहनत करके अनाज पैदा करो और जो रुपया मिले वह दूसरों को दे दो। आप

बैठे राम-राम करो। दादा ही का कलेजा है कि यह सब सहते हैं। हमसे तो एक दिन न सहा जाय। और यह दशा कुछ होरी ही को न थी। सारे गाँव पर यह विपत्ति थी। ऐसा एक आदमी भी नहीं, जिसकी रोनी सूरत न हो, मानो उनके प्राणों की जगह वेदना ही बैठी उन्हें कठपुतलियों की तरह नचा रही हो। चलते-फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे, इसलिए कि पिसना और घुटना उनकी तक़दीर में लिखा था। जीवन में न कोई आशा है, न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गये हों और सारी हरियाली मुरझा गई हो। जेठ के दिन हैं, अभी तक खलिहानों में अनाज मौजूद है; मगर किसी के चेहरे पर खुशी नहीं है। बहुत कुछ तो खलिहान में ही तुलकर महाजनों और कारिन्दों की भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है, वह भी दूसरों का है। भविष्य अन्धकार की भाँति उनके सामने है। उसमें उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझता। उनकी सारी चेतनाएँ शिथिल हो गई हैं। द्वार पर मनों कूड़ा जमा है, दुर्गन्ध उड़ रही है; मगर उनकी नाक में न गन्ध है, न आँखों में ज्योति। सरेशाम से द्वार पर गीदड़ रोने लगते हैं; मगर किसी को गम नहीं। सामने जो कुछ मोटा-झोटा आ जाता है, वह खा लेते हैं, उसी तरह जैसे इंजिन कोयला खा लेता है। उनके बैल चूनी-चोकर के बग़ैर नाद में मुँह नहीं डालते थे; मगर उन्हें केवल पेट में कुछ डालने को चाहिए। स्वाद से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। उनकी रसना मर चुकी है। उनके जीवन में स्वाद का लोप हो गया है। उनसे धेले-धेले के लिए बेईमानी करवा लो, मुट्ठी-भर अनाज के लिए लाठियाँ चलवा लो। पतन की वह इन्तहा है, जब आदमी शर्म और इज़्ज़त को भी भूल जाता है।

लड़कपन से गोबर ने गाँवों की यही दशा देखी थी और उनका आदी हो चुका था; पर आज चार साल के बाद उसने जैसे एक नई दुनिया देखी। भले आदमियों के साथ रहने से उसकी बुद्धि कुछ जग उठी है; उसने राजनैतिक जलसों के पीछे खड़े होकर भाषण सुने हैं और उनसे अंग-अंग में बिंधा है। उसने सुना है और समझा है कि अपना भाग्य ख़ुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफ़तों पर विजय पानी होगी। कोई देवता, कोई गुप्त शक्ति उनकी मदद करने न आयेगी। और उसमें गहरी संवेदना सजग हो उठी है। अब उसमें वह पहले की उद्दण्डता और गरूर नहीं है। वह नम्र और उद्योगशील हो गया है। जिस दशा में

पड़े हुए हो, उसे स्वार्थ और लोभ के वश होकर और क्यों बिगाड़ते हो ? दुःख ने तुम्हें एक सूत्र में बाँध दिया है। बन्धुत्व के इस दैवी बन्धन को क्यों अपने तुच्छ स्वार्थों में तोड़े डालते हो ? उस बन्धन को एकता का बन्धन बना लो। इस तरह के भावों ने उसकी मानवता को पंख-से लगा दिये हैं। संसार का ऊँच-नीच देख लेने के बाद निष्कपट मनुष्यों में जो उदारता आ जाती है, वह अब मानो आकाश में उड़ने के लिए पंख फड़फड़ा रही है। होरी को अब वह कोई काम करते देखता है, तो उसे हटाकर ख़ुद करने लगता है, जैसे पिछले दुर्व्यवहार का प्रायश्चित्त करना चाहता हो। कहता है, दादा, अब कोई चिन्ता मत करो, सारा भार मुझपर छोड़ दो, मैं अब हर महीने खर्च भेजूँगा, इतने दिन तो मरते-खपते रहे, कुछ दिन तो आराम कर लो, मुझे धिक्कार है कि मेरे रहते तुम्हें इतना कष्ट उठाना पड़े। और होरी के रोम-रोम से बेटे के लिए आशीर्वाद निकल जाता है। उसे अपनी जीर्ण देह में दैवी स्फूर्ति का अनुभव होता। वह इस समय अपने क़र्ज का ब्योरा कहकर उसकी उठती जवानी पर चिन्ता की बिजली क्यों गिराये ? वह आराम से खाये-पीये, ज़िन्दगी का सुख उठाये। मरने-खपने के लिए वह तैयार है। यही उसका जीवन है। राम-राम जपकर वह जी भी तो नहीं सकता ! उसे तो फावड़ा और कुदाल चाहिए। राम-नाम की माला फेरकर उसका चित्त शान्त होगा ?

गोबर ने कहा—कहो तो मैं सबसे क़िस्त बँधवा लूँ और महीने-महीने देता जाऊँ। सब मिलकर कितना होगा ?

होरी ने सिर हिलाकर कहा—नहीं बेटा, तुम काहे को तकलीफ़ उठाओगे। तुम्हीं को कौन बहुत मिलते हैं। मैं सब देख लूँगा। जमाना इसी तरह थोड़े ही रहेगा। रूपा चली जाती है। अब कर्ज़ ही चुकाना तो है। तुम कोई चिन्ता मत करना। खाने-पीने का संजम रखना। अभी देह बना लोगे, तो सदा आराम से रहोगे। मेरी कौन, मुझे तो मरने-खपने की आदत पड़ गई है। अभी मैं तुम्हें खेती में नहीं जोतना चाहता बेटा। मालिक अच्छा मिल गया है। उसकी कुछ दिन सेवा कर लोगे, तो आदमी बन जाओगे। वह तो यहाँ आ चुकी हैं। साक्षात् देवी हैं।

'ब्याह के दिन फिर आने को कहा है।'

'हमारे सिर-आँखों पर आये। ऐसे भले आदमियों के साथ रहने से चाहे पैसे कम भी मिलें; लेकिन ज्ञान बढ़ता है और आँखें खुलती हैं।'

उसी वक्त पंडित दातादीन ने होरी को इशारे से बुलाया और दूर ले जाकर कमर से सौ-सौ रुपये के दो नोट निकालते हुए बोले—तुमने मेरी सलाह मान ली, बड़ा अच्छा किया। दोनों काम बन गये। कन्या से भी उरिन हो गये और बाप-दादों की निशानी भी बच गई। मुझसे जो कुछ हो सका, मैंने तुम्हारे लिए कर दिया अब तुम जानो, तुम्हारा काम जाने।

होरी ने रुपये लिये तो उसका हाथ काँप रहा था। उसका सिर ऊपर न उठ सका, मुँह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गढ़े में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है। आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुँह पर थूक देता है। वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है, भाइयो, मैं दया का पात्र हूँ, मैंने नहीं जाना, जेठ की लू कैसी होती है और माघ की वर्षा कैसी होती है! इस देह को चीरकर देखो, इसमें कितना प्राण रह गया है, कितना ज़ख्मों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ! उससे पूछो, कभी तूने विश्राम के दर्शन किये, कभी तू छाँह में बैठा! उस पर यह अपमान! और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी, अधम! उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अन्धा हो गया था, मानों टूक-टूक उड़ गया है।

दातादीन ने कहा—तो मैं जाता हूँ। न हो, तुम इस बखत नोखेराम के पास जाओ।

होरी दीनता से बोला—चला जाऊँगा महाराज! मगर मेरी इज्जत तुम्हारे हाथ है।

३६

दो दिन तक गाँव में खूब धूम-धाम रहा। बाजे बजे, गाना-बजाना हुआ और रूपा रो-धोकर बिदा हो गई; मगर होरी को किसी ने घर से निकलते न देखा। ऐसा छिपा बैठा था, जैसे मुँह में कालिख लगी हो। मालती के आ जाने से चहल-पहल और बढ़ गई। दूसरे गाँवों की स्त्रियाँ भी आ गईं।

गोबर ने अपने शील-स्नेह से सारे गाँव को मुग्ध कर लिया है। ऐसा कोई घर न था, जहाँ वह अपने मीठे व्यवहार की याद न छोड़ आया हो। भोला तो उसके

पैरों पर गिर पड़े। उसकी स्त्री ने उसको पान खिलाये और एक रुपया बिदाई दी और उसका लखनऊ का पता भी पूछा। कभी लखनऊ आयेगी तो उससे ज़रूर मिलेगी। अपने रुपये की उससे चर्चा तक न की।

तीसरे दिन जब गोबर चलने लगा, तो होरी ने धनिया के सामने आँखों में आँसू भरकर वह अपराध स्वीकार किया, जो कई दिन से उसकी आत्मा को मथ रहा था, और रोकर बोला—बेटा, मैंने इस ज़मीन के मोह से पाप की गठरी सिर पर लादी। न जाने भगवान् मुझे इसका क्या दण्ड देंगे।

गोबर ज़रा भी गर्म न हुआ, किसी प्रकार का रोष उसके मुँह पर न था। श्रद्धा-भाव से बोला—इसमें अपराध की तो कोई बात नहीं है दादा! हाँ, रामसेवक के रुपए अदा कर देना चाहिए। आख़िर तुम क्या करते? मैं किसी लायक नहीं, तुम्हारी खेती में उपज नहीं। करज कहीं नहीं मिल सकता। एक महीने के लिए भी घर में भोजन नहीं। ऐसी दसा में तुम और कर ही क्या सकते थे? जैजात न बचाते तो रहते कहाँ? जब आदमी का कोई बस नहीं चलता, तो अपने को तकदीर पर ही छोड़ देता है। न जाने यह धाँधली कब तक चलती रहेगी। जिसे पेट की रोटी मयस्सर नहीं उसके लिए मरजाद और इज्जत सब ढोंग है। औरों की तरह तुमने भी दूसरों का गला दबाया होता, उनकी जमा मारी होती तो तुम भी भले आदमी होते। तुमने कभी नीति को नहीं छोड़ा, यह उसी का दण्ड है। तुम्हारी जगह मैं होता तो या तो जेहल में होता, या फाँसी पा गया होता। मुझसे यह कभी बरदास्त न होता कि मैं कमा-कमाकर सबका घर भरूँ और आप अपने बाल-बच्चों के साथ मुँह में जाली लगाये बैठा रहूँ।

धनिया बहू को उसके साथ भेजने पर राजी न हुई। झुनिया का मन भी अभी कुछ दिन यहाँ रहने का था। तय हुआ, गोबर अकेला ही जाय।

दूसरे दिन प्रातःकाल गोबर सबसे बिदा होकर लखनऊ चला। होरी उसे गाँव के बाहर तक पहुँचाने आया। गोबर के प्रति इतना प्रेम उसे कभी न हुआ था। जब गोबर उसके चरणों पर झुका, तो होरी रो पड़ा, मानो फिर उसे पुत्र के दर्शन न होंगे। उसकी आत्मा में उल्लास था, गर्व था, संकल्प था। पुत्र से यह श्रद्धा और स्नेह पाकर वह तेजवान् हो गया है, विशाल हो गया है। कई दिन पहले उस पर

जो अवसाद-सा छा गया था, एक अन्धकार-सा जहाँ वह अपना मार्ग भूल जाता था, वहाँ अब उत्साह है और प्रकाश है।

रूपा अपने ससुराल में ख़ुश थी। जिस दशा में उसका बालापन बीता था, उसमें पैसा सबसे क़ीमती चीज़ था। मन में कितनी साधें थीं, जो मन में ही घुट-घुटकर रह गई थीं। वह अब उन्हें पूरा कर रही थी और रामसेवक अधेड़ होकर भी जवान हो गया था। रूपा के लिए वह पति था, उसके जवान, अधेड़ या बूढ़े होने से उसकी नारी-भावना में कोई अन्तर न आ सकता था। उसकी यह भावना पति के रंग-रूप या उम्र पर आश्रित न थी, उसकी बुनियाद इससे बहुत गहरी थी, श्वेत परम्पराओं की तह में, जो केवल किसी भूकम्प से ही हिल सकती थी। उसका यौवन अपने ही में मस्त था, वह अपने ही लिए अपना बनाव-सिंगार करती थी और आप ही ख़ुश होती थी। रामसेवक के लिए उसका दूसरा रूप था। तब वह गृहिणी बन जाती थी, घर के काम-काज में लगी हुई। अपनी जवानी दिखाकर उसे लज्जा या चिन्ता में न डालना चाहती थी। किसी तरह की अपूर्णता का भाव उसके मन में न आता था। अनाज से भरे हुए बखार और गाँव के सिवान तक फैले हुए खेत और द्वार पर ढोरों की क़तारें और किसी प्रकार की अपूर्णता को उसके अन्दर आने ही न देती थीं।

और उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा थी अपने घरवालों को ख़ुशी देखना। उनकी ग़रीबी कैसे दूर कर दे! उस गाय की याद अभी तक उसके दिल में हरी थी, जो मेहमान की तरह आई थी और सबको रोता छोड़कर चली गई थी। वह स्मृति इतने दिनों के बाद अब और भी मृदु हो गई थी। अभी उसका निजत्व इस नये घर में न जम पाया था। वही पुराना घर उसका अपना घर था। वहीं के लोग अपने आत्मीय थे, उन्हीं का दुःख उसका दुःख और उन्हीं का सुख उसका सुख था। इस द्वार पर ढोरों का एक रेवड़ देखकर उसे वह हर्ष न हो सकता था, जो अपने द्वार पर एक गाय देखकर होता। उसके दादा की यह लालसा कभी पूरी न हुई। जिस दिन वह गाय आई थी, उन्हें कितना उछाह हुआ था, जैसे आकाश से कोई देवी आ गई हो। तबसे फिर उन्हें इतनी समाई ही न हुई कि कोई दूसरी गाय लाते; पर वह जानती थी, आज भी वह लालसा होरी के मन में उतनी ही सजग है। अबकी वह जायगी, तो साथ वह धौरी गाय ज़रूर लेती जायगी। नहीं, अपने

आदमी से क्यों न भेजवा दे। रामसेवक से पूछने की देर थी। मंजूरी हो गई और दूसरे दिन एक अहीर के मारफ़त रूपा ने गाय भेज दी। अहीर से कहा, दादा से कह देना, मंगल के दूध पीने के लिए भेजी है। होरी भी गाय लेने की फ़िक्र में था। यों अभी उसे गाय की कोई जल्दी न थी; मगर मंगल यहीं है और वह बिना दूध के कैसे रह सकता है! रुपये मिलते ही वह सबसे पहले गाय लेता। मंगल अब केवल उसका पोता नहीं है, केवल गोबर का बेटा नहीं है, मालती देवी का खिलौना भी है। उसका लालन-पालन उसी तरह का होना चाहिए।

मगर रुपये कहाँ से आयें? संयोग से उसी दिन एक ठीकेदार ने सड़क के लिए गाँव के ऊसर में कंकड़ की खुदाई शुरू की। होरी ने सुना तो चटपट वहाँ जा पहुँचा, और आठ आने रोज़ पर खुदाई करने लगा; अगर यह काम दो महीने भी टिक गया, तो गाय-भर को रुपये मिल जायँगे। दिन-भर लू और धूप में काम करने के बाद वह घर आता, तो बिल्कुल मरा हुआ; किन्तु अवसाद का नाम नहीं। उसी उत्साह से दूसरे दिन काम करने जाता। रात को भी खाना खाकर ढिबरी के सामने बैठ जाता, और सुतली कातता। कहीं बारह-एक बजे सोने जाता। धनिया भी पगला गई थी, उसे इतनी मेहनत करने से रोकने के बदले, खुद उसके साथ बैठी-बैठी सुतली कातती। गाय तो लेनी ही है, रामसेवक के रुपये भी तो अदा करने हैं। गोबर कह गया है। उसे बड़ी चिन्ता है।

रात के बारह बज गये थे। दोनों बैठे सुतली कात रहे थे। धनिया ने कहा—तुम्हें नींद आती हो तो जाके सो रहो। भोर फिर तो काम करना है।

होरी ने आसमान की ओर देखा—चला जाऊँगा। अभी तो दस बजे होंगे। तू जा सो रह।

'मैं तो दोपहर को छन-भर पौढ़ रहती हूँ।'

'मैं भी चबेना करके पेड़ के नीचे सो लेता हूँ।'

'बड़ी लू लगती होगी।'

'लू क्या लगेगी! अच्छी छाँह है।'

'मैं डरती हूँ, कहीं तुम बीमार न पड़ जाओ।'

'चल! बीमार वह पड़ते हैं, जिन्हें बीमार पड़ने की फ़ुरसत होती है। यहाँ तो यह धुन है कि अबकी गोबर आये, तो रामसेवक के आधे रुपये जमा रहें।

कुछ वह भी लायेगा ही। बस इस साल इस रिन से गला छूट जाय, तो दूसरी जिन्दगी हो।'

'गोबर की अबकी बड़ी याद आती है। कितना सुशील हो गया है।'

'चलती बेर पैरों पर गिर पड़ा।'

'मंगल वहाँ से आया तो कितना तैयार था। यहाँ आकर दुबला हो गया है।'

'वहाँ दूध, मक्खन, क्या नहीं पाता था? यहाँ रोटी मिल जाय वही बहुत है। ठीकेदार से रुपये मिले और गाय लाया।'

'गाय तो कभी आ गई होती, लेकिन तुम जब कहना मानो। अपनी खेती तो सँभाले न सँभलती थी, पुनिया का भार भी अपने सिर ले लिया।'

'क्या करता, अपना धरम भी तो कुछ है! हीरा ने नालायकी की तो उसके बाल-बच्चों को सँभालने वाला तो कोई चाहिए ही था। कौन था मेरे सिवा, बता? मैं न मदद करता, तो आज उनकी क्या गत होती, सोच! इतना सब करने पर भी तो मँगरू ने उस पर नालिस कर ही दी।'

'रुपये गाड़कर रखेगी तो क्या नालिस न होगी?'

'क्या बकती है! खेती से पेट चल जाय यही बहुत है। गाड़कर कोई क्या रखेगा।'

'हीरा तो जैसे संसार ही से चला गया।'

'मेरा मन तो कहता है कि वह आयेगा कभी न कभी जरूर।'

दोनों सोये। होरी अँधेरे मुँह उठा तो देखता है कि हीरा सामने खड़ा है, बाल बढ़े हुए, कपड़े तार-तार, मुँह सूखा हुआ, देह में रक्त और मांस का नाम नहीं, जैसे क़द भी छोटा हो गया है। दौड़कर होरी के क़दमों पर गिर पड़ा।

होरी ने उसे छाती से लगाकर कहा—तुम तो बिल्कुल घुल गये हीरा, कब आये? आज तुम्हारी बार-बार याद आ रही थी। बीमार हो क्या?

आज उसकी आँखों में वह हीरा न था जिसने उसकी ज़िन्दगी तल्ख़ कर दी थी, बल्कि वह हीरा था जो बे-मा-बाप का छोटा-सा बालक था। बीच के ये पचीस-तीस साल जैसे मिट गये, उनका कोई चिह्न भी नहीं।

हीरा ने कुछ जवाब न दिया। खड़ा रो रहा था।

होरी ने उसका हाथ पकड़कर गद्‌गद कण्ठ से कहा—क्यों रोते हो भैया, आदमी से भूल-चूक होती ही है। कहाँ रहे इतने दिन?

हीरा कातर स्वर में बोला—कहाँ बताऊँ दादा! बस यही समझ लो कि तुम्हारे दर्शन बदे थे, बच गया। हत्या सिर सवार थी। ऐसा लगता था कि वह गऊ मेरे सामने खड़ी है। हरदम, सोते, जागते, कभी आँखों से ओझल न होती। मैं पागल हो गया और पाँच साल पागल-खाने में रहा। आज वहाँ से निकले छः महीने हुए। माँगता-खाता फिरता रहा। यहाँ आने की हिम्मत न पड़ती थी। संसार को कौन मुँह दिखलाऊँगा! आखिर जी न माना। कलेजा मजबूत करके चला आया। तुमने बाल-बच्चों को…

होरी ने बात काटी—तुम नाहक भागे। अरे, दारोगा को दस-पाँच देकर मामला रफे-दफे करा दिया जाता और होता क्या?

'तुमसे जीते-जी उरिन न हूँगा दादा!'

'मैं कोई गैर थोड़े ही हूँ भैया!'

होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएँ मानो उसके चरणों पर लोट रही थीं। कौन कहता है, जीवन-संग्राम में वह हारा है? यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं! इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजयपताकाएँ हैं। उसकी छाती फूल उठी है, मुख पर तेज आ गया है। हीरा की कृतज्ञता में उसके जीवन की सारी सफलता मूर्तिमान् हो गई है। उसके बखार में सौ-दो-सौ मन अनाज भरे होते, उसकी हाँडी में हज़ार-पाँच सौ गड़े होते; पर उससे यह स्वर्ग का सुख क्या मिल सकता था!

हीरा ने उसे सिरसे पाँव तक देखकर कहा—तुम भी तो बहुत दुबले हो गये दादा!

होरी ने हँसकर कहा—तो क्या यह मेरे मोटे होने के दिन हैं? मोटे वह होते हैं, जिन्हें न रिन की सोच होती है, न इज्जत की। इस जमाने में मोटा होना बेहयाई है। सौ को दुबला करके तब एक मोटा होता है। ऐसे मोटेपन में क्या सुख? सुख तो जब है कि सभी मोटे हों। सोभा से भेंट हुई?

'उससे तो रात ही भेंट हो गई थी। तुमने तो अपनों को भी पाला, जो तुमसे बैर करते थे, उनको भी पाला और अपना मरजाद बनाये बैठे हो। उसने तो खेत-

बारी सब बेच-बाच डाली और अब भगवान् ही जाने उसका निबाह कैसे होगा।'

आज होरी खुदाई करने चला, तो देह भारी थी। रात की थकन दूर न हो पाई थी; पर उसके कदम तेज़ थे और चाल में निर्द्वन्द्वता की अकड़ थी।

आज दस बजे ही से लू चलने लगी और दोपहर होते-होते तो आग बरस रही थी। होरी कंकड़ के झौवे उठा-उठाकर खदान से सड़क पर लाता था और गाड़ी पर लादता था। जब दोपहर को छुट्टी हुई, तो वह बेदम हो गया था। ऐसी थकन उसे कभी न हुई थी। उसके पाँव तक न उठते थे। देह भीतर से झुलसी जा रही थी। उसने न स्नान किया, न चबेना, उसी थकन में अपना अँगोछा बिछाकर एक पेड़ के नीचे सो रहा; मगर प्यास के मारे कण्ठ सूखा जाता है। खाली पेट पानी पीना ठीक नहीं। उसने प्यास को रोकने की चेष्टा की; लेकिन प्रतिक्षण भीतर की दाह बढ़ती जाती थी। न रहा गया। एक मज़दूर ने बाल्टी भर रखी थी और चबेना कर रहा था। होरी ने उठकर एक लोटा पानी खींचकर पिया और फिर आकर लेट रहा; मगर आध घण्टे में उसे क़ै हो गई और चेहरे पर मुर्दनी-सी छा गई।

उस मज़दूर ने कहा—कैसा जी है होरी भैया?

होरी के सिर में चक्कर आ रहा था। बोला—कुछ नहीं, अच्छा हूँ।

यह कहते-कहते उसे फिर क़ै हुई और हाथ-पाँव ठण्डे होने लगे। यह सिर में चक्कर क्यों आ रहा है? आँखों के सामने जैसे अँधेरा छाया जाता है। उसकी आँखें बन्द हो गईं और जीवन की सारी स्मृतियाँ सजीव हो-होकर हृदय-पट पर आने लगीं, लेकिन बेक्रम, आगे की पीछे, पीछे की आगे, स्वप्न-चित्रों की भाँति बेमेल, विकृत और असम्बद्ध। वह सुखद बालपन आया, जब वह गुल्लियाँ खेलता था और माँ की गोद में सोता था। फिर देखा, जैसे गोबर आया और उसके पैरों पर गिर रहा है। फिर दृश्य बदला, धनिया दुलहिन बनी हुई, लाल चुँदरी पहने उसको भोजन करा रही थी। फिर एक गाय का चित्र सामने आया, बिल्कुल काम-धेनु-सी। उसने उसका दूध दुहा और मंगल को पिला रहा था कि गाय एक देवी बन गई और...

उसी मजदूर ने फिर पुकारा—दोपहरी ढल गई होरी, चलो झौवा उठाओ।

होरी कुछ न बोला। उसके प्राण तो न जाने किस-किस लोक में उड़ रहे थे। उसकी देह जल रही थी, हाथ-पाँव ठण्डे हो रहे थे। लू लग गई थी।

उसके घर आदमी दौड़ाया गया। एक घण्टे में धनिया दौड़ी हुई आ पहुँची। शोभा और हीरा पीछे-पीछे खटोले की डोली बनाकर ला रहे थे।

धनिया ने होरी की देह छुई, तो उसका कलेजा सन् से हो गया। मुख कांति-हीन हो गया था।

काँपती हुई आवाज़ से बोली—कैसा जी है तुम्हारा?

होरी ने अस्थिर आँखों से देखा और बोला—तुम आ गये गोबर, मैंने मंगल के लिए गाय ले ली है। वह खड़ी है देखो।

धनिया ने मौत की सूरत देखी थी। उसे पहचानती थी। उसे दबे पाँव आते भी देखा था, आँधी की तरह आते भी देखा था। उसके सामने सास मरी, ससुर मरा, अपने दो बालक मरे, गाँव के पचासों आदमी मरे। प्राण में एक धक्का-सा लगा। वह आधार जिस पर जीवन टिका हुआ था, जैसे खिसका जा रहा था, लेकिन नहीं, यह धैर्य का समय है, उसकी शंका निर्मूल है, लू लग गई है, इसी से अचेत हो गये हैं।

उमड़ते हुए आँसुओं को रोककर बोली—मेरी ओर देखो, मैं हूँ, क्या मुझे नहीं पहचानते?

होरी की चेतना लौटी। मृत्यु समीप आ गई; आग दहकनेवाली थी। धुआँ शान्त हो गया था। धनिया को दीन आँखों से देखा, दोनों कोनों से आँसू की दो बूँदें ढुलक पड़ीं। क्षीण स्वर में बोला—मेरा कहा-सुना माफ़ करना धनिया! अब जाता हूँ। गाय की लालसा मन में ही रह गई। अब तो यहाँ के रुपये क्रिया-करम में जायँगे। रो मत धनिया, अब कब तक जिलायेगी? सब दुर्दशा तो हो गई। अब मरने दे।

और उसकी आँखें फिर बन्द हो गईं। उसी वक्त हीरा और शोभा डोली लेकर पहुँच गये। होरी को उठाकर डोली में लेटाया और गाँव की ओर चले।

गाँव में यह ख़बर हवा की तरह फैल गई। सारा गाँव जमा हो गया। होरी खाट पर पड़ा शायद सब कुछ देखता था, सब कुछ समझता था, पर ज़बान बन्द हो गई थी। हाँ, उसकी आँखों से बहते हुए आँसू बतला रहे थे, मोह का बन्धन तोड़ना कितना कठिन हो रहा है। जो कुछ अपने से नहीं बन पड़ा, उसी के दुःख का नाम तो मोह है। पाले हुए कर्तव्य और निपटाये हुए कामों

का क्या मोह ? मोह तो उन अनाथों को छोड़ जाने में है, जिनके साथ हम अपना कर्तव्य न निभा सके; उन अधूरे मंसूबों में है, जिन्हें हम पूरा न कर सके।

मगर सब कुछ समझकर भी धनिया आशा की मिटती हुई छाया को पकड़े हुए थी। आँखों से आँसू गिर रहे थे, यन्त्र की भाँति दौड़-दौड़कर कभी आम भूनकर पना बनाती, कभी होरी की देह में गेहूँ की भूसी की मालिश करती। क्या करे, पैसे नहीं हैं, नहीं किसी को भेजकर डाक्टर बुलाती।

हीरा ने रोते हुए कहा—भाभी, दिल कड़ा करो, गो-दान करा दो, दादा चले।

धनिया ने उसकी ओर तिरस्कार की आँखों से देखा। अब वह दिल को और कितना कठोर करे ? अपने पति के प्रति उसका जो कर्म है, क्या यह उसको बताना पड़ेगा। जो जीवन का संगी था, उसके नाम को रोना ही क्या उसका धर्म है ?

और कई आवाज़ें आईं—हाँ, गो-दान करा दो, अब यही समय है।

धनिया यन्त्र की भाँति उठी, आज जो सुतली बेची थी उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठण्डे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली—महराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गो-दान है।

और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।